दो शब्द

प्रस्तुत ग्रन्थ और लेखक के विषय मे इससे पूर्व प्रथम तथा द्वितीय भाग मे बता चुके हैं इस विषय में अधिक बताना दिवाकर को दीपक दिखाना है।

पुस्तक के लगभग 625 पृष्ठ हैं जब पुस्तक ही इतनी महान् है तो उसके रचयिता कितने महान् होगे यह तो पाठक गण अपनी प्रतिभा से विचार सकेंगे।

प्रूफ का संशोधन श्री रमेश मुनि जी महाराज तथा श्री सन्तोष मुनि जी महाराज ने अति ही सावधानी एव प्रेम से किया फिर भी त्रुटि का रह जाना सम्भव है क्योकि पुस्तक एक विशाल एव विराट है।

उपरोक्त दोनो मुनि इस ग्रन्थ लेखक श्रमण संघीय पंजाब प्रान्त मन्त्री पं० रत्न कवि सम्राट जैन धर्म भूषण परम श्रद्धेय श्री शुक्ल चन्द्र जी महाराज के ही शिष्य है।

जिन्होने अत्याधिक परिश्रम से प्रूफ संशोधन कर अनेक त्रुटियां निकाल दी फिर भी कोई त्रुटि हो तो धर्म प्रिय सज्जन सुधार कर पढे। प्रत्येक बन्धु का परम कर्तव्य है कि जैन महाभारत के आदर्श और उसके दृष्टि कोण पर चलने का भरसक प्रयास करे तथा अपना जीवन सफल बनाए तभी अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

जो स्थान गगन मे प्रथम नक्षत्र को उपवन में प्रथम सुमन को माला में प्रथम मोती को प्राप्त है वही स्थान ग्रन्थो मे प्रथम जैन महाभारत को है। इससे अधिक लिखने मे मैं समर्थ नहीं हु विशेष पाठक गण स्वय समझ लेंगे।

भवदीय :—

सुखदेव राज जैन

कोतवाली बाजार, अम्बाला शहर।

पंजाब प्रान्त मन्त्री पं० रत्न कवि सम्राट परम श्रद्धेय पूज्य श्री शुक्ल चन्द्र जी महाराज के सुशिष्य सन्तोष मुनि ' दिनकर" प्रभाकर।"

साधु जीवन कठोर साधना तथा दुर्गम निष्ठुर पथ पर चलना और नाना प्रकार के परिषहो का सहना है। आप इस आधुनिक युग मे जैन धर्म के एक उज्ज्वल चमकते हुए दिवाकर तथा श्री वर्द्धमान स्थानक वासी जैन श्रमण सघ के मन्त्री हैं। दिनकर से तेजस्वी राकेश से ओजस्वी दिव्य ज्योति अमर विभूति विश्व प्रिय आप ने शांत क्रांति को जन्म देकर जो सत्यादर्श सघ समक्ष रखे उसका अखिल भारतीय श्रमण एवं श्रावक सघ अभिनन्दन करते हैं। आप एक सस्कृति के प्रकाशक है।

शात और निर्भीक जीवन मे प्रेम और सामंजयस का जो विलक्षण समन्वय हुआ है उसी के नाते आप आज तक जैन समाज के लोक प्रिय लोक पूज्य और लोकवंघ वन रहे हैं। हमारी समाज मे आप एक अमूल्य चिंतामणि रत्न है। ज्ञान के भडार और शान्ति के सिन्धु हैं।

शुक्ल जैन रामायण तथा शुक्ल जैन महाभारत जैसे महान् ग्रन्थो के रचयिता से ही आपकी प्रतिभा का परिचय हो जाता है। आप एक प्रतिभा सम्पन्न और प्रभाव शाली सजग साधु तथा साधुत्व की एक साक्षात् मूर्ति है। जैनागमो का आपने गहरा अध्ययन किया और विपुल हिन्दी साहित्य का भी।

इसके साथ २ सस्कृत प्राकृत गुजराती, मराठी आदि भाषाओ पर भी आपका अच्छा अधिकार है। उपरोक्त दो ग्रन्थो के अतिरिक्त और भी कई पुस्तकों का आपने प्रकाशन किया जम्बु चरित्र वीर मति जगदेव चरित्र मुख्य तत्त्व चितामणि अध्यात्म गुण माला धर्म दर्शन शुक्ल गीताजलि नवतत्त्वादर्श भारत भूषण जगत विख्यात प्रधानाचार्य पूज्य सोहनलाल जी म० एव पजाब केशरी प्राकाण्ड विद्वान जैनाचार्य पूज्य काशीराम जी म० का आदर्श जीवन आदि अनेक पुस्तको का आपने अपना अमूल्य समय निकाल कर प्रतिपादन किया।

अखिल भारतीय समाज आपका मनोहर नाम न लेकर पंडित श्री जी के नाम से पुकारती है। पडित श्री के नाम की ख्याति इसी लिए नही कि आप केवल विद्वान् हो अथवा द्विज वंश कुलोत्पन्न हैं। वल्कि विद्वता के साथ-साथ गम्भीर दार्शनिक सैद्धान्तिक तथा कठिन से कठिन विषय का भी लोक भाषा मे विवेचन करते हैं, और जैनागमो का गम्भीर ज्ञान तथा समझाने की विद्वता पूर्ण कला आप मे ही है। सरलता सहन शीलता प्रमुदित मुख शांत मूर्ति स्नेह सरल स्वभाव करुणा सिन्धु शान्ति सरोवर जैन धर्म के ज्ञाता आदि गुण आपके स्वाभाविक ही है। इस युग में आप हिन्दी सस्कृत के एक प्राकांड विद्वान् हैं।

और इसी से आप महान् हैं। आपकी सर्व श्रेष्ठ पुस्तको का जनता ने हार्दिक स्वागत किया जो हाथो हाथ विक रही है।

अपने जीवन में आप जो कुछ हमें प्रदान कर रहे हैं वह हमारे विचारों की पवित्रता आचरण की पावनता और आत्मा की शुद्धता के लिए प्रकाश स्तम्भ और अलोक मार्तण्ड की भाति है। आपने अपनी अमृतमयी प्रेम प्लावित जादू भरी वाणी द्वारा अनेक स्थानो पर धार्मिक एवं सामाजिक सुधार कर समाज में स्नेह की सुन्दर निर्मल एवं मंगलिक कल्याण कारी मन्दाकिनी प्रवाहित की हैं। आप जैसे महान् ज्योतिंधर पर जैन समाज जितना भी अधिकाधिक गर्व करे उतना ही थोड़ा है। आप सत्य अहिंसा क्षमा शान्ति के एक साक्षात् अवतार हैं। आप की ओजस्वी वाणी ने जनता के समक्ष जादू का कार्य किया।

भारत भूषण जगत विख्यात [illegible] श्रमण संघ के

प्रधानाचार्य पूज्य सोहन लाल जी महाराज पजाब केशरी प्राकाड विद्वान् जैनाचार्य हृदय सम्राट पूज्य काशी राम जी महाराज की भाति आप भी अपने पथ पर निर्भयता से अग्रसर हो रहे है और उन्ही के सत्यादर्शों पर चल रहे है सत्य अहिंसा पथ पर अग्रसर होते हुए श्रमण सस्कृति के अमर देवता अहिंसा मूर्ति प्रेमावतार क्षमा सिन्धु केवल ज्ञान दर्शनाराधक करुणाभण्डार श्रमण भगवान महावीर का धर्म प्रचार्थ कर सम्वत २०२० का चातुर्मास जैन सघ की आग्रह भरी बिनती पर अम्वाला शहर स्वीकार किया।

आपने अपनी विशेषताओ से अपने आदर्शों से जन हित कार्यो से और अपने महान् गुणो से इस निरस मानव लोक का तिमिर प्लावित मानव ससार को जैन धर्म रूपी दिवाकर की किरणे विस्तृत कर चमत्कृत कर दिया और जो मुरझाया हुआ तथा शुष्क उपवन था वह हरा भरा तथा लहलहाता हुआ बना दिया। और आप ने दानवता के स्थान पर मानवता ग्रहण करना स्वार्थ वृति तज कर परमार्थ वृति जागृन करना विश्व कल्याण मे ही निज कल्याण की भावना रखना तथा अन्य की भलाई के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देना आदि इस प्रकार के उपदेश सुनाकर जनता को मंत्र मुग्ध बना दिया।

आप एक लोक प्रिय सन्त और जनता की श्रद्धा भावना के केन्द्र हैं साधुवों की व्यवस्था मे आप श्री हम सब के लिए एक आदर्श हैं। श्रमण सस्कृति मानव सस्कृति जैन सस्कृति का रहस्य बतलाते हुए आप ने फरमाया था कि जो सुख शान्ति दूसरे को देने मे हैं वह लेने मे नही जो आनन्द अन्य को देने मे हैं वह लेने मे नही जो त्याग मे है वह भोग मे नही वही स्वर आज भी हमारी जैन समाज में गूजायमान हो रहा है।

संघ शिरोमणि चरित्र नायक चूड़ामणि, चिंतामणि रत्न प्रातः स्मरणीय कवि सम्राट केशरी सम विशाल कार्य तप पुत, ब्रह्मचर्य से तेज युक्त प्रफुलित वदन दिव्य ज्योति सुडोल भव्य शरीर हस्ती वत गम्भीर चाल चितन शील नयने नवनीत सम मृदु हृदय उन्नत ललाट तेजो मय मुख स्वर्ण रूप सरस सरल कोमल ओजस्वी प्रवाह मयी प्रभाव शाली जादू भरी अमृत मयी वाणी आदि गुणों सहित गुरुदेव

आपने केवल पंजाव प्रांत मे ही नही महाराष्ट्र, सौराष्ट्र,वम्वई, बंगा
विहार, राज्यस्थान गुजरात, काठिया वाड, यु पी. एम. पी 'पी ब
एस. पी. मैसूर आदि अनेक प्रातो मे पैदल पर्यटन कर मधुर घर्मोपदेश
द्वारा जनता का कल्याण किया और अब कर रहेहै तथा सन् 1947
पूर्व रावलपिंडी, गुजरावाला, लाहौर, पसरूर, कसूर, स्यालकोट
आदि मे किया जा आज हमारे लिए विदेश वन कर पाकिस्तान मे
सम्मलित है ।

आप अपने जीवन काल में कल्याणकारी लोक राज अहिंसा-त्मक विश्व वन्धुत्व एवं अध्यात्मिक साधना की पराकाष्टा को स्थापित कर रहे हैं आप जीव विज्ञान के आचार्य है । आपका समग्र शरीरिक दर्शन ही जिस भाग्यशाली पुंण्यवंत नर को उपलब्ध हो गए वह सदा के लिए कृत कृत्य हो गया उसका जीवन सफल एवं उच्च-कोटि का वन गया । इस लोक मे तथा परलोक मे सुखमय वन गया ।

आप हमारी समाज मे एक दिनकर सदृश्य है जिस प्रकार दिवाकर की सहस्रो किरणें प्रचण्ड एव प्रखर विस्तृत हो रात्रि तिमिर को नष्ट कर प्रकाश से जगमगा देता है परन्तु वह मार्तण्ड तो केवल रात्रितम का ही हरण करता है जो भौतिक है परन्तु आप की जैन धर्म दिवाकर की कोटि-कोटि किरणें ज्ञान का अलोक धर्म का प्रकाश अध्यात्मिक मानव हृदय को आलौकिक करती हुई असार ससार नश्वर नाशवान तथा क्षण-भगुर विश्व को त्यागने तथा सयम रूपी अमूल्य रत्न ग्रहण करने की प्रेरणा देती है ।

आपके जीवन की प्रत्येक घटना एक आदर्श मयी हैं और उस का वर्णन भी इसी लिए करते हैं कि ससार-ससार के मित्थ्या चक्कर से वचें पुण्य-पाप, सत्य-असत्य, हिंसा-अहिंसा की पहिचान करें और धर्म से सम्वन्व योग कर जन्म मरण वन्धन तोड़ कर अष्टकर्म रहित अजर अमर निराकार अरूपी अविकार सच्चिदानन्द सकल विश्व एव त्रयलोक दृष्टिगोचर स्वर्ग एवं दोजख का ज्ञाता परमात्मा स्वरूप वन सकता है । आप का हृदय नवनीत सम मृदु शिशु सम सरल मानों प्रेम सरिता प्रवाहित हो रही है परन्तु नियम पालन तथा सयम क्रिया मे वज्र से भी निष्ठुर है इसमे तनिक सन्देह नही
र अजमेर सादड़ी सोजत वीकानेर जहा भी

सर्व मे भाग लिया और प्रत्येक मे सफलता आपके पावन पदपकज चूमने लगी सैकडो साधुवो में आप का तेज निराला ही था वास्तव मे शुक्ल सचमुच हो शुक्ल हैं मानो शुक्ल ध्यानी शुक्ल लेश्या के धारक हैं। मुख पर ज्योति दमदमा रही है कितनी सहन शीलता कितनी शाति कितना साहस उत्साह प्रेम कितना स्नेह धन्य है आप के जीवन को वारम्वार धन्य हैं आपके सयम को गुरु देव धन्य है।

आपका प्रारम्भ से ही श्रमण सघीय निर्माण में अत्याधिक प्रेरक हाथ रहा है। सन् 1957 मे देहली विश्व धर्म सम्मेलन मे आप सब साधुवों से प्रतिनिधि थे। सम्नेलन के लगभग 300 प्रतिनिधियो मे आपके चेहरे पर जो शान्ति चमक रही थी जो तेज चमत्कृत का वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत के धार्मिक प्रतिनिधियो को जैन धर्म को त्याग मयी साधना और आत्मतेजस्विता के प्रति वरवश आकृष्ट कर रही थी उसकी सफलता का कारण आपकी कृपा दृष्टि ही है। आप भव्य भद्रात्मा ज्ञान दर्शन चरित्र के आराधक और दृढ संयमी साधक है सहानुभूति स्नेह प्रेम और सरलता का झरना तथा अहिसा दया करुणासत्य ज्ञान तप का सरोवर निरन्तर एव अविरल प्रवाहित होता रहता हैं।

आपने ही जनता के हृदय की भावना को सम्मान देते हुए वड़े वड़े ग्रन्थों का काव्यात्मक भाषा मे निर्माण किया अभी जैन महा' भारत के पीछे भी आपका उद्देश्य जन कल्याण हो रहा; है इसका प्रथम भाग तो प्रकाशित हो चुका था यह द्वितीय खंड प्रकाशित हो रहा है। यह शुक्ल जैन महाभारत जैन आचार जैन इतिहास और जैन दृष्टि कोण के विषय मे भी नवीन प्रकाश एव अलोक दिखाएगा ऐसा सम्पूर्ण मुझे विश्वास है।

संघ संगठन समाज को एकता और संघ की भलाई तथा दूसरो के परमार्थ के लिए आपने युवाचार्य जेसे महान् पद का भी त्याग कर दिया यही है आपके जीवन की एक महान् और महत्व पूर्ण विशेपता यही है आपके जीवन का एक सत्यादर्श।

निर्भयता और निस्वार्थता आपके हृदय की ठोस वस्तु हैं आप मानव जीवन धर्म दर्शन समाज और सस्कृति के विभिन्न विषयो पर गूढ़ विचार रखते हैं आप स्वच्छन्द विचार शैली विशिष्ट कल्पना

शक्ति एव मौलिक चिन्तन शीलता के परिचायक है । मानव जीवन को नवीन मोड देने नवीन दिशा दिखाने विकास पथ पर बढ़ने एव प्रगति करने के लिए सहयोग देने मैं पूर्णत: समर्थ है आपने श्रमण सघ का जो कार्य एव निर्माण किया वह अद्वितीय है ।

अतीत काल मे श्रमण सघीय निर्माण मे आपने भरसक प्रयास किया वर्तमान मे अत्याधिक प्रयत्न कर रहे हैं और भविष्य मे अत्यत चेष्टा करेंगे । ऐसी शुभाशा है ।

शासन देव से प्रार्थना है कि आपको दीर्घायु दे आपकी छत्र छाया मे रहते हुए चतुर्विध सघ प्रगति कर रहा है आपका आशीर्वाद और आपका साया करोडो बर्ष तक जैन समाज और अपनी शिष्य मडली पर रहे यही मेरी एक हार्दिकाभिलाषा एव कामना है । विशेष परिचय जानने के लिए जैन महाभारत के तृतीय भाग मे पढ़ें।

हार्दिक उद्‌गार

जैन धर्म दिवाकर पूज्य वर भव्य जीवो के तारण हारे है ।
आशाओ के केन्द्र हमारे निर्मल शशि उजियारे हैं ।।
शान्ति सिधु क्षमा दया और ज्ञान गुणी भडारे है ।
सहन शीलता करुणानिधि अद्‌भुत उज्ज्वल पुण्य सितारे हैं ।।
तेजस्वी "दिनकर" ओजस्वी इन्दु प्रेम मन्दाकिनी वहाते हैं ।
राजे और महाराजे सारे चरणन शीष निवाते हैं ।।
पंजाव प्रान्त मन्त्री क्या-क्या गुण आपके गायें हम ।
गुरु देव आपके चरणन मे श्री सादर शीष झुकाये हम ।।
प्रधानाचार्य भारतभूषण जगतविख्यात पूज्य सोहनलाल जी म०कीज
पजाव केशरी जैनाचार्य प्रकांड विद्वान पूज्य काशीराम जी म० की ज
श्रमण संघीय मत्री कवि सम्राट प०रत्न पूज्य शुक्ल चन्द्र जी म०कीज

ओम शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

भवदीय .—मुनि सन्तोष "दिनकर"

प्रधानाचार्य संवत् 28
भादव शुक्ला पचमी
संवत् २०२०

महावीर सवत् 2489
23 अगस्त सन्
1963

श्री महावीर जैन भवन
अम्वाला शहर (पंजाव)

शुक्ल जैन महाभारत

* प्रथम परिच्छेद *

पाण्डु की विरक्ति

पूर्व कर्म के हाथ मे है जीवन की डोर
शुभ होवे तो मिल जायेगा जग उलझन का छोर
घोर तिमिर भी छट जाता है, होती है जब भौर
भटक भटक कर सरिता, पहुंचे सागर के ही ओर

श्वेत छत्र से सुशोभित पाण्डु नृप को वन क्रीड़ा करने की इच्छा हुई। चचल अश्व, मदोन्मत हाथी और सुन्दर, सुसज्जित रथ तैयार हो गए, चारो प्रकार की सेना सज गई। सौम्य सुन्दरी कमल मुखी माद्री भी पति आज्ञा से सोलह शृङ्गार करके तैयार हो गई। नृप महल से निकले तो अनेक प्रकार के वाजे वज उठे। माद्री पालकी मे सवार हो गई। अश्व चचल हो गए। और नृप अपनी सेना के साथ वन की ओर चल पड़े। वन मे पहुच कर सेना को एक स्थान पर रोक कर नृप और माद्री सघन वन में चले गए, वहां जहा प्रकृति सोलह शृङ्गार कर के मदनोत्मत्त थी। नृप कभी ताल वृक्षो की शोभा देखता, कभी सरल सरस वृक्षो पर दृष्टि जमा देता, और कभी मजरियो की सुगध से परिपूर्ण, सुगन्धित आम्र वृक्ष उन्हे अपनी ओर आकर्षित कर लेते। अशोक वृक्ष, जो कामिनियो के पैरो की ताड़ना से हरे भरे हो जाते है, नृप को अपने यौवनोन्मादी शरीर को एक टक देखने के लिए आमन्त्रित करते तो प्रमदाओं के

कुल्लो से सीचे गए वकुल के वृक्ष उसकी ओर अपने कर पसार देते। कभी कुसवक वृक्ष उस की दृष्टि हर लेते तो कभी मदोन्मत्त भ्रमरो के मधुर सगीत उसके चित्त को बाहु पाश मे आवद्ध करने की चेष्टा करते। और वह कोयल कूक रही है, कानो मे माधुर्य घोलती हुई नृप और माद्री के शुभ गमन पर अभिनन्दन् राग अलाप रही है । जल प्रपात अपने हिये को वाणा पर तरल तरगो का, कि भौरयो के मधुर कण्ठ को भा लज्जित करने वाला राग नृप के हृदय को गुद गुदा रहा है और कही विभिन्न एव विचित्र रगो के पक्षो किलोल करते हुए मन मे आ वसने के लिए लालायित दीखते है । सारी प्रकृति ही मद भरी है । ऐसे मादक वातावरण मे भला कौन कायर अपने हृदय पर कावू रख सकता है । नृप कभी प्रकृति के शृङ्गार को देखता तो कभी माद्री की घोर काली केश लताओं मे उलझ जाता। वह माद्री के साथ वन के स्वच्छन्द पशु पक्षियो की नाईं क्रीडा करने लगा। उस ने चन्दन के रस से, अगरुद्रव के मर्दन से, सुगधित द्रवा के निक्षेप से, उस चित्ताकर्षक एव सुन्दर वन पशुओ के चचल कटाक्ष सहित निरक्षिण से इस प्रकार महाराजा, राजरानी माद्री के सहित, जिस समय प्रकृति नदी के मनोरम रूप सुधा का आस्वादन करने मे तल्लीन थे, उसी समय एक ऐसी अकल्पित घटना घटी कि जिसने उनकी आमोदमयी जीवन-सरिता के प्रवाह को ही मोड दिया। उस मद भरे सरस सुन्दर वातावरण मे, जहाँ लता वितानो पर मुखरित पुष्पो की मनमोहक सुगन्ध पर भ्रमरगण अपनी राग रागिनिया ध्वनित कर रहे थे। सहसा एक हृदयद्रविक चीत्कार कर्ण कुहरो मे गूजने लगा। उस आर्तनाद से वह समस्त वन-प्रदेश मानो प्रकम्पित हो रहा हो। जिससे धर्मात्मा पाडुनरेश के दयालु हृदय को बडा आघात पहुचा और वह एक क्षण का भी व्याघात न करते हुए शब्दानुसरण करते हुए उस स्थल पर पहुचे जहा एक भोला मृग किसी लुब्धक के तीक्ष्णवाण से आहत होकर कराहता हुआ छट पटा कर अपनी जीवन लीला को समाप्त कर रहा था। और उसकी प्रेयसी उसकी ओर व्यथित दृगो से अश्रुपूर्ण नेत्रो से खड़ी देख रही थी। पांडुनृप को उपस्थित पाकर मृगी का हृदय और भी चचल हो उठा। वह दैन्यभाव से एक वार नरेश की तरफ देखती, तो

दूसरी बार अपने म्रियमाण प्रियतम की ओर। जैसे कि कह रही हो कि क्या आप इसी न्यायपद्धति एव वलबूते पर हम निरीह वन वासी प्रजा की पालना करते है। क्या हमने किसी को मारा था अथवा हम किसी का धन चुराते है ? जिसके उपलक्ष्य मे आपके साथियो ने इतनी निर्दयता एव कठोरता से मेरे पति का वध किया है ? मेंढ ही खेत खाने लगे तो उसकी रक्षा कैसे हो सकती है यह तो रक्षक के ही भक्षक वन जाने जैसी वात हुई ! केवल घास तृण खाकर ही जीवन यापन कर देने वाले मेरे पति को मार कर राजन् आप के साथियो को क्या मिला ? भूपति, हिरणी के दु ख तप्त हृदय से नि सृत आर्तनाद को हृदय कर्णो से श्रवण कर रहे थे। उसी की जाति के एक सदस्य के द्वारा उपस्थित किये इस पैशाचिक काड ने नर नाथ का हृदय विदीर्ण कर दिया था। हिंसारूपी रग मे रगे मानव रूपी दानव की दानवता से राजा का शरीर सिहर उठा था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो समस्त चराचर जगत को अपनी सुखद गोद मे भरण–पोषण एव विश्राम प्रदान करने वाली प्रकृति देवी मनुष्य का उपहास उडाती हुई शिक्षा दे रही हो कि—ऐ मानव ! तू सृष्टी का सर्वश्रेष्ठ प्राणी हो कर भी मानवता के अभाव मे पशुओं से भी निम्नतर है। तू उनके उपकार से, उनके श्रम से उत्पन्न अन्न, वस्त्र, फल, फूल, दूध, दधि, घी, मक्खन आदि अमृत का सेवन करके स्वय तो जीवित रहना चाहता है। पर अपने जघन्य स्वार्थवश उन जीवित दाताओ को जीवित नही रहने देना चाहता ! यह तेरी कैसी कृत–घ्नता है ! यदि मानवाकृति प्राप्त की है तो मानवता का यह आदि सूत्र भी सदा सर्वदा स्मरण रख कि—

—दशवैकालिक सूत्र ४, ९

संसार भर के प्राणियो को अपनी आत्मा के समान समझो, यही अहिंसा की व्याख्या है और यही अहिंसा का भाष्य, महाभाष्य तथा कसौटी है। (अहिंसा जो कि मनुष्यत्व का प्रमुख अङ्ग है) जिस दिन जिस घडी मे तू अपने जीने का अधिकार ले कर बैठा है वही जीने का अधिकार सहज भाव मे दूसरो के लिए भी देगा, तो मेरे अन्दर दूसरो के जीवन की परवाह करने की मानवता

जागेगी, दूसरों के जीवन को अपने जीवन के समान समझेगा, और सब प्राणी तेरी भावना में तेरी अपनी आत्मा के समान बनने लगेंगे और सारे संसार को समान दृष्टि से देखेगा, और समझेगा कि जो वस्तु मुझे प्रिय है वही इन्हे भी है क्योकि—

सव्वे पाणा पिया उमा, सुहसाया, दुख पडिकूला, अप्पिय वहा, पियाजी विणो, जीविउकामा । सव्वेसि जीवीयंपियं ।

अर्थात — सब जीवो को जीवन प्रिय है और सभी जीना चाहते है सुख के लिए तरसते हैं और दुख से घबराते हैं अतः प्राणियो के जीवित्तव्य एव सुख का यदि तू निमित बनने को तैयार रहता है तो तभी समझना कि तेरे अन्दर अहिसा है अर्थात तू वास्तव मे मानव है ।

सव्वे जोवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गथा वज्जयति णं ॥

सब जीव जीना चाहते हैं, कोई मरना नही चाहता । सभी को अपने जीवन के प्रति आदर और आकाँक्षाए हैं । सभी अपने लिए सतत प्रयत्न शील हैं। अपने अस्तित्व के लिए सघर्ष कर रहे हैं, सत्ता के लिए जूझ रहे है सो जैसा तू है वैसे ही सब हैं । भगवान कहते हैं कि इसी लिए मैंने प्राण वध अर्थात हिसा का त्याग किया है । और दूसरो को सताना छोड़ा हैं। स्वयं को सताया जाना पसन्द होता तो दूसरो को सताना न छोडते । मर जाना पसन्द होता तो मारना न छोडते । मगर सभी प्राणियो के जीवन की धारा एक है ।

तुमंसि णाम तं चेव जं हत व्वति मरणसि
तुमंसि णामतं चेव जं अज्जावेयव्वति मरणसि;
तुमंसि नाम तं चेव ज परियावेयव्वति मरणसि,

एवं जं परिछेत्तव्वति मरणसि, जं उद्धवेयव्वंति मरणसि,

भजू चेय षडिवुद्ध जीवी मम्हा ण हता णविघायण,
अणुसंवेयणमप्पाणे ण ज हंतव्वं णाभिपत्थए ।

तुम जिस जीव को कष्ट देने योग्य, परिताप उपजाने योग्य यावत मारने योग्य समझते हो वह प्राणी तुम्हारे समान ही शिर पैर, पीठ और पेट वाला है। यदि कोई प्राणी तुम्हे दुख देवे यावत् मारने के लिए आता हो तो उसे देख कर जिस प्रकार तुम्हे दुख होता है। उसी प्रकार दूसरे जीवो को भी होता है। अथवा जिस काय को तुम हनन करने योग्य मानते हो उस काय में तुमने हजारों बार जन्म धारण किया है, इस लिए यह समझो कि तुम ही हो। इस प्रकार विचार करके जो पुरुष सब जीवो को आत्म तुल्य मानता है, वही श्रेष्ठ है। जो जीवो की हिंसा की जाती है उसका पाप स्वय जीव को ही भोगना पडता है। अत· किसी भी प्राणी की स्वय घात न करे, न दूसरो से करवाये, और करने वालो की अनुमोदना भी न करे।

शास्त्र मे एक अन्य स्थान पर कहा गया है :—

सव्वेपाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण
हंतव्वाण अज्जा वेयव्वा ण परिघेतव्वा ण परिया
वेयव्वाणउद्दवेयवा, एस धम्मे सुध्दे णिइए सासए।

—अर्थात एकेन्द्रिय से ले कर पचेन्द्रिय तक किसी भी प्राणी की हिसा न करनो चाहिए, उन्हे शारीरिक व मानसिक कष्ट न देना चाहिए। तथा उनके प्राणो का नाश नही करना चाहिए। यह अहिसा धर्म नित्य है, शाश्वत है। हिसा तीन काल मे भी सुख देने वाली नही है। दया उत्कृष्ट धर्म है।

दया–नदी महातीरे, सर्वे धर्मास्तृणाङ्कुराः।
तस्या शोषमुपेतायाँ प्रियन्नन्दति ते चिराम ।१॥

ऐन्द्रिक लोलुप्ता के वशवर्ती मानव द्वारा किये जाते क्रूर कर्मो

को स्मरण कर-कर राजा का मन ग्लानि से भर उठा था जिस के कारण पाडु नृप का मन ससार, शरीर और भोगो से विरक्त हो गया कहा तो वह विषयानुरागी था और कहा उसने यह सोच कर कि भोग से अन्य पापो के झझट मे उलझ कर आत्मा के धर्म को भूल गया हूं, मुझे अपनी आत्मा के लिए भी कुछ करना चाहिए. मुक्ति के लिए भी कुछ करना है. यह तो मेरा जीवन ही सब व्यर्थ जा रहा है, ससार के सारे मोह बधन तोड डाले इसी लिए तो काल लब्धि एक ऐसी वस्तु है जो जीव की भवितव्यता के अनुसार उसके भाव और तद स्वरूप क्रिया कर देती है। पाण्डु नृप उस समय विचारने लगा— इन्द्रिय विषय प्राणियो के लिए दुर्गति मे ले जाने वाला है। जहां वृथा ही प्राणवध हो उसमे मेरी क्या सिद्धि ? जिस राज्य काज से पाप हो भला उससे मेरा क्या सम्बन्ध ? फिर शास्त्रो मे पढा ज्ञान उसके मस्तिष्क मे उभर आया— "इस जीव ने अनन्त वार मनुष्यादि पर्याय धारण करके विषय सुख भोगे, उन से ही जब तृप्ति नही हुई तब अब कैसे तृप्ति हो सकती है,"— फिर वह सोचने लगा।— "जो एक वार भोगी जा चुकी वह तो जूठी हो गई, ससार में कौन ऐसा बुद्धिमान जो उच्छिष्ट खाना पसन्द करेगा ? फिर विषय भोगते समय ही सुहावने लगते हैं, उत्तर-काल में नीरस हो जाते हैं, वल्कि विष समान प्रतीत होते हैं अतः विषय सेवन जीव को कोई सुख देने वाली चीज नही है, वह तो रोग का प्रतिकार है इसी लिए आचार्यो ने ऊपर के स्वर्गो मे प्रविचार का नही होना ही सुख वतलाया है। विषय सुख अनित्य है क्षण स्थायी है। कुछ देर चमत्कार दिखा कर नष्ट हो जाने वाला है। नृप विचार करता है कि हे आत्मन ! तूने अनन्त काल तक विषय सुख भोगे पर तृप्ति न हुई, परन्तु अब तो सन्तुष्ट हो। इस समय तो तुझे सब अनुकूल साधन मिले हुए हैं। याद रख, समय पाते हुए तू यदि नही चेता तो कर्म का एक ऐसा झकोरा आयेगा कि पीछे ढूण्ढे भी पता नही लगेगा। दूसरी वात यह है कि यदि तू समझकर भी इन विषयो से विरक्त नही होता है तो एक दिन वह आयेगा कि तुझे ही यह विषय छोड देंगे। इस लिए समझदारी इसी मे है कि तू पहले ही इनका परित्याग करदे और और उस पथ पर पग बढा जिससे तेरा कल्याण होगा। पदार्थ

मे रत रहने से जीव का कभी कल्याण नही होता यह निश्चय समझ पाण्डु नृप कुछ देर तक विचार मग्न रहे और फिर कुछ निर्णय करके अपने आप से ही बोले —" अब तक मैं मोह के फन्दे मे पड़ा हुआ था, अब मैं प्रति बुद्ध हुआ। इस समय मैं आत्म सुख से सुखी हू। मुझे सन्तोष है और आत्मा के सच्चे सुख का अभिमान है। अब मुझे—स्त्री प्रेम से कोई प्रयोजन नहीं।

कामी पुरुष विषय भोगो मे तन्मय हो कर अपने भोजन को अपने विवेक को, वैभव और वडप्पन को, यहा तक कि जीतव्य को छोड देते है, कामी राजा अपने राज्य धर्म को भूल जाते है, उन्हे अपने कर्तव्य, न्याय अन्याय, का भी ध्यान नही रहता, वे मिथ्यात्व के कारण अकरणीय कार्य भी करने योग्य वना लेते है। यह उनकी गिरावट की चरम सीमा आ जाती है। पर कामासक्त होने का कारण हमारा साहित्य भी है। साहित्यकार भी कामासक्त हो कर साहित्य को मानव जाति को नष्ट कर डालने योग्य रच डालते हैं। वे पेट के लिए विषयानुरागियो को प्रसन्न एव आनन्दित करने के लिए कामोत्तेजक कविताएं कह डालते है, जिनका सारे समाज पर प्रभाव पडता है पर जिस व्यक्ति की हृदय की आँखें खुली है वह जानता है कि जिन कुचो को सुवर्ण के कलश अथवा अमृत के दो घड़े वताया गया है वे मांस के दो पिंड है। जो स्त्री मुख श्लेष्क—खकार और थूक का घर है. उसको उपमा दी जाती पूर्ण चन्द्रमा को, इसीलिए स्त्रियों को चन्द्र मुखी कहा जाता है। सीधे सीधे नेत्रो को. जहाँ निद्रा उचटने के पश्चात मल घृणास्पद मल ही मिलता है, मृगलोचन कह कर प्रशंसा की जाती है। इसी प्रकार स्त्री के अन्य अगों को वडी सुन्दर वस्तुओ से उपमा दी जाती है, इस प्रकार पाठकों के हृदय मे कामाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। पाण्डु राजा सोचता है वास्तव मे यह हमारी आखे हैं, और हमारे भाव है जिसे अच्छा समझे उसकी हर बुराई को भी भलाई के रूप मे देखते हैं। स्त्री का रूप देखकर बेकार ही उत्तेजना आ जाती है। वास्तव में वह तो सात धातुओ का पिंड है, नश्वर है, माया का स्थान है, फिर भी तू रागान्ध हो कर उसमे आसक्ति करता है, आश्चर्य है तेरी बुद्धि पर।" उसे अपने अब तक के

चरित्र से घृणा होने लगी और वैराग्य उसके हृदय मे अकुरित हो गया। फिर उसे माद्री की आंखो में मादकता दिखाई नही दी। उसके नेत्रों के सामने से विषय वासनाओ का आवरण दूर हो गया। फिर उसने अपनी वैरागी आंखों से अपने चारो ओर देखा कही उसे मादकता दिखाई नही पड़ी किसी भी सौंदर्य ने उसे अपनी ओर आकर्षित नही किया। वह चारो ओर देखता हुआ घूमने लगा उसी समय उसे मुनि दिखाई दिए। वह उनके पास गया। क्योकि वह जानता था कि सच्चा सुख उन्ही के मार्ग मे है। मुनिगण का नेतृत्व करने वाले मुनि श्री सुव्रत जी थे, वे व्रतो से युक्त थे, सर्वाविधि ज्ञान के धारक थे, गुप्ति और समिति के पालन कर्ता एव षट काय के जीवो की रक्षा करने वाले थे। वे भव–तन भोगो से एकदम विरक्त थे और सदा आत्म चिन्तन मे ही लगे रहते थे। बारह भावनाओ का चिन्तन करने वाले वाइस परीषहो को जीतने वाले उन मुनि जी की तपश्चर्या बहुत बढ़ी थी, इसी लिए उनका शरीर क्षीण हो गया था। वे जितेन्द्रिय व क्षमा के भण्डार थे। अक्षय सुख भोक्ता थे वे कभी स्त्रियो के तीक्षण कटाक्ष–बाणो के लक्ष्य नही हुए थे। उनका पक्ष उत्तम था। वे प्रतिक्षण ही कर्मों को निर्जरा करने मे लगे रहते थे। उन्होने इन्द्रिय जन्य सुख की तिलाजलि दे दी थी। बड़े बडे राजा महाराजा जिनके चरणो की सेवा करते थे उन महान योगी सुव्रत मुनि के चरणो मे पाण्डु नृप जा गिरा। मुनि राज ने धर्म वृद्धि का आशीर्वाद दिया और कहा– राजन् इस ससार वन में यह जीव सदा ही चक्कर लगाता रहता है। जिस प्रकार अरहट की घडी तनिक भी नही ठहरती वह घूमती ही रहती है। जो पुरुषार्थी पुरुष है वे सदा ही धर्म का सेवन किया करते है। वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नही खोते क्योकि निश्चय नही है कि एक क्षण मे क्या कैसा होता। धर्म दो भागों मे वाटा गया है एक श्रावक धर्म और एक मुनि धर्म। धर्म के धारण करने कराने से ही जीव भव भ्रमण से छूट सकता है और कोई दूसरा उपाय नही है। योगी अथवा मुनि धर्म के पाँच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार से पालन होता है।" इसके उपरान्त सुव्रत मुनि ने मुनि धर्म और श्रावक

धर्म की सविस्तार व्याख्या की और अन्त मे बोले—मुनि धर्म से मोक्ष और श्रावक धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अत. राजन्! तुम परमोपकारी धर्म का पालन करो। अब तुम्हारी आयु बहुत ही कम रह गई है। इस लिए अब तुम भली प्रकार सावधान हो जाओ, विषयों से अब प्रीति मत करो। मानव जीवन को व्यर्थ मत बनाओ। मेरा तो यही मत है कि अब तुम एकक्षण की भी देरी मत करो, विधि पूर्वक धर्म पालन करो इसी मे कल्याण है।

मुनि जी के धर्मोपदेश से पाण्डु नृप के नेत्र खुले और उसने विषयो की ओर से मन हटा कर धर्म की ओर प्रीति लगाई। माद्री के साथ अपने महल को वापिस गया। महल से जाते समय वह ससाराभिमुख था, पर वापिस आते समय वह आत्माभिमुखी न चुका था। उसने धृतराष्ट्र तथा विदुर को अपने महल मे बुलाया और सारी घटना कह सुनाई। तदुपरान्त अपने निर्णय को उनके सामने रखते हुए कहा—"मैंने अपना पथ खोज लिया है। मेरी आयु के बहुत ही कम दिन शेष रह गये है अब मे इस बहुमूल्य समय को धर्म ध्यान मे व्यतीत करना चाहता हू अत एव राज-काज भार से मुक्त होना चाहता हू।'

धृतराष्ट्र ने सारी बात सुन कर कहा धर्म पथ पर जाने वाले को रोकना कदापि भला नही है। यद्यपि हमारे हृदय मे बसा भ्रातृ स्नेह यह पसन्द नही करता कि आप हम से अलग हो। पर क्या करें, वैराग्य का अकुर जिस के हृदय मे उत्पन्न होता है उसे कोई भी नही रोक सकता।

जब पाडु के निर्णय की कुन्ती को सूचना मिली तो वह करुण क्रन्दन करने लगी। माद्री तो पहले से ही दुखी थी। पर उस की प्रिय रानियों का रुदन भी पाण्डु को विचलित न कर सका। उनने उन्हे सम्बोधित करके शात भाव से कहा---'इस ससार मे यह जीव कभी उस गति ने उस गति मे, और कभी उस गति ने उस गतिमे चक्कर लगाता हुआ घूमता रहता है। फिर मुझे किसी न किसी दिन तो इस ससार को, तुम्हे और राजपाट को छोड़ कर चले ही जाना है, कोई नई बात मे नही कर रहा।

इस लिए दुखी होने की क्या बात है ? विचारो, कि भरत चक्रवर्ति जो कि छ खण्ड का अधिपति था, जिस ने भूमण्डल को जीत कर अपने वश मे किया, वह भी काल से न बचा तो हमारी तुम्हारी तो बात ही क्या है ? यह काल बली अजेय है । बात यह है कि इस भव सागर मे चक्कर लगाता हुआ कोई भी व्यक्ति सनातन शाश्वत नही रहा, इस लिए किस के लिए शोक किया जाय । इन भोगों से किस सत्पुरुष का मन उचाट नही हुआ । मैं चाहता हू कि जो थोडी सी आयु शेष रह गई है उसको अकारत न जाने दो क्या तुम यह चाहती हो कि मेरी आत्मा इसी ससार मे व्याकुल घूमती रहे । मैं कभी शाश्वत सुख न पा सकू मैं जानता हूं कि तुम मुझे सुखी देखना चाहती हो, अत मुझे विदा दो ।"

इस प्रकार रानियों को समझाया और मुक्त हस्त से दान देना आरम्भ किया । दीन दुखियों मे अपार धन राशी वितरित की थी । अपने पाचो पुत्रो को बुलाकर उन्हे उन के कर्तव्य समझाए और राज्य भार धृतराष्ट्र को देकर बोले-भाई ! मेरे इन पाचो पुत्रो को अपना ही पुत्र समझ कर इनका लालन पालन करना ।"

धृतराष्ट्र जो चक्षु हीन थे, बोले "भ्राता विश्वास रखो कि आज से मैं १०० के स्थान पर अपने १०५ पुत्र समझूगा ।"

जब विदा का समय आया तो पाण्डव रोने लगे । पाण्डु मुस्कराने लगे, कहा—"तुम तो वीर सन्तान हो तुम्हारी आखों मे आंसू शोभा नही देते । आज तुम्हारा पिता धर्म पथ पर जा रहा है उसे आंसुओ से नही मुस्कानो से विदा दो ।"

पाडु नरेश की शिक्षाओं से सबने अपने मन को ज्यो त्यों शान्त किया परन्तु राजरानी माद्री के हृदय की विलक्षण स्थिति थी । पति के बिना उसे समस्त ससार सूना-सूना सा प्रतीत हो रहा था । जिन महलो मे रानिया दिवान रंग रेलियो करते करते सूर्य कब चढा और कब अस्त हुए का भी उसे ध्यान न होता था वही महल उसे यम दष्ट्रा समान भयानक प्रतीत हो रहे थे । जिसके कारण उसने समाधि प्राप्त करने के लिए पति पदानुसरण करने का

दृढनिश्चय करके अपने पुत्र नकुल और सहदेव को कुन्ती को समर्पण किया। और स्वय पाडु नरेश के साथ ही आर्यिका दीक्षा के लिये अग्रसर हुई।

सारा नगर उनके पीछे चला। पाण्डु नृप की जय जय कार से सारा नगर गूंज उठा। नगर से बाहर जाकर एक बार सभी की ओर देखकर पाडु बोले "—आप लोग अब मुझे क्षमा करे और वापिस जाकर धर्म ध्यान मे लगे, वैभव को छोड कर इस प्रकार पाडु चले गए। गगा के तट पर जाकर उन्होने निर्ग्रन्थ दीक्षा ली और तप लीन हो गए। मुनि पाण्डु सभी जीवो पर समता भाव रखते थे, सब जीवो से उनका मैत्री भाव था, गुणी पुरुपो को देखकर आनन्दित होते थे। उनका मन दर्पण वत स्वच्छ था। अन्त मे उन्होने आहार का त्याग कर, गुरू को साक्षी कर वीर शय्या स्वीकार की। सम्यक ज्ञान दर्शन चारित्र तपाराधना रूपी पोत पर आरूढ होकर भव सागर को तीर्ण करने की इच्छा वाले उस महा यशस्वी पाण्डु मुनि ने प्राणी मात्र से समभाव एव मैत्री भाव स्थापित किया। तीव्र तपश्चरण से शरीर उनका जैसे कृश होता जा रहा था। अत त्यों-त्यो विलक्षण आत्म तेज उनके ललाट प्रतिभासित हो रहा था। अन्ततः वह समय आया जबकि सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तो का हृदय कमल मे स्मरण करते हुए इस विनश्वर शरीर को त्याग कर सौधर्मकल्प मे दिव्य देवद्युति सम्पन्न महाहिर्दक देव के रूप जन्म लिया। उधर माद्री आर्यिका ने भी हृदय को कपाने वाली दुर्धर तप अग्नि द्वारा जन्म जन्मान्तरो की पापराशि को भस्म करते हुए सलेखना मरण करके इसी सौधर्म देव लोक मे दिव्य द्युति वाले अमर शरीर को प्राप्त किया।"

भीष्मपितामह द्वारा पाडवों का राज्यभिपेक—पाडु नरेश की दीक्षा के पश्चात् हस्तिनापुर के राज्य सचालन कक्ष मे कौरव वश के वयोवृद्ध, प्रतिष्ठित अधिकारियो की मन्त्रणा प्रारम्भ हुई कि अब भविष्य मे राज्य सचालन का भार किस को सौंपना चाहिये बहुत समय के बाद विवाद के पश्चात् भी अधिकारी सब का निश्चत मत यही स्पष्ट हुआ कि यदि प्रजा की प्रसन्नता समृद्धि सुख नैतिकता राज्यवृद्धि की कामना है तो युधिष्ठिर को ही

राज्यधिकारी निश्चित किया जाय । नीति के अनुसार एक तो राज कुमारो मे युद्धिष्ठर सब से वडा है इसलिए भी राज ताज का वह अधिकारी है। दूसरे परम धार्मिक सत्यवादी, दयालु, उदार, न्यायवन्त शूरवीर आदि नृपोचित गुणो की साकार प्रतिमा भी है। इसी कारण समस्त प्रजा तथा सेना सेनापति, मंत्रीगण आदि सभी अधिकरीगण युधिष्ठिर सहित पाडवो को हृदय से आदर भी देतें है तथा उनके इशारे मात्र पर अपना तन मन धन न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते हैं ।

मत्रणा गृह मे उपस्थित समस्त अधिकारियो द्वारा इस भावना को चतुर्दिशा से समर्थन प्राप्त हो रहा था। सवके ललाटों पर हर्षानुभूति नाच रही थी । परन्तु कौरव कुल वरिष्ट भीष्म पितामह, न्याय नीति मूर्ति विदूर, समीप मे वैठे हुए धृतराष्ट्र के चेहरे को निर्निमेषनिहार रहे थे। जिसके कारण उपस्थित समुदाय के वार्तालाप की प्रतिक्रिया धृतराष्ट्र के हृदय मे क्या हो रही है यह उनसे छुपा हुआ नही रहा था ।

भीष्म पितामह दुर्योधन की महत्वाकाक्षा को और पुत्रो के प्रति धृतराष्ट्र के मोह से भलीभान्ति परिचित थे। यही कारण था धृतराष्ट्र के हृदय के मुखरूपी दर्पण पर प्रतिविम्वित एकके पश्चात् दूसरे भावों को अनायास ही पढ रहे थे। और कौरवकुल के हित कारी भविष्य के लिए चिन्तित थे।

तभी धृतराष्ट्र ने समीचीन चर्चा से ऊवकर मौनभग करते हुए वोलना आरम्भ किया, कि इसमे कोई शक नही कि पाडव होनहार शक्तिशाली एव प्रजाप्रिय है। परन्तु हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दुर्योधन भी शूरवीर, नीतिनिपुण, दवंग प्रकृति का, एवं पांडवों की समानता रखने वाला राजकुमार है। अत. पीछे से कोई उपद्रव न खडा हो इसवात को ध्यान मे रखते हुए हमे अपना निर्णय करना चाहिये । क्यो पितामह और विदुर जी आपकी इसमे क्या सम्मति है ।

दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए पितामह ने कहना प्रारम्भ किया

पुत्र, इस राज्य को स्थिर एव वृद्धिगत करने मे पाडु राजा ही सर्वेसर्वा थे, हम सब देख रहे है कि युधिष्ठिर भी अपने पिता के यशस्वी सर्वगुण सम्पन्न पुत्र है। और राजकुमारो मे है भी सबसे बडे एवं प्रिय। अत जो जिस कार्य योग्य हो उसे ही वह अधिकार समर्पण करना उचित होता है। परन्तु यदि दुर्योधनादि कुमार पांडवो के साथ प्रेम पूर्वक निर्वाह नही कर सकते और अपने लिए राज—ताज की माग करते है। तो सर्वश्रेष्ठ यही रहेगा, कि राज्य के दो भाग करके एक भाग पाडवो को, दूसरा भाग दुर्योधनादि को सौप दिया जाय। कुल की मर्यादा एव प्रतिष्ठा इसी प्रकार स्थिर रह सकती है।

विदुरादि ने भी गृह—क्लेशाग्नि, जो धार्तराष्ट्रो मे अन्दर ही अन्दर सुलग रही है— विस्फोट का रूप न धारण कर ले, इस बात को ख्याल मे रख कर जब भीष्म पितामह की सम्मति का समर्थन किया, तो धृतराष्ट्र के आनन पर सहसा हृदय की हर्षानुभूति चमकने लगी। और साधु साधु कहते हुए इस निर्णय का समर्थन किया।

इसके पश्चात् राज्यविभाग एव अभिषेक आदि से सम्बन्धित आवश्यक विचार-विमर्श करके मत्रणा को समाप्त किया। और इसे मूर्त—रूप देने की क्रिया मे तत्परता से सब कोई जुट गये।

× × × × ×

हस्तिनापुर मे राज्याभिषेक की तैयारियां जोर-शोर से प्रारम्भ हो गई महलो-भवनो, राजपथो, वीथियो को खूब सजाया गया। चारो तरफ वन्दनवार, पुष्पमालाओ सुगन्ध वस्तुओं का साम्राज्य छा गया। झडियो, ध्वजाओ से सारा नगर सजी दुलहन समाज आकर्षक बना हुआ था। शहनाईयां बज रही थी। भेरी पटह झल्लरी दुन्दुभिनाद से जब आकाश व्याप्त था तो शुभ घड़ी में पूर्व निश्चयानुसार भीष्म पितामह धृतराष्ट्र आदि कौरव कुल वरिष्ठों द्वारा युधिष्ठिर का यथाविधि राज्याभिषेक किया गया। इस प्रकार आधा राज्य पाडवो को और आधा राज्य दुर्योधनादि कौरवों के आधीन कर दिया गया।

राज्याभिषेक के उपरान्त युधिष्टिर को आशीर्वाद देते हुए धृतराष्ट्र ने समझाया—पुत्र युधिष्ठर, भैया पाडु ने इस राज्य को अपने बाहुबल से बहुत विस्तृत किया था और वश के गौरव को चार चाद लगाये थे। मेरी कामना है तुम भी अपने पिता के समान ही यशस्वी गौरव शाली, सुखी और कुलध्वज बनो। तुम्हारे पिता पाडु ने मेरे कथन को कभी अन्यथा नही किया। गुरु के विनीत शिष्य के समान सदा सर्वदा मुझे बहुमान देते रहे। तुम भी अपने पिता की यशस्वी सन्तान हो। मुझे तुम से भी ऐसी ही आशा है मेरे बेटे दुरात्मा हैं। एक स्थान पर ही रहने से सम्भव है परस्पर मे वैमनस्य बढे। इसलिए मेरी तुम्हे यही सम्मति है कि तुम खांडव-प्रस्थ को अपनी राजधानी बना लो और वही से राज्य सचालन करो। इससे तुम मे और दुर्योधनादि के मध्य शत्रुता की सभावनाएं ही समाप्त हो जायेगी।

खाडवप्रस्थ वही नगरी है जो पुरु, नहुष, ययाति और हमारे प्रतापी पूर्वजो की राजधानी रही है। उसके उद्धार से पूर्वजों की राजधानी के बसाने का यश भी तुम्हें प्राप्त होगा।

धृतराष्ट्र के मृदु वचनो को मान कर पाडवो ने खाडवप्रस्थ के भग्नावशेषो पर, जोकी उस समय तक निर्जन वन ही बन चुका था, निपुण शिल्पकारो से एक नये नगर का निर्माण कराया। सुन्दर २ भवनो अभेद्य दुर्गों आदि से सुशोभित उस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया। इस नई राजधानी में, जिसकी उन दिनों भारत मे प्रशसा हो रही थी, माता कुन्ती और सती द्रोपदी सहित पाडव सुख पूर्वक राज करने लगे। तेईस वर्ष पर्यन्त दिन दूना रात चौगुना आनन्द मगल छाया रहा। इस बीच में भीम सेन अर्जुन नकुल सहदेव चारों भाईयो ने युधिष्ठर की छत्र छाया मे अपने राज्य की सीमाए विस्तृत करी, अन्य अनेक प्रदेश अपने राज्यान्तर्गत कर वहा न्यायनीति का, ऋद्धि समृद्धि का साम्राज्य स्थापित किया।

* द्वितीय परिच्छेद *

हिडिम्बा विवाह

इन्द्रप्रस्थ के निवासी कौमुदी महोत्सव मनाने मे तन्मय थे। नाना प्रकार के नाटको नृत्यो हास परिहास मे दिवस कब गया रात्रि कब आई का भान भूले हुए थे। जिधर देखो रंग रेलियो का सागर ठाठे मार रहा था। पाचो पाँडव भी वन यात्रा से विरत नही थे। वे भी शरीर रक्षकों के साथ पर्वत के एक शिखर से दूसरे शिखर पर, एक वन प्रदेश से दूसरे वन प्रदेश मे प्रकृति की मनोरम छटा को निहारते हुए मन्द मन्द सुगन्ध लिये हुए समीर से अठखेलियाँ करते हुए अपने उन्मुक्त हास से वन प्रदेश को मुखरित करते हुए विचरण कर रहे थे। उन्होंने एक दिन वन के गहन प्रदेश मे प्रवेश करने की ठानी। अग रक्षको को खेमे पर ही नियुक्त कर बबर केशरी सम निर्भीक झूमते झामते सारे दिन आमोद प्रमोद मे चलते हुए साय काल के समय एक ऐसे वन प्रदेश में पहुंचे जहा प्रत्येक ऋतुओ के सफल वृक्षो की पंक्तियो के मध्य मे एक निर्मल सरोवर कमलो की सुगन्ध बखेर रहा था। क्योकि पाडव इस समय श्रान्त हो चुके थे। रात्रि सिर थी। अत. वहीं विश्राम लेने की ठानी। रुचि अनुसार सरस स्वादुफलो का आस्वादन किया। और सरोवर तीर स्थान पर निर्मित पृथ्वीशिला फलको पर मनो विनोद करते हुए दुंग्धसी शशिकिरणो मे स्नान करते हुए भीम के अतिरिक्तचारो पाण्डव सोगए भीम सेन जागता रहा। जहा वे लोग थे, उसी के निकट एक प्रबल विद्याधर रहता था जिसका नाम था

हिडम्वासुर वह वडा ही भयानक और हिसक प्रकृति का था, उस की आखे सदा जलती रहती थी, वाल उसके नेत्रों की लाली की भाति लाल थे . वह भीमकाय विद्याधर वडा हो वलिष्ट था कहते है कि क्रोध मे आकर वह छोटे मोटे वृक्षों को भी उखाड कर फेकता था। उसके भय के मारे वन की इस ओर कोई भी पग न घरता था । उस के साथ अनेक विद्याओ मे निपुण सुन्दर वहन हिडम्वा भी रहती थीं, जो अपने भाई की भाति वलिष्ठ एवं निर्भीक थी . यह सुरम्य प्रदेश इन्ही की स्थली थी जहा पर कि इस समय पाण्डव सो रहे थे। वह ही, अकेला भीम सेन उनकी रक्षा के लिए जाग रहा था ।

चन्द्र रश्मियो ने जव शीतल चान्दनी की वर्षा की और धवल चान्दनी वृक्षो के पत्तों मेसे छनछन कर पृथ्वी पर आने लगी, तब इस हल्के और शीतल प्रकाश में विचरण करते हुए हिडम्वासुर की दृष्टि पाण्डवो पर पडी। पासमें बैठे भीमसेन के गदराये शरीर को देखकर उस की जवान चटखाने लगी उसने अपनी वहन की तरफ देखा और वोला हिडम्वा ! आज हमारे लिए अनुपम शिकार आ गया है। वह देख कितना मोटा गदराम शरीर का व्यक्ति वैठा है उसके कुछ साथी सोये हुए हैं। लगता है वह कोई वलिप्ट एव निर्भीक व्यक्ति है उसे सीधे जाकर छेड़ना अच्छा नही तुम जाओ और अपने माया जाल से किसी प्रकार फसा कर यहाँ ले आओ फिर दूसरों को भी देखा जायेगा ।"

हिडम्वा ने भी ध्यान से देखा और प्रसन्न होकर उसने एक परम सुन्दरी का रूप धारण कर लिया और भीम की ओर चली गई। उस ने दूर खडे होकर भीम को गौर से देखा । भीस के मुख मण्डल पर मनोहर काति छाई थी, उसके ललाट पर अपूर्व तेज था। उस की आखे शशि रश्मियो के प्रकाश मे भी चमकती दीखती थीं, श्याम वदन भीम के मुख पर छाई निर्भीकता से वह वहुत ही प्रभावित हुई । आगे जाकर उसने पूछा—"तुम कौन हो और कहा से आए हो।" भीम ने एक वार उसकी ओर देखा और लापरवाह होकर वोला—हम कोई भी हो, कहीं से आए हो, तुम्हे क्या मतलव ? इस लापरवाही का हिडम्वा पर प्रभाव पड़ा, उसने कहा—"जानते नही हो यहां हिडम्वा सुर रहता है जिसके नाम से

ही लोग घबराते है ।

भीमसेन ने फिर भी लापरवाही दर्शाते हुए कहा—"वही घबराते होंगे जिनमे बल नही । वीर पुरुष किसी से नही घबराते ।"

भीम की इन बातो ने हिडम्बा पर जैसे जादू कर दिया हो, वह उस पर मुग्ध हो गई । उसने सहानुभूति दर्शाते हुए कहा— मेरा मतलब यह है कि आप यहा से शीघ्र चले जाईये वरना हिडम्बा सुर आप को मार डालेगा ।"

भीम मुस्करा उठा, उसने कहा -"आप की सहानुभूति का धन्यवाद ! आप चिंतित न हो हिडम्बा सुर कुछ करेगा तो स्वय अपनी मौत बुलायेगा ।"

वह कुछ और निकट आ गई अनेक यत्नो से भीम को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा की पर भीम ने एक बार भी उसके अनुपम सौंदर्य पर अच्छी प्रकार दृष्टि न डाली । इस बात से हिडम्बा व्याकुल हो गई और उस ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि विवाह करेगी तो इसी पुरुष से । उसने निकट जाकर कहा—"मैं हिडम्बा सुर की बहन हू । मुझे उसने इस लिए भेजा था कि आप को ले जाकर उसे सौंप दू पर आप ने मुझे बहुत प्रभावित किया है । आप चाहे कुछ कहे मैं आपको अपना पति मान चुकी हू । इस लिए आप की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है । आप यहा से तुरन्त हट जाय । मैं कितनी ही विद्याए जानती हुं । आप जहा चाहे मैं आपको वही पहुचा सकती हू । आप मुझ पर ही ध्यान करे मेरे साथ यहा से चले चलिए ।"

तब भीम ने उसे गौर से देखा और बोला—"तुम कहती हो कि मैं तुम्हारे साथ भाग चलू । क्या अपने भाईयो को उस पिशाच के लिए छोड़ जाऊं ।"

यदि तुम्हे उनसे मोह है तो इन्हें भी जगा लीजिए मैं इन्हे भी अविक सुरक्षित स्थान पर पहुचा दूंगी । वह बोला "क्या थक कर सोये अपने भ्राताओ को जगा कर उन्हें कष्ट दू । नहीं मुझ

नही हो सकता । भीम ने कहा परन्तु यदि आप इन्हे यहां से नही हटाएगे तो आप काल के मुह मे चले जायेंगे ।

मैं काल का भी काल हूं आने तो दो उस असुर को मैं मार कर न भगा दू तो मेरा नाम भी भीम नहीं ।'

प्रेम के मारे वह कहने लगी– देखिये आप मेरी बात मान लीजिए, कही ऐसा न हो कि बाद को पश्चाताप करना पड़े । मैं ने किसी मनुष्य को अपना जीवन साथी न बनाने का निश्चय किया था, पर आप को देखते ही मेरा वह निश्चय मिट गया, मैं आप को अपना स्वामी मान चुकी हू । अतएव मैं अपने स्वामी को सकट मे पडते देखना नही चाहती ।

इतने मे हिडम्वासुर वहुत देरी होने के कारण स्वय वहां चला आया और उसने हिडम्वा की अन्तिम वात सुन ली । उसे हिडम्बा पर वडा क्रोध आया, और इससे भी अधिक भीमसेन पर । उसने जाते ही भीम सेन पर आक्रमण कर दिया । भीमसेन ने तुरन्त फुरती से उस का दाव काट दिया और उसने हिडम्वासुर की टाग पकड ली । वह उसे घसीटता हुआ दूर ले गया, ताकि मार धाड़ से भ्राताओ की निद्रा भग न हो जाये । भीम और हिडम्वासुर मे टक्कर होने लगी । हिडम्वासुर वार वार बड़े ज़ोर से चीख कर भीम की ओर झपटता, पर भीम उसे अपनी ठोकरों से गिरा देता । वार वार चीखने की आवाज़ सुन कर अर्जुन की आख खुली और पास खड़ी एक सुन्दरी पर उसकी दृष्टि पडी, तो आश्चर्य चकित हो कर पूछा—"भीम कहा चला गया ? यह आवाज कैसी आ रही है ? तुम कौन हो ?" एक ही श्वास मे उसने कई प्रश्न उठा दिए ।

चिन्तित हिडम्वा ने दूर, जहा हिडम्वा और भीम युद्ध रत्त थे, की ओर सकेत करके कहा— "वहा हिडम्वासुर उन्हे मार रहा रहा है ।" अर्जुन ने धनुष बाण सम्भाले और तत्काल उधर गया । उसने देखा कि हिडम्वासुर भीम पर वार वार आक्रमण कर रहा है, उसने समझा कि भीम हिडम्वासुर के आगे कमजोर पड़ रहा है अतएव उसने भीम सेन को पुकार कर कहा—"भैया ! तुम कहो तो मैं इसे अभी ही वाणो से मार डालू । घवराना नही ।" भीम

सेन के अधरो पर मुस्कान खेल गई। वह बोला—नही, ऐसी कोई बात नही। मैं तो इसके साथ अभी तक खेल कर रहा था।" इतना कह कर उसने एक वार क्रुद्ध हो कर हिडम्बासुर पर भयकर प्रहार किया और हिडम्बासुर उसकी ठोकरो की मार से वही ढेर हो गया।

तव हिडम्बा ने अर्जुन से अनुमय विनय करके भीम के साथ अपने विवाह की बात कही। इतने मे अन्य भ्राता भी जाग गए। युधिष्ठिर ने हिडम्बा की विनती के उत्तर मे कहा—माना कि तुम्हारा भीमसेन से अनुराग है परन्तु जब तक तुम्हारे कुल शील का हमे पता नही तब तक कैसे हम अपनी कुलवधू स्वीकार कर सकते है? महाराज आप उचित ही फरमाते है, हिडम्बा ने उत्तर दिया परन्तु आप निश्चय रखिये सिहनियो का जन्म शृगालो के यहा नही होता। विद्याधरों की उत्तर श्रेणी मे एक संध्याकार नाम का विशाल नगर है। उसमे शत्रुरूपी हस्तियों को अपने महा पराक्रम से मर्दन करने वाला हिडम्बवशोत्पन्न यशस्वी सिह घोष राजा राज्य करता है। उनकी प्रिय पत्नि का नाम लक्ष्मणा है। मैं उन्ही की पुत्री हिडिम्ब सुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध हू। मेरी विमाता से उत्पन्न यह हिडम्बासुर मेरा भाई है। परन्तु यह जन्म से उद्धत प्रकृति का था। प्रजा को सताता था। जिसके कारण रुष्ट हो कर पिता ने इसे देश निकाला दे दिया था जिससे यह बहुत दुखित एवं असहाय सा हो कर वहा से विदा होने को जब आया, तब मेरे से न रहा गया। इसका मेरे साथ बहुत स्नेह था। और इसके उपकारो से मैं कृतज्ञ भी थी। इस लिए मैंने इसका साथ दिया। और अनेक सहेलियो के साथ विशालरत्न राशि को लेकर मैंने इसके हृदय के भार को हलका करने की चेष्टा करी। और इस सुरम्य वन प्रदेश मे एक विशाल भवन निर्माण करवा कर, जो कि यहां से थोडी दूरी पर है, उसमे निवास करना प्रारम्भ किया और यहां रहते हुए यह नर भक्षी बन गया। जिस स्थल को इस समय आप पवित्र कर रहे है, यह उसी की विहार स्थली का एक किनारा है। यहा आकर भी मेरे इस भाई का स्वभाव परिवर्तित न हुआ। जब यह भ्रमण को कही निकल जाता तो निष्कारण ही मारधाड प्रारम्भ कर

देता। अतः भ्रमण मे प्रायः मैं साथ रहने लगी और यथा सम्भव किसी मनुष्य को इसके चगुल मे न फसने देती थी। परन्तु आज अपने कारनामो की जो उचित सजा होनी चाहिये वह स्वय ही यह प्राप्त कर बैठा। और यथा सम्भव सहायता करते हुए मैंने इसके ऋण से अपने को उऋण बनाया। मैं समझती हू मेरे सौभाग्य वश ही आपका इधर आना हो गया है। वरना इस अटवी मे प्रवेश करने का किसी को साहस ही नही हो पाता। हिडिम्बा ने अपना पूर्ण परिचय देते हुए कहा।

इसके पश्चात् वह सुन्दरी पाडवों को अपने भवन मे साथ ले गई। जहां उसकी सहेलियों एव अनुचरों ने खूब अभ्यर्थना की। और विधि पूर्वक भीमसेन ने हिडिम्बा का पाणि ग्रहण किया। अनुचरो के हाथ पीछे सकुशल का समाचार दे कर कुछ दिन पाडवो ने वही प्रकृतिछटा का आनन्द लेते हुए व्यतीत किये। और कौमुदी महोत्सव की समाप्ति पर इन्द्रप्रस्थ को गमन किया। भीमसेन को इसी पत्नि से घटोत्कच नामक महाप्राक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ। जो कि अपनी माता एव नाना नानी की कृपा से विलक्षण विद्याओं को धारण करता था।

पवन द्वीप से कुछ जौहरी व्यापारी जरासिन्ध के महल में गए और अपने वहु मूल्य रत्नो को वेचने लगे। जीवयशा ने उन के पास जितने वहु मूल्य रत्न थे, सभी देखे। एक रत्न, जो सभी मे मूल्यवान था, जीवयशा के मन भा गया, उसने मूल्य पूछा व्यापारियो ने मन चाहा मूल्य वता दिया। जीवयशा ने भी अपनी इच्छानुसार दाम लगा दिया। जीवयशा द्वारा वोले गए दामो को सुनकर व्योपारीयो ने पश्चाताप करते हुए कहा—"हम तो यहां इसी लिए आये थे कि आप के महल मे अधिक दाम उठ सकेगे। पर क्षमा करना, अव हम द्वारिका से यहा आ कर पछता रहे हैं। इससे अधिक मूल्य तो इस रत्न का वही मिलता था।"

द्वारिका का नाम उस ने जीवन में प्रथम बार ही सुना था, पूछ वैठी—"द्वारिका नगरी कौनसी ?"

व्यापारी ने हंसते हुए कहा—"आप तो ऐसे पूछ रही हैं मानों कभी द्वारिका नाम ही न सुना हो। भला जम्बू क्षेत्र के किस व्यक्ति ने द्वारिका का नाम न सुना होगा।"

जीवयशा ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की, तो व्यापारी ने द्वारिका की पूरी पूरी प्रशंसा करते हुए द्वारिका का परिचय दिया। वह वोला—"श्री कृष्ण महाराज की राजधानी द्वारिका पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है। इतनी सुन्दर नगरी जम्बू द्वीप मे कदाचित ही कोई हो। ऐसा लगता है मानो देवताओ ने ही उसे वसाया हो।

और लोग कहते भी यही है कि इन्द्र देवता की आज्ञा से समस्त देवो ने मिलकर उसे बसाया था।।"

श्री कृष्ण का नाम सुनते ही वह चौक पड़ी पूछा—"श्री कृष्ण कौन है ?"

व्यापारी हस पडा बोला—"आप तो ऐसी भोली वन रही हैं, जैसे कुछ जानती ही नही। भला श्रीकृष्ण को कौन नही जानता उन्हो ने ही कस का वध किया था।"

व्यापारी के शब्दों से जीवयशा के हृदय मे सोये प्रतिशोध के भाव दवी आग की भाति धू धू करके धधक उठे। तुरन्त जरासिन्ध के पास गई और नेत्रों मे आँसू भर कर बोली—"पिता जी! यह मैं क्या सुन रही हू ?"

'क्या सुना ?"

क्या मेरे पति का हत्यारा अभी तक जीवित है ?"

"वेटी, वह भाग कर समुद्र तट पर जा वसा है। "क्या यही है आप की प्रतिज्ञा ? क्या मैं इसी प्रकार एक ओर विधवा जीवन और दूसरी ओर उस विषैले नाग को फूलते फलते सुनते रहने का हार्दिक क्लेश सहन करती रहूंगी ?" जीवयशा ने कहा।

"वेटी! अनुकूल समय आने पर ही सब काम हुआ करते हैं। मैं उस अवसर की प्रतीक्षा में हूं जब वह मूर्ख स्वय मेरे चगुल मे आ फसेगा।" जरासिध ने अपनी पुत्री को सात्वना देते हुए कहा।

परन्तु जीवयशा ऐसे नही मानने वाली थी। उस ने क्रोध मे आकर कहा—'वस वस पिता जी रहने दीजिए, आपकी डींगें भी देख ली। आप के लिए कभी अवसर नही आयेगा। आप इसी प्रकार मुझे झूठी तसल्ली देते रहेगे। आप साफ साफ क्यो नही कहते कि आप में इतनी शक्ति ही नही कि श्री कृष्ण का सिर कुचल सकेगे। आप स्वय उससे डरते हैं। आपके हृदय मे मेरे प्रति तनिक सा भी प्रेम होता तो आप अपना सब कुछ दाव पर लगा कर

अपनी वेटी के पति के खून का वदला लेते। पर आप को क्या पड़ी है?

जा के पैर फटी न बिवाई
वह क्या जाने पीर पराई

जरासिन्ध वेटी की चुनौती भरी वात से व्याकुल हो गया। उसने कहा—"जीवयशा! तुम विश्वास रक्खो कि मैं एक न एक दिन उसका सिर तुम्हारे कदमो मे लाकर पटक दूगा। पर मेरी शक्ति को मेरे वाहु वल को चुनौती न दो।"

"पिता जी, जो गरजते है वरसते नही।"

जीवयशा की वात जरासिन्ध के तीर की भांति चुभी। वह तड़प कर वोला—"तो फिर तुम्हें मेरा वाहुवल ही देखना है तो लो मैं अभी ही उस दुष्ट का सहार करने जाता हू। जब तक कृष्ण का वध नही करूगा चैन न लूगा।

कही अवसर के वहाने रास्ते से वेचैनी से मत लोट पडना। निर्लज्जता पूर्वक जीवयशा वोली।

जरासिध ने तुरन्त अपने मत्री को वुलाया और गरज कर वोला मत्री जी! हम आज तक प्रतीक्षा करते रहे कि तुम कव कृष्ण वध के लिए उचित अवसर वताते हो, पर तुम तो जैसे सो गए और मुझे जीवयशा के सामने अपमानित एव लज्जित होने का तुम ने अवसर दिया। अव हम अधिक प्रतीक्षा नही कर सकते। जाओ अभी ही सेनाए सजवादो। हम इसी समय द्वारिका पर चढ़ाई करने के लिए कूच करना चाहते हैं।

मंत्री ने हाथ जोड कर निवेदन किया—"महाराज! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर इतनी जल्दी मे कोई निर्णय कर लेना ठीक नही है।" जरासिन्ध क्रोधित होकर गरजा—"मंत्री जी! आपने सुना नही, हम ने क्या आदेश दिया। हम इस समय कुछ नही सुनना चाहते। चाहते हैं केवल आज्ञा पालन। क्या ठीक है क्या नही, वह मन हमारे सोचने की वातें हैं।"

मन्त्री कांपते हुए वहां से चला गया, उसने तुरन्त सेनाएं

सजवाई और उन्हे नृप के साथ कूच करने का आदेश दिया। स्वय भी साथ हो गया। जरासिन्ध ने उसी समय शिशु पाल आदि अपने सहयोगियो के पास दूत भेज कर, उन्हे सेनाएं लेकर तुरन्त अपनी सेना से आमिलने का सन्देश भेज दिया। और स्वय सेनाए लेकर चल पडा। ज्योही उसने नगर से प्रस्थान किया, मुकुट एक झटके से नीचे आ गिरा। मत्री ने मन ही मन विचार किया कि यह अपशकुन किसी भावी सकट का सूचक है। पर क्रोध मे बुद्धि को ताक पर रख आये हुए नरेश को कुछ भी समझाना व्यर्थ समझ कर वह चुप रह गया।

रास्ते मे शिशुपाल की सेनाए आ गई, जिसके साथ स्वय शिशुपाल भी था। जब लाखों की सख्या मे सैनिक एकत्रित हो गए तो जरासिन्ध अहकार से सोचने लगा कि कृष्ण को वह क्षण भर मे परास्त कर देगा और उस के रक्त से अपने और अपनी बेटी के हृदय मे सुलगती प्रतिशोध की अग्नि को शांत कर सकेगा।

लाखो की सख्या मे सैनिक साथ थे, जरासिन्ध श्री कृष्ण को परास्त करने की आशाओ मे झूमते चला जा रहा था, कि नारद जी आ पहुचे। उन्होने पूछा—"राजन्! आज किस शत्रु पर चढाई की ठान ली है।'

"श्री कृष्ण से कस बध का बदला लेने जा रहा हूं।" जरासिंध बोला।

नारद जी मुस्करा पड़े। बोले—"दही के भरोसे से कपास खाने की भूल मत करो।"

"क्या मतलब?" जरासिन्ध ने अकड़ कर पूछा।

"मतलब यह है कि भेड जब भेड़िये से बदला लेने चले, शृगाल जब सिह को ललकारने का साहस करे, तो उसके साहस की तो प्रशसा करनी पडती है पर इस दुस्साहस पर उसे अपनी औकात पहचानने को कहने को जी चाहता है।" नारद जी बोले।

जरासिंध का खून खौल उठा। उसने कहा—"तनिक सभ्यता से बात करो। क्या नही जानते कि मैं जरासिन्ध हूं जिसके नाम से

सारी पृथ्वी कापती है। और वह जिसे तुम सिंह बता रहे हो, वह भी मेरे ही भय से दुम दबा कर भाग गया है और सागर तट पर उसने आश्रय लिया है।"

"कही यह अहकार ही तुम्हे न ले डूबे ?" नारद जी बोले।

"बस बस भिखारी हो कर नरेश के मुह मत लगो। वरना कहीं मुझे तुम्हे ही ठीक न करना पड़े जरासिन्ध क्रोध मे नारद जी के साथ उचित व्यवहार करना भी भूल गया।

किन्तु नारद जी भी उसकी घुडकियो में आने वाले न थे, उन्होने हस कर कहा "जब मिथ्याभिमान किसी को अधा बना देता है तो मुझे उस पर दया आती है। ठीक है तुम जैसो का इलाज श्री कृष्ण और उनके भाई बलराम जी के पास ही है। पर एक बात मानो स्वय मरना है तो मरो, शिशुपाल बेचारे को क्यों मरवाते हो ?

जरासिन्ध लाल पीला हो कर नारद जी की ओर झपटा, पर इस से पूर्व कि कोई भयंकर अन्याय होता, नारद जी वहा से चले गए और जा कर श्री कृष्ण के दरबार मे दम लिया। श्री कृष्ण ने बड़े आदर सत्कार से उनका स्वागत किया। नारद जी बोले— "आप इधर आराम से सिंहासन पर विराजमान हैं और उधर जरासिन्ध अपनी सेनाए लेकर कस वध का बदला लेने आ रहा है। श्री कृष्ण हसते हुए बोले— "मुनिवर जिस का मस्तक फिर गया हो वह ऐसे ही कार्य किया करता है। आता है तो आने दो। द्वारिका के निकट आते ही उसे अपनी भूल ज्ञात हो जायेगी।"

"कही मृग और कछुए की दौड की ही भाति बात न हो जाए। उसके साथ शिशु पाल भी अपनी अपनी सेनाओ सहित है। इतना अहकार है उसे कि आज तो वह शिष्टाचार को भी तिलाजली दे आया है। लाखों सैनिक है।"

नारद जी की बात सुनते ही श्रीकृष्ण गम्भीर हो गए। उनको बार बार धन्यवाद किया और स्वय जरासिन्ध के मुकाबले की तैयारी मे लग गए उन्होंने तत्क्षण अपनी सम्पूर्ण राज–सभा को

निमंत्रित किया। और समस्त स्थिति को विस्तार से प्रस्तुत करके पूछा कि- आप बतलाये कि इस उद्दंड एव निष्कारण बने शत्रु का कैसे प्रतिकार किया जाय ?

यादववश को विनष्ट करने वाले विमूढ़ से हमारी तलवारें बाते करेगी। इसमे दो मत हो ही नही सकते कड़कते हुए दुर्दान्त योधा अनाधृष्टि ने गर्जना करी। परन्तु रण कौशल का परिचय देते हुए दूरदर्शिता की बात कही कि—हम जिनेन्द्र शासन मे पढते एव पूर्वजो मे सुनते आ रहे हैं कि प्रति वासुदेव का वध वासुदेव के हाथो से ही होता है, अन्य से नही। अत प्रतिवासुदेव जरासिन्ध की मौत किस वीर के हाथो निर्णीत है, इस बात का निश्चय अवश्य कर लेना चाहिये।

यादव कुल श्रेष्ठ, दशार्हाग्रणीय समुद्रविजय जो अब तक समस्त परिस्थिति पर विचार रहे थे, ने शान्त परन्तु गम्भीर वाणी से सभा को लक्ष्य करके कहना प्रारम्भ किया कि हमारे वश की ज्योति वत्स श्री कृष्ण एव अनाधृष्टि ने जो कुछ कहा वह आपने सुना। वैसे तो पापी को नष्ट करने के लिए उसका पाप ही बहुत होता है। परन्तु व्यवहारानुसार विचार करना बुद्धिमत्ता का चिन्ह है। सभी जानते हैं जब गीदड़ की मौत आती है तो वह नगर की तरफ दौडा करता है। वही अवस्था इस समय जरासिन्ध की है। हमने कभी उसे अपमानित नही किया और नाही आज तक धर्म विरुद्ध आचरण किया। परन्तु यदि तो भी व्यर्थ ही वश विशेष से शत्रुता कल्पना कर जरासिन्ध को रक्तपात ही प्रिय है तो निश्चय ही यह अन्याय उसे सदा सर्वदा के लिए समाप्त किये विना न रहेगा। मुझे वह समय अच्छी तरह स्मरण है जबकि देवकी देवी ने प्रकृति प्रदत्त सात महान शुभ सूचनाओ को प्राप्त करके श्री कृष्ण को जन्म दिया था और पश्चात हमारे पूछने पर धुरन्धर नैमित्तिको ने घोषणा की थी कि "यह कुलदीपक कुमार त्रिखडेश्वर वासुदेव पद को प्राप्त करेगा" हमे तो तभी निश्चय हो गया था कि प्रति वासुदेव जरासिन्ध के अन्याय को समाप्त करने का श्रेय इसी बालक को प्राप्त होगा। परन्तु यदि तो भी आप यही निश्चय करना चाहते है कि जरासिन्ध की मृत्यु किसके हाथो होगी तो उसका सीधा सा उपाय

है कि जो वीर "कोटि शिला" को उठाता है वही प्रतिवासुदेव को समाप्त कर वासुदेव पदवी प्राप्त करता है। समस्त सभा में ठीक है, ठीक, की ध्वनि गूजने के साथ ही मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण जी उठे और प्रमुख यादव वीरो के साथ गरुड विमान मे बैठ कोटि शिला-स्थल पर पहुचे। जहां पर वर्तमान अपसर्पिणी काल मे तब तक अपने अपने समय मे आठ बार उन महापुरुषो ने पदार्पण किया था जिन्हों को ससार को "वासुदेव" होने का परिचय देना आवश्यक हो गया था। अन्तिम नारायण श्री कृष्ण जी ने एकाग्र-चित्त से परमेष्ठी स्मरण किया और सिद्ध भगवान की जय का घोष गुजायमान करते ही उस पर्वताकार "कोटिशिला" को उठा कर अपनी अद्भुत शक्ति का परिचय दिया। उसी समय आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। दुन्दुभिनाद के साथ "चरम वासुदेव श्रीकृष्ण महाराज की जय" से समस्त पर्वत गुजायमान हो गया। तभी से श्रीकृष्ण जी का अपर नाम "गिरिधर" हुआ। यादव वीरो के हर्ष का ठिकाना न था। जय जयकार करते हुए विमान से तत्क्षण द्वारिका मे पहुचे और बलराम जी ने समस्त वृतान्त उपस्थित यादव सभा को सुनाया। जिस मे द्वारिका भर मे एक नवीन् दृश्य उपस्थित हुआ। मुहल्लों २ गलि २ घर २ "वासुदेव श्रीकृष्ण की जय" के नारो से गूजने लगा। समस्त वीरो को धर्मनिति युद्ध मे विजय प्राप्ति की लहर दौड़ रही थी। चौगुने जोश से सभी योध्दा कार्यरत हुए। पाडवो के पास दूत द्वारा सूचना भेज दी गई। सभी यादवो को तैयार रहने का आदेश दे दिया गया। अरिष्ट नेमि जी ने कितनी ही औषधियां जो युद्ध मे आवश्यक थी, ला कर दे दी। समुद्र विजय के समस्त भ्राता सभी के पुत्र, समस्त यादव योद्धा अस्त्र शस्त्र ले कर युद्ध के लिए तैयार हो गए।

महाराज युधिष्ठिर उन दिनो सम्राट पद प्राप्त करने के लिए राजसू यज्ञ करना चाहते थे, इस सम्बन्ध मे विचार विमर्श के लिए उन्होने श्रीकृष्ण को इन्द्र प्रस्थ बुलाया था। उन्होने श्री कृष्ण से कहा— "कुछ लोग मुझे राजसू यज्ञ करने की राय दे रहे हैं। आप एक ऐसे व्यक्ति हैं जो मुझे प्रसन्न करने के लिए मेरी प्रशसाए नहीं करेंगे, बल्कि मेरे दोषों को मेरे सामने साफ साफ बता देंगे। आप मुह देखी बात नही करेंगे और न किसी स्वार्थ वश कोई अनुचित

मत ही देंगे। इसी लिए परामर्श के लिए मैने आप को बुलाया है। अब आप बताईये कि आपकी क्या सम्मति है।

श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया—"राजन्! राजसू यज्ञ का अर्थ है वह महोत्सव जिसमें खण्ड (क्षेत्र) के समस्त राजा एकत्रित हो कर महोत्सव करने वाले राजा को सम्राट पद से विभूषित करते हैं, और उस के आधीन रहना स्वीकार करते है। सम्राट् पद प्राप्त करने के लिए आप कोई महोत्सव करें यह बड़ी प्रसन्नता की बात है, पर देखना यह है कि क्या अन्य राजा, आपके आधीन आना स्वीकार करेगे? यदि यह भी मान लिया जाय कि दुर्योधन तथा कर्ण आदि आपको सम्राट बनाने मे कोई आपत्ति नही करेंगे तो भी जरासिन्ध तो कदापि आपको सम्राट मानना स्वीकार न करेगा। उसने कितने ही राजाओ को बन्दी बनाकर अपने बन्दी गृहो मे डाल रखा है। तीन खण्ड के राजा उस से घबराते हैं। और संहर्ष उस के आधीन होना स्वीकार कर चुके है। यहाँ तक सुना है कि जब सौ नृप उसके बन्दीगृह मे आजायेंगे तब वह उन से ही राजसू यज्ञ करेगा, और पथ भ्रष्ट लोगो के मतानुसार यज्ञ मे पशुओ की बलि के स्थान पर कुछ राजाओं की बलि देगा। ऐसे अन्यायी नरेश से मत आशा करना कि वह आपको सम्राट मानेंगा, कोरी भूल है। इस लिए यदि आप को सम्राट पद चाहिये तो पहले जरासिन्ध से निवटिये।"

भीम वही उपस्थित था, श्री कृष्ण की बात सुनकर वह बोल उठा—यदि भ्राता जी आज्ञा दें तो उस धूर्त से मैं अच्छी तरह निबट सकता हू। मुझ से कहा जाय तो उस पापी को यम लोक पहुचा दू। और अपनी गदा से उस के समस्त सहयोगियों को एक एक कर के वध कर डालू।"

"भीम! माना कि तुम बड़े बलवान हो, पर जरासिन्ध भी कोई कम शक्तिवान नही है। शिशुपाल जैसा साधन सम्पन्न और पराक्रमी नरेश तक उस के आधीन है। उसे परास्त करने के लिए शिशुपाल और उसकी सेना का सामना करना पड़ेगा।"
श्री कृष्ण ने कहा।

"जो भी हो। मैं और अर्जुन बलि मिल कर उस को धूल न

चटादें तो तब कहना।" भीम गरज कर बोला युधिष्ठिर श्री कृष्ण और भीम की वार्ता के समय विचार मग्न थे, वे बहुत सोच विचार के पश्चात् बोले—"यदि सम्राट पद प्राप्त करने के लिए मुझे अपने भीम और अर्जुन जैसे वीर भ्राताओं को दाव पर लगाना पडे, और कितने ही निरपराधी मनुष्यो के रक्त से अपने मस्तक पर सम्राट का तिलक लगाना हो, तो मैं सम्राट पद को प्राप्त करने की कामना ही नही कर सकता। मैं नही चाहता कि मेरी एक आकांक्षा की पूर्ति के लिए रक्त पात हो। इस लिए अच्छा है कि मैं अपने मित्रों और भ्राताओ के उस प्रस्ताव को भूल जाऊ और सुख शांति पूर्वक राज्य काज करू।"

श्री कृष्ण बोले—"आप के विचार आदरणीय है। धर्म पथ के राही ऐसा ही निर्णय किया करते हैं। तथापि जरासिन्ध जैसे पापी नरेश की करतूतो को रोकने के लिए आप को कुछ न कुछ अवश्य ही करना चाहिए। कोई शक्तिवान व धर्म प्रिय नरेश यह सहन नही कर सकता कि कोई अन्यायी स्वच्छन्दता पूर्वक छोटे छोटे नरेशो का सहार करता रहे और अपनी आकाक्षा पूर्ति के लिए पशु वध से आगे जाकर नरवध करने का साहस करे।"

"आप की बात ठीक है। तथापि मैं अपने प्रिय बन्धुओ को किसी ऐसे कार्य के लिए नियुक्त नही कर सकता जिस मे उन के प्राणो पर बन आये। हाँ, यदि आप चाहें तो आप के सहयोग के लिए मैं और मेरे बन्धु गरम उरू नर पिशाच पाप लीला रोकने मे सर्वदा तत्पर रहेगे।"—उत्तर मे युधिष्ठिर ने आश्वासन दिया॥

उस समय यही बात तय पाई थी कि अब की बार यदि जरासिन्ध ने कोई नया उत्पात खडा किया तो श्री कृष्ण के नेतृत्व मे पाण्डव अपनी पूर्ण शक्ति उसके सहार के लिए प्रयोग करेंगे।

भाग्य वश इस निर्णय के कुछ दिनो बाद ही जरासिन्ध ने श्री कृष्ण पर आक्रमण करने की मूर्खता कर डाली। श्री कृष्ण के त द्वारा जब महाराज युधिष्ठिर को यह समाचार मिला उन्होंने भीम और अर्जुन को सेना सहित तुरन्त द्वारिका को भेज दिया।

द्वारिका से श्री कृष्ण, बलराम, समुद्र विजय, वसुदेव,

और इन सभी के पुत्र, तथा अन्य योद्धा, एक बड़ी सेना सहित साथ ही पाण्डवों की सेना व पाण्डव रणभेरी बजाते हुए चल पड़े द्वारिका से पैंतालीस योजन दूर सेन पल्ली स्थान पर सेनाए रो दी गई । उधर से वसुदेव के अनुयायी खेचर भी आ गए ।

जरासिन्ध की सेनाओं से एक योजन दूर ही सेनाए रोक द गई थी और एक राजदूत द्वारा जरासिन्ध पर सवाद भेजा गय कि अच्छा यही है, जरासिन्ध अपनी सेनाओं सहित वापिस चल जाय।

परन्तु जरासिन्ध के सिर पर तो अहकार सवार था, व कब मानने वाला था, उसने अपने एक मंत्री द्वारा श्री कृष्ण सवाद भिजवाया कि कस बध का बदला लेने के लिए जरासि आया है वह 'खून का बदला खून' की नीति मानने वाला और बिना श्री कृष्ण से बदला लिए नही लौटेगा ।

श्री कृष्ण ने मंत्री को उत्तर देते हुए कहा—"आप जरासि से जाकर कहें कि यदि वे बिना युद्ध के नही मानेगे तो हम भी स प्रकार से तैयार हैं । परन्तु कस वध की आड ले कर वे युद्ध न करे उस पापी ने मेरे छ. भ्राताओं को न जाने क्या किया । उसने प्रज को बहुत कष्ट पहुचाए थे, उस ने अपने पिता को वन्दी बनाया थ मेरे पिता जी को कपट से उसने जेल मे डाल रक्खा था, मेरा व करने के लिए कितने ही षडयन्त्र किए थे। इस लिए उस ने जैस किया वैसा फल पाया। अतएव कस का बदला लेने का विचा अन्याय पूर्ण है । हम नहीं चाहते कि बिना कारण ही रक्तपा हो, अतएव वह लौट जाये, वरना उस के हठ से हमे भी युद्ध करन पड़ेगा, जिसका परिणाम उस के हक मे ठीक नही होगा ।"

मन्त्री ने श्री कृष्ण के साथी योद्धाओं को देखा और स्व घबरा गया, उस ने जरासिन्ध से जाकर श्री कृष्ण का उत्तर क सुनाया और अन्त मे बोला—"महाराज ! शत्रु दुर्बल भी हो तो भ उसे अपने से अधिक शक्ति शाली समझना चाहिए । यह युद्ध युक्ति सगत नही है, और इस समय मुकाबले के वीरो को देख कर भी हमारा युद्ध करना उचित नही है ।"

मंत्री की बात से जरासिन्ध के अहकार को ठस पहुची थी अत. उस ने कडक कर पूछा—"उन मे कौन ऐसा है, जो मेरी सेना मेरे सहयोगियो और मुझ से जीत सके ?"

मंत्री ने हाथ जोड कर कहा—"महाराज ! रोहिणी के स्वयवर मे आप वसुदेव से परास्त हो चुके है। और अब तो वसुदेव के दो वीर पुत्र भी हैं, कृष्ण और बलराम, दोनो ही बलवान एव विद्यावान है, उन के साथ पाण्डव भी हैं, द्रौपदी के स्वयवर मे आप अर्जुन के कौशल को देख ही चुके है। उन के साथ नेमि नाथ जी भी है, जिन की दिव्य शक्ति की घर घर मे चर्चा है। हे मगधेश्वर ! उन वीरो का सामना करना दुर्लभ है। शिशुपाल रुक्मणि के हरण के समय श्री कृष्ण से मुह की खा ही चुका है। फिर आप किस वीर पर गर्व कर सकते हैं। श्रीकृष्ण के देव अधिष्ठायक है, जिन्हो ने काली कुवर के प्राण लिए थे। अतएव अच्छा यही है कि आप लौट चलिए। युद्ध का विचार त्याग दीजिए।"

मत्री की बाते सुन कर जरासिन्ध को बहुत क्रोध आया। कहने लगा—"रे धूर्त ! कायर ! यदि शत्रुओ से इतना हो भयभीत है तो यहां से भाग क्यो नही जाता ? क्यो दूसरो को भी भयभीत कर रहा है। या साफ साफ कह कि तू यादवो के बहकाए मे आ गया है।"

मत्री जरासिन्ध की बात सुन कर कांपने लगा, और यह समझ कर कि यदि कुछ और समझाने की चेष्टा करूगा तो व्यर्थ ही प्राण गंवाने पड़ेंगे। उसने जरासिन्ध की चापलूसी करना ही अपने लिए हितकर समझा। उसने कहा— "महाराज ! आप तो बेकार ही रुष्ट हो गए, मेरे कहने का अर्थ तो यह है कि पुरानी सारी बातो को याद करके और शत्रुओ की शक्ति को उचित प्रकार से जानकर युद्ध करें। वैसे आपका रण क्षेत्र में सामना करना किसके वश की बात है, फिर भी चक्रव्यूह रचा कर युद्ध करना चाहिए। शत्रु भी आप से भयभीत है। आपकी तलवार की शक्ति को कौन नही जानता ? मैं तो आपको शत्रुओ के मन की बात बता रहा था।"

जरासिन्ध ने प्रसन्न हो कर कहा— अब भी तो ढग की बात कही। सिंह को शृंगाल से डराने की बात करता है। यादवो के लिए तो मैं अकेला ही हूं।

"महाराज! आपकी अपार शक्ति के सामने वे क्या है? मैं कही आप की मर्यादा के प्रतिकूल कोई बात थोडे ही कर सकता हू? मैं तो आपको उत्तेजित कर शत्रुओ के नाश का समुचित प्रबन्ध कर रहा था।" मत्री ने कहा।

बात चीत करते करते रवि अस्त हो गया। जरासिन्ध ने समस्त सरदारो और योद्धाओ को खा पी कर विश्राम करने का आदेश दिया।

× × × × × × ×

प्रात.काल होते ही जरासिन्ध ने चक्र व्यूह रचना आरम्भ कर दिया। एक सहस्र और बनाए गए, एक एक ओर पर एक एक हजार योद्धा, नरेश और रण बाकुरे लगाए गए। एक एक योद्धा के साथ दो दो हजार रथ सवार, अश्व सवार और पैदल सैनिक थे। औरों की रक्षा के लिए ५ सहस्र घुड सवार और सोलह सहस्र पैदल सैनिक नियुक्त किए गए। चक्रमुख पर आठ हजार योद्धा जिन मे विशेषतया कौरव वशी सेना के सरदार थे, नियुक्त किए गए। चक्र के मध्य मे मगधेश्वर के साथ पांच हजार शूरवीर रण बाकुरे रक्खे गए और उनके चारो ओर सवा ६ हजार रणवीर चुने हुए नौजवान खड़े किए गए। बाई ओर मध्य देश के नरेश और उस की सेना दाई ओर उनके अन्य भूप लगाए। चक्र नाभि की सधि सधि पर एक एक शूरवीर सेना पति नियुक्त किया गया। चक्रव्यूह के सामने शकट व्यूह रचा गया जिस पर शिशुपाल की सेनाए, व सरदार थे।

जब जरासिन्ध के चक्रव्यूह की सूचना श्री कृष्ण को मिली तो उन्हो ने गरुड व्यूह रचने का आयोजन किया। व्यूह के मुख पर ५० हजार तेजस्वी कुमार रक्खे गए। मोर्चे पर कृष्ण और बलराम ने अपने अपने रथ रक्खे। वसुदेव के अक्रूर मुमुख आदि राजकुमारों

को श्री कृष्ण के आगे रक्षक की भाति नियुक्त किया गया। उनके पीछे सहस्रो रथ सवार, गज सवार और अश्व सवार सैनिको के साथ उग्रसैन अपने पुत्रो सहित थे। सब के पीछे धर, सारण, शशि दूर्धर, सत्यक, नामक पाच राजा नियुक्त किए गए, ताकि समय पडने पर काम आ सके। दाहिनी ओर समुद्र विजय ने अधिकार जमाया, उनके चारो ओर २५ हजार चुने हुए सैनिक थे। बाई ओर बलराम के योद्धा और पाडवो की सेना रक्खी गई उनके साथ मे अर्जुन और भीम, उन के पीछे २५ हजार अश्व सवार सैनिक नियुक्त किए गए। फिर चन्द्र यश्म, सिहल बबर काम्बोज, केरल, द्रविड, इन छ नरेशो को साठ हजार सैनिको सहित लगाया गया। इनके पीछे शाम्बस भानु, कुशल रणबाकुरे थे, और अनगिनत सेना इस व्यूह की रक्षा के लिए थी। इस प्रकार का गरुड व्यूह रच कर श्री कृष्ण ने युद्ध की तैयारी करली। आवश्यकता पडने पर वायुयानो का भी प्रयोग किया जा सके, इस लिए वायुयान भी तैयार कर दिए गए।

भाई की रक्षा के लिए अरिष्ट नेमि जी भी युद्ध मे उतर रहे है, यादव जान कर देवराज शकेन्द्र जी ने उनकी सेवा के लिए मातली नामक सारथी, अस्त्रशास्त्रो से सुसज्जित रथ तैयार कर भेज दिया गया जिस पर अरिष्ट नेमि जी सवार हुए। समुद्र विजय ने श्री कृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र को इस व्यूह का सेनापति नियुक्त किया।

व्यूह तैयार हो जाने पर श्री कृष्ण ने एक बार पुन जरासिन्ध को युद्ध से बाज आने का सन्देश भेजा, जिस के उत्तर मे जरासिन्ध ने युद्ध का बिगुल बजा दिया। फिर क्या था, घमासान युद्ध होने लगा। खडग परस्पर लड़ने लगी। कट—कट कर शीश गिरने लगे, रक्त की धाराए फूट पड़ी। अकड़ते और जवानी के उत्साह में कूदते फादते योद्धा आपस मे जूझ रहे थे धनुष तथा खडग की मार से योद्धा भूमि पर गिर कर तडपने लगे। जरासिन्ध की सेना की सख्या अधिक थी और वह अपनी सेनाओ को ले कर जी जान तोड कर लड रहा था, कुछ ही देरी मे जरासिन्ध के भयकर प्रहार से श्री कृष्ण की सेना तितर बितर हो गई। जरासिन्ध हर्षचित हो डींगें हाकने लगा उसके सैनिको मे हर्ष दौड़ गया, यह देख कर

श्री कृष्ण व्याकुल हो गए, उन्होने तुरन्त अपनी पताका फहराई, पांचजन्य बजाया और शीघ्र ही योद्धाओ को ललकार कर एकत्रित किया, उन्हे प्रेरणा दी, अपने शब्दो से उत्साह प्रदान किया और उनके सम्मान की चुनौती देते हुए एक साथ मिल कर जरासिन्ध की सेना पर टूट पडे। चारो ओर से जरासिन्ध और उसके व्यूह को घेर लिया।

यहा नेमि और अर्जुन ललकार कर शत्रु सेना पर टूट पडे। अनाधृष्टि, बलाहक योद्धा दे उनका साथ दिया और देखते ही देखते जरासिन्ध का चक्रव्यूह तोड डाला। इन वीरो का रणकौशल देखकर शत्रु सेना आश्चर्य चकित रह गई, उसके पैर उखडने लगे। तव रुक्मिन और रुधिर जरासिन्ध की ओर से मोर्चे पर आ डटे, इस ओर से अर्जुन और अरिष्ट नेमि जी थे। अरिष्ट नेमि जी के शस्त्रो के प्रहार से रुक्मिन और रुधिर दोनो ही घबराए, अर्जुन के बाणो ने उन्हे होश न लेने दिया, तव उनके पाव उखडते देख सात नरेश जरासिन्ध की ओर से लडने के लिए आ गए। महा नेमि जी ने तुरन्त उनके आयुध गिरा दिए।

अपने पक्ष की हार होते देख जरासिन्ध के सहयोगी सक्रन्तय नृप ने महानेमि जी पर एक भयकर (विद्यामयी) शक्ति छोडी जिस के प्रभाव से यादव कम्पित हो गए। तब मातली ने अप्टिनेमि जी को वताया कि रावण भी यही अभेद्य शक्ति रखता था जो उसने धरणेन्द्र से प्राप्त की थी। इस राजा ने भी उसी शक्ति को बलि से प्राप्त किया है। इसको काटने का वज्र ही एक मात्र साधन है।

तब अरिष्ट नेमि जी ने महा नेमि को वज्र बाण दिया, उस बाण के छूटते ही उस शक्ति का सहार हो गया वह व्यर्थ हो गई, रुक्मी आयुध लेकर सक्रन्तय नृप के साथ आ मिला और आठ नरेशो ने अपनी सेनाओ सहित मोर्चा जमाया। कौमुदी गदा और अनल वाण से नेमि जी ने रुक्मी को मैदान से भगा दिया। कुछ ही देरी मे अरिप्ट नेमि जी ने अनेक प्रकार के दिव्य शक्तिवान् अस्त्रो का प्रयोग किया जिन से आठो नरेशो के पांव उखड गए और वे भागते ही नजर आये।

भयकर युद्ध चल रहा था, प्रत्येक योद्धा अपने अपने रण-कौशल से विरोधी को परास्त करने की चेष्टा मे था। समुद्र विजय ने राजा द्रुम को, स्तिमित ने भद्र राजा को, और अक्षोम्य ने वसु सैन नृप को यमलोक पहुचा दिया। इसी प्रकार कितने ही शूरवीर संग्राम में मारे गए। महाद्म, कुन्तिभोज, श्री देव आदि नृप यम लोक सिधार गए। इतने मे सूर्य अस्त हो गया और दोनो पक्ष अपने अपने डेरो मे चले गए। रात्रि भर सभी ने विश्राम किया।

प्रात होते ही हिर राय नाम नृप जरासिन्ध की ओर से अपनी सेना को लेकर रण क्षेत्र मे आ गया, और आते ही भयकर वाण वर्षा की, परन्तु अर्जुन ने उसके बाणों को वीच ही मे काट गिराया। हिर राय नाम रह रह कर सिह की भाति गरजता और विकट रूप से वाण वर्षा करता रहा, तव भीम ने आगे वढ कर अपनी गदा से उसके रथ को चूर चूर कर दिया और समुद्र विजय के शुभ जयसैन ने अर्जुन के पास अपना रथ खड़ा करके हिर राय नाम की सेना पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी। उसके तीक्ष्ण वाणो मे गिरते सैनिको को देख कर हिरराय नाम ने गरज कर कहा—

ओ मूर्ख जय सैन! भाग जा, क्यो व्यर्थ मे प्राण गवाता है। जय सैन ने क्रोधित हो कर एक ऐसा वाण मारा कि हिरराय नाम का सारथी लुढक पडा। क्रुद्ध हो हिरराय नाम ने जय सैन पर वाणो की वौछार कर दी और जयसैन अपने सारथी सहित मारा गया।

अपने भाई को गिरते देख महाजय दौड़ कर आ गया और हिरराय नाम पर टूट पडा, परन्तु उसकी हिरराय नाम के सामने एक न चली, कुछ ही देरी मे वह भी मारा गया।

यह दृश्य देख कर अनाधृष्टि पर कोप छा गया और मोर्चो पर आ डटा, आते ही एक ऐसा वाण मारा कि जिसने उस धनुष को ही तोड़ दिया, जिसके द्वारा जयसैन और महाजय का वध किया गया था। और गरज कर वोला— हिरराय नाम इन दो कुमारों के रक्त का वदला तुझ से लिया जावेगा। भागने का प्रयत्न न करना।

याद रख कि तेरी मृत्यु का सन्देश आया रक्खा है।

"छोकरे ! पहले अपनी मां से तो विदा ले ली होती, जाकर देख उसके स्थनो से दूध चू रहा होगा।" हिररायनाम ने अकड कर कहा और स्वय भयकर वार करने आरम्भ कर दिए, अपने सरदारो को उत्तेजित करने के लिए उसने ललकारा—"देखते क्या हो,शत्रु को भागने का अवसर भी मत दो, वह देखो, उनकी मौत उनके सर नाच रही है, बहादुरो आगे बढो, विजय तुम्हारी बाट देख रही।"

सरदारों ने मिल कर घोर सग्राम करना आरम्भ कर दिया, यह देख कर भीम, अर्जुन और यादवो को भी जोश आ गया, भीम ने अकड कर कहा— "वीरो, गीदडो की भवकियो की चिन्ता मत करो, जिनके हाथ मे शक्ति नही होती, वे जवान चलाया करते हैं। तनिक इन्हे अपने बाजुओ की शक्ति तो दिखादो।" सभी जोश से लड़ने लगे।

हिरराय नाम अनाधृष्टि को मारने के लिए दात पीस कर, तलवार लेकर बढा, अनाधृष्टि भी रथ से उतर पडा और तलवार हाथ मे ले कर यह कहता हुआ आगे बढा— "अरे दुष्ट मामा, देखता हूं तेरी तकदीर मे भी भानजे के हाथो ही मरना लिखा है। तो चल ले मैं ही तुझे यमलोक पहुचाता हू।"

हिरराय नाम क्रोध से पागल हो उठा, बोला—मूर्ख अपने उन भाईयो से मिलना चाहता है तो आ मेरी तलवार तुम जैसो को यमपुरी पहुचाने मे बहुत माहिर हू ?

'अरे पापी ! तू जीवित रहा तो मुझे बार बार मामा कहते हुए लज्जा आयेगी। आ चल तुझे यम महाराज के पास पहुचा दू।" इतना कह कर अनाधृष्टि ने तलवार का वार इस जोर से किया कि हिरराय नाम का सिर धड से अलग हो कर धूल मे जा मिला। फिर अष्टावीश को भी उसने मार गिराया।

भीम और अर्जुन ने अनाधृष्टि की वीरता देख कर कहा— "वाह, वाह, वास्तव मे सिहनी का सिह बबर है।" इन दो वीरो

के मरते ही जरासिन्ध पक्ष की सेना मे भगदड मच गई। यह दृश्य देख कर जरासिन्ध वहुत चिन्तित एव दुखित हुआ और युद्ध वन्द करके उसने दूर जा कर तेला तप धारण किया और कुल देवी को स्मरण करके उसकी आराधना की अन्त मे उसने कहा—"माता! मेरा भविष्य अन्धकारमय होता जा रहा है। सारे सहयोगी निष्काम होते जा रहे है, वस अव तेरा ही एक मात्र सहारा है। हे माता, शीघ्र आओ और शत्रु की सेना का वल क्षीण करो।"

जरासिन्ध की विनती से सुरी आकर यादव सेना पर कोप गई और सारी सेना को निर्वल वना कर चली गई। सैनिक अस्त्र शस्त्र चलाना चाहते पर हाथ काम ही नही करते थे. तव वडी चिन्ता हुई। अरिष्ट नेमि जी से उस समय मातली ने सुरी के अभाव को समाप्त करने की युक्ति वताई, मातली के कथनानुसार ही कार्य किया गया, और देवी की माया समाप्त हो गई। फिर यादव सेना अपनी पूर्ण शक्ति से लडने लगी।

परन्तु जरासिन्ध समझने लगा कि यादध सेना का आत्म वल कम हो गया है, इस लिए उसने एक दूत भेज कर समुद्र विजय के पास सन्देश भिजवाया कि श्री कृष्ण और वलराम को हमारे हवाले कर दो, तो हम युद्ध वन्द करके वापिस चले जायेगे।

समुद्रविजय ने दूत से कहा—'जरासिन्ध चाहे युद्ध करे या रण क्षेत्र से भाग जाय, जव तक यादवों के दम मे दम है, वे किसी प्रकार भी ऐसी शर्त को स्वीकार न करेगे।"

दूत के जाने के वाद समुद्र विजय ने यादवों को ललकार कर कहा—क्या वात है, शत्रु को ऐसा अपमान जनक प्रस्ताव भेजने का साहस क्यों हुआ? क्या यादवों की तलवार की गति धीमी हो गई है. क्या यादव योद्धाओ के हौसले पस्त हो गए हैं? क्या हम शत्रु को लेने का अवसर देकर अपना उपहास कराने पर तुले है। यदि तुम यादव अथवा सच्चे वीर होते घर वापिस जाने की इच्छा को भूलकर आगे वढो। एक ही दशा मे घर जाना है वह विजय की पताका फहराते हो कोई घर जायेगा, वरना यहीं कट कट कर मर जायेगा।'

समुद्र विजय की ललकार सुनकर यादव सेना ने श्री कृष्ण और समुद्र विजय का जयनाद किया और दांत पीस कर हल्ला बोल दिया। इस भयकर प्रहार से जरासिन्ध की सेना को आत्म रक्षा करना कठिन हो गया, निकट था कि जरासिन्ध के सैनिक रणक्षेत्र मे शस्त्र फेंक कर भाग जाते, कि सूर्य अस्त हो गया, और युद्ध बन्द कर दिया गया इस आक्रमण से जरासिन्ध की सेना बहुत भयभीत हो गई थी। तब उसे सूझ गया कि उसकी पराजय अवश्य बाकी है, पर प्रात होते ही कर्ण अपनी सेना लेकर वहा पहुच गया और उसने जरासिन्ध से उसकी ओर से युद्ध करने की इच्छा प्रगट की, अधा क्या चाहे ? दो नयन, बिल्ली के भागो छीका टूट गया, जरासिन्ध ने सहर्ष उसे उस दिन रण भूमि मे सेना ले कर लडने की आज्ञा दी, पर साथ ही अपना स्नेह दर्शाने के लिए उसने कहा— "श्री कृष्ण के पास बहुत शक्ति है, भीम और अर्जुन उस ओर से लड रहे हैं, बहुत से वीर मारे जा चुके हैं, इस लिए तुम अपने को बचा कर होशियारी से युद्ध करना।"

कर्ण ने कहा— "आप विश्वास रखिये, मैं अर्जुन और भीम को यमपुर पहुचा कर छोड़ूगा। मैं उन्हे बता दूंगा कि इस भूमि पर ऐसे भी वीर हैं जो उन्हे धूल चटा सकते है।"

कर्ण के साथ उसका मित्रदेव नाग कुमार भी हो गया, और वे रणक्षेत्र मे जा डटे। उधर से वसुदेव और उग्रसेन आ गए। कर्ण को रणक्षेत्र में देख कर वसुदेव ने गर्ज कर कहा— अच्छा, कर्ण तुम्हे भी मृत्यु यहा खीच लाई ?"

"मैं तो तुम्हारी मृत्यु का आदेश ले कर आ रहा हूं।"

"तनिक ध्यान से देखो किधर तुम्हारी मृत्यु का ही आदेश न हो।"

कर्ण ने तुरन्त बाण मारते हुए कहा—"देखो वह आ गया मृत्यु का आदेश, तुम स्वय पढ लेना।"

दोनो एक दूसरे पर वार करने लगे। बहुत देर तक घमा-

सान युद्ध होता रहा। जब वसुदेव ने देखा कि कर्ण इस प्रकार परास्त होने वाला नही है तो उसने गरज कर कहा—"ओ सूत पुत्र तू ऐसे नही मानेगा। ले तुझे भस्म किए देता हू।" यह कर अनिल वाण मारा परन्तु कर्ण का सहायक देव था, वह तुरन्त ही वहा से लुप्त हो गया और तत्काल जल ला कर उसने अग्नि वाण को प्रभाव हीन कर दिया। तब वसुदेव समझ गए कि कर्ण भी एक दीव्य शक्ति रखता है।

तभी नारद जी आ पहुचे, उन्होने वसुदेव से कहा—"वसुदेव! मुकाबले के वीर के साथ नागकुमार है, इसी लिए तुम्हारे वाण उसका बाल बाका नही कर सकते, अत कुछ करना है तो नाग कुमार का कुछ करो।" फिर मातली देव (साथी) के साथ आ कर नारद जी बोले—आप यहा हैं और वहा कर्ण नाग कुमार के सह-योग से भयकर युद्ध कर रहा है। ऐसा कभी न देखा होगा, तनिक वहां जाकर देखो।"

मातली देव तुरन्त वसुदेव के रथ पर आ बैठा, नाग कुमार मातली देव को वसुदेव के सारथी रूप मे देख कर भाग खडा हुआ। इतने मे ही सूर्य अस्त हो गया, सग्राम वन्द कर दिया गया और दोनो वीर अपनी अपनी सेनाओ मे जा मिले।

× × × × × ×

हस नामक मत्री ने जरासिन्व से कहा—महाराज! अभयदान मांगता हू, तब आप से विनती करता हू कि यह सग्राम आपके लिए सुखदायक नही है, इस मे जो नर सहार हो रहा है, उसका दोष आपके सिर मढा जायेगा। आप चाहे तो अभी ही यह सग्राम रुक सकता है, और सहस्रो बहनो के सुहाग की रक्षा हो सकती है।"

कहते हैं जब शृगाल की मौत आती है तो वह ग्राम की ओर भागता है, जब मृत्यु निकट होती है, मस्तक फिर जाता है, ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को भोजन रुचि कर नही होता शठ को ज्ञान भला नही लगता, इसी प्रकार जरासिन्व को मत्री की बात बड़ी कडवी लगी, उसके नेत्रों में रक्त उतर आया, बोला— "मैं देख रहा हू

कि जव से तुम रण भूमि मे आये हो और विशेषतया जब से श्रीकृष्ण के पास हो आये हो, तभी से तुम्हारा मस्तक फ़िर गया है। तुम पागलों जैसी बातें करते हो, मेरे वैरियो की प्रशसा करते हो, और मुझे मैदान से भाग जाने को उकसाते हो, क्या इसका यह अर्थ नही है कि तुम वैरियो से मिल गए हो। नमक हराम !"

उसी समय दूसरा मत्री, डभक बोल उठा— "महाराज ! शूरवीर कभी रण क्षेत्र से इस प्रकार वापिस जाने की बात भी नही सोचा करते। वे या तो विजयी हो कर लौटते हैं या प्राण देदेते हैं। रण भूमि मे मरने वालो को यश मिलता हैं हस की बाते महाराज के लिए अपमान जनक है।"

डभक की बाते सुन कर जरासिन्ध और भी विगड गया उस ने हस को ललकारते हुए कहा— "सुन रहे हो, मत्री जी की बात ! जो भी तुम्हारी बात मुंह से सुनेगा वही तुम पर थूकेगा, अतएव भविष्य मे ऐसी बात मुह से मत निकालना, जो मेरे कोप को जागृत करदे, मेरी तलवार वैरियो का रक्त पी सकती है, तो वैरियो के हितैषियो को, आस्तीन के नागों को भी यमलोक पहुचा सकती है।"

वेचारा हस अपना सा मुंह ले कर रह गया। बोला कुछ नहीं प्रात. होते ही जरासिन्ध ने सेनाओ को तैयार होने का आदेश दिया और शिशुपाल को उस दिन के लिए सेनापति नियुक्त कर स्वय भी रण के वस्त्र, वस्त्र आदि पहन लिये। सवालाख सेना सज कर तैयार हो गई। जरासिन्ध ने अपनी खड्ग हवा में लहराते हुए कहा— "युद्ध होते कई दिन वीत गए। शृंगालों की सेना अभी तक सामना करती रही। पर अव मैं यह सहन नही कर सकता। अत मैं इस खडग की शपथ लेकर कहता हू कि चाहे जो हो आज मैं कृष्ण का सिर इस खडग से उतार लूगा। जिस सैनिक में एक एक वैरी का खून पी जाने का साहस न हो, वह अभी ही पीछे चला जाय।"

शिशुपाल वोला—"महाराज ! आप निश्चिन्त होकर लडिए।

हमारा एक-एक सैनिक आपके नाम पर अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार है, एक एक सैनिक आपकी शपथ को पूर्ण करने के लिये वैरियो गाजर मूली की भांति काट डालने को तैयार है।"

शिशुपाल ! हम सदा से ही तुम पर पूर्ण विश्वास करते हैं। श्री कृष्ण तुम्हारा भी वैरी है। तुम्हें जीवन चाहिये तो कृष्ण का वध करो। तुम्हे सुख चाहिए तो अपने पथ के कांटे को क्रूरता से समाप्त कर दो। आज तुम्हारे शौर्य की परीक्षा है।" जरासिन्ध ने शिशु पाल को उत्तेजित करते हुए कहा— "महाराज ! आप की प्रसन्नता मुझे अपने जीवन से अधिक प्रिय है।" शिशुपाल ने चापलूसी करते हुए कहा। हमे तुम से ऐसी ही आशा है।"

इधर मन के लड्डू फोडे जा रहे थे, उधर यादव गरुड व्यूह रच रहे थे। जब उधर व्यूह रचना देखी तो, शिशुपाल ने भी चक्र व्यूह रचा। सारी सेना को युक्ति पूर्वक लगाया। जरासिन्ध प्रथम दिन की भांति सैनिकों के बीच रहा। शिशु पाल उस के आगे रक्षको का अधिष्ठाता था।

जरासिन्ध ने युद्ध आरम्भ करने से पूर्व अपने मंत्री को बुला कर पूछा—'मंत्री जी ! हमे यह बताओ कि आज विरोधी सेना में कौन कौन से सुभट हैं ?

मंत्री ने सामने संकेत द्वारा बता बता कर कहा-"महाराज ! वह सामने श्याम अश्व वाले रथ पर अनाधृष्ट कुमार है। वही पांडवों की सेना का सेनापति है। वह देखिये उस के रथ पर गज चित्र युक्त पताका लहरा रही है। श्वेत अश्व और कपि ध्वजा वाला रथ अर्जुन का है। नील कमल की शोभा वाले अश्व जिस रथ मे जुते हैं, उस पर भीम सेन सवार हैं। और वह देखिये, सिंह चिन्ह ध्वजा वाला, स्वर्ण समान चमकता रथ समुद्र विजय का है। वृषभ चिन्ह जिस ध्वजा मे है, वह अरिष्ट नेमि जी के रथ पर लहरा रहा है, उस मे शुक्ल वर्ण के अश्व जुते है। कबरे अश्वों वाले रथ मे अक्रूर कुमार है, और कदली के चिन्ह वाली ध्वजा उस पर लहरा रही है। तोता अश्व वाला रथ उग्र सेन का, तीतर वर्णी अश्वों का रथ महानेमि का, और हरिण

चिन्ह वाली ध्वजा जिस पर लहराती है वह रथ जरत कुमार का है। पद्म रथ राजा के रथ के अश्व पदम समान हैं, और कमल जिस ध्वजा पर चमक रहा है, वह साहरण के रथ पर लहरा रही है।..............." 'मैं पूछता हू, कृष्ण का रथ कौन सा है ?" बीच ही मे जरासिन्ध कड़क कर बोला।

मन्त्री एक बार तो काप उठा—बोला—"महाराज सेना के बीच मे श्वेत अश्वों वाला रथ जिस पर गरुड़ चित्रित ध्वजा लहरा रही है, श्री कृष्ण का है। और कृष्ण के पास दाहिनी ओर बल-राम है"

बस बस पुराण मत बखानो'

मंत्री जरासिन्ध की बात सुन कर मौन रह गया।

जरासिन्ध ने सेना पर दृष्टि डाली और गरज कर बोला—सब शत्रु दल पर टूट पडना।"

युद्ध आरम्भ हुआ। योद्धा आपस मे जूझने लगे, गज सवारों से गज सवार, अश्व सवारो से अश्व सवार, रथारोहियो से रथा-रोही, और पैदल सैनिको से पैदल सैनिक भिड गए। खड़गो की खन खन की ध्वनि से रण क्षेत्र भर गया। इतने जोर का शोर हुआ कि आकाश पृथ्वी भी कांप उठें।

उसी समय नारद जी पधारे। जरासिन्ध के पास पहुंच कर बोले—'आप जैसे योद्धा के सामने वह ग्वाला क्या चीज है। तनिक आगेबढ़ कर उसी का सफाया कीजिए, सैनिको पर खड़ग उठाना आप को शोभा नही देता। आप श्री कृष्ण को मार कर जो यश प्राप्त करेंगे, वह आज तक किसी को नही प्राप्त हुआ होगा।

नारद जी की बात सुन कर जरासिन्ध उत्तेजित हो गया और नारद जी के सकेत पर कार्य करने के लिए आगे बढ़ने लगा।'

नारद जी श्री कृष्ण के पास भी पहुचे और बोले—महाराज ! वृढा जरासिन्ध तो पक्के आम की भांति है, परन्तु आप की खड़ग

विना नही गिरेगा। आप के सामने वह क्या है, शीघ्र काम तमाम कर के झगड़ा समाप्त कीजिए, क्यों व्यर्थ रक्त पात करा रहे हैं ?"

श्री कृष्ण जी नारद जी की बात पर हस दिए, "आप को तमाशा ही देखना है, तो घवराइए नही। अव अधिक प्रतीक्षा नही करनी होगी। वह स्वय अपनी मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा है।" यवन कुमार और अक्रूर आदि मे घमासान युद्ध हो रहा था, मार काट करते यवन कुमार को सहारण ने जाकर आगे वढने से रोक दिया। यवन कुमार कुछ देरी तक उसका सफल सामना करता रहा, सहारण ने ललकार कर कहा— "छोटे मोटे सैनिको को मार कर अपने को वीर समझ लिया होगा, पर किसी वीर से पाला नही पडा है, तो वगले झाक रहे हो।"

सहारण की वात सुन कर यवन कुमार को वडा क्रोध आया उसने कडक कर कहा—"अपने मुह मिया मिट्ठू वनते आप ही को देखा है। डीग हाकना छोड़ कर हाथ दिखाओ। आटे दाल का भाव अभी ज्ञात हुआ जाता है।"

'वढ वढ कर वाते वनाना वहुत आता है, होता हुआता कुछ नही।" चिड कर सहारण वोला। यवन कुमार ने क्रुद्ध होकर उस का रथ चूर चूर कर दिया। इस पर सहारण भी क्रुद्ध हो गया. उस ने यवन कुमार पर खड्ग का एक ऐसा वार किया कि सिर धड मे अलग हो गया। सहारण की इस वीरता को देख कर यादव मेना मे भारी हर्ष छा गया, सैनिक आनन्दित हो कर उछलने लगे।

युवराज का वध होते देख कर जरासिन्ध वहुत झुंझलाया, उस ने श्री कृष्ण की ओर वढना छोड़ कर सहारण का पीछा पकडा। कुछ देरी तक दोनो में युद्ध होता रहा, अन्त मे जरासिन्ध के वारो को सहारण न काट पाया और उस को खडग से मारा गया।

फिर वह भूखे सिंह की भांति वलराम के पुत्रों पर टूट पड़ा और सभी को आन की आन में मार गिराया, इस से पांडवों की

सेना मे आतंक छा गया। सभी भयभीत हो गए, जरासिन्ध जिधर जाता मार काट करता निकल जाता, कुछ सैनिक तो उस से अपने प्राण बचाने के लिए भाग जाते।

शिशुपाल श्री कृष्ण से भिड गया, उस ने कृष्ण को ललकार कर कहा—"यह गोकुल ग्राम नही है, चरवाहो, ग्वालो की सग्राम मे भला क्या चल सकती है। देखा कैसे मर रहे है, तुम्हारे योद्धा ने क्षत्रियो का सग्राम कभी नही देखा होगा, अब तो आँख खुली। खैर चाहते हो तो शस्त्र फैक दो।'

श्री कृष्ण ने हस कर कहा—"शिशुपाल! पहले अपनी उस माता से तो पूछ लिया होता, जिसने मुझ से तेरे प्राणो की क्षमा माँगी थी? या मेरे हाथो मरने मे ही तुझे आनन्द आयेगा?'

शिशुपाल गरज कर बोला-मैंने तो अपनी मा से पूछ लिया, पर तू तो यशोदा ग्वालिन से पूछ ले; उसके ढोर कौन चुगाएगा? मेरा एक भी वार नहीं सहा जायेगा।

श्री कृष्ण ने कहा—"ऐसे योद्धा होते तो रुक्मणि के विवाह मे दुम दबा कर न भागते।

'चलेगी न तेग और तलवार उन से
यह वाजू वहुत आजमाए हुए है॥"

शिशुपाल को वहुत क्रोध आया, उस ने दांत पीस कर श्री कृष्ण पर आक्रमण कर दिया। श्री कृष्ण वार काटते हुए बोले—'तेरी धृष्टताओ को मैंने कितनी ही वार क्षमा कर दिया, पर अव तू सिर पर ही चढता चला आता है तो ले अपने किए का भोग।' इतना कह कर उन्हो ने उस पर एक ऐसा वार किया कि शिशुपाल वही ढेर हो गया। शिशुपाल के मरते ही यादव सेना में नवीन आशा का सचार हुआ, सैनिको ने श्री कृष्ण की जय जयकार करनी आरम्भ करदी। जरासिन्ध अपने परम सहयोगी की मृत्यु देख कर आग वबूला हो गया। उस ने आव देखा न ताव अपना रथ श्री कृष्ण की ओर हकवा दिया। उधर जरासिन्ध के पुत्रों ने वल राम को घेर रखा था, श्री कृष्ण ने उन पर वाण वर्षा की- उधर

वलराम भी शीघ्र गति मे वाण वरसा रहे थे। दोनो के वाणो की वर्षा से जरासिन्ध के पुत्र मारे गए। जब जरासिन्ध की दृष्टि उस ओर गई तो उस ने अपने पुत्रों की हत्या का बदला लेने के लिए वलराम को घेर लिया। और गदा का प्रहार किया, जिस से वलराम व्याकुल हो गए, पुन गदा मारने को उठाई तो अर्जुन की दृष्टि उस पर चली गई अर्जुन वीच मे कूद पडा और भयकर युद्ध करके वलराम को वचा लिया।

जरासिन्ध ने श्री कृष्ण को निकट देखकर कहा—"तुम इतने दिनो अपनी चतुराई से मेरे हाथो से वचे रहे पर अब मेरे हाथों तुम्हारी सारी माया समाप्त हो जायगी। आज मैं जीव यशा की प्रतिज्ञा पूरी करूगा।"

श्री कृष्ण वोले 'यह तो अभी ही पता चल जायेगा कि जीव यशा की प्रतीज्ञा पूर्ण होगी या एवता मुनि की भविष्य वाणी। तनिक दो दो हाथ हो कर।"

जरासिन्ध ने गरज कर कहा—मैं जरासिन्ध हू जिस ने कभी पराजित होकर नहीं जाना, मेरे नाम से सारा ससार कापता है। ग्वालो मे खेलने वाला मेरा क्या सामना करेगा ?"

इतना कह कर उस ने श्री कृष्ण पर वाण वर्षा आरम्भ करदी, पर श्री कृष्ण उस के वाणो को अपने वाणो के वीच ही मे काट देते। कितने ही समय तक वाणो से युद्ध होता रहा अन्त मे जरासिन्ध ने चक्र रत्न चलाया। उसे चलता देख कर ही यादव सुभट भयभीत हो गए, पान्डवो और यादवो ने मिलकर उसे काटने के कितने ही यत्न किये पर कोई वार न चलाई आखिर चक्र आकर श्री कृष्ण के शरीर मे लग गया पर शरीर का स्पर्श होना था, कि चक्र गेंद की भाति हो गया, श्री कृष्ण को कोई चोट ही न आई। इस बात को देखकर जरासिन्ध की आंखें फैल गई, उस की समझ मे ही न आया कि चक्र रत्न ने श्री कृष्ण का शरीर क्यों न काटा।

श्री कृष्ण ने उसी चक्र को अपने हाथ मे लिया, और गरज

कर बोले—'पापी ! देख क्या यह भी मेरी ही माया है। ये तेरा शस्त्र ही मेरे काम आ रहा है। तू बूढा है, जा कुछ दिनों और ससार में रहना चाहे तो भाग जा, वरना तेरा ही अस्त्र तेरे प्राण लेगा ?"

जरासिन्ध पर तो शक्ति का अहकार सवार था, उस ने अकड कर कहा—'ग्वाले ! पहले इस चक्र का प्रयोग सीखने के लिए मेरा शिष्य वनता तब इसे प्रयोग करने की बात करता तो कदाचित तेरी धमकी का मुझ पर कुछ प्रभाव भी पडता अब क्या है, तेरे लिए तो यह एक खिलौना ही है।"

तो फिर देख इस खिलौने की करामात ! इतना कह कर श्री कृष्ण ने चक्र रत्न उस की ओर घुमा कर मारा, जिस से देखते ही देखते जरासिन्ध का शीश कट कर धरा पर आ गिरा और वह चौथे नरक से चला गया। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। श्री कृष्ण की जय के नारो से युद्ध स्थल गूज उठा। जरासिन्ध की सेनाओ ने शस्त्र डाल दिए और रण भूमि उत्सव स्थल मे परिणत हो गई। यादव सैनिक आनन्द चित हो कर विपुल वाद करने लगे।

जरासिन्ध का वध होते ही नेमिनाथ जी ने तुरन्त जा कर जरासिन्ध के वन्दी ग्रहो मे वन्दी वने पड़े राजाओ को वन्धन मुक्त किया। जव जीवयश को पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह वहुत दुखी हुई और अग्नि में कूद कर खाक हो गई। श्री कृष्ण ने मगध देश का चौथाई भाग जरासिन्ध के शेष रहे पुत्र को दे दिया। उन्होने मृत यादवो के शवो का दाह संस्कार किया और तीन खण्डो की दिग्विजय करने चल पडे। जिसे आठ वर्ष मे पूर्ण किया और तीन खंड में अखड आन मानवाकर त्रिखडीश्वर हो कर वाद्यसमूहों के साथ महामहोत्सव पूर्वक अलका सदृश द्वारिका नगरी मे प्रवेश किया।

※ चतुर्थ परिच्छेद ※

अद्भुत महल
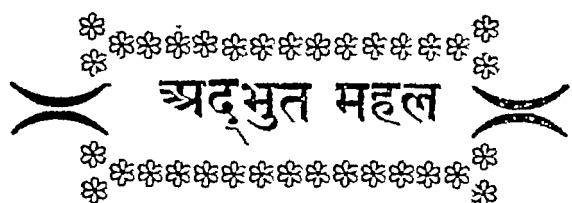
जरासिन्ध और शिशुपाल का वध हो जाने से महाराज युधिष्ठिर के सम्राट पद पाने का रास्ता खुल गया। श्री कृष्ण के सहयोग से महाराजाधिराज पद से युधिष्ठिर को विभूषित करने के लिए एक महोत्सव राजसूयज्ञ के नाम से रचाया गया और दुर्योधन कर्ण और शकुनी भी श्री कृष्ण के कारण महाराज युधिष्ठिर को सम्राट बनने से न रोक पाये।

इधर श्री कृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया था इस लिए पाँडवों के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध था. वे पाण्डवो के प्रत्येक कार्य मे सहयोग और परामर्श देते थे। इसी सम्बन्ध के कारण, और महाराज युधिष्ठिर की धर्म परायणता के कारण पाण्डवों की कीर्ति मे वृद्धि होती रही. आधा राज्य पाने पर भी वह भारत खण्ड मे प्रसिद्ध हो गए और सौ राजा उनके आधीन आ गए।

सुभद्रा के गर्भ से एक कांतिवान पुत्र उत्पन्न हुआ, इस खुशी मे महाराज युधिष्ठिर ने एक विराट उत्सव किया। उस उत्सव के लिए अर्जुन के मित्र मणिचूड ने अद्भुत महल बनाया, जिसमें उस युग की सर्वोत्तम कला दिखाई गई थी। रत्नो और मणियों से युक्त दीवारें और स्तम्भ इतने आकर्षक बने हुए थे कि आंखे धोखा खा जाती थी। कहीं रवि उदय होता दर्शाया गया था, तो कहीं पूर्ण शशि धवल चांदनी बखेरता हुआ। फर्श पर नील मणि लगी थी।

और रगो का ऐसा सुन्दर नमूना था कि नीले तथा श्वेत रग से रग फर्श को देख कर कोई भी व्यक्ति 'जल' का धोखा खा सकता था, जहा जल था वहा फर्श दिखाई देता था, इसी प्रकार दीवारे भी छद्ममयी थी, दूर से द्वार दीख पडने वाली जगह मोटे पत्थरो की दीवार थी और जहा दीवार प्रतीत होती थी, वह द्वार थे। विभिन्न भाति की रत्न पुतलिया, चित्र, तथा नाना प्रकार के कामो से युक्त वह महल एक अद्भुत भवन बन गया था।

पुत्र जन्मोत्सव पर युधिष्ठर ने अनेक नरेशो को निमन्त्रित किया, श्री कृष्ण, बलराम दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि सभी निमन्त्रित थे। बहुमूल्य भेट दी, बहुमूल्य उपहारो के ढेर लग गए। देश विदेश से कलाकार निमन्त्रित थे। आठ दिन तक विभिन्न नृत्य, सगीत और प्रदर्शनों की धूम रही। युधिष्ठिर ने मुक्त हस्त से धन व्यय किया दान देने में युधिष्ठिर ने इतना धन व्यय किया देखने वाले भी दातो तले उगली दवा कर रह गए। हस्तिनापुर, द्वारिका और इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारी विद्यार्थी बडी सख्या मे एकत्रित थे, उन्हे सहस्रो गौएं दान दीं, जो जिसने मागा वही दिया, याचक लोग कह उठे—"महाराजाधिराज युधिष्ठिर ने पुत्र जन्मोत्सव पर जो किया, वह, अभूतपूर्व है, प्रशसनीय हैं, और एक समय तक उसकी याद रहेगी।"

सभी आनन्द चित थे परन्तु दुर्योधन के दिल पर साप लोट रहा था, वह ईर्ष्या के मारे जला जा रहा था यद्यपि महाराजाधिराज युधिष्ठर ने भ्रातृ स्नेह से धन का हिसाव किताव उसी के जिम्मे दे दिया था, और उसे इस वात की छूट थी कि वह अपनी इच्छानुसार जितना चाहे व्यय करे। यह बात इस लिए की गई थी ताकि दुर्योधन के मन का मैल जाता रहे और वह समझ ले कि युधिष्ठिर उसे सगे भ्रात तुल्य मानते हैं। परन्तु जिस समय कोष की चाबिया उसे मिली तो वह सोचने लगा कि यह सुन्दर अवसर है पाडवों को वरवाद करने का। खूब धन उडाऊगा और कोष खाली कर दूगा। जिससे राज कोष का सन्तुलन बिगड़ जायेगा और प्रजा के लिए व्यय होने वाला धन समाप्त होने से प्रजा जन पाण्डवों के प्रति क्षुब्ध हो जायेगी, क्योकि जन साधारण के हितार्थ भी व्यय

नही किया जा सकेगा। कर्मचारियों का वेतन रुक जायेगा, इसलिए वे असन्तुष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार राजा का सारा ढांचा ही अस्त व्यस्त हो जायेगा। यह सोच कर वह एक पैसे के स्थान पर चार पैसे व्यय कर रहा था, पर जब उसने देखा कि उसकी इस नीति से पाण्डवो के यश मे ही वृद्धि हुई तो वह अपने भाग्य को कोसने लगा।

शिशु का नाम अभिमन्यु रक्खा गया। ज्योतिषियो ने उस के वीर होने की भविष्यवाणी की। श्री कृष्ण ने शिशु को बहुमूल्य उपहार दिए। उन्हे अपार हर्ष हो रहा था, यह देखकर कि बालक का कातिवान मुख और उज्ज्वल ललाट बता रहा था कि बालक अद्भुत वीर योद्धा होगा।

उत्सव की समाप्ति पर समस्त नरेश, अतिथि एवं विद्वान गण विदा हो गए। पर दुर्योधन को युधिष्ठिर ने यह कर रोक लिया—"ऐसी क्या जल्दी है, कुछ दिन ठहर कर चले जाना, जैसा हस्तिनापुर वैसा ही आपके लिए इन्द्रप्रस्थ है।"

सभी पाण्डवो ने दुर्योधन से बहुत प्रेम दर्शाया, दुर्योधन मन ही मन उनसे कुढता था, पर प्रत्यक्ष रूप मे वह भी उन से प्रेम ही दर्शाता। भाईयो के कहने पर कुछ दिन उसने वही रुकना स्वीकार कर लिया।

जन्मोत्सव पर बना हुआ अदभुत महल उन दिनो इन्द्र प्रस्थ मे दर्शनीय भवन था, जो देखता वही प्रशसाए करता। परन्तु दुर्योधन ने अभी तक उसे जाकर नही देखा था, क्योकि ईर्ष्या के कारण उसे यह कदापि सहन नही हो सकता था कि पाण्डवो की किसी भी वस्तु की प्रशसा करनी पड़े।

परन्तु एक दिन भीम ने दुर्योधन से कहा—"भ्राता जी ! मणि चूड द्वारा निर्मित भवन आप भी तो देखिए। लोग तो बडी प्रशसा करते हैं। पर कला की पहचान आप सरीखे कला प्रेमियो और अनुभवियो को ही होती है। लोग तो किसी को प्रसन्न करने के लिए भी वैसे ही प्रशसा कर दिया करते हैं। इसलिए आप देख कर उस मे जो कमि हो बताईये। महाराजाधिराज युधिष्ठिर ने

उस पर बहुत धन व्यय किया है।"

दुर्योधन न चाहते हुए भी जाने से इंकार न कर सका, अपने अन्य संगी साथियों के साथ वह भीम के साथ महल देखने चल पड़ा।

जिस समय दुर्योधन और उस के साथी महल के आगन में पहुचे उस समय द्रौपदी उसके ऊपर खड़ी थी।

दुर्योधन ने ज्यो ही अन्दर प्रवेश किया तो सामने नील मणि के फर्श को देखकर वह समझा जल है, इस लिए उसने जूते निकाल कर वस्त्र ऊपर कर लिए। देखने वाले दुर्योधन की इस भूल पर हस पड़े, और ऊपर खड़ी द्रौपदी भी खिल खिला कर हस पडी।

लोगो और द्रौपदी के हसने से दुर्योधन को बडा क्रोध आया। भीम उसी समय बोल पड़ा—भाई साहब, वस्त्र सभाल रहे हो, किसी से मल्ल युद्ध तो नही करना।"

क्रुद्ध दुर्योधन बोला—'क्या तुम मुझे यहां डुबा मारने लाये हो? महल है या तालाव घर।"

भीम ने हस कर कहा—"भाई साहव! यह जल नहीं नील मणि से आपकी दृष्टि धोखा खा गई है।"

दुर्योधन को अपनी भूल पर वड़ी लज्जा आई। उसने अपने वस्त्र नीचे कर लिए, जूता पहन लिया और आगे बढने लगा। खीझ मिटाने के लिए वह सव से आगे तीव्र गति से चला, उसके पीछे था दुःशासन। कुछ दूर जाकर दुर्योधन धडाम से जल कुण्ड मे गिर पडा। दर्शक हंस पडे, दुःशासन भी गिरते गिरते वाल वाल वचा। भीम ने कहा—"भाई साहव! ऐसी जल्दी क्या थी स्नान करने को ही जी चाहता था तो आप मुझ से कहते। आप के लिए सव प्रवन्ध हो जाता। यहां तो आप ने वस्त्रों सहित ही जल मे छलांग लगा दी।"

दुर्योधन को क्रोध भी आया और लज्जा भी आई। भीम ने उसे बाहर निकाला। ऊपर खड़ी द्रौपदी ठहाका मार कर हस पडा।

दुर्योधन जल रहा था, पर बेचारा स्वयं लज्जित भी था, भीम ने ऐसे दूसरे कपडे दिए, कपडे वदल कर वह फिर भवन की सैर करने लगा।

एक स्थान पर उसे द्वार दिखाई दिया, दुर्योधन ने उस ओर पग वडाया, भीम ने उसी दम कहा—जरा ध्यान से देखिये, कही दीवार से मत टकरा जाना।"

दुर्योधन ने कहा—'तो तुम ने मुझे मूर्ख ही समझ रखा है।" वह यह कह कर आगे वढा ही था कि सिर दीवार से जा टकराया द्रौपदी. देखते ही हस पडी। और वोली

डिगोरी पकड़कर कोई करो इम्दाद अन्धे की

न हो अन्धा यह क्यो, आखिर तो हैं औलाद अधे की।

सुनते हैं धृतराष्ट्र अन्धे है, पर लगता है उनके पुत्र भी अन्धे ही है।

दुर्योधन ने एक वार अग्नेय नेत्रो से द्रौपदी की ओर देखा और वह अपने क्रोध को न रोक सका, वही से माथा सहलाते हुआ वोला—"कौन अधा है, तुझे शीघ्र ही पता चल जाएगा, जिन आंखो मे हर्ष ठाठे मार रहा है, एक दिन उन्ही से अश्रुसिन्धु फूट पडेगा, तव तू अन्धे को ही याद करेगी।"

भीम ने दुर्योधन को क्रोध करते देखा तो झट से वोल उठा—भ्राता जी ! द्रौपदी आपकी भाभी है। परिहास करने का तो उसे अधिकार है। आप तनिक सी वात पर क्रुद्ध हो गए। जाने भी दीजिए।"

क्रुध दुर्योवन मौन हो कर भीम के साथ आगे वढा। भीम ने द्वार की ओर सकेत करके कहा—यह है द्वार। आप इस के द्वारा अन्दर जा सकते हैं।"

यह द्वार तो दीवार जैसा दीखता था. दुर्योधन ने रोप पूर्ण हंसी हसते हुए कहा—"वस वस, मुझे मूर्ख न वनाओ। दीवार को मैं द्वार नहीं समझ सकता। अन्धे का हू पर अन्धा नहीं, भीम

हंसी रोकने का प्रयत्न करते हुए बोला— "अच्छा आप मेरे पीछे आईये।"

भीम उसी दीवार सा चमकने वाले द्वार में घुसा और अन्दर चला गया, दुर्योधन को बड़ा आश्चर्य हुआ।

* पञ्चम परिच्छेद *

भोर हो या सायं, निशि हो या दिन, चौबीसो घण्टे दुर्योधन चिन्ता मे घुलता रहता था। उसके लिए उप्लब्ध समस्त वैभव शूल समान हो गए, उसे बात बात पर क्रोध आता, दास दासियो पर अकारण ही चिल्ला उठता, रंग सरसों सा हो गया। रात्रि को जब आकाश मे तारो का जाल बिछा होता, शीतल चादनी कलियों के अधरों पर मुस्कान बखेरती, और स्रो कणों को भी श्वेत रत्नों का रूप प्रदान करती, उस समय भी दुर्योधन झुझलाया रहता, उस के मुख से दीर्घ निश्वास, निकलती वह हर समय व्याकुल रहता। जब ओस कण पृथ्वी पर फैली हुई वस्तुओ को भिगो देते, उस समय भी उसके हृदय मे चिन्ता की ज्वाला धधकती रहती। उसका मुह उतरा रहता, और चिड़चिडे स्वभाव के कारण सारा महल दुर्योधन से कापने लगा। वह किसी बात मे रुचि न लेता, न किसी से हसता बोलता, निरोग हो कर भी वह रोगी की भाति अधिक समय शय्या पर ही पडा रहता। तभी तो कवि ने कहा है :—

चिन्ता ज्वाल शरीर मे, बनि दावा लगी जाय।
प्रगट धुआं नहि संचरे, उर अन्तर धधुआय॥
उर अन्तर धंधुआय जरै जिमि काच की भट्टी।
रक्त मांस जरि जाय रहे हड्डिन की टट्टी॥
कह गिरधर कविराय सुनो हो मेरे मिन्ता।
गो नर कैसे जियें कि जिन पर व्यापै चिन्ता॥

दुर्योधन की यह दशा देख कर उसके मामा शकुनि से न रहा गया, पूछ बैठा– "दुर्योधन तुम निशि दिन दुबले होते जा रहे हो। कोई रोग भी प्रतीत नही होता, प्रत्येक प्रकार की सुख सम्पदा तुम्हे प्राप्त है, फिर इस प्रकार रोगी जैसी दशा का क्या कारण है?

"मामा! आप तो जानते ही हैं, पाण्डव कितनी उन्नति कर रहे हैं, वे सारे क्षेत्र पर छा गए हे। उनके यश की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। इस बार जब अर्जुन के पुत्र के जन्मोत्सव मे मैं गया था, आप तो मेरे साथ थे ही। मेरा कितना उपहास किया गया, कितना अपमानित हुआ मैं। इस सब के होते मैं जिऊ तो कैसे! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मैं पतन की ओर जा रहा हू। और एक एक बात मे पाण्डव मुझे परास्त करते जा रहे हैं।" व्यथित दुर्योधन ने अपने मन की बात कह सुनाई।

शकुनि ने दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा– "तुम्हारे मन मे बसी चिन्ता को समझ गया, पर मेरी समझ मे यह नही कि पाण्डवों की उन्नति से तुम पर कौन सी मुसीबत का पहाड टूट पड़ा? पाण्डवो के पास जो कुछ है वह तुम्हारा ही दिया हुआ तो है। तुम उन से किस बात मे कम हो? पाण्डव तुम्हारे ही भाई हैं, उन की वृद्धि को देख कर तुम्हे चिन्ता होना आश्चर्य की बात है।"

"मामा जी! आप भी ऐसी बातें करते हैं?– दुर्योधन ने शकुनि की बातो पर शका प्रगट करते हुए कहा– आप को तो ऐसी बातें नही कहनी चाहिए। जब कि आप जानते हैं, कि मैं अपमान पूर्ण जीवन व्यतीत करने से जीवित जल मरना अच्छा समझता हूं। द्रौपदी ने मुझे कितने ही लोगो के सामने अपमानित किया, पर मैं उसका कुछ न कर सका, अभी तो इतना ही है कि द्रौपदी मुझे अन्धा कह कर पुकारती है पर पाण्डवो की इसी प्रकार उन्नति होती रही तो एक दिन मुझे वे लोग भरी सभाओ मे गालिया दिया करेंगे, उनके बच्चे तक मुझे अपमानित किया करेंगे, और क्या पता वह भी दिन आजाए कि पाण्डव इतनी शक्ति प्राप्त करले? मुझे हस्तिना पुर से भी निकाल कर बाहर खड़ा करदें।"

शकुनि ने दुर्योधन को धैर्य बधाने के लिए कहा– "तुम भी कैसे बुरे स्वप्न देखने लगे ? पाण्डव एक नही हजार जन्म भी करे तो भी वे तुम्हारा बाल बाका नही कर सकते। और मेरे विचार से तो तुम्हे यूही भ्रम हो गया है। द्रौपदी ने तुम्हे अपमानित करने के लिए उपहास नही किया होगा, और न पाण्डव ही तुम से किसी प्रकार का द्वेष रखते है। अत. व्यर्थ की चिन्ता से क्या लाभ। तुम भी अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करो।"

"नही, मामा मैं पाण्डवो को भलि प्रकार समझता हूं-दुर्योधन ने कहा– वह एक एक बात मुझे चिढाने के लिए करते है। वह महल भी उन्होने मेरे ही उपहास के लिए बनाया था। मैंने प्रतिज्ञा की है कि द्रौपदी द्वारा किए गए अपमान का बदला लूंगा, जब तक मैं उसी प्रकार द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित नहीं कर लूगा, तब तक चैन नही लूगा। या तो अपने अपमान का बदला लूगा और पाण्डवो को मुझे चिडाने का बदला मिल जायेगा, वरना मैं जीवित ही चिता मे प्रवेश करूंगा। अत यदि आप मुझे प्रसन्न देखना चाहते है, तो कोई उपाय बताइये जिस से मैं अपने अपमान का बदला ले सकू।"

शकुनि ने बार बार समझाया कि वह द्रौपदी या पाण्डवो से बदला लेने की बात मन से निकाल दे, पर दुर्योधन न माना जब शकुनि ने देखा कि दुर्योधन हठ पर अडा हुआ है, तो वह भानजे के प्रेम मे विवश हो कर उसके मन को शात करने के लिए उस की इच्छा पूर्ति के उपाय खोजने मे लग गया। दुर्योधन और शकुनि दोनो आपस मे विचार विमर्श करने लगे। उसी समय कर्ण भी वहा पहुंच गया और उनकी मत्रणा मे वह भी शामिल हो गया। कर्ण ने तो वही अपना पुराना सुझाव दिया– "चलो अनायास ही पाण्डवो पर आक्रमण कर दो।" पर शकुनि ने इस प्रस्ताव का सख्त विरोध किया वह बोला— "कर्ण ! तुम हमेशा शक्ति द्वारा विरोधियों को झुकाने की बात किया करते हो, पर कभी यह नही सोचते कि विरोधी पर भी कम शक्ति नही है। पाण्डवो को शक्ति द्वारा परास्त करना बच्चो का खेल नहीं है। वे अब इतने शक्ति

शाली है कि उनका सामना करना लोहे के चने चबाना है। उन्हें तो किसी अन्य ही उपाय से जीता जा सकता है।"

कर्ण ने दम्भ पूर्ण शब्दो में कहा— "मामा ! आप भी कैसी बातें करते हैं' रण भूमि मे तो जाने दीजिए, पाण्डवो मे एक भी ऐसा नही जो मेरे सामने आ कर जीवित बच कर जा सके।"

दुर्योधन बीच मे बोल उठा— "पर यदि किसी प्रकार बिना लडाई झगडे के ही उन्हे परास्त किया जा सके तो इससे बढ कर अच्छी बात और हो क्या सकती है ?"

कर्ण तब कुछ ढीला पडा और बोला—"हा, यदि कोई ऐसी भी तरकीब हो सकती है, तो अवश्य की जानी चाहिए, युद्ध करना ही आवश्यक तो नहीं है।"

फिर दोनो शकुनि का मुह देखने लगे, जैसे उनके मौन नेत्र शकुनि से अन्य उपाय पूछ रहे हो। शकुनि कुछ देर विचार मग्न रहा और अन्त मे चुटकी बजा कर बड़े हर्ष से बोला —' युधिष्ठिर को चौसर खेलने का तो शौक है ही, बस उसे आप चौसर खेलने को आमंत्रित करे, इधर से मैं रहू फिर दुर्योधन ! मैं उनको जीत कर दिखला दू गा। बस चौसर के खेलका प्रबन्ध तुम पर रहा।"

बात सुनते ही कर्ण और दुर्योधन के मुख मण्डल पूनो के चाद की भाँति खिल उठ। कितनी ही देर तक वे आपस मे शकुनि की बुद्धि की प्रशशाए करते रहे और उसके पश्चात चौसर खेलने के षड्यन्त्र का जाल बिछाने पर विचार करने लगे।

× × × × × × ×

दुर्योधन और शकुनि धृतराष्ट्र के पास गए। शकुनि ने बात छेडी—"राजन ! देखिये तो आप का बेटा दुर्योधन शोक और चिन्ता के कारण पीला सा पडता जा रहा है। उसके शरीर का रक्त ही सूख गया प्रतीत होता है। क्या आप को अपने बेटे की भी चिन्ता नही है। ऐसी भी क्या बात कि आप अपने बेटे की चिन्ता का कारण तक न पूछे ?

बूढे धृतराष्ट्र को अपने पुत्र पर अपार स्नेह था ही, शकुनि की बात से वह सच मुच बहुत चिन्तित हो गए, दुर्योधन को अपनी छाती से लगा कर प्यार करते हुए बोले—"बेटा, हा मेरे तो आखें ही नहीं, जो मैं तुम्हारी दशा देख सकता। पर तुम्हें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त है, तुम मेरे ज्येष्ट पुत्र हो, राज्य के उत्तराधिकारी तुम्ही हो। फिर तुम्हें दुख काहे का है ?

दुर्योधन अवरुद्ध कण्ठ से, दीर्घ निश्वास छोडते हुए बोला—"पिता जी! मैं राजा कहलाने योग्य कहाँ रहा ? एक साधारण व्यक्ति की तरह खाता पीता, पहनता ओढता हूं। यह भी पता नहीं कि भविष्य में यह भी मिलेगा, या नहीं ? बेटे की निराशा पूर्ण बातें सुन कर धृतराष्ट्र का हृदय फटा सा जाने लगा, उन्होंने तुरन्त उस से, इस उदासीनता और निराशा का कारण पूछा। दुर्योधन ने अपने मन की गाठ खोलते हुए इन्द्रप्रस्थ की सुषमा, वहां की स्मृद्धि, पाँडवों के यश की वृद्धि और द्रौपदी के उपहास की सारी बातें बता दीं। और अन्त मे बोला—'अब आप ही बताइये मुझे चैन आये तो क्यो कर। मेरे लिए तो दुर्दिन आ रहे हैं, न जाने कब पाण्डव शक्ति शाली होकर राज्य छीन ले। यदि मुझे राजा भी बने रहने दिया, तो भी आज तो द्रौपदी अपमान करती है, कल उसके बच्चे मुझे भी सभाओं मे अपमानित किया करेंगे। सच पूछो तो पिता जी, पाण्डवो की उन्नति क्या हो रही है, मेरे हृदय पर कुल्हाडे चल रहे है।"

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की चिन्ता का कारण पाण्डवो की उन्नति जान कर कहा—"बेटा सन्तोष रक्खो। तुम्हारी आशाए निर्मल हैं। तुम्हे ...."

दुर्योधन ने बात काटते हुए उपदेश देना आरम्भ कर दिया—"पिता जी सन्तोष क्षत्रियोचित धर्म नही है। डरने अथवा दया करने से राजाओं का मान सम्मान जाता रहता है, उनकी प्रतिष्ठा नही रहती। युधिष्ठिर का विशाल व धन धान्य से भरपूर राज्य श्री देखकर मुझे ऐसा लगता है कि मानो सम्पति और राज्य तो कुछ है ही नही। पिता जी मैं तो यह महसूस कर रहा हूं कि पाण्डव

उन्नति की ओर जा रहे हैं और हम पतन की ओर।"

बेटे पर असीम प्यार के कारण उसे व्याकुल देख कर धृतराष्ट्र से न रहा गया, उन्होने बड़े प्रेम से दुर्योधन को समझाना चाहा बोले—बेटा ! तुम्हारी ही भलाई के लिए कहता हूं, पाण्डवो से बैर मत करो युधिष्ठिर किसी प्रकार तुम से बैर नही रखता, वह कभी किसी के प्रति भी शत्रुता नही रखता, वह धर्मराज है अपने ही भाई से भला क्यो बैर रक्खेगा। उसकी शक्ति हमारी ही शक्ति तो है। उसने जो ऐश्वर्य प्राप्त किया है उस पर हमारा भी अधिकार है। जो उसके साथी हैं, वही हमारे भी हैं। उसे जो भी यश प्राप्त हुआ उस से हमारे कुल की भी तो कीर्ति मे वृद्धि हुई। उसका कुल जितना उच्च है, उतना तुम्हारा भी है। वह रण कौशल मे जितना प्रवीण है, उतने ही तुम भी हो। तब फिर अपने ही भाई की उन्नति को देखकर तुम्हारे मन मे द्वेषानल क्यों भड़कता है ? बेटा ! तुम विश्वास रक्खो वह कभी तुम्हारी वृद्धि के प्रति ईर्ष्या नही करेगा। उस से बैर रखना तुम्हे शोभा नही देता।"

धृतराष्ट्र को सीख दुर्योधन को पसन्द न आई, वह झुंझला कर बोला—"पिता जी ! आप वृद्ध हो गए है, पर अभी तक आप को लोगो को समझाना नही आया। आप तो बस युधिष्ठिर की प्रशंसाओं के तूमर बाधते रहते हैं। आप को क्या पता कि पाण्डव शनैः शनैः शक्ति प्राप्त कर के हम से राज्य छीनने का बडा यत्न कर रहे है। आप की सीख पर चला तो मैं कही का नही रहूगा।"

कहते कहते दुर्योधन का गला रुध गया, पिता का हृदय पसीज गया, पर वह थे, नीति शास्त्र के पारगत, बोले—"बेटा मैं तुम्हे दुखी नही देखना चाहता, तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में कितना प्रेम है, यह तुम ने कभी समझने का प्रयत्न ही नही किया। मैं जो कहता हूं तुम्हारे हित के लिए ही कहता हू। पाण्डवो को किसी भी प्रकार आज परास्त करना सम्भव नही है। इस लिए तुम शक्ति सचय करो, इसी मे तुम्हारी भलाई है। शत्रु को कभी प्रेम से और कभी शक्ति से जीता जाता है।"

दुर्योधन पिता को राजनीति का पाठ पढ़ाते हुए बोला—"पिता जी ! आप की दशा उस कलुछी के समान है जिसे पाक में रहकरभी उस के स्वाद का ज्ञान नहीं होता। आप नीति शास्त्र मे पारगत होते भी नीति को नही समझते। पिता जी ! नीति और ससार की रीति—नीति एक दूसरे से भिन्न होती है। सन्तोष और सहन शीलता राजाओ का धर्म नही है। राजा का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, चाहे उसे लोग न्याय कहे, अथवा अन्याय लोगो की चिन्ता नही करनी चाहिए।"

उसी समय शकुनि भी बोल उठा—"राजन् ! दुर्योधन ठीक कहता है, अब की बार इन्द्रप्रस्थ मे द्रौपदी और पाण्डवो ने जितना दुर्योधन का अपमान किया है, उसे देखते हुए आप को कुछ करना ही चाहिए। यदि इस समय आप ने दुर्योधन का साथ न दिया तो आपको अपने बेटे से हाथ धोने पडेंगे।" इसके पश्चात शकुनि ने दुर्योधन के निश्चय को कह सुनाया, इसका मनोवछित प्रभाव पडा, धृतराष्ट्र द्रवित हो गए, उन्हो ने दुर्योधन पर प्रेम दर्शाते हुए पूछा—"यदि तुम अपनी ही इच्छानुसार काम करने के इच्छुक हो, तो बताओ, मैं उसमे क्या सहयोग दे सकता हू। अपने ज्येष्ठ पुत्र के हित के लिए मैं प्रत्येक उचित कार्य करने को तैयार हू।"

तब शकुनि ने सलाह दी—"आप तो केवल युधिष्ठिर को चौसर खेलने के लिए निमन्त्रित कर लीजिए। बस पासो के चक्कर मे युधिष्ठिर को परास्त करके आप के पुत्र की इच्छा पूर्ति कर दी जायेगी। दुर्योधन का दुख दूर करने का इस समय बस एक यही उपाय है, न लडाई झगड़ा, न रक्त पात, हलदी लगे न फटकरी रग चोखा ही चोखा।"

धृतराष्ट्र ने चौसर के खेल मे युधिष्ठिर की सम्पति छीन लेने का पहले तो विरोध किया, पर दुर्योधन और शकुनि दोनों ने पुत्र स्नेह को भडका कर और अनेक बाते इधर उधर से मिलाकर उन्हें नरम कर लिया। जब शकुनि और दुर्योधन ने देखा कि शनैः शनैः धृतराष्ट्र पर इस कुमंत्रणा का प्रभाव पड़ने लगा है तो दुर्योधन अन्त मे बोला—"पिता जी ! उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो भी उपाय हो

सके, किया जाना उचित है । तलवार और बाण ही तो शस्त्र नही है, प्रत्येक वह साधन शस्त्र की गणना में ही आता है, जिस से विरोधी को परास्त किया जा सके । किसी के कुल या जाति से यह नही जाना जाता कि वह शत्रु है अथवा मित्र जो भी हृदय को दुख पहुचाये, और जो भविष्य के लिए सकट खड़ा कर सकता है, वही शत्रु है, फिर चाहे वह सगा भाई ही क्यो न हो । सन्तोष की सीख तो आदमी को पगु बनाने के लिए दी जाया करती है, क्षत्रिय यदि सन्तोष करने लगे तो फिर उनके शस्त्रो को जग खा जाये और वे कभी अपने राज्य व शक्ति का बिस्तार न कर सके । सब से अच्छा क्षत्रिय वह है जो भावी सकट को पहले से ही यह पहचाने और जो भविष्य मे दुखदायी हो सकता है, इस से पहले कि वह उस योग्य हो, पहले ही दबोच कर ठण्डा करदे । मुसीबत को पहले से ताड़ कर उसे रोकना ही बुद्धिमानो का कर्तव्य है । पिता जी ! वृक्ष की जड मे चीटियों का बनाया हुआ बिल जिस प्रकार एक दिन सारे वृक्ष के ही नाश का कारण बन जाता है उसी प्रकार हमारे भाई भी एक दिन हमारे नाश का कारण बनेगे, इस लिए क्षत्रियो के धर्म का पालन का प्रत्येक सम्भव उपाय से उन को शक्ति कम करना हमारा कर्तव्य हैं । फिर हम उन्हे भूखो थोड़े ही मारने वाले है, उन्हे उतनी ही छूट देगे, उतने ही साधन उन्हें प्राप्त होगे, जिससे वे सुख पूर्व जीवन व्यतीत करे पर हमारे नाश का कारण न बने ।"

दुर्योधन की बात समाप्त होते ही शकुनि बोल उठा—"राजन् ! आप बस युधिष्ठिर को खेलने का निमत्रण देदे । राज रीति अनुसार वह अवश्य ही तैयार हो जायेगा, शेप सारी जिम्मेवारी मुझ पर छोड दे ।

दुर्योधन ने फिर कहा—"पिता जी ! बिना किसी प्रकार के जोखिम और युद्ध तथा रक्त पात के शकुनि मामा पाण्डवो की सम्पत्ति जीत कर मुझे देने को तैयार है. आप इस अवसर से लाभ उठाइये । यदि ऐसे सुन्दर अवसर पर भी आप ने कायरता दिखाई तो फिर समझ लीजिए, ऐसा स्वर्ण अवसर फिर नही आने वाला ।

धृतराष्ट्र बोले—" बेटा ! मुझे इस प्रकार पाण्डवों की सम्पत्ति

हीन करना अच्छा नही जंचता ।"

"पिता जी ! आप तो बस उचित तथा अनुचित के चक्कर में ही रहेंगे, और शत्रु अपना काम कर जायेंगे। जब साप निकल जायेगा, तब लकीर पीटने से क्या होगा। आप इस धर्म और राज्य नीति को उठाकर ताक पर रख दीजिए और थोडी देरी के लिए केवल राजा बन कर सोचिए। दुर्योधन बोला।

उसी समय शकुनि ने भी उसका समर्थन कर दिया—महाराज उसमे हिचकिचाने की क्या बात है ? चौसर का खेल कोई हमने तो ईजाद किया नहीं। हमारे पूर्वज भी तो इसे खेलते आये है, और कितनो ने ही इस हथियार से अपनी मनोकामना पूर्ण की है। यह एक ऐसा शस्त्र है, जो बिना रक्त बहाये ही किसी को विजय और किसी को पराजित बना देता है। उस मे अन्याय की तो कोई बात नही।"

धृतराष्ट्र बोले "अच्छा तो मैं विदुर से और सलाह कर लूं। वह बडा बुद्धिमान है, उस की सलाह बडी नपी तुली रहती है।"

दुर्योधन सुन कर बोला—"पिता जी ! मुझे तो कभी कभी लज्जा आने लगती है कि मैं उस बाप का बेटा हू, जिसे अपनी बुद्धि पर तनिक सा भी विश्वास नही है। विदुर चाचा तो मुझ से जलते है, वे पाण्डवो से ही स्नेह रखते है, वे भला आप को ऐसी कोई सलाह क्यो देंगे जिस मे मेरा लाभ और पाण्डवो की हानि हो। वे तो आप को उपदेश देंगे और अपने उपदेशो से आप को शांत कर देंगे।"

शकुनि ने भी कहा—"राजन् ! आप राज्य के स्वामी है, आप को किसी की सलाह के मोहताज नही रहना चाहिए। यह दुनिया वडी चालवाज है। लोग अपने अपने स्वार्थों की रक्षा और अपने चहेतो के भले के लिए ही कोई सलाह दिया करते हैं। क्या आपको अपने बेटे से अधिक विदुर जी पर विश्वास है।"

तात्पर्य यह है कि दुर्योधन और शकुनि ने धृतराष्ट्र को अपनी बात मनवा ही दी धृतराष्ट्र ने वायदा कर लिया कि युधिष्ठिर को

खेलने का बुलावा वे भेज देंगे। दुर्योधन और शकुनि बहुत प्रसन्न हुए। दोनो ने मिल कर इन्द्रप्रस्थ मे देखे भवन जैसा ही एक सभा मण्डप तैयार कराया और फिर बुलावा भेजने को कह दिया।

एक दिन धृतराष्ट्र ने विदुर जी को बुला कर चुपके से इस सम्बन्ध मे उन से भी राय ली। विदुर जी ने इस बात का विरोध किया। पर धृतराष्ट्र ने अन्त में यह कह कर बात समाप्त कर दी कि—"जो हो मुझे भी ऐसा लगता है कि प्रारब्ध हमें नचा रही है। नाश होना है, तो होगा ही। उस से हम कैसे बच सकते है। अब तो मैंने निर्णय कर ही लिया, इस लिए तुम जाकर युधिष्ठिर को सभामण्डप देखने और खेलने का निमन्त्रण दे आओ।"

"मुझे ऐसा लगता है कि हमारे कुल का नाश होना अब आरम्भ होने वाला है। आपकी आज्ञा मानकर मैं चला भी जाऊ तो मेरी आत्मा मुझे बारम्बार धिक्कारती। शास्त्रो मे जो सात दुर्व्यसन गिनाए गए हैं, जुआ उन मे से प्रथम है। आप स्वयं उसे खिलाये वह बडे दुख की बात है।" विदुर जी ने कहा।

धृतराष्ट्र ने कहा-"विदुर जी! तुम्हारी बात युक्ति संगत होते हुए भी आज मैं उसे अस्वीकार करने पर विवश हूं। क्योंकि मैं दुर्योधन मे वायदा कर चुका हू। यदि तुम्हारी आत्मा इन्द्रप्रस्थ जाने को स्वीकार नही करती, तो तुम्हारा जाना उचित नही है। मैं किसी दूसरे को भेज दूंगा।"

विदुर जी धृतराष्ट्र के इस निश्चय को सुन कर क्षुब्ध होकर वहाँ से चले गए। अन्त मे जयद्रथ को भेजना तय पाया। जयद्रथ के प्रस्थान करने से पूर्व दुर्योधन और शकुनि ने उसे बहुत कुछ समझाया पढाया।

* छटा परिच्छेद *
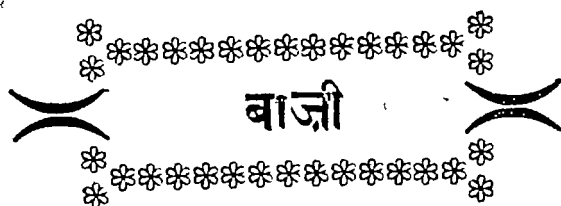
हस्तिनापुर में सभा मण्डप (भवन) तैयार हो जाने पर ाकुनि और दुर्योधन का सिखाया—पढाया जयद्रथ इन्द्रप्रस्थ पहुचा। प्रचानक जयद्रथ के इन्द्रप्रस्थ पहुच जाने पर युधिष्ठिर ने उस का ंडा आदर सत्कार कर के पूछा - कहिए, हस्तिनापुर मे तो सब सकुशल हैं ?"

जयद्रथ बोला—"सभी सकुशल एव प्रसन्न हैं। आप को हस्तिनापुर ले चलने के लिए आया हू।"

युधिष्ठिर ने गद गद हो कर कहा—"अहो भाग्य! मुझे चाचा जी ने याद किया। क्या कोई उत्सव हो रहा है ?"

"धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर मे एक सुन्दर सभामण्डप बनवाया है, वास्तव में आज पृथ्वी पर उस के समान सुन्दर एव मनोहर अन्य कोई भवन नही होगा। लाखों रुपये व्यय कर के बनवाया हुआ यह भवन सभी को पसन्द आया है, पसन्द ही नही, देखने वाले उस की मुक्त कण्ठ से प्रशसा कर रहे हैं। दुर्योधन की इच्छा थी कि आपको भी वह भवन दिखाया जाय। अत धृतराष्ट्र ने आप को अपने परिवार सहित हस्तिनापुर चलने का निमंत्रण देने के लिए भेजा है।" जयद्रथ ने कहा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के निमत्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया। अपने अन्य भ्राताओ को बुलाकर उन्हो ने धृतराष्ट्र का निमत्रण और अपना चलने का निर्णय सुना दिया। सभी भ्राता

धृतराष्ट्र के दर्शन करने के इच्छुक थे, वो सोचते थे हस्तिनापुर जा कर उन्हे विदुर चाचा और भीष्म पिता मह से भी भेंट करने का अवसर प्राप्त होगा और प्रेम भाव से दुर्योधनके मन मे धधक रही ईर्ष्या दावानल को शान्त करने का प्रयत्न भी कर सकेंगे, अतएव सभी चलने को तैयार हो गए।

पाण्डव परिवार सहित हस्तिनापुर की ओर चल पडे। वे बडे प्रसन्न थे, और हस्तिना पुर के नर नारियो, परिवार के प्रतिष्ठित वृद्ध जनों से भेंट करने की आशा से आनन्दित हो रहे थे, हस्तिना पुर पहुचने पर दुर्योधन शकुनि आदि ने उनका बहुत आदर सत्कार किया। एक सुन्दर भवन मे उन्हे ठहरा दिया गया दूसरे दिन स्नान आदि करके सभा ने मण्डप देखा वे बडे प्रसन्न हुए और मुक्त कन्ठ से उसकी प्रशसा की। भवन का कोना कोना उन्हें दिखाया गया, जव मुख्य स्थान पर वे पहुचे तो शकुनि ने कहा- "युधिष्ठर! खेल के लिए चौपड बिछा हुआ है, चलिए दो हा लें।"

"राजन्! यह खेल ठीक नही है। इस मे कोई साहस क ता वात होती नही, व्यर्थ ही समय जाता है और नये उत्पात ख हो जाते हैं। धर्म ग्रथो और सर्वज्ञ मुनियो का उपदेश है कि पा का खेल खलना धोखा देने के समान है, यह मनुष्य के नाश क कारण वनता है। क्षत्रियो के लिए तो रण का क्षेत्र जीत औ हार के लिए होता है। पांसा फेंक कर भाग्यो का निर्णय करन अच्छी वात नही है।" —युधिष्ठिर ने शिष्टता पूर्ण उत्तर दिया।

यद्यपि यह सव बातें युधिष्ठर ने सहज भाव से कही थी प उन के मन में जरा सा खेल लेने की भी इच्छा हो रही थी। शौकीन जो ठहरे। हा, उन्हे यह भी मान था कि यह खेल बुरा है, इस लिए इन्कार भी कर रहे थे।

शकुनि ने तुरन्त कहा—"महाराज! आप जैसा खिलाडी भी ऐसी वातें करे तो आश्चर्य की वात है। इस में तो कोई धोखे की वात ही नही है। शास्त्र पढे हुए पडित भी आपस में शास्त्रार्थ किया करते हैं, जो अधिक विद्वान को परास्त कर देता है। युद्ध

मे भी शस्त्रो विद्या का पारगत नौसिखिये को परास्त कर देता है। यही बात इस खेल मे भी है। मजा हुआ खिलाड़ी कच्चे खिलाडी को हरा देता है। यह भी कोई धोखे की बात हुई?—आप को कदाचित हारने का भय है, इस लिए आप धर्म की आड़ ले रहे हैं।"

युधिष्ठिर को अन्तिम बात चुभ गई, उत्तेजित होकर बोले—"राजन्! ऐसी बात नही है, आप आग्रह करते हैं तो मैं खेलने को तैयार हू, मैं राजवशो की रीति के अनुसार खेलने को सदा तत्पर हू, पर मैं समझता उसे बुरा ही हू।"

युधिष्ठर ने दुर्योधन के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कहा—"भाई के प्रेम पूर्ण निमत्रण को भला मैं कब अस्वीकार कर सकता हू। पर मेरे साथ खेलेगा कौन?"

"मेरी ओर से मामा शकुनि आप के साथ खेलेंगे, पर दाव पर लगाने के लिए रत्नादि जो धन चाहिए वह मैं दूगा—दुर्योधन बोला।

युधिष्ठिर ने सोचा था कि यदि दुर्योधन खेलेगा तो उसे वे आसानी से ही हरा देगे, पर जब शकुनि के साथ खेलने की बात आ गई तो वे हिचकिचाने लगे, क्योकि शकुनि पुराना मजा हुआ खिलाडी है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे। बोले—"मेरी राय है कि किसी को दूसरे के स्थान पर न खेलना चाहिए। वह खेल के साधारण नियमो के विरुद्ध है।"

"अच्छा तो न खेलने का अब दूसरा बहाना बना लिया—"शकुनि ने हसते हुए कहा।

युधिष्ठिर भला यह कब सहन कर सकते थे, कि कोई उन्हे बहाने बाज कहे, इस लिए उत्तेजित होकर बोले—"कोई बात नहीं मैं खेलूगा।"

उसी समय भीम बोल पडा—"भ्राता जी! आप धर्मराज होकर क्या करने जा रहे हैं। अब आप राजकुमार नही महाराजा विराज हैं। जुआ खेलना धर्म के प्रतिकूल है। इस दुर्व्यसन ने

कितने ही परिवारो' का नाश कर डाला कितनो' को राजा से रंक बना दिया। यह खेल नही झूठ, फरेब और कपट का दूसरा नाम जुआ है। आप तो धर्म नीति और राजनीति मे पारगत है, फिर भी जुआ खेल रहे है, यह बात साफ बता रही है कि आप अपने को स्वय ही घोर सकटो मे फंसा रहे है।"

दुर्योधन ठहाका मार कर हसा और अन्त में बोला—"यह भी खूब रही। सभी धर्म और नीति सिखाने वाले हो गए। भाई भाई मे क्रीडाएं भी होती हैं, और मनोरजन भी। इस का मतलब क्या यह है कि महाराजाधिराज हैं तो भाईयो के साथ खेलने पर भी प्रतिबन्ध लग गया ?"

युधिष्टिर ने भीम को शात करके कहा—"भैया भीम ! राज वश की रीति के अनुसार मै खेलने से इन्कार नही कर सकता। फिर यह जुआ, जुए की भाति नही, भाईयो का मनबहलाव होते हैं।"

इतने मे विदुर जी भी आगए, पांचो भाईयो ने चरण छू कर प्रणाम किया, चौसर खेलने की तैयारी देख कर विदुर जी ने संकेत से युधिष्टिर को रोकते हुए कहा—"बेटा युधिष्टिर तुम तो धर्म ग्रथों के विद्वान हो, तुम ने शास्त्रों मे बताए गए त्याज्य दुर्व्यसनों को भी पढा है। तुम भी नल के इतिहास की पुनरावृति करना चाहते हो, तो खेलो और जी भर कर खेलो। क्योकि वश की उन्नति के दिन तो हवा हुए, पाण्डु ने राज का विकास किया, तो तुम उसका मालियामेट कर डालो। कोई बात नही है, दुर्व्यसन तुम नही अपनाओगे तो नष्ट हुए दरिद्र लोग अपनायेगे क्या ?"

ताने भरी बात सुनकर युधिष्ठिर झिझकने लगे, तभी शकुनि ने कहा—"आप भी कैसी बाते कर रहे हैं, कितने दिनों में तो युधिष्ठिर हस्तिनापुर आये हैं, इस शुभ अवसर पर मन बह-लाव हो जाय तो क्या डर है ?"

इसी प्रकार की बातो से युधिष्ठिर को शकुनि और दुर्योधन ने खेलने पर तैयार कर लिया, युधिष्ठिर की आत्मा तो

कहती थी कि यह बुरा हो रहा है; पर दिल कहता था कुछ बाज़ी खेलने मे क्या बुराई है। धन तो हाथ का मैल है, कुछ हार भी गया तो कौन सी बात है।—आखिर हृदय की बात चल गई।

× × × × × × ×

और खेल आरम्भ हुआ, सारा मण्डप दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था. द्रोण, भीष्म, तथा, विदुर और धृतराष्ट्र जैसे वयो वृद्ध भी विराजमान थे। विदुर जी के मुख पर खेद और क्षोभ के भाव झलक रहे थे, भीष्म ने खेल आरम्भ होने से पूर्व कहा—"युधिष्ठिर को चौसर पर देख कर ही मुझे बहुत दुख हो रहा है। न जाने क्यो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज कुछ अनर्थ होने वाला है।' उसी समय विदुर जी बोले—"और मुझे तो ऐसा लगता है कि यह बाजी इस वश के पतन का श्री गणेश कर रही है। युधिष्ठिर स्वय अपने धर्म पथ को भूल कर एक दुर्व्यसन मे अपने आप को झोक रहा है, मानो भाग्य ही उस से और हम से रूठ रहे है।"

द्रोणाचार्य ने कहा—"युधिष्ठिर! न जाने क्यो आज मेरा मन रो रहा है।"

उस समय दुर्योधन उनकी ओर आग्नेय नेत्रों से देख रहा था, क्रुद्ध होकर बोला—"तो क्या आप लोग यह नही चाहते कि हम दो भाई एक स्थान पर बैठ कर मनोरजन के लिए कुछ खेल भी ले?"

धृतराष्ट्र ने बेटे को ढाढस बधाने और पीठ थपथपाते हुए कहा—"नही, नही मनोरजन करने या मन बहलाव से तुम्हे कौन रोकता है? बस किसी प्रकार का झगडा फिसाद नही होना चाहिए।"

शकुनि मामा खेल मे हो और कोई अनहोनी घटना न घटे यह कैसे हो सकता है?" असन्तुष्ट भीम ने कहा।

"कहिए युधिष्ठिर महाराज! क्या इरादा है, मैदान मे

डटना है या भाग जाना है।" शकुनि ने युधिष्ठिर को उत्तेजित होकर कहा ।

"पाण्डवों ने कभी भाग जाना नही सीखा। पासा फेको।" युधिष्ठिर ने उत्तेजित होकर कहा ।

किन्तु उन्हे यह पता नही था कि यह चौसर का खेल उन से सारी सम्पति छीनने के लिए रचा गया है। और जो पासे फेके जा रहे है, वे विशेषतया युधिष्ठिर को ही बरबाद करने की इच्छा से बनवाये गए हैं । उन्हे मुख्यता इसी खेल के लिए बनवाया गया था, जिन को फेकने का तरीका और जिन से हर वार जीतने का उपाय केवल शकुनि को ही ज्ञात था। उन पाँसों से शकुनि जब चाहे जीत, जब चाहे हार सकता था, एक प्रकार से उन की कला शकुनि के हाथ मे थी। इस लिए खेल मे जीतने का श्रेय चाहे किसी को मिले, पर वास्तव मे श्रेय था उस को, जिसने यह अदभुत पाँसे बनाये थे ।

यह वात साफ होने पर भी कि यह खेल झगड़े की जड सावित होगा, कुल वृद्ध उसे रोक नही पा रहे थे। उन के चेहरो पर उदासी छाई हुई थी। कौरव राजकुमार वडे चाव से देख रहे थे।

ज्यों ही पासों को हाथ लगाया गया, विदूर जी ने कहा—"यंत्र का रहस्य उसका स्वामी ही जानता है, युधिष्ठर, खेलने से पहले अपने अपने को तोल लो ।"

परन्तु खेल आरम्भ हो गया। पहले रत्नो की वाज़ी लगी, फिर सोने चादी के खजानो की, उसके वाद रथों व घोडो की, तीनो दाव युधिष्ठिर हार गए। तव चतुर शकुनि ने एक वार युधिष्ठिर को जिताना चाहा ताकि युधिष्ठिर दत्तचित्त हो कर खेल में लगे रहे, खेल वन्द न करदे। समस्त आभूषण दाव पर लगाए गए, इस वार युधिष्ठिर जीत गए। फिर क्या था युधिष्ठिर का हौसला वढ गया, वह जोश से खेलने लगे ।

उसी दम भीष्म जी वोले—

जीते तो चस्का पडे, हारे लेत उधार ।
ना मुराद इस खेल की, जीत भली न हार

फिर पासे फेके गए, युधिष्ठिर ने जीते हुए धन और दासियो को दाव पर लगा दिया। उसे वे हार गए। फिर तो अपनी सारी सेना की बाज़ी लगादी और हार गए। एक बार सब हाथी लगा दिए, उन्हे भी हार गए। शकुनि का पासा मानो उस के इशारो पर चलता था।

खेल चलता रहा। युधिष्ठिर बारी बारी से अपनी गाये भेड–बकरियाँ, दास दासिया, रथ, घोडे, हाथी, सेना और यहा तक कि देश की प्रजा को भी हार बैठे। परन्तु उनका चस्का न छूटा, तब भीम ने हस्तक्षेप करते हुए कहा—"भ्राता जी! अब बहुत हो चुका। शास्त्रो मे जो कहा है, उस का परिणाम मिल गया। अब आप इस नाश कर्ता खेल को बन्द कीजिए। क्यो दुनिया भर के सामने लज्जित होते हैं? क्यो अपने माथे पर कलक लगाते हैं।

उस समय शकुनि बोला—"भीम तुम चुप रहो। जब इधर से कोई नही बोल रहा, तो तुम क्यो हस्तक्षेप करते हो। जो हार गए, क्या पता दूसरे दाव पर उसे युधिष्ठिर जीत ले? क्या हार कर वापिस जाना चाहते हो?"

युधिष्ठिर के मन मे जो आशा करवटे वदल रही थी, और सहारा मिला, वे भीम को शात करते हुए बोले—'भीम तुम चुप रहो। इस बार न सही, तो अबकी वार तो मुझे और भी भाग्य आज़मा लेने दो।"

भाइयो के शरीर पर जो आभूषण थे, वह भी उन्होने दाव पर लगा दिये, और हार गए।

और कुछ शेष है?" शकुनि ने पूछा।

युधिष्ठिर यू हार मानने वाले न थे, भला वह कैसे सहन कर लेते कि वे जुए मे चारो खाने चित हो गए, बोले—'यह

सावले रग का सुन्दर युवक, मेरा भाई नकुल खड़ा है, वह भी मेरा धन है, इसकी बाज़ी लगाता हूं चलो।"

"अच्छा तो यह बात है, तो यह लीजिए, आपका प्यारा भाई अब हमारा हो गया" उत्साह से कहते कहते पासा फेंका और बाज़ी मार ली।

विदुर जी चिल्ला उठे—धिक्कार है, धिक्कार है, यह मन बहलाव हो रहा है या अत्याचार। तुम लोगों की धूर्तता की भी कोई सीमा है। धन दौलत, दास, दासी, हाथी घोडे और प्रजा को हार गए, अब भाइयों की भी बाज़ी लगाने लगे? तुम लोगों को लज्जा आनी चाहिए। यह खेल नहीं, निर्लज्जता और अन्याय का स्वाग हो रहा है। सुनते हो धृतराष्ट्र! तुम्हारे चहेते मनुष्यो को बाज़ी पर लगा रहे है। तुम्हारे शकुनि और दुर्योधन कौरव वंश के मुख पर कालिख पोत रहे है। इन्द्रप्रस्थ का राज्य छीन लिया अब पाण्डवो को धातु की भांति प्रयोग कर रहे हैं। धृतराष्ट्र कुल की नाक बचानी है तो उठो इन पासों को भाड़ मे फेंक दो और शकुनि को निकाल बाहर करो।"

दुर्योधन जीत की खुशी मे उछल रहा था, उसे जीतने का इतना नशा था कि वह विदुर जी को ललकारने लगा—आप क्यो शोर कर रहे है? जब खेलने वाला मनुष्यो को दांव पर लगा रहा है, तो हम क्या कर सकते हैं?" शकुनि ने उसी समय कहा—"युधिष्ठिर को अपने भाग्य पर विश्वास है, वे यूही नहीं खेल रहे, एक ही दांव पर वह सब कुछ वापिस ले सकते हैं?"

"भाई धृतराष्ट्र! देख नही सकते, तो सुन तो सकते हैं, बेटा शिष्टाचार को भी भूल गया, उसने लोक लज्जा को भी ताक पर रख दिया, और उधर तुम्हारे भतीजे सब खो रहे है। अब भी कुछ करो।" वदुर जी ने व्याकुल हो कर कहा।

धृतराष्ट्र बोले—"मैं तो वृद्ध हो चुका, अब मेरी कौन सुनता है?"

भीष्म पितामह इस दशा को देख कर क्षुब्ध हो गए थे, कहने लगे—"आज क्या होने वाला है? कुछ पता नही। मुझे तो ऐसा लगता है कि शकुनि के हाथ मे पासा नही, बल्कि नगी तलवार है, और उससे वह निर्भय व स्वच्छन्द हो कर कुल मर्यादा, धर्म, नीति और वश की प्रतिष्ठा का वध कर रहा है।"

धृतराष्ट्र को भी विवश हो कर कहना पड़ा—"दुर्योधन! बस बस बहुत हो चुका। मैं सुन रहा हू कि प्रत्येक व्यक्ति तुझे धिक्कार रहा है। अब यह महानाशक खेल बन्द कर दे।"

"पिता जी! आप शांत बैठे रहिए, युधिष्ठिर को आज जी भर कर खेल लेने दीजिए।" —दुर्योधन बोला। "कहिए, अब क्या लगाते हैं, खेलते है या भाग्य को रोते हैं? शकुनि ने युधिष्ठिर को ताना देते हुए कहा।

युधिष्ठिर बोले—"क्यों गर्व करते हो, अब की बार न सही, इस बार तकदीर का पाँसा पलटेगा। यह जो मेरा भाई सहदेव है जो सारी विद्याओ मे निपुण है, विख्यात पण्डित की बाज़ी लगाना उचित तो नही, फिर भी लगाता हू। चलो देखा जायेगा।"

शकुनि ने पासे को हाथ मे लिया और उत्साह से कहा—

निश्चित हो कर खेलिये भाग्य हो जब कि साथ।
पाँसा शकुनि हाथ है, तो जीत भी अपने हाथ॥

यह चला और वह जीता— कहते हुए पासा फेंक दिया और पासा गिरते ही प्रफुल्लित हो कर उछल पडा। बोला—"देखिये बाज़ी तो स्पष्टतया हमारी है, कहिए अब किस की बारी है।"

युधिष्ठिर चिन्ता मग्न हो गए, तब शकुनि ने इस आशंका से कि कही युधिष्ठिर खेल न बन्द करदे, कहा "कदाचित भीम और अर्जुन आप की दृष्टि में, नकुल और सहदेव से अधिक मूल्यवान है? हा, हो भी क्यों न वे माद्री के बेटे थोड़े ही हैं। सो उन्हे तो आप बाज़ी पर लगाने से रहे।"

युधिष्टिर बोले—"शकुनि, कदाचित आप हम भाईयो में फूट डालने का असफल प्रयत्न कर रहे है। अधर्म तो मानो तुम्हारी रग रग मे कूट-कूट कर भरा है। तुम क्या जानो कि हम पांच भाईयो के सम्बन्ध कैसे है?"—युद्ध के प्रवाह में पार लगाने वाली नाव के समान, महान तेजस्वी, पराक्रम में अद्वितीय, विजय श्री का प्रिय, सर्वगुण सम्पन्न, भ्राता अर्जुन को अब की वार मैं बाजी पर लगाता हूं।"

शकुनि ने निर्लज्जता से कहा—वाह युधिष्ठिर महाराज वाह! बाजी लगाने वाला हो तो ऐसा हो पर—

भाग्य वान की जीत है, भाग्य हीन की हार।
होनी होत टले नही, यह कर्मो की मार॥

पासे फेंक कर बोला—"लीजिए महाराज अर्जुन भी आप के हाथ से हार गया, अब क्या भीम को बाजी पर लगाईयेगा?"

कोई दैविक शक्ति मानो युधिष्ठिर को पतन की ओर खींचे ले जा रही थी, वे स्वय अपने को इस विनाशक खेल से रोकने का प्रयत्न करते, पर अपने पर काबू करने मे असफल हो जाते, अपने कर्मो के फल से बधे हुए युधिष्ठिर ने कहा—हा युद्ध मे जो हमारा अगुआ हैं, असुरो को भयभीत करने वाला वज्र-धारी, इन्द्र सदृश तेजवान, महाबली, अद्वितीय साहसी, और पाण्डव कुल गौरव, अपने भाई भीम को दावपर लगाता हू।" युधिष्ठिर की बात समाप्त होते होते शकुनि ने पासा फेंक दिया और युधिष्ठिर भीम को भी हार गए।

शकुनि बोला—'तो आप ही रह गए, कहिए क्या विचार है?"

युधिष्ठिर ने कहा—"हा! इस वार मैं स्वय अपने आप को दाव पर लगाता हूं। जो हो, पांसा फेंको।"

"लो, यह जीता" कहते हुए शकुनि ने पांसा फेंका और बाजी भी ले गया।

दुर्योधन प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा, वह खडा हुआ और

एक एक करके सब पाण्डवो को पुकारा, घोषणा की कि अब वे उस के दास हो चुके है। शकुनि की दाद देने वालों के हर्ष नाद और पाण्डवो की इस दुर्दशा पर तरस खाने वालो के हाहाकार से सारा सभा-मण्डप गूज उठा।

इधर सभा मे खलबली मच रही थी, उधर शकुनि युधिष्ठिर से बोला "अब बताइये, क्या लगाते है।"

"अब मेरे पास धरा ही क्या है लगाने को, सब कुछ तो हार चुका।"—युधिष्ठिर ने निराशा व उदासीनता - भावो से दुखित हो कर कहा।

"नही, आपके पास एक और चीज शेष है, जिसके चरण घर मे आते ही आपको सुख सम्पदा और यश प्राप्त हुआ।"—शकुनि ने द्रौपदी की ओर सकेत करते हुए कहा "मैं तुम्हारी बात समझा नही, ऐसी भला कौन सी वस्तु है"

"वही साक्षात लक्ष्मी द्रौपदी, क्या पता उसी के भाग्य से आपको विजय प्राप्त हो जाये।" शकुनि ने युधिष्ठिर को फासने के लिए कहा।

—और जुए के नशे मे चूर युधिष्ठिर, 'जब तक स्वास, तब तक आश" की लोकोक्ति के अनुसार कह बैठे—'तो चलो, मैं उस रूपसि, लक्ष्मी, द्रौपदी की भी बाजी लगाई—'यह मुंह से निकल तो गया, पर फिर वे स्वय ही विकल हो गए, उसके परिणाम को सोच कर वे कांप उठे।

युधिष्ठिर की बात पर सारी सभा मे हा हा कार मच गया, वृद्धजनो की ओर से "धिक्कार धिक्कार" की आवाज आई। विदुर जी बोल उठे—"जुए के नशे मे अन्धो? क्या सती द्रौपदी की लाज का भी जुआ खेल रहे हो। तुम मनुष्य हो या पशु। देखो इस पाप से कही आकाश न टूट पडे।"

कुछ लोग बोले—"छि छि कैसा घोर पाप है?" कुछ लोगो के नेत्रो मे अश्रुधार बह निकली, भीष्म और द्रोणाचार्य व्याकु

हो उठे, कितने ही लोग पसीने मे नहा गए।

परन्तु दुर्योधन और उसके भाई मारे खुशी के नाचने लगे। पर युयुत्सु नाम का धृतराष्ट्र का एक बेटा शोक सन्तप्त हो उठा, उसके मुख से निकल ही तो गया- "जब यह घोर पाप होने लगा, तो कुरु वश के नाश के दिन ही आ गए समझो।"- और मारे लज्जा के उसने अपना सिर झुका लिया।

शकुनि हर्षचित्त हो कर बोला—

अन्तिम बाजी है यही, यह भी मेरे हाथ।
बनी द्रौपदी भी गुलाम, अपने पति के साथ॥

और उसने पांसा फेक दिया।

आनन्दित हो कर उसने शोर मचाया—"यह लो, यह बाजी भी मेरी ही हो गई।"

दुर्योधन को तो जैसे मन इच्छित फल मिल गया, वह विजय से मदान्ध हो कर विदुर जी को आदेश देता हुआ बोला—" आप अभी रनवास मे जाये और उसे तत्काल यहां ले आये, आज से वह हमारी दासी है, उसे हमारे महल मे झाड़ू देने का काम करना होगा आज मैं उस चुडैल से अपने अपमान का अच्छी तरह बदला लूगा।"

विदुर जी को दुर्योधन की बात से बडा क्रोध आया, वे बोले "मूर्ख, क्यो मदान्ध हो कर अपनी मृत्यु और कुल के नाश को निमन्त्रण कर रहा है। पाप की ऐसी पट्टी तेरी आंखो और बुद्धि पर बन्ध गई है कि मानवीय व्यवहार को भी भूल गया। सती द्रौपदी के लिए तेरे मुख से ऐसे शब्द निकलने लगे कि कोई गवार व्यक्ति भी अपने भाई की स्त्री के लिए नही कह सकता। अपने बिछाये हुए जाल में युधिष्ठिर को फांस कर क्या अब तू इतना पाप भी करने पर उतारु हो गया है कि एक सती की आबरू पर भी हाथ उठाने को तैयार है। कुरू वश के मस्तक पर कलंक लगाने से पहले, यह तो सोचा होता, कि जिन्हों ने अपनी बल, बुद्धि से इतने बड़े पृथ्वी खण्ड पर राज्य किया है, वह इस लिए नही कि किसी एक

की दुष्टता से उन के इतिहास पर ही कालिख पुत जाये। अपने इस वूढे अन्धे बाप की प्रतिष्ठता का तो ध्यान रक्खा होता।"

दुर्योधन को फटकारने के पश्चात विदुर जी सभा सदों को सम्बोधित करते हुए बोले-"अपने को हार चुकने के पश्चात युधिष्ठिर को कोई अधिकार नही कि द्रौपदी को वाजी पर लगाए, साथ ही सती द्रौपदी कोई किसी की सम्पत्ति नही है, वह जीवन सगिनी है, तो इसका यह अर्थ नहीं हो जाता कि उसे पशुओ की भाँति किसी को सौंप दिया जाय। पाचाल राज्य की राजकुमारी को जुए मे घसीटने का पाप करने का अधिकार किसी को नही है, उस का अपना स्वत. का अस्तित्व है। अतएव द्रौपदी को अपमानित करना एक घोर अन्याय है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि कौरवों का अन्त समीप आ गया है। इस लिए अपने ही हित की वाते उन्हे कडवी लगने लगी हें, और अपते ही हाथो अपने लिए गड्ढा खोद रहे हैं। आप लोग ऐसे अत्याचार को रोकने का प्रयत्न कीजिए, आखिर आप भी तो इन्सान है, क्या हमारे बहू बेटियां नही हैं? क्या हम सभी पगु वने हुए इस जघन्य, व पाशविक अत्याचार को देखते रहेगे। यह खेल नही कपट जाल है।"

उपस्थित लोगों में से कितने ही चिल्ला उठे—"विदुर जी ठीक कहते हैं, द्रौपदी को बाजी पर नही लगाया जा सकता वह नही हारी गई। यह युधिष्ठिर की अनाधिकार चेष्टा थी"

विदुर जी की बातो और लोगों के शोर को सुन कर दुर्योधन बौखला उठा, उसने अपने सारथी, प्रातिकामी को वुला कर कहा—

"विदुर, तो हम से ही जलते है और पाण्डवो से डरते हैं, तुम्हे तो कोई डर नही? अभी रनवास मे जाओ, और उससे कहो कि अब वह हमारी दासी है, तत्काल यहा आये। तुम उसे साथ ले कर यहाँ शीघ्र आओ।"

इस समय चारो ओर से आवाज़े आई—"यह अन्याय है अत्याचार है। नारी का अपमान घोर पाप है, छि. छि. यही है राजाओ का न्याय?"

कोई व्यक्ति जोर से बोला— "अन्धे धृतराष्ट्र की क्या बुद्धि भी मारी गई है, जो यह अन्याय करा रहे है। यह तो दरिद्र जुआरियो में भी नही होता।"

विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा—"सुन रहे हो ? लोग क्या कह रहे हैं ? तुम्हारा बेटा तुम्हारा नाम उछाल रहा है"

भीष्म पितामह ठण्डी स्वांस लेते हुए बोले—"इस घोर पाप को देखने से पहले ही मैं मर जाता तो अच्छा था।"

दुर्योधन इन आवाज़ों से व्याकुल हो कर चीख उठा— "बन्द करो यह बाते, जो होता है उसे देखते रहो।"

* सप्तम परिच्छेद *

दुर्योधन की आज्ञा पा कर प्रातिकामी रनवास मे गया और द्रौपदी को प्रणाम करके बोला— "रानी जी ! आप को महाराज दुर्योधन ने इसी समय सभा मण्डप में बुलाया है।"

उस समय प्रातिकामी के मुख पर खेद के भाव छाये हुए थे, उसकी बात सुन कर शोक विह्वल चेहरा देख कर द्रौपदी ने आश्चर्य चकित हो पूछा— 'क्या कह रहे हो तुम ?— क्या मुझे सभा मण्डप मे बुलाया है ? और वह भी दुर्योधन ने ?"

गरदन झुकाए हुए प्रातिकामी बोला—जी हा, जी हाँ, महाराज युधिष्ठिर जुए मे आप को हार चुके है। अब आप दुर्योधन की दासी हो गई हैं, आप को महल मे झाड़ू देने का काम करना होगा। इसी आज्ञा को सुनाने के लिए आप को सभा मे बुलाया गया हैं।"

प्रातिकामी की बात सुनते ही द्रौपदी भौंचक्की सी रह गई, जैसे उन के कानो मे किसी ने शूल ठोक दिए हो। उस के हृदय पर वज्राघात हुआ, कुछ देर तक वह मूर्तिवत खडी रह गई। जो पाचाल देश की राजकुमारी, ऐश्वर्य और वैभव मे जीवन व्यतीत करने वाली पुष्पों से भी अधिक नाजुक, प्रेम और वात्सल्य के सरोवर में पनपी कमलिनि दास दासियो से सेवित रानी द्रौपदी को अनायास ही ऐसी बात सुनने को मिली कि जिसकी स्वप्न मे भी कल्पना न की

जा सकती थी, अत उसे मूर्छा आने लगी, पर अपने को सम्भाल कर उसने कहा— "प्रातिकामी ! मैं यह क्या सुन रही हूं। तुम गलत कह रहे हो, या मेरे कान गलत सुन रहे हैं।

क्या रवि भूमि की धूलि से उग सकता है ? ...... बाजी पर लगाने के लिए क्या महाराज युधिष्ठिर के पास और कोई चीज नही थी ?"

प्रातिकामी ने बडी नम्रता से समझाते हुए कहा— ',हा महारानी जी, महाराजाधिराज युधिष्ठिर के पास और कोई चीज नहीं रह गई थी ?"

"यह कैसे हुआ ?" द्रौपदी के नेत्रो मे असीम आश्चर्य ठाठें मार रहा था।

तब सारथी प्रातिकामी ने जुए के खेल का आरम्भ से ले कर अन्त तक का सारा वृतान्त कह सुनाया। सारी बाते सुन कर द्रौपदी अचेत सी रह गई। उसका कलेजा फटा सा जा रहा था, उसे सारी पृथ्वी घूमती सी, सारी वस्तुए चक्कर लगाती सी प्रतीत हुई। पर क्षत्रिय–नारी थी, अत उस ने अपने को शीघ्र ही सम्भाल लिया। क्रोध के मारे उसके नेत्र अगारो की भाति लाल हो गए उसने प्रातिकामी से कहा—"रथवान जा कर उन हारने वाले जुए के खिलाडी और धर्म विरुद्ध कार्य करने मे लज्जा न अनुभव करने वाले से पूछ कि पहले वे अपने को हारे थे या मुझे ? भरी सभा मे उन से यह प्रश्न पूछना और जो उत्तर वह दे उसे मुझ से आ कर बताना, उस के बाद मैं जाऊगी ।"

प्रातिकामी गया और भरी सभा मे युधिष्ठिर से प्रश्न किया। सुनते ही धर्मराज युधिष्ठिर अवाक रह गए। वे उस प्रश्न की गहराई को समझते थे। वे अपने को मन ही मन धिक्कारने के अतिरिक्त कुछ न कर सके, उन से कोई उत्तर देते न बना।

इस पर दुर्योधन बोला—"वह चुडैल वहीं बैठे बैठे प्रश्न कर रही है, अपनी वर्तमान दशा को भी उसने नही समझा, प्रातिकामी

उससे जाकर कहो, कि तुम स्वय चल कर जो चाहे पूछ लो। कोई उसके बाप का नौकर नही है जो उसके आदेश मान कर किसी से प्रश्न पूछता फिरे— जाओ, उसे अभी यहा ले आओ"

प्रातिकामी तुरन्त रनवास की ओर चला गया, पर उसी समय विदुर जी बोले– "दुर्योधन ! इतनी नीचता पर न उतर कि लोग तुझ से घृणा करने लगेगे। तू अगर इन्सान है तो इतना तो समझ कि द्रौपदी का भरी सभा मे बुलाना बहुत ही घृणास्पद है। वह तेरे भाई की ही पत्नी है और पाचाल देश की राजकुमारी है।"

भीष्म पितामह भी चुप न रह सके, दुखित व क्रुद्ध हो कर बोले—' नीच दुर्योधन ! यदि तू नीचता की चरम सीमा को पहुचना चाहता है, यदि तू नारी, जो सदा आदरणीय हैं और वह भी सती द्रौपदी जैसी नारी को भरी सभा मे अपमानित करना चाहता है, तो तेरा पिता तो अन्धा है ही, हमारी भी आंखे फोड दे, हमारे कानों के परदे तोड डाल ताकि हम द्रौपदी को उन आखो से अप-मानित होते न देख सके जिनसे हम ने उसे आदरणीय के रूप मे देखा है, उन कानो से उसके करूण चीत्कार न सुन सके जिन से हम ने उसका मधुर प्रणाम सुना है। दुष्ट मत भूल कि वह एक सन्नारी है जिसने कभी हमारे सामने अपनी आखे ऊची नही की।"

सभा मे उपस्थित लोग चिल्ला उठे– "अनर्थ हो रहा है, पाप हो रहा है।"

परन्तु दुर्योधन नीचता पूर्ण ठहाका मार कर हसता रहा। उधर प्रातिकामी ने द्रौपदी से विनम्र शब्दो मे कहा– "राजकुमारी ! नीच दुर्योधन ने आदेश दिया है कि आप स्वय चल कर युधिष्ठिर से पूछ लें।"

शोकविह्वल द्रौपदी ने कहा—"नही, नही मैं सभा मे नही जाऊगी, यदि युधिष्ठिर उत्तर नही देते तो उपस्थित सज्जनो को मेरा प्रश्न सुनाओ, और जो उत्तर मिले आकर मुझे सुनाओ।"

प्रातिकामी पुन. सभा मे आया और सभासदो को द्रौपदी

का प्रश्न सुनाया ।

यह सुनकर दुर्योधन चिल्ला उठा, और अपने भाई दु शास
से बोला—"दु शासन ! यह नीच पाण्डवो से डरता प्रतीत हो
है, तुम्ही जाकर उस घमडी औरत को ले आओ। और य
वह आने मे अ ना कानी करे तो उसकी चोटी पकड कर य
घसीट लाओ।"

तव विवश हो कर धृतराष्ट्र ने कहा— दुर्योधन ! क्यो कु
वश को कलकित करता हैं, अपनी मूर्खता से बाज आ।"

पर दुर्योधन ने सुनी अन सुनी कर दी। दुरात्मा दु शास
के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी, खुशी खु
वह द्रौपदी के रनवास की ओर चल दिया। शिष्टता को ताक प
रख कर वह द्रौपदी के कमरे मे घुस गया और निर्लज्जता पूर्व
वोला—"सुन्दरी ! आओ, अव क्यो देर लगाती हो। हमने तु
जीत लिया है, अब शरमाती क्यो हो। अरी अव तक पाच की थ
अव सौ कौरवो की बन कर गुलछर्रे उडाना। यह परदा वरदा छो
अव तो सभा मे चलो, बड़े भैया तुम्हे बुलाते हैं, उनका दिल खु
करो।"

"देवर! तुम कैसा उपहास कर रहे हो, मुझे सभा मे
जाना चाहते हो। इस मे तुम्हे लज्जा न आयेगी।" द्रौपदी वोली
दु शासन को क्रोध चढ गया, बोला- "देवर, देवर कह कर ह
अपमानित मत करो। कौन देवर किसकी भावी। अव तो तु
हमारी दासी हो। इतनी ही लज्जावती थी तो ऐसे मूर्खों के घ
मे क्यो आई थी;

"द शासन ! जरा होश सम्भाल कर वात कर।" आवेश
आकर द्रौपदी वोली।

"चलती है या नही, या वताऊ होश की वात ? मैं नर
से वात कर रहा हू तो तू सर पर चढती जाती है।"—चिल्ला क
दु:शासन वोला और लपक कर हाथ पकड़ने की चेष्टा करते हु

कहने लगा–"तू ऐसे नही मानेगी, पैरो के बल नही सर के बल जायेगी।'

द्रौपदी तीर की चोट खाकर व्याकुल हरिणी की भांति आर्तनाद करती हुई शोकातुर हो अन्त पुर में भाग चली। परन्तु दु शासन ने वहा भी उसका पीछा न छोडा। दौडकर उसे पकड़ लिया। द्रौपदी ने दीनता पूर्वक कहा–"आज मैं रजस्वला हूं। एक ही साड़ी पहन रक्खी है, मुझे सभा मे न ले चलो।'

किन्तु दुरात्मा दु शासन न माना उसने कहा "द्रौपदी! यह तो और भी अच्छी बात है। आज तुम्हे अन्धे के पुत्रो की शक्ति का भान हो जायेगा। हमारी दासी है तू। तेरे नख़रे नही चल सकते।,, द्रौपदी ने अपने आप को छुडाना चाहा, पर दु शासन कुत्ते की भाति उस से चिपटा था, उसने उसके बाल बखेर डाले, आभूषण तोड फोड डाले, और उसी अस्त व्यस्त दशा मे उस के बाल पकड कर घसीटता हुआ सभा की ओर ले जाने लगा।

धृतराष्ट्र के लडके दु.शासन के साथ मिल कर भारी पाप कर्म करने पर उतारू हो गए। पर द्रौपदी ने अपना क्रोध पी लिया।

सभा मे पहुच कर दु शासन ने उसे फर्श पर दे पटका। सती द्रौपदी सभा मे उपस्थित वृद्धो को लक्ष्य करके बोली– "कपटजाल मे फसा कर महाराज युधिष्ठिर को पापियो ने हस्तिनापुर बुलाया और मजे हुए खिलाडी और धोखे बाज़ लोगो ने उन्हे कुचक्र रचा कर अपने जाल मे फंसा लिया। धर्म के प्रतिकूल यह दुर्व्यसन होता रहा, पाप व कपट का षडयन्त्र चलता रहा, पर आप सभी मौन रहे, इस पाप लीला को देखते रहे। आप लोग तो न्यायवंत, विद्यावान, धर्म रक्षक और बुद्धिमान कहलाते हैं, आप राज वंश की नाक हैं। क्या यही है आप का न्याय? यही है आप का धर्म यही है आप की बुद्धिमत्ता। पापियो ने युधिष्ठिर को अपने जाल मे फसा कर मुझे भी दाँव पर लगवा लिया, आप सब लोगो ने इस अधर्म अन्याय, अत्याचार और कपट जाल को कैसे स्वीकार कर लिया, उस समय कहा गई थी आपकी बुद्धिमत्ता, उस समय आप का न्याय कहा जा कर सो गया था। आप की आखो की लज्जा धर्मबुद्धि कहा चली गई थी-? क्या इसी विरते पर न्यायाधीश बनते

हो ? क्या यही है कुरुवश की नीति ? क्या आप भी पापी के सहयोगी नही है ? जो पहले ही अपने आप को पराधीन कर चुका हो, जिस की स्वतन्त्रता छिन गई, उसे एक नारी की बाजी लगाने का क्या अधिकार था ? मुझे युधिष्ठिर को दाव पर लगाने का अधिकार किस ने दिया है यह कहां का न्याय है कि कोई व्यक्ति पराधीन हो गया तो उसकी पत्नी भी पराधीन कर दी जाय ? जिस अधर्म में मेरी कभी सम्मति नही हुई उस में मुझे हारने या जीतने का किसी को अधिकार नही है। मेरा अपना अस्तित्व है। मैं धातु नही हूं, मैं मानव हूं। मुझे अपने जीवन के सम्बन्ध में निर्णय करने का स्वय अधिकार है। आपजो कुरुकुल के वृद्ध यहां बैठे हैं, आप की जबान को क्या लकवा मार गया है। कहां है आपकी वीरता कहां है आप का न्याय ? बोलो क्या नारी का अपमान करना ही आप के कुल की परम्परा है। आप के भी बहू बेटियां हैं, आप भी किसी नारी की कोख से जन्म ले कर ही इतने बडे हुए, क्या नारी को इस प्रकार अपमानित करते देखते समय आप को लज्जा नहीं आती ? बोलो क्या है मेरे प्रश्नो का उत्तर। आज एक नारी आप से पूछती है, कि इस अन्याय के सम्बन्ध मे आप का क्या विचार है ? क्या यह जो कुछ हो रहा है, धर्मानुकूल है !"

इतना कह कर द्रौपदी मौन हो गई, उसने एक एक करके सभी के मुख को देखा और फिर पाण्डवो की ओर दृष्टि डाल कर उन्हे लक्ष्य करके सिहनी की भांति गर्जना की— इसी बिरते पर धर्मराज कहलाते हो, इसी बिरते पर रण वीर, योद्धा, कर्मवीर, महाबली और गुणवत कहलाते हो ? मैं युधिष्ठिर महाराज आप से पूछती हूं, कहां है आप का धर्म ? कहां है आप का न्याय ? किसने आप को मेरे भाग्य का निर्णय करने का अधिकार दिया था ? मुझे अपने पाप की भट्टी मे धकेलने का आपको क्या अधिकार था ? यदि कौरव कुल ने लज्जा, मानवता, धर्म और न्याय को स्वार्थ एव नीचता की भट्टी मे फेक दिया, यदि इन वृद्ध सज्जनो ने अपने पापी बेटों के हाथो अपने को गिरवी रख दिया है, यदि इन की बुद्धि को लकवा मार गया, तो आप तो धर्मराज हैं, आप क्यों इनके षडयन्त्र मे फंसते चले गए ?

फिर अर्जुन को लक्ष्य करके बोली—"मेरे सुहाग के स्वामी !

क्या इसी बलबूते पर धनुर्धारी बने थे। आप से तो वह दरिद्री भी अच्छे जो जीते जी अपना सहधर्मिणी की ओर किसी को आँख उठा कर भी नहीं देखने देते। आप की भुजाओ मे बहते गर्म लहू को आज क्या हुआ, आज जब भी सभा मे मुझे अपमानित किया जा रहा है, आप की विद्या. आप का तेज, आपकी वीरता कहा जा कर सो गई? पर आप तो दुर्योधन के दास हैं, अब काहे को बोलेगे? इसी वीरता पर आप मुझे पाचाल देश से ब्याह कर लाये थे?"

द्रौपदी के वाक्यों से व्याकुल अर्जुन अपनी गरदन झुकाए खडा रहा। फिर वह सन्नारी भीम, नकुल और सहदेव को सम्बोधित करके बोली—"मैं समझती थी कि पाडववीर है, उन की भुजाओ मे जान है, वे धर्मवीर है धीर और गुणवान हैं। पर आज जब मुर्दों की भाति गरदन लटकाए खडे अपने सामने मुझको अपमानित होते देख रहे हैं, तो मुझे लगता है कि यह सब दिखाने भर के हैं, वरना इनका विवेक तो कब का मर चुका है। कहो, क्या पाँडु नरेश की सन्तान आप ही हैं?" डूब मरो चुल्लू भर पानी मे, तुम्हारे रहते आज मैं अकेली निस्सहाए अबला हो गई हू। यह दुष्ट मुझे भरी सभा मे लाकर रक्त के आँसू रुला रहे हैं, और आप लोग मौन खड़े है, मिट्टी के बुतो की तरह?"

पाँचाल राज की कन्या को तो आर्त्त स्वर में पुकारते और असहाय सी विकल देख कर भीम सेन से न रहा गया, वह अपनी परिस्थिति को समझता था, इस लिए कडककर बोला-"भाई साहब! मुझे आज्ञा दीजिए कि जिन हाथो ने सती द्रौपदी के केशो को पकडकर उसे घसीट कर यहा लाया है, अभी ही उसके हाथ अपनी गदा से तोड़ डालूं। इन दुष्टो का क्षण भर मे काम तमाम करदूं।"

"चुप रह ओ हमारे दास, मुझे मजबूर मत कर कि मैं अभी ही तेरी इस कैंची की भाति चलती जबान को भरी सभा मे कटवा दूं।" क्रोध से जलता हुआ दुर्योधन गुर्राया।

अर्जुन ने उसे शान्त करते हुए कहा—"भैया भीम! तुम चुप रहो। महाराज युधिष्ठिर की भूल के परिणाम को

मन मसोस कर सहलो।" तब भीम ने युधिष्ठिर को लक्ष्य करके कड़क कर कहा—'भाई साहब! दरिद्र, अज्ञानी, अधर्मी और गवार जुआरी भी जुए मे हार जाते हैं, पर अपनी रखैल स्त्री को भी बाजी नही लगाते। किन्तु आप अन्धे हो कर द्रुपद की कन्या को हार बैठे आप ने ही यह भूलकर के सती द्रौपदी का धूर्तों के हाथों अपमान कराया। इस भारी अन्याय को मैं नहीं देख सकता। आप ही के कारण यह घोर पाप हुआ है। भैया सहदेव! कही से जलती हुई आग तो लेआ। जिन हाथो से महाराज युधिष्ठिर ने जुआ खेला, और जिन हाथो के कारण द्रौपदी भाभी का अपमान हुआ, उन्ही को मैं जला डालू।"

भीम सेन को आपे से बाहर देखकर अर्जुन ने उसे रोका और बोला—"भैया सावधान! युधिष्ठिर भाई के सम्बन्ध मे ऐसी कोई बात मुह से न निकालो। क्यो कि यदि हम आपस मे ही ऐसी बाते करने लगे तो शत्रुओ की पूरी तरह से विजय हो जायेगी। यह हमारे पूर्व कर्मों का ही फल है, जो हमारी बुद्धि मारी गई और हम स्वयमेव ही अधर्म की ओर चले गए। शान्त हो जाओ और जो होता है उसे सहन करो।"

अर्जुन की बात सुन कर भीमसेन शान्त हो गया, अपने को सम्भाल लिया और क्रोध को पी गया।

द्रौपदी की ऐसी दीन अवस्था को देख कर दुर्योधन के एक भाई विकर्ण को बहुत ही दुःख हुआ, उससे न रहा गया खड़ा हो गया और बोला— उपस्थित क्षत्रिय वीरो, वृद्धजनो और दर्शको। मैं नही चाहता था कि आपके सामने कुछ कहू। जिस सभा मे कुल के वृद्ध मुलझे हुए, बुद्धिमान और अनुभवी लोग तथा वे लोग जो न्याय के रक्षक हैं, विराजमान हो तो कम आयु के लोगो को बोलना नहीं चाहिए, परन्तु जब न्यायाधीश ही चुप चाप तमाशा देखने लगे, जब कि अन्याय अपना नग्न ताण्डव करता हो, पर वृद्ध जनो के कान पर जू न रेंगती हो, जब कि किसी सन्नारी के साथ अत्याचार हो रहा हो और विद्यावानो तथा न्यायकर्ताओ के मुह पर ताले पड गए हो, तो छोटो को जिनकी बुद्धि सही सलामत है, जिन का विवेक जीवित है, जो न्याय प्रिय है, उन्हे विवश हो कर

बोलना ही पड़ता है। इसलिए मैं पूछता हू, कि अपने को न्याया-धीश कहने वाले, उच्चासनों पर विराजमान लोग इस अत्याचार लीला पर क्यो चुप्पी साधे बैठे हैं। यह स्पष्ट है कि महाराजाधिराज युधिष्ठिर को कपट से बुला कर जुआ खेलने पर मजबूर किया गया, इकार करते पर ताने मारे गए और न जाने पासे पर क्या जादू पड़ा था कि युधिष्ठिर को कुछ ही समय मे महाराजाधिराज से रक बना दिया गया, रक भी नही, बल्कि दास बना लिया गया। मेरी आपत्ति एक तो यह है कि जब युधिष्ठिर पहले स्वयं को हार चुके तो उन्हें द्रौपदी को दाव पर लगाने का भला क्या अधिकार था ?

दूसरी यह कि क्षत्रियो ने चौसर खेलने के जो नियम बना रक्खे हैं उनके अनुसार विरोधी खिलाडी स्वयं कह कर किसी वस्तु की बाज़ी नही लगवा सकता। पर शकुनि मामा ने महाराज युधिष्ठिर को द्रौपदी का नाम ले कर उसे बाजी पर लगाने का प्रस्ताव ही नही किया, बल्कि उकसाया भी।

तीसरी बात यह कि द्रौपदी, पशु, पक्षी नही है, वह मानव है, बिना उसकी मर्जी के, और जब कि वह जुआ खेलना पाप समझती है, उसकी कोई सम्मति इस खेल मे नही थी, तो द्रौपदी को इस अधर्म मे क्यो धकेला जाये ? इस लिए मैं सारा खेल ही नियम विरुद्ध ठहराता हू। मेरी राय में द्रौपदी नियम पूर्वक नहीं जीती गई। इस लिए जो कुछ हो रहा है वह भयकर अन्याय है, जिस का विरोध प्रत्येक न्याय प्रिय व्यक्ति को करना चाहिए।"

युवक विकर्ण के इस तर्क सगत वक्तव्य से, अब तक जिन के मस्तिष्क पर भ्रम का परदा पडा था, उठ गया और लोग चिल्ला उठे— "ठीक है विकर्ण ठीक कहता है। यह अन्याय हो रहा है। यह नियम विरुद्ध हैं। धर्म की रक्षा हो गई। धर्म की रक्षा हो गई।"

विकर्ण के वक्तव्य से दुर्योधन के पक्ष पातियोमे खल बली मच गई। उस समय कर्ण, अपने मित्र दुर्योधन के हाथ पांव फूलते देख कर उठ खडा हुआ और गरज कर बोला "विकर्ण ! तुम निरे मूर्ख हो। तुम सभा मे बैठने के भी योग्य नही हो। तुम्हे शिष्टाचार भी नहीं आता। जिस सभा मे कुल वृद्धजन उपस्थित हो, छोटो को नहीं बोलना चाहिए। फिर तुम बिना आज्ञा के कैसे बोलने लगे

तुम मे न वुद्धि है और न विवेक ही, और खड़े हो गए तर्क वितर्क करने को। अरे मूर्ख, जव युधिष्ठिर ने पहली बाजी मे अपनी सारी सम्पत्ति हार दी, तो फिर उसके पास बचा ही क्या ? द्रौपदी तो स्वयमेव ही हारी गई। युधिष्ठिर के शव्द नही सुने जो वह अपने भाईयो की बाजी लगाते हुए कह रहे थे। वह अपने भ्राताओं आदि को अपनी ही सम्पत्ति मानते है। इस लिए तुम्हारी शंकाएं पूरी तरह बकवास हैं, उन में कोई तथ्य नही। मेरी समझ मे तो यह नही आ रहा कि अभी तक पाण्डव अपने राज्योचित वस्त्रो मे क्यो है ? जव सारी सम्पत्ति हार गए तो पाण्डवो और द्रौपदी के सारे कपडे तक भी दुर्योधन के हो गए। यह तो दुर्योधन का भ्रातृ प्रेम समझो कि वह इन मूल्यवान कपडों को पहनने की पाण्डवो और द्रौपदी को अभी तक छूट दे रहे हैं।"

कर्ण की कठोर वातो से पाण्डवो पर तो वज्र टूट पडा। उन्हों ने उसी समय वहुमूल्य वस्त उतार दिए। दुर्योधन को तो एक नया उत्पात सूझ गया, जो कदाचित अभी तक उस के मस्तिष्क मे न आया था, उस ने दुःशासन को लक्ष्य करते हुए कहा—"यह द्रौपदी कैसे अभी तक साड़ी पहने खडी है। दुःशासन अभी ही, इसी समय इसकी साडी उतार लो।"

सभा मे उपस्थित लोग दुर्योधन के इस आदेश को सुन कर कांप उठे। न्याय प्रिय लोगो के नेत्रो से अश्रुधार फूट पडी। वृद्ध जनो ने अपना मुह ढाप लिया। चारो ओर श्मशान की सी शांति छा गई।

दुःशासन आगे वढा और वह दुरात्मा द्रौपदी की साडी खीचने लगा। अव वेचारी द्रौपदी क्या करती। उसने मनुष्यो की आशा त्याग कर उस समय शासन देव को याद किया, जिन प्रभु की रट लगाई, उसने आर्त्त स्वर मे शील सहायक देव की टेर लगाई— "प्रभु ! अव तुम्ही हो मुझ अवला की लाज के रखवारे। तुम्हारी शरण आती हूं। हे शासन देव ! यदि मैं वास्तव मे पति व्रता और सती हू तो आओ मेरी लाज वचाओ। मेरे पति, और मेरे सभी सहायक इस समय मेरा साथ छोड चुके है, पर आप तो मेरा साथ न छोड़ना। लो मैं आप ही की शरण आती हूं।"

द्रौपदी कहती कहती अचेत हो गई। उस समय एक अदभुत

चमत्कार दिखाई दिया। सभासद आँखें फाड फाड कर देख रहे थे। दु शासन द्रौपदी की साडी पकड कर खीचने लगा, ज्यो ज्यो वह खीचता जाता, त्यों त्यो साडी बढती जाती। यह चमत्कार देख कर लोगो मे कपकपी सी फैल गई।

निर्लज्ज दुर्योधन भी पहले तो आखे फाड़ फाड कर देखता रहा, फिर वोला—"दु शासन! देखी द्रौपदी की करतूत, न जाने कितनी साढियां पहन कर आई है। ज़रा जल्दी जल्दी खीच।"

दु शासन ने तेजी से खीचना आरम्भ किया। पर और अलौकिक शोभा वाली साढी का ढेर लग गया। आखिर दु शासन खीचता खीचता थक गया, सारा शरीर पसीने से तर हो गया, अन्त मे उसके हाथो मे खीचने की शक्ति नही रही और वह हाँपता हुआ अलग हट कर बैठ गया।

इतने मे भीम सेन उठा, उसके होंट मारे क्रोध के फडक रहे थे मुख मण्डल तम तमा रहा था, नेत्रो से ज्वाला निकल रही थी। ऊचे स्वर मे उसने प्रतिज्ञा की— "उपस्थित सज्जनो! मैं शपथ पूर्वक कहता हू कि जब तक भरत वश पर बट्टा लगाने वाले और मानवता को कलंकित करने वाले इस नीच दु शासन की इन भुजाओ को न तोड दूंगा. जिनसे इसने सती द्रौपदी को अपमानित किया है, तव तक इस शरीर का त्याग नही करूगा। जब तक रणभूमि मे इस की छाती नही तोड दूगा, तव तक चैन नही लूगा।" भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुन कर सभा सद थर्रा गए।

अचानक उसी समय सियार बोलने लगे, गधो के रेंकने और मासाहारी चील कौवो के चीखने की आवाज सुनाई दी। इस प्रकार की मनहूस आवाजें कितनी ही देरी तक आती रही।

इन लक्षणो से धृतराष्ट्र समझ गए कि जो कुछ हुआ है, वह उस के पुत्रो के लिए वहुत ही दुखदायी होगा। सम्भव है उनके कुल का विनाश हो जाये। इस लिए उन्हो ने शीघ्र ही इस घटना पर पानी फेरने का उपाय करना आवश्यक समझा। इन्हो ने द्रौपदी को अपने पास वुलाया। उसे समझाया, प्रेम पूर्वक उसे सान्त्वना दी। और जो हुआ उसे भूल जाने की प्रेरणा दी।

फिर युधिष्ठिर को समझाते हुए बोले— 'बेटा युधिष्ठिर! तुम तो अजातशत्रु हो। उदार हृदय भी हो। मैं जानता हू कि तुम इतने विशाल हृदय हो कि अपने शत्रुओ को क्षमा दान कर सकते हो। दुर्योधन से तुम्हे कोई वैर नही है। तुम ने उसे सदा अपना भाई समझा है। यह कुमित्रो के जाल मे फस गया है। इसे अपने और पराये की पहचान नही है। इसे इस कुचाल के लिए क्षमा करदो। और जो कुछ हुआ उसे अपने दिल से निकाल दो।"

उन्हो ने दुर्योधन को अपने पास बुलाया और कहा—'बेटा! तुम्हारी भूले हमारे कुल के नाश का कारण बन जायेगी। तुम जिस रास्ते पर चल रहे हो, वह नाश का है, कलंक और पाप का है। अब भी समय है, सम्भल जाओ। और अपनी भूलो को सुधारने का प्रयत्न करो। इस समय जो हुआ वह घोर अनर्थ हैं। वह हमारे कुल के मस्तक का काला दाग बन जायेगा। तुम युधिष्ठिर की जीती सम्पति वापिस करदो और उन्हे पहले के अनुसार राज्य करने दो, जिस आदर सत्कार से उन्हे बुलाया था, उसी आदर सत्कार से वापिस भेज दो। तुम्हारा और कुल का हित इसी बात में है। यदि तुम ने ऐसा न किया तो याद रक्खो तुम्हारा नाश अवश्यमभावी है। लक्षण बता रहे है कि अपनी बरबादी के बीज तुम ने बो दिए है। चलो अब भी समय है। इन सब बातो को इस एक उपाय से धो सकते हो। मेरी बात मान कर युधिष्ठिर की सम्पत्ति वापिस करदो।"

दुर्योधन के मन मे भी यह बात बैठ गई कि कुछ भूल हो गई है। लक्षण शुभ नहीं है। पापी कायर भी होता है। इसी कारण दुर्योधन उस समय मन ही मन ताप रहा था, पर वह सोचने लगा कि यदि युधिष्ठिर की सम्पति उसे वापिस देदी, तो पाण्डव कभी इस घटना को न भूलें गे और किसी न किसी समय अवसर पाकर अवश्य ही बदला लेंगे। सांप चोट खाकर बच निकलता है, तो वह अवश्य ही चोट करने वाले को डसता है। इसी प्रकार पाण्डव इन्द्रप्रस्थ पहुचते ही अपने दल बल के साथ, मुझ पर आक्रमण कर देंगे और भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेगा। इस

लिए भयभीत होते हुए वह बोला—"पिता जी ! जो सम्पत्ति युधिष्ठिर हार चुके उसे वापिस कैसे किया जा सकता है। हम ने उन से यह सन्पत्ति छीनी थोडे ही है और न कोई अन्याय कर के ही ली है। नियम पूर्वक चौसर के खेल मे जीती है। इस लिए अब युधिष्ठिर का उस पर कोई अधिकार नही। न उसे वापिस लेने का साहस ही करना चाहिए। हम ने बल पूर्वक तो यह सब कुछ दाव पर लगवाया नही। फिर भी आप की आज्ञा को मैं टाल नही सकता। मैं इतना कर सकता हू कि युधिष्ठिर मेरी एक शर्त मान ले, तो उन्हे उसका राज पाट वापिस मिल सकता है।"

"बोलो क्या शर्त है ?"

"शर्त यह है कि पांण्डव द्रौपदी सहित बारह वर्ष तक बनों मे जाकर रहे और तेरहवे वर्ष मे अज्ञात वास करे। यदि अज्ञात वास के समय में वे कही पहचान लिए तो फिर उन्हे बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास मे व्यतीत करना होगा। यदि वे नही पहचाने गए तो तेरह वर्ष उपरान्त आकर वे अपना राज पाट वापिस लेने के अधिकारी होगे। यह शर्त यदि पाण्डव माने तो मैं भाई होने के नाते उन के साथ यह दया कर सकता हू।"—

"हम किसी की दया के मोहताज नही है। हमारी भुजाओं मे शक्ति होगी तो हम स्वय अपना राज्य वापिस ले लेंगे।"—

भीमसेन ने गर्जना की।

बात बिगडती देख कर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और बहुत ही विनम्र शब्दो मे प्रेम पूर्वक उन्हे इस शर्त को मान लेने पर विवश किया, कभी पाण्डु का वास्ता दिया, कभी उनके दया भाव को याद दिलाया, कभी उन की सहन शीलता और भ्रात प्रेम को जागृत किया, तात्पर्य यह है कि हर प्रकार से उन्हे मजबूर कर दिया और अन्त मे उन से शर्त मनवा ही ली।

बात तय हो गई और पाण्डव माता कुन्ती से विदा ले कर परिवार सहित वनोको चल पडे।

———

* अष्टम परिच्छेद *

धृतराष्ट्र की चिन्ता

जब पाण्डव परिवार सहित वन को जाने लगे तो उनको देख की इच्छा से हस्तिनापुर के नर-नारी सडको पर निकल आये इतनी भीड़ थी कि सडको पर चलना असम्भव था, इसलिए कु लोग ऊचे भवनो की छतों और छज्जो पर खडे थे। महाराजाधिरा युधिष्ठिर जिन की सवारी सेना सहित बड़ी सज धज से निक करती थी, उस दिन साधारण वस्त्र पहने पैदल अपने परिवार सहि जा रहे थे, यह देख कर लोग हा हा कार करने लगे। कुछ लोग की आंखो से अश्रुधार वह रही थी, कुछ 'हाय-हाय' कर रहे और कुछ 'छि-छि.' करके कौरवो को धिक्कार रहे थे। उन अत्याचार पर सारा नगर क्षुब्ध था।

अन्धे धृतराष्ट्र ने विदुर को बुला कर पूछा—"विदुर ! पा के बेटे अपने परिवार सहित कैसे जा रहे हैं ? मैं अन्धा हूं, दे नहीं सकता तुम्ही बताओ कैसे जा रहे है ?"

विदुर जी बोले—"कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने कपड़े से मुख ढां रक्खा है। भीमसेन अपनी दोनों भुजाओं को निहारता, अर्जु अपने हाथ मे कुछ वालू लिए उसे विखेरता, नकुल और सहदे अपने शरीर पर धूल रमाये हुए क्रमशः युधिष्ठिर के पीछे जा रहे हैं

द्रौपदी ने अपने विखरे हुए केशों से अपना सारा मुह ढक लिया है और आसू बहाती हुई युधिष्ठिर का अनुसरण कर रही है।"

यह सुन कर धृतराष्ट्र की आशका और चिन्ता पहले से भी अधिक प्रबल हो उठी। उन्होने उत्कठा से पूछा—"और नगर वासी क्या कह रहे है ?"

"महाराज ! लोगो के नेत्रो से आसू और कण्ठ से कौरवो के लिए धिक्कार के शब्द निकले है। कह रहे हैं कि धृतराष्ट्र ने अपने बेटो को राज्य देने के लिए पाण्डवो को निकाल दिया। कुछ लोग कह रहे हैं कि कुरुवश के वृद्धो को धिक्कार है जिन्होने दुर्योधन और दु शासन के कहने से यह अत्याचार किया। इसी प्रकार कोई कुछ और कोई कुछ कर रहा है देखो नीले आकाश मे बिजली कौध रही है। और भी कितने ही अनिष्टकारी लक्षण हो रहे हैं।"—

विदुर जी ने कहा।

विदुर और धृतराष्ट्र की यह बाते हो रही थी कि कही से नारद जी आ निकले। उन्होंने धृतराष्ट्र को वताया कि दुर्योधन के इस पाप के कारण चौदह वर्ष वाद कौरवो का नाश हो जायेगा। भविष्य के जानकारो का यही विचार है। यह भविष्य वाणी सुना कर नारद जी तो चले गए और धृतराष्ट्र और उसके साथी नारद की यह भविष्यवाणी सुन कर भय भीत हो आचार्य द्रोण के पास गए और उनके आगे गिड गिड़ाते हुए बोले—"आचार्य जी ! जव चारों ओर से हम पर विपत्तियाँ टूट पडने की आशका है, तव हम आप की शरण आये हैं। यह सारा राज्य आप का है, हम आप ही की शरण है, आप विद्यावान, दयावान और बुद्धिमान है, आप हमे शरण लीजिए। आप कभी हमारा साथ न छोडे।"

इस पर दोणाचार्य बोले—"पाण्डव अजेय है, वह न्यायवत एवं गुणवान है, यह जानते हुए भी चूकि तुम लोग मेरी शरण आ गए हो, इसलिए मैं तुम्हे ठुकरा नही सकता। जहा तक मुझ से वन पडेगा मैं तुम्हारी प्रेम पूर्वक हृदय से सहायता करूगा। परन्तु होनी को कौन टाल सकता है। तेरह वर्ष उपरान्त पाण्डव वडे

क्रोध से लौटेंगे। उन का स्वसुर द्रुपद मेरा शत्रु है। अपने अपमान का बदला लेने के लिए उसने तपस्या की थी जिससे धृष्टद्युम्न प्राप्त हुआ। मैं जानता हू वह मेरे प्राण हरने वाला है। उसके कारण मेरा नाश होना है। और अब सारे लक्षण बता रहे हैं कि मैं और तुम एक ही नौका में सवार हो गए हैं। यह नौका डूबनी अवश्य है। इस लिए जो पुण्य कर्म करने हो, वह इन तेरह वर्ष मे ही कर लो। विलम्ब न करो, धर्म पथ पर बढो। वरना मनुष्य जीवन बेकार हो जायेगा। दुर्योधन ! मेरी बात मान लो युधिष्ठिर से सन्धि कर लो। इसी मे तुम्हारा भला है। मैंने अपनी राय दे दी, अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।"

द्रोणाचार्य को दुर्योधन अपने पक्ष मे करने के लिए ही उनके पास गया था, पर वह कोई श्रेष्ठ राय मानने को तैयार नही था, उस ने उनकी बातें टाल दी।

× × × × × × ×

एक दिन संजय ने धृतराष्ट्र से पूछा—"आप चिन्तित दिखाई देते हैं, क्या कारण है ?"

पाण्डवों से बैर हो जाने के बाद मैं निश्चिन्त रह ही कैसे सकता हूं ?" अन्धे राजा ने उत्तर दिया।

संजय बोला— "आप सच कह रहे हैं, जिसका नाश होना होता है उसकी बुद्धि फिर जाती है। आप ने लड़कों के कहने में आ कर अधर्म को अपनी नीति का आधार बनाया। किसी के पापो का फल देने के लिए प्रकृति किसी के सिर पर कुल्हाड़ा थोड़े ही चलाती है, उसके पाप ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते है, जिस से वह उल्टे रास्ते चल कर स्वय गड्ढे मे गिर जाता हैं।"

धृतराष्ट्र व्याकुल हो कर कहने लगे— "दुख तो इस बात का है कि मैंने विदुर की राय भी नही मानी। जब कि मैं सदा ही बुद्धिमान की बात मानता था, उसने जो राय दी वह धर्म और नीति के अनुकूल थी। किन्तु मैं अपने नासमझ बेटो की बात

मान बैठा। मुझे धोखा हो गया, मैं भटक गया।"

एक ओर धृतराष्ट्र विदुर जी की राय को न मानने पर दुखी हो रहे थे, दूसरी ओर देखिये वे विदुर जी के साथ क्या करते हैं ?—यह उदाहरण इस बात का कि जब नाश के दिन निकट आते है तो उल्टी सूझा करती है।

"विनाश काले विप्रीत बुद्धि

विदुर जी बार बार आग्रह करते कि पाण्डवों के साथ सन्धि करलो, वे कहते—"आप के बेटो ने घोर पाप किया है, ऐसा पाप जिसका उदाहरण इतिहास मे कही नही मिलता। उन के पाप से हमारे कुल का सर्व नाश हो जायेगा। आप अब भी सम्भलिए, अपने मूर्ख बेटो को सुपथ पर लाइये। पाण्डवो को बन से वापिस बुला लीजिए, उनका राज्य उन्हे दे दीजिए। यह सब करना आप ही का कर्तव्य है।" विदुर जी प्राय ऐसे ही उपदेश धृतराष्ट्र को दिया करते।

विदुर जी की बुद्धिमता का उन पर भारी प्रभाव था, अतः धृतराष्ट्र उनकी बातो को शुरु शुरु मे सुन लिया करते थे। परन्तु बार बार विदुर जी की यह बाते सुनकर धृतराष्ट्र ऊब उठे।

एक दिन विदुर जी ने फिर वही बात छेड़ी तो धृतराष्ट्र झुझला कर बोले—"विदुर! तुम हमेशा पाण्डवो का पक्ष लेते हो और मेरे पुत्रो के विरुद्ध बातें करते रहते हो। इस से प्रकट होता है कि तुम हमारा भला नही चाहते, नही तो बार बार मुझे दुर्योधन का साथ छोडने को क्यो उकसाते। दुर्योधन मेरे कलेजे का टुकडा है, चाहे वह कुछ करे मै उसे नही छोड सकता। तुम्हारी इन बातो को सुनते सुनते मेरे कान पक गए हैं। तुम्हारी बाते न न्यायोचित हैं और न मनुष्य स्वभाव के अनुकूल ही। यदि हम तुम्हे अन्यायी और पाण्डव पुण्यात्मा प्रतीत होते है, तो तुम हमारे पास क्यो हो, पाण्डवो के साथ ही बन मे क्यो नही चले जाते ?"

धृतराष्ट्र क्रोध से ऐसे कह कर बिना विदुर का उत्तर सुने

ही अंतःपुर मे चले गए ।

विदुर ने मन में कहा कि अब इस वश का नाश निश्चित है। उन्होने तुरन्त अपना रथ जुतवाया और उस पर चढ कर जंगल मे उस ओर तेजी से चल पड़े जहा पाण्डव बनवास के दिन बिता रहे थे।

विदुर जी के चले जाने के वाद धृतराष्ट्र को अपनी भूल सुझाई दी। वह सोचने लगे विदुर जी को भगा कर मैंने अच्छा नहीं किया। इससे तो पाण्डवों की शक्ति ही बढ़ेगी। अतः उन्होने संजय को बुलाकर उसे विदुर जी को समझा बुझा कर वापिस ले आने को भेजा। संजय ने वन मे जाकर विदुर जी को वहुत समझाया और धृतराष्ट्र की ओर से क्षमा मांगी और विदुर जी को वापिस हस्तिना पुर ले आया।

× × × ×

एक वार महर्षि मैत्रेय धृतराष्ट्र के महल मे आये। धृतराष्ट्र ने उनका बडा सत्कार किया, फिर हाथ जोड कर विनय पूर्वक कहा—"मुनिवर आप ने कुरु जगल के वन मे मेरे भतीजो को देखा होगा वे कुशल से तो है? क्या वे वन मे ही रहना चाहते हैं? हमारे कुल मे उन के वनवास से परस्पर मित्र भाव कम तो नही हो जायेगा?"

महर्षि वोले—"राजन्! काम्यक वन मे अनायास ही पाण्डवों से भेंट होगई - उन पर जो वीती है, वो मुझे ज्ञात है। आप के और भीष्म जी के रहते हुए यह नही होना चाहिए था।"

उस समय दुर्योधन सभा मे उपस्थित था, मुनिवर ने उसे लक्ष्य करके कहा—"राजकुमार! तुम्हारी भलाई के लिए कहता हू कि पाण्डवो को धोखा देने का विचार छोड दो। पाप का परिणाम सदा दुखदायी होता है। जो अन्याय तुम उनके साथ कर रहे हो वास्तव मे तुम अपनी आत्मा के साथ ही वह कर रहे हो। अब भी अधर्म का रास्ता छोड कर सुपथ पर आजाओ। मैत्रि भाव और प्रेम पूर्वक रहो।"

हे राजकुमार शास्त्रों मे कहा है.—

तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावे अव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिया वेयव्वं ति मन्नसि
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघेत्तव्वं ति मन्नसि
एवं तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि ॥

अर्थात जब तुम किसी को हनन, आज्ञापन, परिताप, परिग्रह, एवं विनाश योग्य समझते हो तो यह विचार करो कि वह तुम ही हो। उसकी आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक सी ही है। जैसे तुम्हे हननादि अप्रिय है, और तुम उससे बचना चाहते हो, उसी प्रकार उसकी आत्मा को भी है।

मुनिवर ने मधुर वाणो मे दुर्योधन को समझाया पर जिद्दी दुर्योधन ने उनकी ओर मुह भी नही किया, कुछ बोला भी नहीं, बल्कि अपनी जाघ पर हाथ ठोकता रहा। और पैर के अगूठे से जमीन कुरेदता मुस्कराता रहा।

दुर्योधन की इस ढिठाई से मुनिवर को बडा खेद हुआ। धृतराष्ट्र ने हाथ जोड़ कर पूछा कि "भगवन ! आप दुर्योधन के भविष्य के सम्बन्ध मे तो कुछ बताइये।'

मुनिवर बोले—देवो ने सर्वज्ञ देव से पूछकर जो बताया है, वह मैं कह सकता हूं, वह यह है कि दुर्योधन इस समय जिस जांघ को ठोक रहा है, युद्ध मे भीम अपनी गदा से तोडेगा। और इसी से इसकी मृत्यु होगी।

* नवम परिच्छेद *

श्री कृष्ण की प्रतिज्ञा

जब श्री कृष्ण को हस्तिना पुर में हुई घटना की सूचना मिली और उन्हे ज्ञात हुआ कि पाण्डव सपरिवार बनो मे चले गए हैं, तो वे तुरन्त पाण्डवो से मिलने के लिए चल पडे। दूसरी ओर धृष्ट द्युम्न भी पाँचाल देश से कुरु जगल के वनों की ओर चला।

श्री कृष्ण के साथ राजा कैकेय, भोज और वृष्टि जीत के नेता आदि भी थे। इन सभी का पाण्डवों के साथ बहुत स्नेह था और उन्हे बडी श्रद्धा के साथ देखते थे। अर्जुन के मित्र विद्याधर खेचर भी उनसे मिलने के लिए चले। इस प्रकार क्षत्रिय राजाओ का एक बडा दल और अनेक विद्याधर आदि पाण्डवों के आश्रम मे पहुचे।

पाण्डव बड़े हर्षचित होकर सभी से मिले। दुर्योधन और उसके साथियो की करतूतों का पूरा हाल जब सभी ने सुना तो सभी को खेद हुआ। सभी राजाओं ने एक स्वर से धृतराष्ट्र और उसके बेटों की भर्त्सना की। कितने ही राजा एक स्वर से बोले— "दुराचारी कौरवों का विनाश हम सबकी खड्ग से होना अवश्यमभावी है। हम इस अन्याय का बदला रण भूमि

मे लेगे। उन के रक्त से हम पृथ्वी की प्यास बुझावेगे।"

आगन्तुक राजा जब अपने अपने मन की कह चुके, तो द्रौपदी श्री कृष्ण से मिली। श्री कृष्ण को अपने सामने देखते ही उसकी आँखो से सावन भादो की झडी लग गई। अवरुद्ध कण्ठ बडी कठनाई से वह बोली—"मधु सूदन! मैंने कौरवो के हाथो से जो अपमान सहा है, वह ऐसा है कि कहते हुए ही मेरा कलेजा फटा सा जा रहा है। उस समय मैं रजुस्वला थी, एक साडी ही पहनी हुई थी। दुष्ट दु शासन ने मेरे केश पकड कर घसीटता हुआ भरी सभा मे मुझे ले गया। कुरु कुल के सभी वृद्ध वहा उपस्थित थे। पर किसी ने इस पाप के विरुद्ध उफ तक नही किया। दुर्योधन की आज्ञा पर उस दुष्ट ने मेरी साडी खीचनी आरम्भ की, मुझे भरी सभा मे नगा करने की चेष्टा की, उस समय महाराज युधिष्ठिर ने सिर नीचा कर लिया, धनुषधारी अर्जुन का गाण्डीव उस समय भूमि पर पडा था, महावली भीम उस समय चुप खडा था, मेरा वहा कोई नही रह गया था। वृद्ध जन गरदन झुकाए बैठे थे। मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की बधु हू, पर वे इस बात को भी भूल गए थे। पाण्डु नरेश की वधु और पाँचाल नरेश की बेटी उस समय निस्सहाय व अबला बनी हुई थी। दरिद्र पुरुष भी होते हैं वे भी अपनी पत्नी के अपमान को सहन नही करते, पर मैं विश्व विख्यात धनुषधारी की पत्नी होकर अनाथ सी विलाप कर रही थी। उस समय यदि काम आया तो मेरा सती चारित्र। जिस समय से मुझे यह घोर अपमान सहन करना पडा उस समय से मैं तो यह समझ बैठी हू कि मेरा इस ससार मे कोई नही है, न पति न परिवार, श्रीहर, और न आप ही। पापी दुराचारी मेरे साथ प्रत्येक अन्याय कर सकते है। बोलो क्या मुझ जैसी अभागिन इस ससार मे और भी कोई होगी?"

—कहते कहते द्रौपदी का कोमल होट फडकने लगा, वह बिलख बिलख कर रो रही थी। उस के अश्रुओ की बहती गगा यमुना मे श्री कृष्ण की धारता भी बह चली। वे शोक विह्वल हो गए। परन्तु समय की नजाकत को समझते हुए उन्हो ने अपने आप को बहुत सम्भाला और मिष्ट वचनो से द्रौपदी को सान्त्वना देने लगे,

और वोले—वहन द्रौपदी ! तुम विश्वास रक्खो कि पाण्डव और उनके सहयोगी इतने शक्ति शाली हैं कि वे तुम्हारे अपमान का बदला अवश्य लेंगे। तुम पर जो भी बीती है, उसे सुन कर मेरा कलेजा फटा सा जाता है। पर एक बात से मुझे सन्तोष है कि जो कुछ हुआ है वह अवश्य ही तुम्हारे पुर्व कर्मों का फल हैं, दुर्योधन आदि तो निमित्त मात्र है। हा परन्तु उन्हों ने जो कुछ किया वह वैरभाव से ही किया इस लिये उन्हें भी अपने पाप का फल भोगना पड़ेगा। तुम शोक न करो मैं वचन देता हू कि उन दुष्टो के विरुद्ध मे पाण्डवों को प्रत्येक सम्भव और उचित सहायता दू गा। यह भी निश्चय मानो कि तुम पुनः महलो के वैभव को प्राप्त करोगी। महाराज युधिष्ठिर पुनः अपने पद को सुशोभित करेगे। चाहे आकाश टूट कर गिर जाए, चाहे हिमालय फट कर विखर जाय, चाहे पृथ्वी टुकडे टुकडे हो जाय चाहे सागर सूख जाय पर मेरा यह वचन झूठा नही होगा।"

श्री कृष्ण की इस प्रतिज्ञा मे द्रौपदी का मन खिल उठा उसने अर्जुन की ओर अर्थ पूर्ण दृष्टि से देखा। अर्जुन भी द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए वोला— "हे पाचाली, श्री कृष्ण का वचन झूठा नही होगा। वही होगा जो उन्होंने कहा है। तुम धीरज धरो! हमारे साथ वासुदेव हैं तो फिर हमे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।"

धृष्ट धुम्न ने अपनी वहन की वातो को सुन कर दुखित हो कर कहा—"हे वहन ! मुझे तुम्हारी वाते सुन कर वडी लज्जा आ रही है। मेरे रहते मेरी वहन को कोई अपमानित करने का दुस्साहस करे, यह मेरे लिए डूब मरने की वात है।" —"फिर वह अपने आप को धिक्कारने लगा---'धिक्कार है मेरे पौरुष को टूट जाओ ऐ मेरी वलिष्ट भुजाओ टूट जाओ, जव तुम अपनी वहन की रक्षा नही कर सकती तो तुम्हारा अस्तित्व व्यर्थ है हे मेरे नेत्रो अच्छा है तुम ज्योति हीन हो जाओ, मैं अपनी आंखों से अपनी वहन के नयनो को सजल कैसे देखू ? फूट जाओ मेरे कानों फूट जाओ, अपनी वहन के अपमान की कथा सुनने से अच्छा है कि तुम फूट ही जाओ।"

धृष्ट द्युम्न को श्री कृष्ण ने धैर्य बन्धाया। उस समय वह बोला— 'महाराज! आज आप ने जो प्रतिज्ञा की है मैं उसे पूर्ण करने के लिये अपना सब कुछ दाव पर लगा दूगा। मैं उसे द्रोणाचार्य को, जो कि मेरे पिता का शत्रु और आजकल कौरवो का सरक्षक है, मारूगा। भीष्म को शिखण्डी, दुर्योधन को भीमसेन, और सूतपुत्र कर्ण को अर्जुन युद्ध मे यमलोक पहुचायेगे।"

श्री कृष्ण ने कहा—"मैं उस समय द्वारिका मे नही था। यदि होता और इस खेल का पता चलता तो चौसर के खेल को ही न होने देता, यह खेल धर्म के प्रतिकूल है। इस दुर्व्यसन में जो पडा है, उसका नाश हो गया है। धृतराष्ट्र के बुलाये बिना ही सभा में पहुंच जाता और भीष्म तथा द्रोण जैसे वृद्धजनों को समझा बुझाकर इस नाशकारी खेल को रुकवा देता।"

"आप ऐसे समय द्वारिका से कहा चले गए थे? धृष्ट धुम्न ने पूछा।

जरासिन्ध के मित्र शाल्व ने उस समय जबकि मैं इन्द्रप्रस्थ मे था, द्वारिका का घेरा डाल दिया था। पर बलराम की बुद्धिमत्ता और नगर की सुरक्षित स्थिति के कारण वह अपने मन्तव्य में सफल नही हुआ और मेरे द्वारिका पहुचने से पहले ही घेरा उठाकर भाग गया था। मैं इन्द्रप्रस्थ से लौट कर उस धुर्त को परास्त करने चला गया था। उसे यमलोक पहुचा कर आ ही रहा था कि मुझे इस काण्ड की सूचना मिली और मैं तुरन्त बन की ओर चल पडा।" श्री कृष्ण ने बताया।

इसके पश्चात श्री कृष्ण पाण्डवों से विदा हुए वे सुभद्रा और अभिमन्यु को अपने साथ लेते गए। धृष्टद्युम्न ने बहुत चाहा कि वह पाचाल देश चली चले पर वह तैयार न हुई। अतएव द्रौपदी के पुत्रों को ले कर धृष्टद्युम्न पाचाल देश की राजधानी को चला गया।

* दसम परिच्छेद *

दुर्योधन का कुचक्र

चाहे दुर्योधन ने अपने अभिमानी स्वभाव के कारण उस समय पूरी ढिठाई दिखाई थी। परन्तु महर्षि मैत्रेय की भविष्य वाणी ने उसके हृदय को हिला दिया था। देवर्षि नारद के कथन के पश्चात् उसी का अनुमोदन करती हुई वह वाणी रह कर उसके हृदय प्रदेश मे गूज रही थी। जिस से दुर्योधन का खाना पीना हराम हो गया था। कोमल शय्या पर करवटे बदलते बदलते ही प्रभात हो जाती थी परन्तु निद्रा देवी के दर्शन भी नही हो पाते थे।

इसी समय दूत ने आ कर उन सारी घटनाओ की सूचना दी जो कि वन मे पाण्डवो के पास घटी थी। अनेक प्रबल विद्याधरो, नरेशो, मुख्यतया त्रिखडाधिपति वासुदेव श्री कृष्ण की प्रतिज्ञा को सुन कर दुर्योधन का हृदय हाफ उठा उसका रहा सहा आत्म-विश्वास समाप्त हो गया। मौत की भयावह छाया उसकी आंखो के सामने मडराने लगी। पैरो को पटकता हुआ विक्षिप्तो की सी अवस्था मे वह कब तक महल मे घूमता रहा इसका ध्यान उसे तब आया, जब कि उसके कानो में शकुनि को यह शब्द पडे कि--

दुर्योधन, क्या कारण है तुमने अभी तक भोजन नही किया,

जब कि सूर्य मध्यान्ह को भी लाघ गया है। और समीप मे आने पर दुर्योधन के चेहरे पर उडती हुई हवाइयो और चढी हुई आखो को देख कर शकुनि स्तम्भित सा रह गया। मामा को अपने समीप मे देख कर दुर्योधन स्वस्थ हुआ। और सिहासन पर बैठते हुए भर्राये हुए कठ से कहने लगा मामा जी या तो इसके प्रतिकार का अपनी विचक्षण बुद्धि से कोई शीघ्र ही मार्ग निकालिये अन्यथा कौरव-कुल की नैया तो मझधार मे ही डूबी हुई समझिये।

क्यो-क्यो राजन्, ऐसी अशुभ वाणी क्यों मुह से निकाल रहे हो– बैठते हुए आश्चर्य निमज्जित शकुनि ने दुर्योधन से कहा।

जब चारो तरफ से अशुभ ही अशुभ देखने और सुनने को मिल रहा है तो आप ही सोचिये मैं कब तक शुभ स्वप्नो की कल्पनाए करताहुआ बैठा रह सकता हू। समय रहते हुए यदि कुछ प्रबन्ध नही किया तो दावानल के धू धू करके चारो तरफ से महल को घेर लेने पर कुआ खोदने के उपक्रम से कुछ होने जाने वाला नही है। इस तरह कहते हुए प्रतिहारी को भेज कर अपने अभिन्न हृदय कर्ण, दु शासन आदि को भी दुर्योधन ने बुला लिया और अपनी व्याकुलता का समस्त रहस्य समझाते हुए बल दिया कि हमे कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिये कि साप मरे न लाठी टूटे।

कहते है पाप ही पापी के हृदय को दहलाता रहता है। इस समय इस चाडाल चौकडी के हृदय पर अपने कृत्यो के अवश्यम्भावी कुफल की विभीपिका पूरो रगत दिखला रही थी। परन्तु रस्सी जल जाने पर भी जैसे ऐठन सीधी नही बनती, त्यो अपने विनाश की काली रात्रि को सन्मुख देखते हुए भी, गाधारी पुत्र शालीनता एव सद्बुद्धि को अब भी सन्मान देने को तैयार नही थे।

पाडवो की प्रतिष्ठा और उन्हे सुख प्राप्ति की कल्पना भी दुर्योधन के हृदय मे ववडर उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त आधार थी परन्तु साथ ही साथ अपने अनिष्ट की सम्भावना के तूफान ने उसकी ईर्षाग्नि को ज्वालामुखी की भान्ति भयकर रूप से धधका दिया था। जिसके कारण इस समय उसके हृदय से निकलने वाले विचार

रूपी लावे से न्याय-नीति सौजन्यता या मानवता रूपी कल्पद्रुम झुलसते जा रहे थे। वह ऐसा उपाय ढूढ निकालने मे निमग्न था कि जिससे पाडवो का विनाश अवश्यम्भावी हो। इस कुचक्र-योजना निर्माण मे उसका मामा शकुनि मित्र कर्णादि सहयोगी एव परामर्श-दाता बने हुए थे। काफी समय पर्यन्त विचार-विमर्श एव वादविवाद के पश्चात्, अन्तत. यह मित्र-मडली एक ऐसे विचार-बिन्दु पर केन्द्रित हुई, कि जिससे दुर्योधन सहित सभी के चेहरे विजयोल्लास की सी दीप्ति से चमकने लगे। और "शुभस्य शीघ्रम्" का दुरुपयोग करते हुए, परस्पर के बुद्धि नैपुण्य की प्रशसा करते हुए, योजना को क्रियान्वित करने के लिए धृतराष्ट्र के मत्रणा-गृह मे जा उपस्थित हुए।

\+ \+ \+ \+ × × ×

वत्स चिरञ्जीव होवो। कहो इस समय किस कारण से आना हुआ। नमस्कार का उत्तर देते हुए वृद्ध राजा ने दुर्योधन से पूछा।

पिता जी, बस अब बहुत हो चुका। पुरजनों की तीखी कडुवी बातो को सुनते-सुनते मेरे कान पक चुके हैं। अब मेरे से आपकी अपनी, अपने भाईयो की यह तीव्रनिन्दा एवं भर्त्सना नही सही जाती इतने विशाल साम्राज्य को पा कर भी हमे यदि मनस्ताप से झुलसते रहना पड़े तो उसके रखने से क्या लाभ ?

क्यो ? क्यो पुत्र, किस घटना को ले कर पुरजन हमे घृणित दृष्टि से देखते हैं। उत्सुकता से धृतराष्ट्र ने पूछा।

यही कि जिस दिन से भाग्य ने हमारा साथ दिया। न्याय पुरस्कर हमने द्यूत मे युधिष्ठिर को पराजित किया, उसी दिन से पुरजन परिजन हाथ धो कर हमारे पीछे पड हुए है कि कौरवो से अपने भाइयो की वृद्धि नहीं देखी गई। उनका यश, राज्य, वैभव प्रतिष्ठा इन्हें फूटी आखो नही सुहाती। हमे कोई कुलगार कह कर थूकता है। कोई अत्याचारी की रट लगा रहा है। और यहा तक धृष्टता बढ गई है कि आपकी ही छत्र छाया मे रहते हैं, और आपको

ही कहते है कि आंखो से तो अधा था ही, अब हृदय की भी फूट गई है। पिता जी, सच कहता हूं कि इस अपमान से जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर है। मन करता है इन राज्यद्रोहियों को चुन-चुन कर मौत के घाट उतार दूं। परन्तु आपकी कोमल प्रकृति से विवश हो कर दांत पीस कर रह जाता हूं। अब जब सिर से भी पानी गुजरने लगा तो मेरे लिए आप से निवेदन करना आवश्यक हो गया है।

वृद्ध धृतराष्ट्र बुद्धिमान थे, न्यायशील भी। अपने भतीजों के प्रति उन्हे कुछ स्नेह भी था। उन्हे अपने पुत्रों के प्रति मोह था। उनके चक्षु ज्योति हीन थे। उनके स्वभाव मे दृढ निश्चय करने और उस पर चलते रहने की कमी थी। किसी बात पर वे स्थिर नही रह सकते थे। अपने हठी पुत्र दुर्योधन को वश मे रखने की उनमे क्षमता नही थी। इसी कारण यह जानते हुए भी कि दुर्योधन कुपथ पर जा रहा है, उसे रोकने अथवा सुपथ पर लाने मे असमर्थ थे। इसके कार्यों को देख देख कर उनके मन मे पीडा होती। पर वे मन ही मन मैं घुटते कुडते रहते पर प्रत्यक्षत. कुछ कह न पाते थे। परन्तु आज अपने पुत्र की बातो को सुन कर, जहा उन्हे अपने अपमान को जान कर दुख होना चाहिये था प्रत्युत प्रसन्नता हुई। उन्होने सोचा, चलो सुबह का भूला शाम को भी घर आ जाये तो खैर ही है। शायद कोई रास्ता ऐसा निकल आये जिससे अब यह पाडवो से विरोध करना त्याग देवे और प्रेम पूर्वक साथ रहना स्वीकार कर लेवे। इत्यादि विचार करते हुए राजा धृतराष्ट्र ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—

पुत्र, गुलाब केतकी कस्तूरी किसी से चिचौरिया करने नही जाती कि तुम हमे सुगन्धित रूप मे बखानो। पारखी स्वयं उनकी सुगन्ध से आकर्पित होता है और प्रशंसा करता है। त्यो पाडव धर्मात्मा है, गुणवान हैं, सबसे समान स्नेह रखते हैं। इसी कारण प्रजा भी उन्हे चाहती है। उनकी सहायता करने वालों की भी कमी नही है। और जब से तुमने द्यूत के द्वारा पाडवो से विरोध खडा किया है। तब से प्रजा तो क्या हमारे वश के प्रतिष्ठित समस्त पुरुपो की भी दृष्टि से गिर गये हो। मुझे यह भय सताता रहता

है कि कही प्रजा विद्रोह न कर बैठे। हम लोक निन्दा और अपयश पात्र तो हो ही चुके है पर कही हस्तिनापुर से भी हाथ न धोना पड जाय। इस लिए अब भी समय है कि तुम पांडवो से प्रेम स्थापित कर लो। इससे तुम्हे यश भी प्राप्त होगा और निश्चित रूप से आनन्द मगल भी।

पिता के मुख से पाडवो की प्रशसा सुन कर दुर्योधन के हृदय मे एक बार फिर टीस सी पैदा तो हुई। परन्तु अवसर की अनुकूलता नही थी। अत जहर की सी घूट पीते हुए, अपने रचे हुए जाल मे फसाने के लिए प्रत्यक्षत स्वर मे कोमलता प्रदर्शित करते हुए बोला –

पिता जी मैं इस से नही घबराता कि कौन पाडवो का साथी है। और कितनी उनमे शक्ति है। हमारे भी मित्रों की कमी नही मुझे अपनी शक्ति का पूर्ण विश्वास है। मैं जब चाहे पाडवो को सदा की नीद सुला सकता हू। परन्तु मुझे दुख तो इस बात का है कि मैं जैसे २ पाडवो को चाहता हू वे त्यो त्यों प्रजाजनों मे अधिक सन्मान के पात्र बनते जाते हैं। और हमे प्रतिष्ठा के स्थान पर अपयशकाभागी बनना पडता है। इस लिये कोई ऐसी युक्ति सुझाइये कि जिस से हमे भी ससार आदर की दृष्टि से देखने लगे और आप का सर्वत्र जय जयकार होवे।

वेटा तुम ने आज मेरे हृदय को अमृत से सीच दिया। भगवान तुम्हे सदा ही सबुद्धि देवे। पुत्र स्मरण रक्खो, यश रूपी वैभव से जो सम्पन्न है वह तीनो काल मे सुखी और अजर अमर है और अपयशभागी त्रैलोक्येश्वर होकर भी दीनहीन और मृत प्राय होता है। अतः सर्वदा वह कार्य करो जिस से तुम्हारे यश की वृद्धि हो। दूसरे को बढाने से ही मनुष्य वृद्धि पाता है। जितना किसी को सुख प्रदान करोगे उतनी ही तुम्हारी वृद्धि होगी। यश प्राप्ति होगी। जितना किसी को सताओगे, रुलाओगे, गिराओगे, उतना ही तुम्हे भी कष्ट उठाना पडेगा, रोना पडेगा और ससार की दृष्टि से गिर जाओगे। इस लिए पुत्र यदि तुम यशस्वी

एव सुखी बनना चाहते हो, तो सबसे प्रथम अपने भाई पांडवों के दुखो का निराकरण करो कि जिनको तुमने राजराजेश्वर की गद्दी से दीनहीन भिक्षुकों की सी दयनीय स्थिति मे ला पटका है यदि तुम उन्हे सुख सुविधाए प्रदान करो, तो प्रजा तुम्हारा अवश्य अभिनन्दन करेगी। और वत्स, मैं तो यह समझता हू कि यदि उनका राज्य तुम उन्हे समर्पण करदो, समस्त विसवाद ही समाप्त हो जाये और ससार भर मे तुम्हारा जय जयकार गूज उठे। प्रेम से दुलारते हुए अन्धे राजा ने दुर्योधन को सम्मार्ग पर लाने की चेष्टा की।

पिता जी आप का कथन धर्म नीति अनुमोदित है। सभी ग्रन्थ एव वृद्धजन यही कुछ समझाते है परन्तु मैं तो राजनीतिज्ञो के इस कथन को प्राथमिकता प्रदान करता हू कि शत्रु एवं काटों को जब भी समय मिलें मसल डालना चाहिये। परन्तु देखता हू कि इस पथ पर अग्रसर होते हुए प्रत्येक अवसर पर मुझे लाछित ही होना पडा है। अत. हृदय से न चाहते हुए भी, मात्र आप की आज्ञा को शिरोधार्य कर, एक बार इस शिक्षा की भी परीक्षा करके देख लेता हू। यदि इसमे कुछ हृदय को समाधान एव लोक मे सफलता प्राप्त हुई, तो फिर जैसे भी आप को आज्ञा होगी उसे विना ननुनच के स्वीकार करता रहूगा। परन्तु वर्तमान मे मुझे यह उचित नही जचता कि मैं पांडवों को सहसा राज्य प्रदान कर दू। दुर्योधन ने कहा।

हा, दुर्योधन तुम्हारा कथन सोलह आने सत्य है। यदि इस समय पाँडवों को राज्य लौटाया गया तो लोग समझेंगे कि दुर्योधन पाडवों से डर गया है। दूसरे इस समय वे लोग अपने किये का भोग रहे है। जो उन्होने महाराज का अपमान किया था अब उसका उनको स्वाद मिल रहा है। गर्मी सर्दी भूख प्यास आदि से व्याकुल होते हुए अवश्य ही तुम्हारे ऊपर दात पीसते होगे। यदि ऐसे समय राज्य की बागडोर उनके हाथो समर्पण कर दी तो वह हाथ धो कर तुम्हारे पीछे पड़ेगे। आश्चर्य नही उस समय हमे ही राज्य से हाथ न धोने पड़ जायें। इस लिये भले बनने की धुन मे कही अपने पैरो पर कुल्हाड़ी न मार बैठना। बात सम्भालते हुए

शकुनि ने कहा—

यही तो दुविधा है। एक तरफ तो पिता जी की प्रतिष्ठा को स्थापित करने का महाप्रश्न है दूसरी तरफ कुए से बचते हुए खाई में गिरने का पूरा भय है। दुशासन ने रग जमाया। यह सब ठीक है। परन्तु मैंने निर्णय कर लिया है कि एक बार पिता जी के सुझाए हुए पथ पर भी चल कर परीक्षा करूंगा कि क्या परिणाम निकलता है। आज्ञाकारिता का नाटच करते हुए दुर्योधन ने कहना आरम्भ किया— परन्तु आपहितैषियो की चेतावनो को भी झुठला नही सकता। इस लिए मेरे तो विचार मे यही जचता है कि पाडवों को वनवास से तो बुलवा लिया जाये और अपने आस-पास के किसी छोटे नगर मे उनके निवास का, खान पान आदि सुविधाओ का भी प्रबन्ध कर दिया जाये। और देखा जाय कि हमारे इस कदम का प्रजा पर और पाडवों पर क्या प्रभाव पडता है।

ठीक है ठीक, कर्ण ने कहना शुरू किया— इससे एक तो उन की गति विधि पर भी नियंत्रण रखा जा सकेगा दूसरे हो सकता है कि आपके सद्व्यवहार से पाडव हृदय से आप को स्नेह करने लग जाये और हमारे महाराजा की इच्छा भी पूर्ण हो जाये।

मेरे विचार मे इस कार्य के लिए वारणावत का चुनाव अच्छा रहेगा। यहां से उन पर निगाह भी आसानी से रखी जा सकेगी और वहां कोई विशेष सहायक भी उन्हे नही मिल सकेगा। और यह भी उचित है। यदि पिता जी आज्ञा दे तो वहां एक आवतन बनवाये देता हू जिस मे वे लोग राज्य कर्मचारियो से पृथक पृथक आराम से रह सकें। यदि उन्होने भाई चारे का सबूत दिया तो वनवास की अवधि के पूर्ण हो जाने के पश्चात् राज्य लौटाने का कार्य-क्रम भी बनाया जा सकेगा। दुर्योधन ने कहा—

धृतराष्ट्र जो दत्तचित्त हो इनकी बात-चीत के उतार चढाव को जाँच रहे थे, बोले— पुत्र, मैं तो यही चाहता हूं कि इस परीक्षा के चक्कर में न पड कर सरलता पूर्वक पाडवों का राज्य उन्हें समर्पण करदो। वे धर्मात्मा एव कृतज्ञ हैं। कभी स्वप्नो मे

तुम्हारे अहित को नही सोचेंगे ।

नही, नही पिता जी आप भूलते हैं। मैंने धर्म नीति का परीक्षण करने का निर्णय किया है इसका अभिप्राय यह नही कि हम राजनीति को ताक पर ही रख दें। हमे फूक २ कर इस पथ पर कदम रखना होगा। उस समय आप तो सिर्फ इतनी ही आज्ञा दीजिये कि जल्दी से जल्दी एक आवास गृह वारणावत मे बनवा दूं और तब आप पांडवों को जैसे भी उचित समझे वैसे उसमें निवास करने के लिये बुलवा भेजिये। बस।

पुत्र, पाप का फल सदा बुरा होता है। राज्य के प्रलोभन में कोई ऐसा कार्य न कर बैठना जिससे तुम्हे नरकों के दुख भोगने पडें। और यह ससार भी तुम्हारे लिये नरक वन जाये। धृतराष्ट्र अभी तक दुर्योधन की तरफ से सशकित थे। परन्तु उनमे उसे ललकारने की शक्ति नही थीं।

पिता जी, विश्वास रखिये, ऐसी कोई बात मैं करने वाला नही हूं कि जिसमें आपको किसी प्रकार का कष्ट उठाना पडे। दुर्योधन ने आश्वासन देना प्रारम्भ किया और अपने कार्य मे पूर्ण सहायता का वचन ले कर खुशी २ यह मडली अपने महल आई और पूर्व निश्चयानुसार कार्य मे दत्तचित्त हो कर जुट गई।

× + × × ×

दुर्योधन ने अपने कुचक्र सभालन के लिए मुह मांगा धन प्रदान कर अपने पुरोहित पुरोचन को, जिसे कि पाडव भी श्रद्धा एव विश्वास की दृष्टि से देखते थे, अपना अभिन्न हृदय बना लिया था। उसी की देख रेख मे वारणावत मे लाख, मोम आदि तुरन्त अग्निग्राह्य पदार्थों के सम्मिश्रण से एक महल का निर्माण कराना प्रारम्भ किया, और धृतराष्ट्र का सन्देश लिखवा कर सदल वल युधिष्ठिर के पास वन मे भेज दिया। जहा पर उसने येन केन प्रकारेण पाडवो को वारणावत मे निवास करने के लिये और अपने साथ चलने के लिए तैयार कर धूम धाम से प्रवेश कराने के लिए वारणावत में कार्य कर रहे राजकीय कर्मचारियों एव निवासियो को आगमन

की तिथि का समाचार भेज दिया।

× × × × × × ×

जहां एक तरफ दुर्योधन पांडवों के विनाश का कुचक्र रच रहा था वहां दूसरी तरफ धर्मात्मा विदुर भी शान्त न बैठे थे। धृतराष्ट्र के द्वारा पांडवों को वारणावत निवास कराने आदि का समस्त समाचार उन्हें ज्ञात हो चुका था। और दुर्योधन यह सब सदाशयता से कर रहा होगा यह उनका हृदय मानने के लिए तैयार न था। अत. चतुर दूतों को वारणावत भेज कर महल में प्रयुक्त की जा रही विशेष सामग्री आदि के द्वारा वह वास्तविकता को समझ चुके थे। अत. वारणावत मे इस महल मे ठहराने का दुर्योधन का क्या आशय है, और कैसे उससे अपनी रक्षा करनी चाहिये इत्यादि समस्त बाते उन्होने सांकेतिक भाषा में लिख कर अपने विश्वस्त पुरुष को युधिष्ठिर के पास वारणावत मे देने के लिए प्रेषित कर दिया।

* एकादस परिच्छेद *

लाख का महल

वारणावत के लोगों ने जब पाण्डवो के आगमन का समाचार सुना वे बड़े प्रसन्न हुए। और उनके स्वागत को तैयारियां जोर शोर से होने लगी। सभी लोग पाण्डवों के गुणो से परिचित थे, अतः वे उनका स्वागत करना अपना कर्तव्य समझते थे।

जब पाण्डवो ने वारणावत मे प्रवेश किया, सहस्रो नर नारी उनके ऊपर पुष्पो की वर्षा और जय जयकार करने लगे।

युधिष्ठिर और सती द्रौपदी के प्रति बहुत श्रद्धा दर्शाई गई। सारा नगर सजा हुआ था।

वारणावत के नागरिको की ओर से किए गए अभूत पूर्व स्वागत से पाडवो का मन भी खिल उठा।

लाख का महल अभी तैयार नही हुआ था अतएव पुरोचन ने उन्हे दूसरे स्थान पर ठहराया। इसी समय विदुर द्वारा प्रेरित समाचार युधिष्ठिर को मिला, जिसे जानकर वे आश्चर्यचकित रह गये और भविष्य के चौकन्ने बन गये। कुछ दिनो पश्चात महल तैयार हो जाने पर पुरोचन बड़े आदर पूर्वक उन्हे महल मे ले गया।

महल की सुन्दरता को देख कर सभी प्रसन्न हुए।

भीमसेन ने कहा— "भ्राता जी! महल बडा सुन्दर है। दुर्योधन ने वास्तव में हमारे लिए कितना अनुपम महल बनवाया है। लगता है अब उनके मन में भ्रातृ स्नेह जागृत हो गया है।"

नकुल ने आगे बढ़ कर दीवार के प्लास्तर को स्पर्श करके प्रसन्न हो कर कहा— "और इसमें मिट्टी कितनी चिकनी लगी है। पता नही चलता कि यह दर्पण है या चिकनी मिट्टी।"

उसी समय युधिष्ठिर बोल उठे—"पर है यह सारी धोखे की टट्टी।"

सहदेव ने आश्चर्य चकित होकर कहा—"भ्राता जी! आप तो कभी ऐसी बाते कह जाते हैं कि आश्चर्य होता है। इतना बहुमूल्य सुन्दर महल है और आप कहते है इसे धोखे की टट्टी।"

अर्जुन बोल उठे—"कई लाख की लागत से तैयार हुआ होगा। वाह रे पुरोचन, जी चाहता उसकी कला की प्रशसा किए जाऊं।"

"हां, यह लाख का ही बना है। युधिष्ठिर बोले शिकारी ने शिकार करने के लिए नयनाभिराम व चित्ताकर्षक जाल बिछाया है।"

चारो भाई युधिष्ठिर का मुंह ताकने लगे। भीम बोल पडा—"क्या कहते है भ्राता जी! इस मे लाख की ही लागत है, यह तो कई लाख का है।"

"हां हा, है लाख का ही।"

द्रोपदी भी युधिष्ठिर के शब्दो पर चकित थी। उस ने कहा—"इतना सुन्दर महल है कि सभी इस की प्रशसा कर रहे हैं और महाराज बता रहे हैं इसे जाल? बात क्या है?"

भीम आग्रह करने लगा युधिष्ठिर से उनकी बात जानने का। तब युधिष्ठिर बोले—यद्यपि मुझे यह ज्ञात हो गया है कि

यह स्थान खतरनाक है। यह शीघ्र आग पकडने वाली वस्तुओं को विशेषतया, लाख को मिट्टी मे मिलाकर बनाया गया है. फिर भी हमे इस रहस्य को अपने मन मे छुपाकर रखना चाहिए। विचलित नही होना चाहिए । पुरोचन को भी यह ज्ञान न हो कि हमे महल का भेद ज्ञात हो गया है। विदुर चाचा ने यहां पहुंचने के समय ही मुझे महल का रहस्य सांकेतिक भाषा में बता दिया है । परन्तु अभी शीघ्रता मे हम से कोई ऐसी बात न करे जिस से पुरोचन को तनिक सा भी सन्देह हो जाय।"

युधिष्ठिर की इस सलाह को सभी ने मान लिया और उसी लाख के भवन मे रहने लगे। इतने मे विदुर जी का भेजा हुआ सुरग बनाने वाला एक कारीगर वारणावत नगर मे आ पहुचा। उस ने एक दिन पाण्डवो को एकान्त मे पाकर के अपना परिचय देते हुए कहा—"आप लोगो की भलाई के लिए हस्तिनापुर से अपने इनके द्वारा विदुर ने युधिष्ठिर को साकेतिक भाषा मे जो उपदेश दिया है उसको मैं जानता हूं। यही मेरे सच्चा होने का प्रमाण है। आप मुझ पर भरोसा रक्खे । मैं आपकी रक्षा का प्रवन्ध करने के लिए ही यहा आया हूं।"

इसके पश्चात वह कारीगर महल में पहुंच गया और गुप्त रूप से कुछ दिनो मे ही उस ने एक सुरग वना दी। इस के रास्ते पाण्डव महल के अन्दर से नीचे ही नीचे महल की चहार दीवारी और गहरी खाई को लाघ कर और बच कर वेखटके बाहर निकल सकते थे। यह काम इतने गुप्त रूप से हुआ कि पुरोचन को अन्त तक इस वात की खवर न होने पाई।

पुरोचन ने लाख के भवन के द्वार पर ही अपने रहने के लिए स्थान वनवा लिया था। इस कारण पाण्डवो को सारी रात हथियार लिये चौकन्ना रहना पड़ता था। कभी कभी वे सैर करने के वहाने आसपास के वनो मे घूम कर आते और वन के रास्तो को अच्छी प्रकार देख लेते। इस प्रकार पड़ौस के प्रदेश और जंगली रास्तो का उन्होने खासा परिचय प्राप्त कर लिया

वे पुरोचन से ऐसे हिलहिलकर व्यवहार करते जैसे उस पर कोई सन्देह ही नही है; वल्कि वह उनका अपना व्यक्ति है, सदा हसते खेलते रहते। उनके व्यवहार को देख कर किसी का तनिक सा भी सन्देह नहीं हो सकता था कि उन के मन मे किसी प्रकार की शका, अथवा चिन्ता है।

उधर पुरोचन भी कोई शीघ्रता नही करना चाहता था उस ने सोचा कि ऐसे अवसर पर, इस ढग से भवन को आग लगाई जाये कि कोई उसे दोषी न ठहरा सके। दोनों ही पक्ष अपने अपने दाव खेल रहे थे। इसी प्रकार दिन बीतते रहे।

एक दिन पुरोचन ने सोचा कि अब पाण्डवों का काम तमाम करने का समय आगया, पाण्डवो को मुझ पर पूर्ण विश्वास है। महल को बने महीने बीत गए। इस समय आग लगाने पर कोई भला क्या सन्देह कर सकेगा? बुद्धिमान युधिष्ठिर उस के रग ढग से ताड गए कि वह अब क्या सोच रहा है। उन्होने अपने भाइयो से कहा—पुरोचन ने अब हमें जलाकर मार डालने का निश्चय कर लिया मालूम होता है। यही समय है कि हमे भी अब यहा से भाग निकलना चाहिए।"

युधिष्ठिर के परामर्श से द्रौपदी ने उस रात को एक बडे भोज का प्रबन्ध किया। नगर के सभी लोगो को भोजन कराया गया। बडी धूम धाम रही मानो कोई उत्सव हो। खूब खा पी कर भवन के सभी कर्मचारी सो गए। पुरोचन ने भी छक कर खाया था वह भी शैय्या पर पडते ही खर्राटे भरने लगा।

आधी रात के समय भीम सेन ने भवन में कई जगह आग लगादी और फिर पाचो भाई सती द्रौपदी के साथ सुरग के रास्ते अधेरे मे रास्ता टटोलते हुए बाहर निकल आये। वे भवन से बाहर निकले ही थे कि अग्नि ने सारे भवन को अपनी लपेट मे ले लिया। पुरोचन के रहने के मकान मे भी आग लग गई।

आग की लपटें आकाश की ओर उठ रही थी, ऐसा मालूम होता था कि आकाश को छूलेगी। लपटों का प्रकाश सारे नगर

पर छा गया। निद्रामग्न लोग जाग उठे। सारे नगर मे खलबली मच गई। लोग तुरन्त महल की ओर भागे। पर जब तक कोई वहा पहुचे, तो आग सारे महल में लग चुकी थी, भवन का काफी भाग भष्म हो चुका था। हतप्रभ लोग हाहाकार करने लगे। रुई की भाति जलते भवन को देख कर लोग समझ गए कि महल किसी शीघ्र आग पकडने वाली वस्तु का बना है। वे उसे दुर्योधन का षडयन्त्र समझने लगे और सभी कौरवो के अन्याय की आलोचना करने लगे। सभी समझ रहे थे कि पाण्डव इसी भवन मे भस्म हो गए। यह सोच कर उनकी छाती फटने सी लगी, सभी के नेत्रों से अश्रु और क्रोध की चिनगारिया निकल रही थी।

कोई कहता—"पाण्डवों की हत्या करने के लिए ही पापी कौरवो ने यह षडयन्त्र रचा था।"

दूसरा कहता—"हम भी सोच रहे थे कि आखिर पाण्डवों के लिए कुछ दिन रहने के हेतु इतना विशाल भवन क्यो बनाया जा रहा है। लो यह षडयन्त्र था इस भवन की पृष्ठ भूमि मे।"

तो कोई कहता—'पाण्डवो के शत्रुओ ने ऐसा अन्याय किया है, जिसका उदाहरण कही भी नहीं मिलता।"

इसी प्रकार क्षुब्ध जनता अनाप शनाप कहती रहीं। जो जिसके मन मे आया क्रोध वश वही कहता। चारो ओर हाहाकार हो रहा था। लोगो के देखते देखते सारा भवन जल कर खक हो गया। पुरोचन का मकान और स्वय पुरोचन भी आग की भेंट हो गया।

पाण्डवो की मृत्यु का भ्रम होने से सारा नगर विह्वल हो गया। सारे नगर में लोग पाण्डवो के गुणो को याद कर कर के रोते रहे। लोगो ने तुरन्त ही हस्तिनापुर मे खबर पहुंचा दी कि पाण्डव जिस भवन मे रहते थे, वह जल कर राख हो गया और महल का कोई भी व्यक्ति जीता नही बचा।

यह समाचार सुनकर वृद्ध धृतराष्ट्र को शोक तो हुआ पर मन ही मन उन्हें आनन्द भी हो रहा था कि उन के वेटों के शत्रु समाप्त हुए और झगडा समाप्त होगया। ग्रीष्म ऋतु मे जैसे गहरे तालाव का पानी सत्तह पर गरम किन्तु गहराई मे ठण्डा रहता है, ठीक उसी तरह धृतराष्ट्र के हृदय मे शोक भी था और आनन्द भी। धृतराष्ट्र और उनके वेटो ने पाण्डवों की मृत्यु का वडा शोक मनाया। सव आभूषण और सुन्दर वस्त्र उतार दिए और एक एक मामूली कपडा पहन कर पाण्डवों तथा द्रौपदी को जलांजलि दी। फिर सव मिल कर वड़े जोर जोर से रोने और विलाप करने लगे। उनका यह शोक प्रदर्शन अपने षडयन्त्र पर परदा डालने और लोगो की शकाओ को निर्मूल सिद्ध करने के लिए था।

सारा हस्तिनापुर रो रहा था, परन्तु दार्शनिक विदुर ने यह कह कर कि जीना मरना तो प्रारब्ध की वात होती है, इस मे किसी का क्या चारा? अधिक शोक न दर्शाया। उन्हे मन ही मन में यह विश्वास था कि पाण्डव अवश्य ही वच निकले होंगे। अत. दूसरो के सामने तो वे भी कुछ रोये पर मन ही मन यह अनुमान लगाते रहे कि पांडव किस रास्ते से किस ओर गए होगे और इस समय कहाँ पहुचे होंगे? इत्यादि पितामह भीष्म तो मानो शोक के सागर मे डूव गए थे। परन्तु अन्त मे उन्हे भी विदुर जी ने समझाया और पाण्डवो की रक्षा के लिए उनके द्वारा किए गए प्रवन्धो का वृत्तांत वता कर उन्हे चिन्ता मुक्त किया।

× × × × × × ×

लाख के महल को जलता छोड़ कर सुरंग के द्वारा निकल कर द्रौपदी सहित पाण्डव जंगल मे पहुचे। वनो के वीहड़ रास्ते को रातों रात तय करते रहे। प्रातः होने तक वह चलते रहे और वीहड़ पथ पर पैदल चलते चलते थक गए। द्रौपदी तो वुरी तरह थक कर चूर हो गई थी। उस के लिए एक भी पग उठाना दूभर हो रहा था, अतः वह यह कह कर भूमि पर गिर पडी और वोली कि मुझे आत्म शान्ति है पर मुझ से नहीं चला जाता, मैं तो

यही पडी रहूंगी।"

समस्त पाण्डव भी प्यास से व्याकुल थे अत भीम के अतिरिक्त सभी बैठ गए भीम जलाशय की खोज मे गया। एक स्थान पर टक्करें खाकर उसे जलाशय मिल गया। उसने कमल के पत्तों मे पानी भर लिया और जल मे अपना दुपट्टा भिगो लिया और लाकर चारो भाइयो तथा द्रौपदी को पानी पिला कर सचेत किया। फिर भीम ने ढारस बधाई। प्रोत्साहन दिया और सती को कंधे पर उठा लिया। चारों भाई साथ हो लिए। भीम उन्मत्त हाथी की भाति आगे आगे रास्ता साफ़ करता चला, अन्य भाई पीछे पीछे चलते रहे।

गगा तट पर पहुच गए। एक नाव के द्वारा उन्हो ने गगा पार की और फिर चलने लगे। कभी कभी किसी भाई के थक जाने पर भीम उसे भी उठा लेता और झूमता झामता चलता रहता। चलते चलते रात्रि हो गई सभी भाई और द्रौपदी थक कर सो गए, पर भीम उस वीहड वन मे अकेला ही जागता रहा। हिंसक पशुओं की भयानक आवाजे आ रही थी, पर भीम निश्चित हो कर बैठा था, वह समस्त वृक्षो व पक्षियो को देख कर मन मे सोचता—"वन के यह वृक्ष, और पक्षी एक दूसरे की रक्षा करते हुए कैसे मौज से रह रहे हैं, पर धृतराष्ट्र और दुर्योधन मानव होते हुए भी शाति पूर्वक प्रेम भाव से नही रह सकते। उनसे तो यह वृक्ष और पक्षी ही भले।"

प्रातः हुई फिर वे चल पडे।

पाँचो भाई और द्रौपदी अनेक विघ्न वाधाओं को झेलते हुए रास्ते पर बढते रहे। वे कभी द्रौपदी को उठा कर चलते, कभी धीरे धीरे बढते। कभी विश्राम करने लगते और कभी आपस मे होड लगा कर रास्ता नापते। भूख प्यास से व्याकुल पाण्डव आगे बढते ही गए।

रास्ते मे उन्हे एक कर्म सिद्धान्त का ज्ञाता मिला और उनकी परस्पर बाते हुई। पाण्डवों को इस प्रकार वनो मे भटकते हुए देखकर उस निश्चय व्यवहार के ज्ञाता ने उन से पूछा कि 'महलों

मे वास करने वाले इस प्रकार निर्धनो और निस्सहायों की भांति कहां जा रहे है ?"

उत्तर मे युधिष्ठिर ने अपनी समस्त बिपदाए कह सुनाई। द्रौपदी रोने लगी और उसने कौरवो के अन्याय की शिकायत की। तब सिद्धान्तज्ञाता बोले—ससार में प्रत्येक व्यक्ति पाप भी करता है, धर्म भी, जो पाप नहीं करता वह निवृति मार्गी है। लक्ष्मी, सम्पत्ति और राज्य के लिए लोग नीच से नीच कार्य भी कर डालते है, पर संसार मे पुण्य पाप का चक्र चलता रहता है, जो सुख भोगते हैं वह अपने पुण्य से। आप का जितना पुण्य है उतना ही सुख आप को मिलेगा। न ससार मे कोई किसी को सुख देता है न दुख, यह मनुष्य के अपने कर्म है जिनका फल सुख या दुख के रूप में मिलता है। बाकी सब निमत मात्र बन जाता है। आप जो भोग रहे है वह आप के पूर्व कर्मों का फल है, जो भोगना ही होगा। ऐसा ही सर्वज्ञ देव का सिद्धान्त कहता है। दुख के समय आप को विचलित नही होना चाहिए और किसी के अन्याय से पथ विमुख भी नही होना चाहिए।"

सिद्ध पुरुष के उपदेश से द्रौपदी को बहुत सान्त्वना मिली। और अपनी विपदाओ तथा दुर्योधन के अन्याय पूर्ण व्यवहार को अपने तथा पाण्डवो के पूर्व जन्मो के कर्मों का फल समझकर वह अपने भाग्य को तदबीर से बदलने के लिए पाण्डवों के साथ पुन चल पडी।

आगे जाकर जब वन समाप्त होने को था, पाण्डव भ्राताओ ने आपस मे विचार विमर्श किया कि भावी कार्य क्रम क्या हो ? युधिष्ठिर बोले—"अच्छा हो कि हम अभी कुछ दिनों दुर्योधन की आँखों से ओझल रहे। उसे इसी हर्ष में फूलता छोड दें कि हम सब अग्नि की भेट हो गए हैं। इस के लिए यह आवश्यक है कि हम अपना वेष बदल कर घूमे।"

अर्जुन ने युधिष्ठिर की बात का समर्थन किया और सभी ने एक मन होकर निश्चय किया कि वे गुप्त वेष धारण कर लें। अतएव उन्हो ने राजकुमारों के वस्त्र उतार डाले और साधारण वस्त्र पहन लिए। पथ कर वेपधारी पाण्डव वन से निकल कर बस्ती की ओर चले।

* द्वादस परिच्छेद *

बकासुर वध
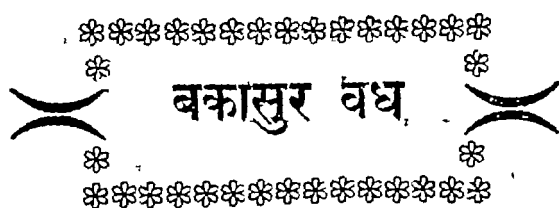
द्रौपदी के साथ पाचों पाण्डव एक चक्री नगर में पहुंचे। वे एक ब्राह्मण के घर ठहर गए और भिक्षा माग कर अपनी गुजर करने लगे। कहते हैं भिक्षा से जो मिलता, उस मे से आधा भीम को दे देते और शेष मे चारो भ्राता तथा द्रौपदी गुजर करते। क्यों, कि भीम सेन में जितनी अमानुषिक शक्ति थी उतनी ही अमानुषिक भूख भी थी। यही कारण था कि लोग उसे वृकोदर भी कहते थे। वृकोदर का अर्थ है भेडिये के से उदर वाला। भेडिये का पेट छोटा सा प्रतीत होने पर भी मुश्किल से ही भरता है। भीम सेन के पेट की भी यही दशा थी। भिक्षा से जो मिलता था उस मे से आधा उसे मिलने पर भी उस से उसका पेट न भरता, उसे सन्तोप न होता। हमेशा ही भूखा रहने के कारण वह दुबला होता जा रहा था। भीम सेन का यह दशा देख कर द्रौपदी और युधिष्ठिर बड़े चिन्तित रहने लगे।

जब थोडे से अन्न से भीम की पूर्ति न होती और वह बुरी तरह परेशान रहने लगा तो उस ने एक कुम्हार से मित्रता कर ली और उसे मिट्टी खोदने आदि मे सहायता देकर प्रसन्न कर लिया। कुम्हार उस से बहुत प्रसन्न था उसने एक बडी हाण्डी बना कर उसे दी। भीम जब हाढी को लेकर भिक्षा लेने जाता तो उसके

भीम-काय शरीर और विलक्षण हाडी को देख कर बालक हसते-हसते लोट पोट हो जाते।

जब कभी पाण्डवो को भिक्षा लेकर घर लौटने मे देरी हो जाती तो सती द्रौपदी बुरी तरह अशकाओ से पीडित हो जाती। बड़ी चिन्ता से उनकी बाट जोहती रहती। वह बेचैनी मे सोचने लगती कि कही दुर्योधन के दूतो ने उन्हे पहचान न लिया हो, कही कोई विपदा न खडी हो गई हो।

एक दिन चारो भाई भिक्षा के लिए गए, अकेला भीम सेन घर पर रहा। इतने मे ब्राह्मण के घर के भीतर से बिलख बिलख कर रोने की आवाज आई। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कोई बहुत ही शोक प्रद घटना घट गई हो। भीम का जी भर आया। वह इसका कारण जानने के लिये घर के भीतर गया। अन्दर जा कर देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी आखो मे आसू भरे सिसकियां लेते हुए एक-दूसरे से बाते कर रहे है।

ब्राह्मण बडे दुखी हृदय से अपनी पत्नी से कह रहा था—"अभागिनी! कितनी ही बार मैंने तुझे समझाया कि इस अन्धेर नगरी को छोड़ कर कही और चले जायें, पर तुम ने न माना। कहती रही कि इसी नगर मे पैदा हुई, यही पली तो यही रहूगी। माँ बाप तथा भाई बहनो का स्वर्ग वास हो जाने पर भी तू यही हठ करती रही कि यह मेरे बाप दादे का नगर है, यहीं रहूगी। मैंने बहुत समझाया पर तेरी समझ मे एक न आई। अब बोलो क्या कहती हो?"

ब्राह्मण की पत्नी अपनी भूल पर पश्चाताप करती हुई बोली—'मुझे क्या पता था कि यह दिन हमे भी देखना पडेगा। अपनी मातृ भूमि मे किसे प्रेम नही होता? हा आज अवश्य पछताती हूं। सोचती हूं कहा चली गई थी तब मेरी बुद्धि। आज सिर पर आ बनी तो हाथ मलती हू। .. पर अब क्या किया जाय। बस यही कर सकती हू कि मेरी ही हठ से आज इस परिवार पर यह विपत्ति पडी, आज मुझे ही इसका दण्ड भोगने दें। आप बालकों को सम्भालें और मुझे जाने दे।"

ब्राह्मण द्रवित हो कर बोला—"तुम मेरी धर्म-कर्म की सगिनी हो, मेरी सन्तान की माँ हो और मेरी पत्नी हो। मैंने सदा ही तुम्हारे प्रेम की ऊष्णता से अपने सरद पडते विचारो तथा भावो को गरमी प्राप्त करी है। तुम ने जीवन के हर क्षण में मेरे साथ सच्चे मित्र की भाति मेरा साथ दिया है। तुम ने निर्धनता मे भी मुस्कान का हाथ नही छोडा। मेरा जीवन सर्वस्व तुम्ही हो। तुम्हे मृत्यु के मुह मे भेज कर मैं अकेले कैसे जीवित रह सकता हूं?"

"पिता जी! आप मुझे ही भेज दें। मैं ऐसे मुसीवत के समय आप के काम आ सकू और माता पिता के ऋण से मुक्त हो सकू तो अहोभाग्य!" ब्राह्मण की कन्या बोली।

ब्राह्मण अवरुद्ध कण्ठ से बोला—"हाय मैं अपनी बेटी की वलि कैसे चढा दू? यह तो मेरे पास एक धरोहर है, जिसे सुयोग्य वर को व्याह देना मेरा कर्तव्य है। हमारे वश की वेल को चलाए रखने के लिए हमे जो कन्या मिली है, भला इसे मौत के मुह मे कैसे भेज सकता हू? यह तो घोर पाप होगा।"

पुत्र तुतला कर वोला—"पिता जी! तो मै जाता हू!"

"नही, नही मेरे लाल! मेरे कुल के तारे! यह कदापि नही हो सकता। ब्राह्मण कहने लगा और फिर अपनी पत्नी को सम्बोधित करके वोला—तुम ने मेरा कहना न माना, उसी का फल अव भुगतना पड़ रहा है। यदि मैं शरीर त्यागता हू तो फिर इन अनाथ वालकों का पालन पोषण कौन करेगा? हा देव! अव मैं क्या करू? और कुछ करने से तो अच्छा यही है कि हम सव एक साथ मृत्यु को गले लगा ले। यही श्रेयस्कर होगा।"—कहते कहते ब्राह्मण सिसक सिसक कर रो पड़े।

ब्राह्मण की पत्नी अवरुद्ध कण्ठ से वोली—"प्राण नाथ! पति को पत्नी से जो कुछ प्राप्त होना चाहिए, वह मुझ से आप को प्राप्त होगया। पुरुष स्त्री के विवाह का उद्देश्य है वह पूर्ण हो गया। क्योकि मेरे गर्भ से एक पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हो

चुके हैं। मेरा कर्तव्य पूर्ण हुआ। अब मेरे न रहने पर भी आप इनका पालन पोषण कर सकते है। परन्तु आप के बिना मुझ से यह सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त दुष्टो से भरे इस ससार में अनाथ स्त्री का जीवन दूभर हो जाता है। जिस प्रकार मास के टुकडे को चील कौए उठा ले जाने की ताक मे मण्डराते रहते हैं, उस प्रकार इस नगर में दुष्ट पुरुष विधवा स्त्री को हडप ले जाने के ताक मे लगे रहते हैं। जैसे घी लगे टुकडे पर कितने ही कुत्ते झपट पडते हैं उसी प्रकार किसी अनाथ स्त्री पर वदमाश लोग झपट पडते हैं। आप न रहे तो अपनी लाज की रक्षा और इन वाल वच्चो का लालन पालन कैसे मुझ से होगा? आप के विना यह बच्चे तडप तडप के जान दे देंगे। इस लिए नाथ मुझे ही उस नर भक्षक के पास जाने दीजिए। पति के जीते जी पत्नी का स्वर्गवास हो जाय इस से बढकर और स्त्री के सौभाग्य की वात क्या हो सकती है? मैं पतिव्रता नारी के समान आपकी सेवा-सुश्रुषा करती रही। अपने धर्म का पूर्णतया पालन किया, अब मुझे मरते मे कोई दुख न होगा। अत आप मुझे सहर्ष आज्ञा दे दीजिये कि अपने परिवार के लिए मैं अपने प्राण दे दू।"

पत्नी की व्यथा पूर्ण वाते सुन कर ब्राह्मण से न रहा गया। उसने अपनी पत्नी को छाती से लगा लिया और असहाय सा हो कर दीन स्वर मैं अश्रुपात करने लगा। अपनी पत्नी को प्यार करते हुए वोला— प्रिये! ऐसी वाते मत कहो। पति का कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी की रक्षा और उसके जीते जो उसका साथ न छोडे, इस लिए मैं अपने प्राण बचा कर तुम्हे भेजू तो मुझ से वडा पापी कौन होगा? नही, नहीं मैं यह घोर पाप नही कर सकता। मैं तुम्हारा वियोग सहन नही कर सकता।"

माता पिता की वाते सुन कर पुत्री ने दीनता पूर्वक कहा—

"पिता जी! आप मेरी वाते भी तो सुने, इस के पश्चात आपकी जो इच्छा हो सोचें। मुझे तो कभी न कभी इस परिवार से चले ही जाना है। अपने परिवार के काम मैं आ सकू तो इस से अच्छी मेरे लिए सदगति और क्या हो सकती है? आप

चले गए तो हम विलख विलख कर उसी प्रकार मर जायेगे जिस प्रकार सरिता के सूखने पर मछलियां। मेरा छोटा भाई मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। मेरी मां पर न जाने कितनी विपत्तियो का पहाड़ टूट पड़े। मां मर गई तो बिना मां के हमारा जीवन दूभर हो जायेगा। अत जिस प्रकार नाव द्वारा नदी को पार किया जाता है इसी प्रकार मुझ उस मनुष्य भक्षी के पास भेज कर आप विपत्ति से पार उतरें। इस से मेरा जीवन भी सार्थक हो जायेगा। और नही तो मेरी ही भलाई को दृष्टि मे रख कर आप मुझे भेज दें।"

बेटी की बातें सुन कर माता पिता दोनो के आसू उमड़ आये उन्होने बेटी को अपने कलेजे से लगा लिया और बारम्बार उसका माथा चूम कर अश्रुपात करने लगे लडकी भी रो पडी। सबको इस प्रकार रोते देख कर ब्राह्मण का नन्हा सा बेटा अपनी बडी बडी आंखो मे माता पिता और बहन को देखते हुए उन्हे समझाने लगा और बारी बारी से उनके पास जाता और अपनी तोतली बोली में "रोओ मत, रोओ मत, मा रोओ मत, दीदी रोओ मत, पिता जी रोओ मत" कह कर उन्हे चुप कराने लगा और फिर एक सूखी सी लकडी उठा कर बोला— "पिता जी आप मुझे जाने दें, मैं इस लकडी से ही उसको इस जोर से म र डालूगा।" बालक की तोतली बोली और वीरता का अभिनय देख कर इस सकट पूर्ण घडी मे भी सब को हसी आ गई। कुछ क्षण के लिए वे अपना दुख भूल गए।

भीम खडा खडा यह सारा दृश्य देख रहा था, उस ने सभी की बातें सुन ली थी। ब्राह्मण परिवार को दुखित होते देख कर उसका मन भर आया। अपनी बात कहने का यह सुन्दर अवसर देख कर वह आगे बढ़ा और बोला— "हे ब्राह्मण देवता! क्या आप कृपा करके मुझे बता सकते हैं कि आप को इस समय क्या दुख है। मुझ से बन पड़ा तो मैं आप को उस दुख से छुड़ाने का प्रयत्न अवश्य करूगा।

"देव! आप इस सम्बन्ध मे भला क्या कर सकेंगे हताश हो कर ब्राह्मण बोला।

"फिर भी बताने मे तो कोई दोष नही है।" भीम ने आग्रह

किया।

"हा, बताने में क्या हर्ज है, ब्राह्मण ने कहना आरम्भ किया-सुनिये! इस नगर के निकट ही एक गुफा में एक मनुष्य भक्षी पिशाच रहता है। पिछले तेरह वर्ष से वह नगर वासियों पर भांति भांति के अत्याचार कर रहा है। इस नगर का राजा इतना निकम्मा है कि वह उसके अत्याचारो से नगर वासियों की रक्षा नही कर सकता। वह पिशाच पहले जहाँ किसी मनुष्य को पाता मार कर खा जाता था, क्या स्त्रिया, क्या बच्चे, क्या बूढ कोई भी उस के अत्याचार से न बच सके। इस हत्या काण्ड से घबरा कर नगर वासियो ने मिल कर उससे बडी अनुनय–विनय की कि कोई नियम बना ले। लोगों ने कहा— इस प्रकार मनमानी हत्या करना तुम्हारे भी हक मे ठीक नही है। अन्न, दही, मदिरा आदि तरह तरह के खाने की वस्तुए जितनी तुम चाहो उतनी हांडियों में भर कर व बैल गाडियो मे रख कर हम तुम्हारी गुफा मे प्रति सप्ताह पहुंचा दिया करेंगे। गाडी हाकने वाले आदमी और बैल भी तुम्हारे खाने के लिए होगे। इन को छोड़ कर अन्य किसी को तंग न करने की कृपा करो।" बकासुर ने लोगो की यह बात मान ली और तब से इस समझौते के अनुसार यह नियम बना हुआ है कि लोग बारी बारी से एक एक आदमी और खाने पीने की वस्तुएं प्रति सप्ताह उसके पास पहुचा देते है। और इसके बदले मे यह बलशाली पिशाच बाहरी शत्रुओं और हिंस्र पशुओं से इस नगर की रक्षा करता है।

"जिस किसी ने भी इस मुसीबत से इस नगर को बचाने का प्रयत्न किया, उसको तथा उसके बाल बच्चों को इस पिशाच ने तत्काल ही मार कर खा लिया। इस कारण किसी का साहस नहीं पडता कि कुछ करे। तात! इस देश का राजा इतना कायर है कि उससे कुछ नहीं होता जिस देश का राजा अपनी जनता की रक्षा नही कर सकता, अच्छा है उस देश के नागरिको के बच्चे ही न हों। अब हमारी व्यथा यह है कि इस सप्ताह मे उस नर पिशाच के खाने को आदमी और भोजन भेजने की हमारी बारी है। किसी गरीब आदमी को खरीद कर भेजना चाहू तो इतना धन भी मेरे पास नही है, धनवाण तो ऐसा ही करते हैं। मैं इन बच्चों को छोड

कर चला जाऊ या स्वय बच कर पत्नी या बालको मे से किसी को भेजू यह मुझ से नही हो सकता, अतएव अब तो मैंने यही निश्चय किया है कि हम सभी एक साथ उस पिशाच के पास चले जायेंगे। यही हमारी व्यथा है, आप ने पूछी सो बता दी देव, भला आप इस सकट मे हमारी क्या सहायता कर सकते हो। भीम ने यह सुन कर मुस्कराते हुए उत्तर दिया—प्रिय वर ! आप इस बात की चिन्ता छोड दें। तुम्हारे स्थान पर उस नर भक्षक वकासुर के पास आज भोजन ले कर मैं चला जाऊंगा।

भीम की बाते सुन कर ब्राह्मण चौंक पड़ा और बोला—"आप भी कैसी बात कहते हैं। आप हमारे अतिथि हैं। आपको मृत्यु के मुंह में भेजू, यह कहा का न्याय है? देव, मुझ से यह नही हो सकता।"

ब्राह्मण को समझाते हुए भीम बोला— द्विज वर ! घबराइये नही। मैं ऐसे मत्र सीखा हुआ हूं कि जिसके बल से इस अत्याचारी पिशाच की एक न चलेगी. उसका भोजन बनने की बजाय उसे ही मार करके लौटूंगा। कई बलिष्ट पिशाचों व राक्षसों को इन हाथों से मारे जाते मेरे भाईयों ने स्वय देखा है। इस लिए आप चिन्ता न करे। हां इस बात का ध्यान रक्खे कि इस बात की किसी को कानो-कान खबर न हो, क्योंकि यह बात फैल गई तो फिर मेरी विद्या अभी काम न देगी।"

भीम को डर था कि यह बात फैल गई तो दुर्योधन और उस के साथियो को पता चल जायेगा कि पाण्डव एक चक्रा नगरी मे छुपे हुए हैं। इसी लिए उसने इस बात को गुप्त रखने का आग्रह किया था। ब्राह्मण को जब विश्वास हो गया कि वास्तव मे इस के पास एक विचित्र विद्या है, जिसके बल से वह पिशाच को मार सकता है, और उसका बाल बाका भी न होगा, तो उसने भीम की बात मान ली। इस से ब्राह्मण परिवार की सारी व्यथा का अन्त हो गया और अपने अतिथियो के प्रति उन्हे बड़ी श्रद्धा हो गई।

भीम को जब निश्चय हो गया वह बकासुर के पास भोजन सामग्री ले कर जा सकता है तो वह फूला न समाया। उसके अग

अंग में बिजली सी दौड गई। जब चारों भाई भिक्षा ले कर लौटे तो उन्होने देखा कि भीमसेन के मुख पर असाधारण आनन्द की झलक है। युधिष्ठिर ने तत्काल ताड लिया कि भीमसेन को कोई बडा कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उन्होने पूछा—आज भीमसेन बड़े प्रसन्न चित्त प्रतीत होते हो, क्या कारण है? क्या आज तुमने कोई भारी काम करने की ठानी है?

भीम ने उत्तर में सारी बात कह सुनाई। युधिष्ठिर ने सुन कर कहा—यह तुम कैसा दुस्साहस करने चले हो तुम्हारे ही वलबूते पर तो हम निश्चिंत रहते हैं। तुम्हारे अपार साहस से हम लाख के महल से जीवित यहाँ तक चले आये। तुम्हारे ही वल पर हम दुर्योधन से अपना राज्य छीनने की आशा लगाए बैठे है। ऐसे साहसी व बलिष्ट भाई को हम कैसे हाथों से गवा सकते है। गवाने की आप को खूब सूझी?

युधिष्ठिर की इन बातों के उत्तर में भीम बोला—जिस ब्राह्मण के घर मे हम इतने दिनों से आश्रय पाये हुए है। जिसके घर हम छुपे है, जिसने सदा ही हम से प्रेम प्रदर्शित किया, जब उस के परिवार पर विपत्ति पडी तो क्या मनुष्य के नाते हमे उसके दुख को दूर करना नही चाहिए? भाई साहब हम उस के उपकारों से उऋण इसी प्रकार हो सकते है। मुझे अपने बल पर गर्व है। मैं अपनी शक्ति को खूब जानता हू। तुम इस बात की चिन्ता मत करो जो वारणावत से आप को यहा उठा लाया, जिस ने हिडिंब का वध किया, उस भीम के बारे मे आप को न कुछ चिन्ता करनी चाहिये और न भय। मेरा वकासुर के पास जाना ही कर्तव्य है।

इसके पश्चात नियमानुसार—नगर वासी मदिरा, अन्न, दही आदि खाने पीने की वस्तुए गाडी मे रख कर ले आये। उस गाडी में दो काले वैल जुडे हुए थे। भीमसेन हसता हुआ उछल कर गाडी मे बैठ गया। ब्राह्मण परिवार मन ही मन उसकी विजय की कामना करने लगा। नगर वासी भी बाजे वजाते हुए कुछ दूर तक उसके पीछे चले। एक निश्चित स्थान पर लोग रुक गए और अकेला भीमसेन गाडी दौडाता हुआ आगे चल पडा। उस समय

शेष चारो भाई भीम को हसरत भरी नज़रों से देख रहे थे।

गुफा के निकट पहुच कर भीमसेन ने देखा कि चारो ओर स्थान स्थान पर हड्डियाँ ही हड्डिया बिखरी पडी है। रक्त के चिन्ह, मनुष्यो व पशुओं के बाल खाल इधर उधर पडे हुए हैं। चारो ओर बडी दुर्गंध आ रही है। आकाश मे गिद्ध और चीले मण्डरा रही हैं।

इस का भी भत्स दृश्य की तनिक भी चिन्ता न करते हुए भीम ने गाड़ी वहीं खड़ी करदी। और सोचने लगा कि—"गाडी में बड़ा स्वादिष्ट भोजन लगा है ऐसा खाना फिर कहां मिलेगा। बकासुर का बध करके यह भोजन खाना ठीक नही होगा, क्योकि मार धाड में क्या पता यह वस्तुएं बिखर कर खराब हो जायें और किसी काम की भी न रहे। इस लिए यही ठीक है कि इन्हे यहीं सफ़ा चट कर जाऊ।"

उधर बकासुर मारे भूख के तडप रहा था। जब बहुत देर हो गई तो बड़े क्रोध के साथ गुफा से बाहर आया। देखता क्या है कि एक मोटा सा आदमी बडे आराम से बैठा हुआ भोजन कर रहा है। यह देख कर बकासुर की आँखे लाल हो गई। इतने में भीम सेन की नज़र भी उस पर पड़ी। हसते हुए उसे पुकार कर कहा—"बकासुर कहो, चित्त तो प्रसन्न है!"

भीम सेन की इस ढिठाई को देख कर बकासुर क्रोध से जल उठा और तेज़ी से भीमसेन पर झपटा। उस का शरीर बडा लम्बा चौडा था। सिर और पूछो के बाल भी आग की तरह लाल थे। मुह इतना चौड़ा था कि लगता था इस कान से उस कान तक फटा हुआ है। स्वरूप इतना भयानक था कि देखते ही रोंगटे खड़े हो जाये।

भीमसेन ने जब बकासुर को अपनी ओर आते देखा तो उसकी ओर से पीठ फेर ली और कुछ भी परवाह किए बिना खाने मे ही लगा रहा बकासुर ने निकट आ कर भीम सेन की पीठ मे जोर से एक मुक्का मारा: पर जैसे उसे तो कुछ हुआ ही नही। वह

शांति पूर्वक बैठा हुआ दही खाता रहा। तब बकासुर को और भी अधिक क्रोध आया और उस ने अधिकाधिक जोर से प्रहार करने आरम्भ कर दिये। भीम सेन जब दही खा चुका तब पलट कर उसकी ओर रुख किया, हंस कर बोला—"बकासुर! तू तो थक गया होगा, कुछ आराम करले।" बकासुर इस उपहास से चिड़ गया और एक सूखे वृक्ष को उठा कर उस के ऊपर दे मारा। परन्तु भीम सेन विद्युत गति से ऐसा छिटका कि वृक्ष की एक टहनी भी उसके शरीर को न लगी। उलटा बकासुर ही वृक्ष के साथ पृथ्वी पर आ गिरा। भीम सेन ने दौड़ कर एक ऐसी ठोकर मारी कि बकासुर औधे मूह भूमि पर गिर पड़ा। भीम ने कहा—"ले अब कुछ देर आराम से सुस्ताले।" बकासुर थक गया था, कुछ देर तक वह न उठ सका। तब भीम ने उसे ठोकर मार कर कहा—"अब उठ और सामना कर।"

बकासुर उठा और उस पर आक्रमण करने को बढा पर भीम ने पहले ही प्रहार कर दिया, वह बार बार उस के प्रहारों को रोकने का प्रयत्न करता पर लड़खडा कर गिर पडता। आखिर एक बार भीम ने उसे पकड कर सिर से ऊपर उठा लिया और कहने लगा "बकासुर तू खाता तो बहुत है। इस नगर के कितने ही निरपराधी मनुष्यो को तू खा चुका। नगर से आये हुए स्वादिष्ट भोजनो से तू वर्षों से पेट पूजा करता रहा है। पर तुझ मे न वजन है और न बल। बिल्कुल गिद्ध ही रहा। ले अपनी नर्क गति को जा।"—और उसे इस जोर से एक शिला पर पटखा कि बकासुर के प्राण पखेरु उड़ गए। उस के मुह से रक्त की धारा बह निकली।

कुछ लोगो का मत है कि भीम ने अपने घुटने से उसकी रीढ की हड्डी तोड दी थी। जो भी हो भीमसेन की मार से उस नर-भक्षी का प्राणान्त हो गया। तब भीमसेन ने उसे बार बार उलट पलट कर देखा और जब उसे विश्वास हो गया कि बकासुर ससार से चल बसा तो उसने शव को घसीट लिया और नगर के फाटक पर ले जा कर फटक दिया। फिर घर जा कर स्नान किया और भाइयो से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह आनन्द और गर्व के मारे फूले न समाये

नगर पर वकासुर का शव पडा देख कर सारे नगर वासी प्रसन्न हो कर उसे देखने एकत्रित हो गए। उसकी भैंस सी विशाल काया को क्षत विक्षत देख कर उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। वह कौन महाबली है जिसने इस नर पिशाच से हमे अभय प्रदान किया ? यह प्रश्न सब की जिह्वा पर थिरक रहा था। आज किसकी बारी थी इस राक्षस के पास जाने की इस बात की अण्वेषण करते २ नगर निवासी उसी ब्राह्मण के घर पहुचे। जहाँ पाण्डव भीम के शरीर को मर्दन कर रहे थे। हो रही चेष्टा को और भीम को देखते ही वे पहचान गये कि यही वीर पुरुष है जिसे पक्वान्नादि देकर विदा किया था। और इसी के महापराक्रम से आज समस्त नगर वासियो को जीवन दान प्राप्त हुआ है। हर्षोन्मत हुए नागरिकों ने पाण्डवों को घेर लिया और नाचने कूदने एव जय जयकारो से आकाश को गुजायमान करने लगे।

युधिष्ठिर भीम आदि पांडव जिस स्थिति से वचे रहने के प्रयत्न मे वेश परिवर्तन रूप पटाक्षेप किये हुए थे दुर्दैव कहिए अथवा सद्‌भाग्य प्रकृति के एक सकेत ने ही उस छद्मवेश को समाप्त कर दिया।

एक चक्री नगर के निवासी अपने उपकारी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन तो कर रहे थे परन्तु अभी तक उन्हे यह पता नही था कि यह समर्थ पुरुष वास्तव मे है कौन ? इसी समय वहाँ के युवराज ने कुछ सेवको सहित वहां पदार्पण किया, जो कि इसी अन्वेषण मे निकला था। कि अन्ततः ऐसा कौन पराक्रमी है जिसने चिरकालीन हमारे मस्तक कलंक को दूर कर यशस्वी वनाया है ?

नगर वासियों के आश्चर्य एवं हर्ष का पारावार उमडपडा जब कि युवराज ने पांडवो को देखते ही पहचान कर राजराजेश्वर युधिष्ठिर धर्मराज की जय! के नारे लगावे एवं झुक २ कर नमस्कार करना आरम्भ कर दिया। वेशक पाँडवों ने वेप वदला हुआ था परन्तु राजसूय यक्ष के समय अच्छी प्रकार से परिचय प्राप्त किये हुए युवराज को, पांडवों को पहचानने में देरी न लगी। पाडवों के वनवास आदि घटना से युवराज पूर्ण परिचित था अत; उसे

वस्तुस्थिति के परखने मे देर नही लगी। नाना प्रकार से कृतज्ञता प्रगट करने के पश्चात अनुरोधपूर्वक द्रौपदी सहित पांडवो को राज भवन मे ला कर उनकी सब प्रकार से सेवा सुश्रूषा करने में राज परिवार ने अपना परम सौभाग्य समझा। इस प्रकार पांडवों की सेवा प्राप्ति एव वकासुर के उपद्रव निवृति रूप दुहरे हर्ष मे एक चक्री नगरी आनन्द मे तन्मय था।

कोई नही चाहता था कि पाडव यहा से जाये परन्तु युधिष्ठिर ने समझाया कि हम प्रतिज्ञानुसार वन में ही निवास करना चहते हैं। कौरवो की बिना अनुमति के, कि जिन से हम वचन बद्ध हैं, अधिक समय तक नगर में निवास करना नैतिकदृष्टि से हमारे लिए ही हानिप्रद होगा। और कुछ दिवस आतिथ्य ग्रहण कर समस्त राज परिवार राज कर्मचारी एवं नगर निवासियो की साश्रुपूर्ण विदाई ले द्रौपदी सहित पाडवो ने वन-प्रस्थान किया।

प्रश्न यह है कि वकासुर कौन था?

आइये उस का सक्षिप्त वृतांत सुनाए। वह एक नरेश था, पर अपने मूर्ख और पापी परामर्शदाताओ, सखाओ और मित्रों के सगति से उसमे मास भक्षण का दुर्व्यसन पड़ गया था। एक वार उसकी रसोई के कर्मचारियो ने उस के लिए मास का प्रवन्ध न देख कर स्मशान भूमि से एक मृत वालक का मास ला कर पका दिया। उस दिन के मास का स्वाद भिन्न पा कर उस ने रसोइयां से इसका रहस्य पूछा। जब उसे पता चला कि यह मास वालक का था तो उसनें भविष्य में मनुष्य का मास खाने का ही निश्चय कर लिया। वह वालकों को पकड़वा मगवाता और उनका मास खा जाता। उसके इस घोर अन्याय से प्रजा विद्रोही हो गई। अन्यायी नरेश का सिंहासन पर आरूढ रहना देश के लिए कलक की वात है। उसे सिंहासन च्युत कर देना ही जनता का धर्म है इस सिद्धान्त के अनुसार जनता ने विद्रोह किया और उसे मार भगाया। तव वह एका चक्री नगर के पास की एक गुफा मे रहने लगा और इक्के दुक्के व्यक्तियो का वध करके खा जाता। कुछ दिनों पश्चात वह इतना वलिष्ट हो गया कि सारा नगर मिल कर भी उसे न पछाड़ पाया।

इधर सिंहासन पर एक निकम्मा शासक विराजमान हुआ, उसकी दुष्टता से कभी भी प्रजा एक हो कर उस दुष्ट बकासुर के विरुद्ध न लड पाती। अकेला एकाचक्री नगर उस पर काबू न पा सकता था।

अन्य नगरों की जनता खामोश थी, उसे इस निकम्मे शासक की कुनीतियो के चक्र से ही फुरसत न मिलती थी। और शासक इस वात को समझता था कि यदि नगर से प्रति सप्ताह एक व्यक्ति ले कर बकासुर शत्रुओं से मेरे राज्य की रक्षा करता रहे तो घाटे का सौदा नही है। इस प्रकार बकासुर एकाचक्री नगर के रहने वालो के सिर पर लदा हुआ था। जिस का नाश अन्त मे महाबली भीमसेन के हाथो हुआ।

वीर पुरुष अपने पौरुष से प्रजा के दुखो को दूर करने मे कभी नही हिचकते। वे दूसरो की रक्षा के लिए अपने को भी संकट में डालने पर हर्ष अनुभव करते हैं।—

—एक विचारक

निकम्मे, अन्यायी और मदांध शासन को उखाड़ फेंकना जनता का कर्त्तव्य है। ....

.. क्रूर और जन द्रोही अन्त में विनाश को प्राप्त होते है ...।

मुनि शुक्ल चन्द्र

* एकादश परिच्छेद *

गंधर्वों से मित्रता

अनेक कष्ट हसते—हसते सहन करते हुए पाण्डव वन मे जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक ओर तो उन्हें हिंसक पशुओ से अपनी रक्षा और जीवनयापन की समस्या को हुलझानें में सदैव सजग और सतत्त प्रयत्नशील रहना पडता; दूसरी ओर उनकी ख्याती एक चक्री नगर के प्रकरण को ले कर दूर—दूर तक फैल चुकी थी। लाक्षाभवन के दाह के कारण पाण्डवों के दाह की जो भ्रान्ति चारो तरफ फैलाई थी, वह दूर हो गई थी, जिस के कारण अनेक ब्राह्मण, मित्र श्रद्धालु भक्त आदि उन के पास पहुच जाते। अतिथि सत्कार उन के लिए कई वार तो बडी ही विकट समस्या बन जाती। पर युधिष्ठिर कभी पीछे न हटते, स्वय भूखा रहना पसन्द करते, पर अतिथि का समुचित सत्कार करते। कहते हैं एक वार दुर्योधन ने कुछ लोगो को यह कहला दिया कि बन में युधिष्ठिर मुक्त हस्त से दान दे रहे है। भिक्षा माँग कर उदर पूर्ति करने वाले, दरिद्री और दान से जीवन यापन करने वाले ब्राह्मणो का एक बड़ा दल दान के लोभ मे पाण्डवो के आश्रम पर पहुच गया और उस ने अपन आने का कारण कह सुनाया।

युधिष्ठिर क्रुद्ध नही हुए बल्कि उन्हो ने जो भी सम्भव हो सका, जो उनके उस समय पास था, दान मे सब कुछ दे दिया। वनवास में भी उन्हो ने अपने स्वभाव का परित्याग नही किया।

उधर एक चक्री नगर का समाचार जब दुर्योधन को मिला, तो जैसे उसके स्वप्नो पर भयंकर वज्रापात हुआ हो। वह बहुत चिन्तित हो गया। उसके लिए लाख के महल से पाडवों का बच निकलना और इतने दिनो तक पता भी न लगना, एक अद्भुत बात प्रतीत हो रही थी। वह जितना ही इस रहस्यमयी बात पर विचार करता था, उतना ही उसे अपने सहयोगियों और अपने भाग्य पर अविश्वास होता जाता था। वह मन ही मन मे पुरोचन को गालिया देने लगा। और अपनी योजना की असफलता का उत्तरदायित्व उसी के सिर थोपने लगा। दुशासन और दुर्योधन, दोनों भाई अपने भाग्य पर अश्रुपात करने लगे।

उन्हो ने अपना दुखडा शकुनि को सुनाया—"मामा! अब बताओ क्या करें? दुष्ट पुरोचन ने हमे कही का भी नही छोडा। लाक्षाभवन की घटना को लेकर ससार का प्रत्येक विचारशील व्यक्ति हमें घृणा की दृष्टि से देखेगा। इससे हमे लाभ होने की अपेक्षा पाडवों को ही लाभ हुआ है। इत्यादि अनेक प्रकार से पछताते हुए अपने सिर को पीटने लगे।

पांडवो के प्रति दबी हुई ईर्षा की अग्नि उस के हृदय मे और भी प्रबल हो उठी। और पुरातन शत्रुता फिर से जाग उठी। फन कुचले सर्प की तरह दुर्योधन भयंकर रूप से विषवमन एव चोट करने की सुविधा मे घूमने लगा।

\+ × + × + + ×

एक बार अर्जुन गाण्डीव धनुष को हाथ में लेकर वन की सैर को निकला और सुर प्रेरणा से एक पहाड पर चला गया। अर्जुन एक शिला पर बैठ कर सुस्ताने लगा कि तभी एक विकराल

मूर्ति दीर्घ कृष्ण काम भील दूसरी ओर से आ निकला। उस के हाथ में प्रचन्ड धनुष बाण था, नेत्र चडे हुए थे। अर्जुन ने व्यग करते हुए कहा—'हे बनवासी! इस धनुष को क्यो उठाये फिरता है। यह तो किसी रण वीर के हाथ में ही शोभा देता है। तू क्यों व्यर्थ ही बोझ ढो रहा है।"

"तो मैं क्या रण वीर नहीं हूं?" क्रुद्ध होकर भील ने पूछा।
अर्जुन उसको बात पर हस पड़ा।
भील को बहुत क्रोध आया।

"रे युवक! साहस है तो मेरा सामना कर, मेरा रण कौशल देख, मेरी वीरता का स्वाद चख। क्षण भर मे यम लोक पहुच जायेगा, तब तुझे मेरे शौर्य का ज्ञान होगा?" भील बोला—और उस ने धनुष पर बाण चढाना आरम्भ कर दिया।

अर्जुन ने कहा—"जा, जा क्यो अपनी शामत बुलाता है, अपना रास्ता नाप।"

परन्तु भील तो अपना धनुष सम्भाल चुका था, अर्जुन को भी गाण्डीव उठाना पडा। दोनो में भयकर युद्ध होने लगा। दोनो ओर से चलने वाले तीरों का एक मण्डप सा बन गया। उस समय क्रोध युक्त होकर अर्जुन ने जितने तीर छोडे, भील ने सभी को निष्फल कर दिया। धनुष युद्ध को व्यर्थ समझ कर अर्जुन ने मल्ल युद्ध आरम्भ कर दिया। भील ने भी अपनी भुजा और ताल ठोक कर सामने आ गया। दोनो परस्पर भिड गए। खूब गुत्थम गुत्था हुए, परन्तु अन्त मे इस युद्ध मे भी अर्जुन ने उस भील को परास्त करने का उपाय उसकी समझ न आया, परन्तु उसने आशा नही छोड़ी। वह उदासीन न हुआ, साहस का दामन अभी तक उसने न छोड़ा था। इतने मे उसका दाव लग गया और उसने भील के दोनों पैर पकड़ कर चारो ओर चक्र की भाति इस जोर से घुमाया कि बेचारा भील अर्धमृत समान हो गया। अर्जुन उसे पृथ्वी पर पटकना ही चाहता था, जिस से किसो शिला से टकरा कर उस के प्राण पखेरू उड़ जाते, कि अनायास ही वह भील आभूषण आदि

से भूषित हो दिव्य रूप मे दिखाई दिया। अर्जुन अनायास ही उस के इस विचित्र परिवर्तन को देख कर आश्चर्य चकित रह गया। तुरन्त उसे छोड दिया और इस परिवर्तन के रहस्य पर विचार करने लगा।

उसी समय उस ने अर्जुन को पृथ्वी तक मस्तक झुका कर विनय पूर्वक प्रणाम किया और बोला—हे पार्थ ! मैं आप की वीरता साहस और असीम बल से बहुत हो प्रभावित हुआ हू। आप के दर्शन करके मुझे जो प्रसन्नता हुई है, उसे कह नही सकता इस हर्ष के समय आप मुझ से जो चाहे माग ले, आप की प्रत्येक कामना को पूर्ण करके मैं प्रसन्नता अनुभव करूगा।

अर्जुन उसकी इस बात को सुन कर चकित ही रह गया, वह उसे बडी विचित्र बात दिखाई दी, सोचने लगा कि इस से क्या मागू ? पता नही कितनी शक्ति है इसके पास ? कहा तक यह मुझे दे सकता है। यह बात उसको समझ मे न आई। तदापि उसने इस अवसर को भी हाथ से न जाने दिया, वह बोला—"यदि आप मुझ पर इतने दयालु है. तो कृपया आप मेरे सारथी बन जाइये।"

"तथास्तु"—वह बोला।

"आप अपना परिचय तो दें। नाम, धाम और यहां आने का कारण सभी कुछ बताइये।" अर्जुन ने कहा।

उत्तर मे वह कहने लगा— 'मैं कौन हू, यहां क्यो आया और क्या चाहता हूं ? यह एक बडी कथा है। आप बैठ जाइये और ध्यान पूर्वक सुनिये।

इतना कह कर वह स्वय भी बैठ गया, अर्जुन बैठ कर उसकी कथा सुनने लगा—उस ने कहना आरम्भ किया— हे पार्थ ! इसी भरत क्षेत्र मे विजयार्द्ध नामक एक सुन्दर पहाड है उसकी दक्षिण श्रेणी मे इथनू पुर नामक एक नगर है, जो कि अपने विशाल कोट आदि से अत्यन्त शोभायमान है। वहाँ का राजा विद्युत प्रभ था वह नमि के वश का एक गुणवान एव सुशील पुरुष था। अपने कौशल

और शुद्ध चरित्र के कारण वह विद्याधरो का अधिपति था। उसके दो पुत्र थे, एक का नाम इन्द्र और दूसरे का विद्युन्मालो था। विद्युत प्रभ ससार से विरक्त हो गया, उसने अपना राज्य इन्द्र को सौंप दिया और बिद्युन्माली को युवराज पद से विभूषित कर दिया।

युवराज विद्युन्माली ने कुछ दिनो पश्चात प्रजा पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। वह नगर वासियो की सुन्दर स्त्रियो और युवा कन्याओ का अपहरण कर लेता, धनिकों को दिन दिहाडे लूट लेता, इसी प्रकार के अन्य जघन्य अत्याचार वह करता। जिसके फल स्वरूप सारे नगर मे उपद्रव होने लगा। जनता विद्रोही हो गई। वह राज वश को अपना शत्रु समझ कर उसे उखाड़ फेंकने का उपाय करने लगी। परिस्थिति का मूल्याकन करके इन्द्र बहुत चिन्तित हो गया। उसने अपने भाई को एकान्त मे बुला कर समझाया कि—"जनता ही जनार्दन होती है। राज्याधिकारी जब प्रजा को अपनी पाप कामनाओं का शिकार बनाने लगते हैं, तो वही प्रजा जो पहले उनके प्रत्येक आदेश को सहर्ष स्वीकार करती रहती है, अन्त मे अपना शत्रु समझ कर उन पर टूट पडती है। कोई भी राज प्रजा की इच्छा विना जीवित नही रह सकता। इस लिए तुम अपने इस पापाचार को बन्द करो, प्रजा को सन्तुष्ट करो और सुपथ पर आ कर प्रजा की सेवा मे तन, मन, धन लगाओ। यही कल्याण मार्ग है।"

परन्तु जिस जीव का भवितव्य ही अच्छा न हो उस को शुभ शिक्षा भी रुचिकर नही होती। वह तो कुपथ छोड कर सुपथ पर आने की अपेक्षा इन्द्र को ही अपना वैरी समझने लगा। वह समझता था कि वह राजा है, तो उसे अपनी प्रजा पर मन इच्छित अत्याचार करने का पूर्ण अधिकार है। और इन्द्र जो उसे ही जनता के विद्रोह का कारण समझता है, उस जनता का हिमायती है जो अपने युवराज के विरुद्ध विद्रोह करने का दुस्साहस कर रही है।

इन्द्र को उसके रंग ढग अच्छे नही लगे। उसने उसे बुला कर कहा—"विद्युनमाली! तुम हमारे वश को कलकित कर रहे हो। तुम्हारे कारण हम किसी को मुख दिखाने लायक भी नही

रहे। अपनी करतूतो को बन्द करो, वरना मुझे राजा का कर्तव्य पालन करते हुए कुछ करना होगा।"

विद्युन्माली भला इन्द्र की बात का कोई उचित मूल्य क्यों आकता? वह तो मदान्ध था पाप ने उस की बुद्धि हर ली था। क्रुध हो कर महल से भाग गया और बाहर रह कर लोगो को लूटने खसोटने लगा। कुछ दिनो पश्चात वह खर दूषण के वशजो के साथ स्वर्णपुर चला गया और उनके साथ रहने लगा।

अब वह खर दूषण के वशजो को साथ ले कर वार वार राज्य पर आक्रमण कर देता है, जनता को लूटता है, लोगो की वहू बेटियो की लाज लूटता है राज्य को क्षति पहुंचाता है और वापिस चला जाता है। राज्य की शाति भग हो गई है, लोग चिन्तित हैं। शत्रुओ ने इन्द्र को मिटा डालने की कसम खा रक्खी है।

मैं उसी इन्द्र के सेनापति विशालाक्ष का पुत्र हू, नाम है चन्द्र शेखर। मेरे पिता का स्वामी शत्रुदल से सदा ही भयभीत रहता है, मैं उसकी यह दशा न देख सका और एक निमित्तज्ञ से पूछा कि इन्द्र की मुसीबतो को दूर करने वाला, शत्रुदल का सहारक कौन होगा? उस ने मुझे बताया कि जो मनोहर गिरि पर तुम्हे परास्त कर देगा वही इन्द्र की समस्त विपदाओ का अन्त कर सकता है। वही, रथनुपुर की जनता के कष्टों का निवारण करेगा।

वस मैं उसी भविष्यवक्ता के वचन पर विश्वास करके भेप वदल कर यहा रहता था, अहो भाग्य! आज आपके दर्शन हो गए। आप से प्रार्थना है कि मेरे साथ चलिए और इन्द्र को सकटों से उवारने का प्रयत्न कीजिए क्योकि आप ही इस मे समर्थ हैं।

चन्द्रशेखर की वातो को सुन कर अर्जुन वोला—"यदि मेरे द्वारा कोई व्यक्ति सुखी हो सकता है, तो मैं उसे सुखी देखने के लिए अपने प्राणो पर भी खेल सकता हूं।

वे दोनो एक वायुयान द्वारा वहा से चल दिए और कुछ ही समय मे विजयार्द्ध महागिरि पर पहुच गए। चन्द्रशेखर ने जा कर

इन्द्र को अर्जुन के आने का शुभ समाचार सुनाया। इन्द्र स्वय अपने साथियो सहित स्वागत को आया, उसने वहुत ही आदर सत्कार किया।

दूसरी ओर शत्रुदल को भी किसी प्रकार यह समाचार मिल गया कि प्रसिद्ध धनुर्धारी अर्जुन इन्द्र के यहा विराजमान है। अत: उन्होने तुरन्त वायुयानो से आ कर सारे नगर को घेर लिया। रण भेरी वज उठी। अर्जुन भी इन्द्र के साथ मोर्चे पर आ डटा। चुनौती स्वीकार कर ली और युद्ध के लिए तैयार हो गया।

दोनो ओर से महा भयानक युद्ध होने लगा। कुछ ही देर मे अर्जुन समझ गया कि विकट शत्रुदल का सामना है। उसे साधारण वाणो से नही जीता जा सकता। अत. उसने दिव्यास्त्रो को सम्भाला कितने ही शत्रुओ को उसने नाग पाश मे वाध लिया, कितनो को अग्नि वाण से भस्म कर डाला, और अनेक को अर्धचन्द्र वाण से छिन्न भिन्न कर डाला। इस प्रकार तीन दिन घमासान युद्ध मे अर्जुन ने शत्रुदल को समाप्त कर दिया और विजय के वाजे वजा कर, जय घोष के साथ इन्द्र सहित महल को वापिस आ गया।

सारे नगर मे हर्ष छा गया, नर नारी अर्जुन की प्रशसा करने लगे, समस्त गधर्व उसके सामने नत मस्तक हो कर उसकी सेवा मे लग गए। सभी गधर्व उसका गुणगान करने लगे और उसके मित्र हो गए। गधर्वो का प्रमुख नेता चित्रागद अर्जुन का घनिष्ठ मित्र हो गया। चित्रांगद के साथ अर्जुन ने विजयार्द्ध की दोनों श्रेणियो का भ्रमण किया।

धनुर्विद्या-विशारद चित्रागद अपने सह योगियो सहित अर्जुन की सेवा मे रहता। अन्त में अर्जुन अपने भाईयो के पास वापिस चला आया। चित्रागद अन्य गधर्वो सहित उसके साथ था, इन सभी ने कितने ही दिनो तक पाण्डवो की सेवा की और हर प्रकार से सहायता करते रहने का वचन दिया।

* द्वादस परिच्छेद *

पांसा पलट गया
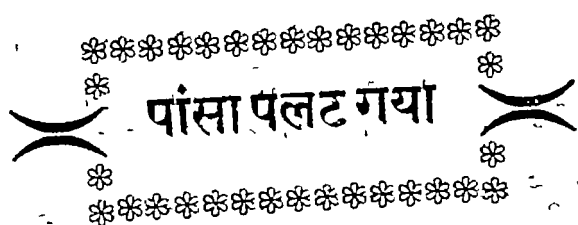
पाण्डवो के पास कितने ही ब्राह्मण और दर्शनाभिलाषी लोग आते रहते थे, जो भी हस्तिनापुर पहुचता, उसी से दुर्योधन पाण्डवो की दशा के सम्बन्ध मे पूछता। जो कोई उससे कहता कि पाण्डव बहुत दुखी है, वडे कष्ट उठा रहे है, दुर्योधन वडा प्रसन्न होता। यह सुन कर उसे सन्तोष मिलता कि पाण्डव त्रसित हैं। वे दुखो मे हैं, असह्य कष्टो का सामना कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र जब किसी से सुनते कि पाण्डव वन मे, आधी पानी और धूप मे तकलीफें उठा रहे हैं, वडी यातनाए वे सहन कर रहे है, तो उनके मन मे चिन्ता होने लगती। सोचने लगते कि इस अनर्थ का अन्त क्या होगा ? इस के फल स्वरूप कही मेरे कुल का सर्वनाश न हो जाय।

वह सोचते—"भीम का क्रोध यदि अब तक रुका हुआ है तो युधिष्ठिर के समझाने बुझाने से। वह कब तक अपना क्रोध रोक सकेगा ? सन्तोष की भी तो सीमा होती है। किसी न कीसी दिन पाण्डवो का क्रोध सन्तोष का वाध तोड़ कर ऐसा तूफान की भाति निकलेगा कि जिसमे सारे कौरव-वश का सफाया हो जायेगा।

यह सोचते ही धृतराष्ट्र का हृदय काप उठता।

कभी कभी वे सोचने लगते कि— "भीम और अर्जुन जरूर बदला लेंगे। पर दुर्योधन, दु शासन और शकुनि न जाने क्यो उस तूफान के बारे मे कुछ नही सोचते। वे तो अपनी क्रूरता की पराकाष्टा करने पर उतारू हैं। वे क्यो नही देखते कि भीम जैसा काला नाग उनके वश को ही डस जाने को तैयार है।"

वे कभी अपनी ही भूल के लिए अपने को धिक्कारते। कभी दुर्योधन को दोषी ठहराते, कभी शकुनि और कर्ण को। वे इसी चक्कर मे चिन्तित रहते। पर वे कोई उपाय ऐसा नही ढूढ पाते कि जिससे इस द्वेष के दावानल को शान्त किया जा सके।

किन्तु दुर्योधन और शकुनि बहुत प्रसन्न थे और यदि कभी कुछ सोचते भी पाण्डवो को दुख देने के उपाय। एक बार कर्ण और शकुनि दोनो दुर्योधन को चापलूसी की बाते करके शब्दो द्वारा पृथ्वी से उठा कर आकाश पर रख रहे थे, और बारम्बार उसकी बुद्धि की सराहना कर रहे थे कि उसने ऐसा विचित्र उपाय किया जिस से युधिष्ठिर की राज्य-श्री अब उस की तेज और शोभा बढ़ा रही है। तभी दुर्योधन बोला- "तुम लोगो के सहयोग से ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। पर मैं पाण्डवों को मुसीबतो में पडे हुए अपनी आखो से देखना चाहता हू और यह भी चाहता हू कि दुखो से पीडित पाडवो के सामने अपने सुख भोग और ऐश्वर्य का भी प्रदर्शन करू, जिससे उन्हे अपनी दयनीय दशा का कुछ पता तो चले। झोंपड़ी में रहने वाला पीडित व्यक्ति अपनी पीडा का सही मूल्यांकन तब तक नही कर सकता जब तक वह किसी ऐश्वर्यवान, वैभवशाली महल के निवासी के ठाठ को नही देखता। जब तक शत्रु के कष्टों को हम अपनी आखो से नही देख लेगे तब तक हमारा आनन्द अधूरा ही रह जायेगा। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे हमारी यह इच्छा भी पूर्ण हो जाये।"

शकुनि ने उत्साहित हो कर कहा—"उपाय......? उपाय की इस मे क्या बात है। चलो चले ठाठ बाठ के साथ। यह भी

कोई बडी बात है ?

कर्ण ने कहा— "दुर्योधन ! यदि मेरी बात मानो तो सैन्य बल के साथ चलो और बन मे उन्हे जा कर घेर लो। बडा आनन्द आयेगा। थोडे से ही बल से काम चल जायेगा।"

दुर्योधन गम्भीरता पूर्वक बोला— "तुम लोग उसे जितना आसान समझते हो, उतनी आसान बात नही है। बात यह है कि पिता जी पाण्डवो मे हम से अधिक तपोबल समझते हैं। इसी से वे पाडवो से कुछ डरते हैं। इसी कारण वन मे जाकर पाण्डवो से मिलने की आज्ञा देने मे वे वे झिजकते है। वे डरते है कि कही इससे हम पर कोई आफत न आ जाये। लेकिन मैं कहता हू कि यदि हम ने द्रौपदी और भीम को जगल मे पडे कष्ट उठाते न देखा तो हमारे इतने करने-धरने का लाभ ही क्या हुआ ? मुझे बस इतने से सन्तोष नही है कि पाडव बन मे कष्ट उठा रहे हैं और हमे उनका इतना विशाल राज्य मिल गया है। मै तो अपनी आखो से उनका कष्ट देखना चाहता हू। इस लिए कर्ण ! तुम और शकुनि कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे वन मे जा कर पाडवो को चिडाने की आज्ञा हमे मिल जाय।"

कर्ण ने इस उपाय को खोज निकालने का उत्तरदायित्व ले लिया।

दूसरे दिन पौ फटते ही कर्ण दुर्योधन के पास गया और बडे हर्ष से बोला— "लो, उपाय मिल गया। द्वैत वन मे कुछ ग्वालों की वस्ती है जो आपके आधीन है। प्रत्येक वर्ष वन मे जा कर पशुओ की गिनती लेना राजकुमारो का काम है। बहुत काल से यह प्रथा चली आ रही है। अत उस बहाने हमे अनुमति मिल सकती है। और वहा जा कर... ...

कर्ण ने वात पूरी भी न की थी कि दुर्योधन और शकुनि मारे खुशी के उछल पडे। वोले—"बिल्कुल ठीक सूझी है, तुम को।" कहते कहते दोनो ने कर्ण की पीठ थपथपाई।

ग्वालों की वस्ती के चौधरी को बुला भेजा और उस से बातें भी कर ली गईं।

चौधरी ने धृतराष्ट्र से जाकर कहा—"महाराज! गाएं तैयार है। बन के एक रमणीक स्थान पर राजकुमारों के लिए प्रत्येक प्रकार का प्रवन्ध कर लिया गया है। प्रथा के अनुसार राजकुमार उस स्थान पर पधारें, और जैसा कि सदा होता आया है, चौपायो की सख्या, आयु, रग, नस्ल इत्यादि जाच कर खाते मे दर्ज कर ले और बछडों पर चिन्ह लगाने का काम पूर्ण कर के बन मे कुछ देरी खेल कर थोडा मन वहला ले। चौपायो की गणना का काम भी पूर्ण हो जायेगा और उनका मन भी बहल जायेगा।"

राजकुमारो ने भी धृतराष्ट्र से जाने की अनुमति मांगी पर धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया—'नही, द्वैत वन मे पाण्डवो का डेरा है। तुम्हारा वनवास के दुखो से क्षुब्ध पाण्डवों के निकट भी जाना ठीक नही है। मैं भीम और अर्जुन के निकट पहुचने की अनुमति नही दे सकता। चौपायो की गणना का ही प्रश्न है तो वह कोई और भी कर सकता है।"

तब शकुनि ने समझाया—"महाराज! अर्जुन और भीम चाहे कितने भी क्रुद्ध हो, पर वे युधिष्ठिर की आज्ञा बिना कुछ नही कर सकते और युधिष्ठिर १३ वर्ष से पूर्व कोई भी कुकर्म न होने देगे। आप विश्वास रक्खे कि कौरव उनके पास भी न जायेगे। मैं स्वय उन के साथ जाऊगा और कोई बखेडा न खडा होने दूगा। आप इन्हे आज्ञा दीजिए।"

इस प्रकार शकुनि ने समझा बुझा कर अनुमति ले ली। परन्तु धृतराष्ट्र ने चेतावनी देते हुए कहा—"खबरदार जो पाण्डवो के पास भी गए।"

अनुमति मिलने पर कर्ण ने शकुनि को बधाई दी और दुर्योधन से बोला—"अब चलो और अवसर मिले तो पाण्डवो का सफाया करदो"

एक बडी सेना और अनेक नौकर चाकर लेकर कौरवो ने द्वैत वन की ओर प्रस्थान किया। दुर्योधन और कर्ण यह सोच कर फूले न समाते थे कि पॉडवो को कष्ट मे पडे देख कर बहुत आनन्द आयेगा और वे हमारे शाही ठाठ–बाठ देख कर जल उठेगे।

वन पहुच कर ऐसे स्थान पर अपने डेरे लगा दिए जो कौरवो के आश्रम से चार कोस की दूरि पर था। कुछ देर विश्राम करके वे ग्वालो की वस्तियो मे गए और चौपायो की गणना की रस्म अदा की। इसके बाद ग्वालो के खेल और नाच देख कर कुछ मनोरजन किया। फिर बन घूमने की बारी आई। घूमते घूमते वे एक जलाशय के पास जा पहुंचे वहा का स्वच्छ जल और रमणीक दृश्य देखकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। जब इसे ज्ञात हुआ कि पाण्डवो का आश्रम निकट ही है, तो उसने अपने नौकरो को आदेश किया कि डेरे इस जलाशय के पट पर ही लगा दिए जाये। उसने सोचा था कि एक तो यह स्थान रमणीक है दूसरे यहा से पाँडवो के हाल चाल भी भलि प्रकार देखे जा सकेंगे।

× × × × × ×

जब दुर्योधन के नौकर चाकर जलाशय के तट पर डेरे लगाने गए, तो गन्धर्व राज चित्रागद ने, जिस के डेरे जलाशय के निकट ही लगे हुए थे, डेरे लगाने से रोक दिया। नौकरो ने जाकर दुर्योधन से कहा कि कोई विदेशी नरेश जलाशय के पास पडाव डाले है, उसके नौकर हमें डेरे नही लगाने देते। दुर्योधन को यह सुन कर बहुत क्रोध आया और गरज कर बोला— "किस राजा की मजाल है कि हमारे डेरे लगाने से रोक दे। जाओ किसी की मत सुनो कोई रोके तो उसे मार कर भगा दो।"

आज्ञा पा कर दुर्योधन के अनुचर फिर गए और तम्बू गाडने लगे। गधर्व राज के नौकरो ने आकर उन्हे रोका। जब न माने तो दुर्योधन के नौकरो को उन्होने बहुत मारा, वे बेचारे अपने प्राण ले कर भाग आये।

दुर्योधन को जब पता चला तो उसके क्रोध की सीमा न रही, अपनी सेना ले कर जलाशय की ओर चल पडा।

वहा पहुचना था कि गन्धर्वों और कौरवों मे युद्ध हो गया। घोर सग्राम छिड़ गया। आमने सामने के युद्ध मे कौरवो की सेना न रुक सकी। यह देख कर गधर्व राज को बहुत क्रोध आया और उसने माया युद्ध आरम्भ कर दिया। ऐसे ऐसे भयानक और विचित्र माया अस्त्र उसने बरसाये कि कौरवों की उनके सामने एक न चली। यहा तक कि कर्ण जैसे महारथियो के भी रथ और अस्त्र चूर चूर हो गए और भागते ही बना। अकेला दुर्योधन युद्ध मे डटा रहा। गधर्व राज चित्रांगद ने उसे पकड लिया और रस्सो से बांधकर अपने रथ मे डाल लिया। फिर विजय घोष किया। कौरवा की सेना के सभी प्रधान वीर रस्सो मे बध चुके थे, सेना तितर बितर हो गई थी। बचे खुचे सैनिको ने पाण्डवों के आश्रम मे जा कर दुहाई मचाई और रक्षा की प्रार्थना की। बेचारे दुर्योधन का पासा पलट गया, वह गया था ठाठ दिखाने, और पाण्डवों का उपहास करने, बन गया बन्दी और स्वय उपहास का विषय।

दुर्योधन और उसके साथियो के इस प्रकार अपमानित होने का समाचार सुन कर भीम को बडी प्रसन्नता हुई युधिष्ठिर से बोला— "भाई साहब! गधर्वों ने वही कर दिया जो हमें करना चाहिए था। दुर्योधन अवश्य ही हमारा मजाक उडाने आया होगा। सो उसे ठीक ही सजा मिली। गधर्व राज को उनके इस कार्य के लिए बधाई भेजनी चाहिए।"

युधिष्ठिर बोले—"भैया! दुर्योधन के गधर्वों के हाथों बन्दी होने पर तुम्हे प्रसन्न नही होना चाहिए। आखिर को तो अपना भाई ही है उसे गधर्वराज की कैद से छुडाना ही चाहिए। अपने कुटुम्ब के लोग कैद मे पडे हो और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे यह कैसे हो सकता है। तुम्हे इसी समय दुर्योधन और उसके साथियो को मुक्त कराने जाना चाहिए।"

भीम झल्ला उठा, बोला—"वाह भाई साहब! आप तो देवताओ जैसी बाते करते है यह बात तो उसके लिए होनी चाहिए जो हमें अपना भाई मानता हो। दुर्योधन तो हमे अपना वैरी समझता है। जिसने विष दे कर और गंगा मे डुबा कर मुझे मार

डालने का प्रयत्न किया, जिसने हमे लाख के महल मे जला मारने का षडयन्त्र रचा, जिसने सती द्रौपदी को भरी सभा मे अपमानित किया, जिसने कपट से आपका राज्य छीन लिया, उस नीच को भला हम कैसे अपना भाई माने ?"

"नही भीम ! हमे अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। तुम तो धर्म का ज्ञान रखते हो, वह अन्धा हो गया, तो क्या हम भी अन्धे बन जायें। वह जो कर रहा है, अपने लिए ही बुरा कर रहा है। जो दूसरे के लिए गड्ढा खोदता है, वही उसमे गिरता भी है। उस ने हमे चिडाने का प्रयत्न किया, उसे इसका फल मिल गया। हमे अपने कर्तव्य से नही चूकना चाहिए" —युधिष्ठिर ने शाति पूर्वक कहा।

भीम और युधिष्ठिर की बाते हो ही रही थी कि वन्दी दुर्योधन और उसके साथियो का आर्त्तनाद सुनाई दिया। युधिष्ठिर व्याकुल हो उठे और अपने भाईयो से बोले— "भीमसेन की बात ठीक नही है। भाईयो ! हमे अभी ही जा कर दुर्योधन को छुड़ा लाना चाहिए।"

युधिष्ठिर के आग्रह पर भीम और अर्जुन दौड पडे और जाते ही गधर्वो की सेना पर टूट पडे। चित्रागद ने जब अर्जन को देखा तो उसका क्रोध शात हो गया। उसने कहा—"मैंने तो दुरात्मा कौरवो को शिक्षा देने के लिए ही यह किया था। यदि आप चाहते हैं तो मैं इन्हे अभी ही मुक्त किए देता हू।"

यह कह कर चित्रागद ने उन्हे तुरन्त बन्धन मुक्त कर दिया और साथ ही आज्ञा दी कि वे इसी समय हस्तिनापुर लौट जाये। अपमानित कौरव तुरन्त हस्तिनापुर की ओर चल पड़े। कर्ण जो पहले ही भाग चुका था, रास्ते मे दुर्योधन को मिला।

\+ + + + + +

दुर्योधन बड़ा ही दुखित था, उसे अपने अपमान का, इस अपमान का कि इतने विशाल राज्य के उत्तराधिकारी को गंधर्व राज

ने वन्दी वना लिया, और उसके शत्रु पाण्डवो के कारण उसकी मुि
हुई, बहुत ही दुख था। उसने कर्ण को लक्ष्य करके कहा -"क
भाई! अब मेरा जीवन व्यर्थ है; इस से तो अच्छा था कि गध
राज मुझे मार डालता या पाडवो द्वारा मुक्त होने से पहले,
मैं युद्ध मे मारा जाता। मुझे जितने भयकर अपमान को सह
करना पड रहा है, वह मेरे लिए असह्य है। मेरे शत्रु पाडवों
मुझ पर एक अहसान कर दिया, वे कितने प्रसन्न होगे और इ
घटना को ले कर मेरा कितना उपहास कर रहे होगे। मेरी त
इच्छा है कि मै अब हस्तिनापुर ही न जाऊ, बल्कि यही अनश
करके प्राण लगा दू ।"

दुर्योधन को इतना दुखी देख कर कर्ण ने उसे सान्त्वना दे
हुए कहा—'दुर्योधन! आखिर इतनी सी वात को ले कर तुम इत
निराश हो गए—

'गिरते हैं शहसवार मैदाने जग मे'

इस मे कौन अपमान की बात है। पाडवो ने आकर तुम्हे
मुक्ति भी दिलादी तो क्या हुआ? तुम स्वय थोड ही उन से
सहायता की याचना करने गए थे। मै तो समझता हू कि यह
सारा काण्ड पांडवो की इच्छा से ही हुआ। अपने ही फैलाए जाल
मे उन्होने तुम्हे फासा और स्वय बड भारी दयावान बनने के स्वप्न
मे मुक्त करा बैठे। उनमे बुद्धि होती तो कही वे तुम्हे मुक्त कराते?
तुम्हे तो उनकी इस मूर्खता से लाभ उठाना चाहिए।"

दुर्योधन के मन मे वात नही बैठी, उस ने कहा—"नही,
नहीं उनका विछाया जाल भी हो तो भी मेरी सारी शक्ति उनके
सामने हेच हो गई, यह क्या कम अपमान है। अभी से जब उन
की इतनी शक्ति है, तो तेरह वर्ष पश्चात तो और भी बढ जायेगी।
फिर वे अवश्य ही राज्य छीन लेंगे।"

शकुनि ने उस समय धैर्य बन्धाते हुए कहा—"दुर्योधन तुम्हें
भी उलटी ही सूझा करती है। जब जैसे तैसे छल कपट से मैंने

तुम्हे पाँडवों का राज्य छीन कर दिया और उसे भोगने का समय आया तुम आत्म हत्या करने की सोचने लगे। पाँडवो को नही देखते, कितनी विपदाएं पड रही हैं, तुम्हारे हाथों उनका कितना घोर अपमान हुआ, पर आज भी वे अपनी शक्ति द्वारा राज्य लेने की सोच रहे हैं। यदि आप हत्या करके ही मरना था तो मुझ से यह सब क्यो कराया ? इस से तो अच्छा है कि तुम हस्तिना पुर चलो और पाण्डवो को वन से बुलाकर उनका राज्य उन्हे वापिस कर के चैन से रहो ।"

यह बात सुनते ही दुर्योधन के मन मे पाण्डवो के प्रतिईर्ष्या की आग जाग उठी, दुर्योधन क्रुद्ध होकर बोला—"नही, पाँडव चाहे जो करे अब उन्हे राज्य की ओर मुह भी न करने दिया जायेगा। मैं अपनी इस तलवार की सौगंध खाकर कहता हू कि पाडवों के सामने कभी सिर न झुकाऊगा ।"

इस प्रकार क्रोध ने दुर्योधन के मन मे आत्मग्लानि के उठते ज्वार को समाप्त कर दिया ।
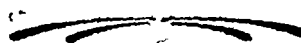
※ त्रिदिस परिच्छेद ※
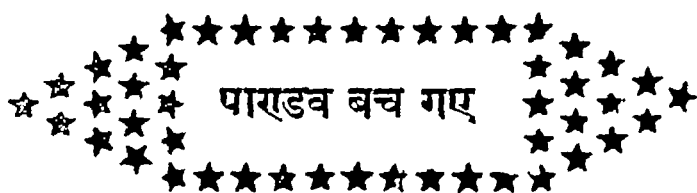
दुर्योधन के मन मे कभी कभी फिर भी अपमान का दुख जाग उठता। उस ने कहा—"मुझे गधर्वों द्वारा बन्दी बनाने का इतना दुख नही है जितना अर्जुन द्वारा मुक्त कराये जाने का। है कोई वीर जो मुझे इस दुख से मुक्त करा सके? जो कोई पाण्डवो को मारकर मेरे इस दुख का निवारण करेगा, उसे मैं अपने राज्य का एक भाग्य दे दूगा।"

दुर्योधन की इस घोषणा को सुन कर कनकध्वज राजा ने कहा—"महाराज! मैं इस काम का बीडा उठाता हू और विश्वास दिलाता हू कि आज से सातवे दिन ही पाण्डवो को काल के गाल मे भेज दूगा। यदि मैं यह काम न कर सका तो प्रतिज्ञा करता हूं कि अग्नि कुण्ड मे गिरकर भस्म हो जाऊगा।"

प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात वह दुष्ट बुद्धि ऋषियो के एक आश्रम मे पहुंचा और कृत्या-विद्या को सिद्ध करने लगा। जब इस बात का पता नारद जी को लगा तो उसी समय पाण्डवों के पास गए उन से कनकध्वज की प्रतिज्ञा तथा उसकी पूर्ति के लिए कृत्या विद्या सिद्ध करने की बात सुनाई।

नारद जी की बात सुनकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयो से कहा—"संसार मे एक धर्म ही महान सहयोगी होता है। मनुष्यों

को सकट से उबारने वाला उसका अपना पुण्य है। अत हम पर जो घोर सकट आने वाला है उस से बचने का एक मात्र उपाय है कि हम सभी अपने को धर्म ध्यान मे लगाए।" भाइयो को धर्म ध्यान की प्रेरणा देकर युधिष्ठिर अपनी समस्त इच्छाओं का विषय भोग हटा कर धर्म ध्यान मे तल्लीन हो गए। वे मेरू पर्वत सदृश निश्चल खडे हो नासाग्र दृष्टि कर आत्मा का चिन्तन करने लगे। उनका विश्वास था कि धर्म ध्यान के प्रसाद से जितने भी अमगल है वे सब नष्ट हो जाते हैं और निशिदिन नये मगल होने लगते हे। धर्म के प्रताप से ही दुख सुख रूप परिणमन होता है। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु की प्रखर किरणो के लगने से वृक्ष फलता है, इसी प्रकार धर्म धारण से इन्द्र तक का आसन कपायमान होता है।

युधिष्ठिर और उनके भाइयो द्वारा धर्म ध्यान व उपधान तप करने से एक देवता का आसन कम्पायमान हुआ और उसने अपने अवधिज्ञान के बल से जान लिया कि पाण्डवों पर कोई आकस्मिक विपदा आने वाली है। उसी के लिये वे घोर तप कर रहे हैं। वह तुरन्त भू लोक की ओर चल दिया और उसने सकल्प किया कि पाण्डवो को इस सकट से अवश्य ही उबारूगा।

और प्रकट होकर पाण्डवो से बोला -पाडु पुत्रो! निश्चिंत रहो कि कोई भी शत्रु तुम्हारा कुछ नही कर सकता। कोई भी सकट पडने पर मैं तुम्हारी रक्षा अवश्य करु गा।"
महाराज युधिष्टिर बोले—'लेकिन कनकध्वज द्वारा विद्या सिद्ध कर लेने पर हमारी रक्षा कैसे हो सकेगी?"

"धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम्हारा सहायक तुम्हारा पुण्य है।"—इतना कह कर वह देव वहा से चल पडा और कुछ दूर पर वैठी द्रौपदी को हर कर ले गया।

एक भांड की दृष्टि उस ओर पड़ी। पाण्डवो को उस पर वहुत क्रोध आया। युधिष्ठिर ने उसे पकड़ने के लिए नकुल और सहदेव को आदेश दिया। वे दोनो भ्राता उसी समय धनुष वाण सम्भाल कर उसके पीछे भागे।

तभी एक ब्राह्मण, जो पास ही रहता था, चिल्लाता हुआ आया—"महाराज ! दौड़ो, हिरण मेरी अरणी ले भागा।"

युधिष्ठिर ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"हिरण अरणी कैसे ले भागा ?"

"महाराज ! मेरी झौंपडी के बाहर अरणी की लकडी टंगी थी हिरण आया और उस से अपने शरीर की खुजली मिटाने लगा, और खुजली मिटाकर भागने लगा, अरणी उसके सीग मे अटक गई। सीग में अरणी अटकने से घबराकर वह बडी तीव्र गति से भागा जा रहा है।" ब्राह्मण ने कहा।

काठ के चौकोर टुकड़े पर मथनी जैसी दूसरी लकडी से रगड़ कर उन दिनो आग सुलगा लेते थे, उसकों अरणी कहते थे।

अर्जुन बोला—"तुझे अपनी अरणी की ही लगी है, द्रौपदी को एक दुष्ट हर ले गया, हमे उसकी चिन्ता है।"

"महाराज मेरी अरणी ......" ब्राह्मण ने फिर पुकार की।

युधिष्ठिर ने अर्जुन को रोकते हुए कहा—"ठीक है, इस ब्राह्मण की सहायता हमारे अतिरिक्त और कौन करेगा। जब ऐसे समय ब्राह्मण ने हमे याद किया है, तो हमे अवश्य ही उस की सहायता करनी चाहिए।"

फिर स्वय उस हिरण का पीछा करने के लिए दौड़ें। उन्हे दौडता देख कर भीम और अर्जुन भी साथ हो लिए। परन्तु हिरण तो सीग मे अरणी अटक जाने से छलांग लगाता बड़ी तीव्र गति से दौड़ा जा रहा था, अत तीनो भाई पीछे भागते भागते थक गए, और हिरण आंखो से ओझल हो गया।

तीनों बुरी तरह थक गए थे और प्यास तीनो को वडे जोरो को लग रही थी, वे एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गए। चारो

ओर दृष्टि डाली पर पानी कही दिखाई न दिया। दूसरी ओर से नकुल और सहदेव आगए।

युधिष्ठिर ने पूछा—"क्यो द्रौपदी कहा है ?"

"महाराज! वह दुष्ट न जाने कहा छुप गया, बहुत ढूंढा दिखाई ही नही दिया। हमे प्यास बड़े जोरो की लगी है, पानी की खोज मे इधर चले आये।" वे बोले।

अर्जुन को बडी निराशा हुई और वह कहने लगा—"भाई साहब! आप की एक भूल के कारण देखा! हमे कितने दुख भोगने पड रहे है। द्रौपदी का हरण हुआ, अब न जाने उसकी खोज मे कहा कहा लडना मरना पडेगा।"

भीम भी बोला—"अधर्म का फल देख लीजिए। आप महाराजाधिराज थे, और आज वन मे प्यासे बैठे है, जिह्वा प्यास के मारे ऐंठ रही है। और पानी का कही पता ही नही है।"

नकुल ने कहा—"भ्राता जी! प्यास के मारे हमारा बुरा हाल है, पानी कही नही मिला। मुझे तो ऐसा लगता है कि पानी बिना ही मैं मर जाऊगा।"

"आओ बैठ कर भ्राता जी की बुद्धि को रोले।" भीम बोला।

युधिष्ठिर समझ गए कि प्यास के मारे सभी बौखला गए है। असहनी प्यास ने उनके विश्वास को भी झझोड डाला है। उन्होंने सहदेव से कहा—"वृक्ष पर चढ कर देखो तो सही कही जलाशय भी दिखाई देता है अथवा नही।"

सहदेव वृक्ष पर चढा और उसने चारो ओर देख कर बतलाया कि कुछ दूरी पर कुछ ऐसे वृक्ष दिखाई देते है जो जलाशय के तट पर ही होते हैं। कदाचित वहीं जलाशय है।

युधिष्ठिर ने कहा—'तो फिर तुम जाओ और शीघ्र ही जल लेकर आओ।"

सहदेव उस जलाशय पर गया। उस ने सोचा कि पहले स्वयं पानी पी लूं। फिर कमल के पत्तो में भ्राताओं के लिए पानी ले जाऊंगा। ज्यों ही उस ने पानी में पैर रक्खा एक आवाज आई—"ठहरो! यह जलाशय मेरे अधिकार मे है। पहले मेरे प्रश्नो का उत्तर दो तव पानी पीना।"

सहदेव को यह वात सुनकर बडा क्रोध आया। वह वोला —"मैं तो प्यास के मारे मरा जा रहा हूं। वहां मेरे भाई प्यास से तडप रहे है और तुझे प्रश्नो की पडी है।"

इतना कह कर उसने अपनी शक्ति का विश्वास करते हुए पानी पिया। ज्यो ही पानी पीकर बाहर निकला। वह मूर्छित होकर गिर पडा।

जव वहुत देरी हो गई और सहदेव न लौटा तो युधिष्ठिर ने नकुल को कहा—'सहदेव को गए हुए वहुत देरी हो गई। पर वह अभी तक नही लौटा। देखो तो सही क्या वात है?"

नकुल गया, तो उसे अपने भ्राता को अचेत अवस्था मे पडा देखकर वडा आश्चर्य हुआ। उसने वहुत ध्यान से देखा पर उसे वह मृत प्रतीत हुआ वह क्रोध मे भर गया, उसने कहा —"कौन है, जिसने मेरे भाई की हत्या की है। मेरे सामने आ।"

वार वार पुकारने पर भी जव कोई सामने न आया तो उसने सोचा कि पहले पानी पी लू फिर उस दुष्ट का सहार करूंगा वह पानी मे उतरने लगा। तो वही आवाज़ आई—"ठहरो! यह जलाशम मेरे अधिकार मे है, पहले मेरे प्रश्नो का उत्तर दो, तव पानी पीना।"

"अभी ठहर! तुझे वताता हूं। तूने ही मेरे भाई की हत्या की है। मैं तुझ से अपने भ्राता की हत्या का वदला लूगा तनिक मुझे पानी पी लेने दे।" - नकुल ने पानी पिया, जव वह वाहर आया तो मूर्छित होकर गिर पड़ा।

जव नकुल को गए हुए भी वहुत देरी हा गई, तो युधिष्ठिर

ने अर्जुन को भेजा। अपने दो भाईयो को जलाशय के तत्पर मृतावस्था मे देखा तो वह फूट फूट कर रोने लगा। उसकी छाती शोक से फटी सी जाती थी। कुछ देरी बाद वह उठा, पानी पीने के लिए बढा। तभी आवाज़ आई—"ठहरो। इस जलाशय पर मेरा अधिकार है। पहले मेरे प्रश्नो का उत्तर दो.. ...."

अर्जुन ने गरजकर कहा—"अच्छा तो तुम ही हो मेरे भाईयो के हत्यारे। दुष्ट सामने आ। पाण्डवो पर हाथ उठाने का मजा अभी चखाता हू।"

दूसरी ओर से ठहाका मार कर हसने की आवाज़ आई।

क्रुद्ध अर्जुन ने उसी समय गाण्डीव द्वारा शब्द वेधी बाण चलाने आरम्भ कर दिए। पर ठहाके की आवाज़ आती ही रही।

अर्जुन ने गर्जना की—"कौन है ? छुपा हुआ क्यो है, शक्ति है तो सामने आ।

तब अर्जुन ने सोचा कि पहले पानो पी लूं, फिर इस की खबर लूगा। वह ज्यो ही पानी पोकर बाहर आया तट पर आते ही मूर्छित होकर गिर पडा।

जब अर्जुन को गए हुए भी बहुत देरी हो गई तो यह देखने के लिए कि माजरा क्या है ? यह सब कहा खो गए, भीम आया। जलाशय पर तीनो को मृतावस्था मे देखा तो भ्राताओ से लिपट लिपट कर रोने लगा। और फिर कडक कर बोला—'किसने मेरे भ्राताओं की हत्या की है। सामने आये। मैं अभी ही उसे बतादूगा कि पाण्डवो पर हाथ उठाने का मतलब है अपनी मृत्यु को निमत्रण देना।"

परन्तु कोई उत्तर न मिला। कोई सामने न आया। प्यास से व्याकुल भीम पानी पीने के लिए बढा। तब फिर वही आवाज आई—"ठहरो! इस जलाशय पर मेरा अधिकार है .. .."

भीम कडक कर बोला—"अरे दुष्ट! हम शक्ति द्वारा भी

पानी पीना जानते है। तेरा साहस हो तो रोक।" "देखो! तुम्हारे भाइयो ने मना करने पर भी पानी पिया था, वह मृत पड़े हैं। तुम भी ऐसी भूल मत करो।"—आवाज आई।

भीम की आखे लाल हो गई, वह बोला—"अच्छा तो मेरे भ्राताओं के हत्यारे तुम्ही हो। छुप क्यो रहे हो, कायर! तुम्हे अपनी शक्ति पर तनिक सा भी अभिमान है तो सामने आओ।"

कोई सामने नही आया। तव भीम ने कहा—"तो फिर मैं जल पीता हू। शक्ति हो तो आकर रोक।"

भीम ने पानी पिया और वह भी तट पर आकर वेहोश होकर गिर पडा।

जव चारों में से एक भी न लौटा, तो युधिष्ठिर समझ गए कि जरूर मेरे भाई किसी सकट मे फस गए हैं। इसी लिए वे भाइयो की सहायता के लिए चल पडे। जलाशय के पास आये तो चारो को मृत समान देख कर उन के नेत्रो से गगा-यमुना वह निकली। वे कभी सहदेव के शरीर को टटोलते तो कभी अर्जुन के। कभी नकुल के पास वैठकर रोते तो कभी भीम के।

भीम के शरीर से लिपट कर वोले—"भैया भीम तुम ने कैसी कैसी प्रतिज्ञाएं की थी। क्या वे अव सव निष्फल हो जायेंगी। वनवास के समाप्त होते होते क्या तुम्हारा जीवन भी समाप्त हो गया। देवता की वाते भी आखिर झूठी ही निकली। हाय अव किसके वल पर मैं गर्व करुगा? किस की गदा के वल पर मैं दुष्टो को चुनोती दूगा?"

फिर वे अर्जुन के शरीर से लिपट कर विलख विलख कर रोने लगे—"अर्जुन! हाय आज तुम भी मुझे अकेला छोड गए। हाय अव मैं द्रौपदी को कैसे मुह दिखाऊंगा? यह तुम्हारा गाण्डीव अव कौन उठायेगा?"

वे नकुल और सहदेव से लिपट कर भी वच्चो की भांति

रोये। वे बार बार सोचते कि ऐसा कौन शत्रु हो सकता है जिसमे इन चारों का वध करने की सामर्थ्य थी ?

वे अपनी भूल को ही भ्राताओ के वध का कारण समझ कर पश्चाताप करने लगे- "हाय ! मै ही यदि अधर्म पर पग न बढाता जुआ न खेलता तो दिग्विजय की सामर्थ्य रखने वाले मेरे इन भ्राताओ का वध न होता। शास्त्रो मैं ठीक ही कहा है कि जुआ नाशकारी खेल है। मैं ही इन की अकाल मृत्यु का कारण वना। परन्तु यदि वास्तव मे मेरी भूल ही के कारण मुझ पर यह विपदा पडी, तो मुझे ही उस आजेय शक्ति ने उस का दण्ड क्यों न दिया ? क्यो मेरे प्रिय भ्राताओ को उसका दण्ड भोगना पडा।"

करुण क्रुन्दन करते करते युधिष्ठिर को कितना ही समय व्यतीत हो गया। और वे प्यास से व्याकुल होकर जलाशय की ओर अग्रसर हुए। उन्होने ज्यो ही पानी पीना चाहा। फिर वही आवाज आई। साथ ही यह भी आवाज आई कि—"युधिष्ठिर महाराज ! पानी न पिओ। तुम ने भी यदि अपने भ्राताओ जैसी ही भूल की, मेरे चेतावनी देने के उपरान्त भा पानी पिया, तो तुम्हारी भी वही दशा होगी, जो तुम्हारे भ्राताओ की हुई है।"

आवाज सुनते ही महाराज युधिष्ठिर रुक गए और वह समझ गए कि यह किसी यक्ष की माया है। फिर भी वे यह सोच कर पानी पीने लगे कि—"जब मेरे भ्राता ही ससार मे नहीं रहे तो मैं जी कर क्या करूगा।"

दुखित युधिष्ठिर ज्यों ही जल पीकर वाहर आए तो अपने भ्राताओ के पास आते ही अचेत होकर गिर पडे।

दूसरी ओर कनकध्वज ने कृत्या-विद्या सिद्ध करली। कृत्या उसके सामने पहुंची और प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूर्ण करने का वचन दिया।

वह बोला—"यदि तुम मे अतुल्ल शक्ति है, तो जाकर अभी ही पाण्डवो का काम तमाम करदो।"

कृत्या वहाँ से चल कर उस स्थान पर आई जहाँ पाण्डव मृत समान पड़े थे। उस ने देखा कि पाण्डव मृत समान पड़े हैं, और एक भील उन्हे उलट पलट कर देख रहा है। उसने भील से पूछा—"इन पाण्डवों को क्या हुआ ?"

वह दुखित होकर बोला—'दीखता नही यह मरे पड़े हैं। इन मे जीवन का एक भी चिन्ह नही है। हाय, हाय, किसी दैत्य ने इन्हे मार डाला।"

"तुम्हें इन के मरने का इतना दुख क्यों है ? क्या तुम इन के दास हो ?"—कृत्या ने पूछा।

आखो मे आसू भर कर भील बोला—"मै क्या सारा ससार इनकी सेवा करने को तैयार रहता था। मैं दास तो नही, पर उनका भक्त अवश्य हू।"

"ऐसे क्या गुण थे इन मे ?"

"यह दुखियो का दुख हरने वाले, न्याय वत, धैर्यवान' सहन शील, दान वीर, धर्म पर अडिग रहने वाले योद्धा, समस्त संसार का भला चाहने वाले, शत्रु के साथ भी मित्रों जैसा व्यवहार करने वाले और असीम साहसी थे। इनके मरने से दुष्टो को खुल खेलने का अवसर मिल गया। दरिद्रो का अब कोई सहारा ही नही रहा।" वह भील बोला।

कृत्या ने आश्चर्य से कहा—"अच्छा इतने गुणवत थे पाण्डव! तो फिर कनकध्वज उन्हे क्यो मारना चाहता था ?" "उसे इन की हत्या करने के पुरस्कार स्वरूप दुरात्मा दुर्योधन अपने उस राज्य का एक भाग देने का वायदा कर चुका था, जो एक दिन पाण्डवो का ही था, छल, कपट और अन्याय द्वारा जिसे उस दुरात्मा ने अपने दुष्ट सहयोगियों के सहारे छीन लिया था।"—भील बोला।

"भील तुम ने मुझे बता कर बहुत ही अच्छा किया। मैं कृत्या हू। मुझे कनकध्वज ने सात दिन की घोर तपस्या से सिद्ध

करके पाण्डवो की हत्या करने के लिए भेजा था।"—कृत्या बोली।

भील ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"आप कृत्या विद्या हैं। और धर्मराज युधिष्ठिर के परिवार का नाश करने के लिए उस दुष्टात्मा के कहने से चली आई? आश्चर्य की बात है। आप को तो उसी दुष्ट का वध करना चाहिए।"

कृत्या भील की बात सुन कर तुरन्त वापिस चली गई और जाते ही कनकध्वज के सिर पर वज्र की भांति गिरी जिस से उसका सिर फट गया और कनक ध्वज यमलोक सिधार गया।

भील रूपी देव ने अमृत नीर का छीटा देकर धर्मराज युधिष्ठिर की मूर्छा दूर की। जब वे पूरी तरह सावधान होगए, तो अपने सामने भील को देख कर बोले "—भीलराज! वह कौन शक्ति है, जिसने मुझे मूर्छित किया था। उसी ने मेरे भ्राताओं को अपनी माया से मृत समान कर दिया।"

भील रूपी देव ने कहा—"हे धर्मराज! मेरे प्रश्नो का उत्तर दें तो आप का सब दुख दूर हो सकता है। आप ने उस समय मेरी बात नही मानी और पानी पिया।"

युधिष्ठिर समझ गए कि वह भील नही बल्कि कोई यक्ष है। अत तर्क वितर्क करना ठीक न समझ उन्होने कहा—"आप प्रश्न कीजिए।"

तब भील रूपी देव ने प्रश्न किए और युधिष्ठिर उत्तर देने लगे।

प्रश्न—"मनुष्य का कौन सदा साथ देता है?"

उत्तर—"धर्म ही उसका सदा साथ देता है।

प्र०—कौन सा ऐसा शास्त्र (विद्या) है जिसका अध्ययन कर के मनुष्य बुद्धिमान होता है।

उ०—मुनि गण की संगति से ही मनुष्य बुद्धिमान होता है।

प्र०—भूमि से भी भारी वस्तु क्या है ?

उ०—सन्तान को कोख मे धरने वाली माता भूमि से भी भारी होती है।

प्र०—आकाश से भी ऊंचा कौन है ?

उ०—पिता।

प्र०—हवा से भी तेज चलने वाला कौन है ?

उ०—मन।

प्र०—घास से भी तुच्छ कौन सी चीज़ है ?

उ०—चिन्ता।

प्र०—विदेश जाने वाले का कौन मित्र होता है ?

उ०—विद्या।

प्र०—घर ही मे रहने वाले का कौन साथी होता है ?

उ०—पत्नि और धर्म।

प्र०—मरणासन्न वृद्ध का कौन मित्र होता हैं ?

उ०—दान, क्यो कि वही मृत्यु के बाद अकेले चलने वाला जीव के साथ-साथ चलता हैं।

प्र०—बरतनो में सब से बड़ा कौन सा है ?

उ०—भूमि ही सब से बड़ा बरतन है जिस मे सब कुछ समा सकता है।

प्र०—सुख क्या है ?

उ०—सुख वह चीज़ है जो शील और सच्चरित्रता पर स्थित है।

प्र०—किस के छूट जाने पर मनुष्य सर्व प्रिय बनता है ?

उ०—अहभाव के छूट जाने पर !

प्र०—किस चीज़ के खो जाने से दुख नही होता ?

उ०—क्रोध के खो जाने से।

प्र०—किस चीज को गंवा कर मनुष्य धनी बनता है ?

उ०—लालच को।

प्र०—युधिष्ठिर ! निश्चित रूप से बताओ कि किसी का ब्राह्मण होना किस बात पर निर्भर करता है ? उस के जन्म पर विद्या पर या शील स्वभाव पर ?

जो लोए बंभणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा।
सया कुसल संदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं॥

जिन्हे कुशल पुरुषो ने ब्राह्मण कहा है, और जो सदा अग्नि के समान पूजनीय है, उन्ही को ब्राह्मण कहता हू।

जो न सज्जइ आगंतुं, पव्वयंतो न सोयइ।
रमए अज्ज वयणाम्मि, तं वयं बूम माहणं॥

जो स्वजनादि मे आसक्त नही होता और प्रव्रजित होने मे सोच नही करता किन्तु आर्य वचनो मे रमण करता है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हू।

जयारूवं जहा मट्ठं, निद्धंत मल पावगं।
रागदोस भयाईयं, तं वयं बूम माहणं॥

जिस प्रकार अग्नि से शुद्ध किया हुआ सोना निर्मल होता है उसी प्रकार जो राग द्वेष और भयादि मे रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हू।

तस पाणे वियाणित्ता, संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं॥

जो त्रस और स्थावर प्राणियो को सक्षेप या विस्तार मे जान कर त्रिकरण त्रियोग से हिसा नही करता, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हू।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं॥

क्रोध से, लोभ से, हास्य तथा भय से भी जो झूठ नही बोलता, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

शास्त्रों मे कहा है—

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह सब कर्म से होते है जिसमे शील नहीं, वह ब्राह्मण नही, जिस मे दुर्व्यसन है, वह चाहे कितना ही पढा लिखा हो; ब्राह्मण नही कहला सकता। चारो वेदो को कण्ठस्थ करके भी यदि कोई चरित्र भ्रष्ट हो तो वह नीच ही है। फिर चाहे उसने ब्राह्मण माता पिता से ही जन्म क्यो न लिया हो।

प्रश्न—सब से अधिक आश्चर्य की क्या बात है?

उत्तर—प्रति दिन अपनी आँखो के सामने छोटे बड़े जीवों, वडे वड वलिकण्ठो, महाराजाओ, विद्वानो आदि को मरते देखकर भी मनुष्य भोग लिप्सा मे अपने मनुष्य जीवन को गवाता है और अपने रुप, रग, शक्ति विद्या, और ज्ञान पर अहंकार करता है, यही सव से वडा आश्चर्य है।

इसी प्रकार भील रूपी देव ने कितने हो प्रश्न किए और धर्मराज युधिष्ठिर ने उनके तर्क सगत, धर्मानुसार और शास्त्रो के अनुसार उत्तर दिए।

अन्त मे देव वोला—"राजन्! आपकी धर्म वुद्धि से मैं वहुत प्रसन्न हू। वास्तव मे आप धन्य है। मैंने सुना था कि आप धर्मराज है, परन्तु आज मेरे सामने प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित हो गया। फिर भी अभी तक मुझे इस वात पर आश्चर्य है कि आप जैसा व्यक्ति जुए जैसे दुर्व्यसन मे फस गया।"

लज्जित होकर युधिष्ठिर वोले—"आप ठीक कहते हैं। मैं राजवंशों की रीति का त्याग न कर पाया, और आज अपनी इसी एक भूल का इतना भयकर फल भोग रहा हूं।"

"मैं आप के एक भाई को जिला सकता हू। बताइये आप इन चार मे से किसे जीवित देखना चाहते है ?"—देव ने कहा।

युधिष्ठिर ने पल भर सोचा कि किसे जिलाऊ? और तनिक देरि वाद बोले—"मुझे तो सब ही मे प्रेम है। फिर भी यदि आप एक को ही जिला सकते हैं, तो जिसका रग सावला आखें कमल सी, छाती विशाल, और बाहे लम्बी लम्बी है और जो तमाल के वृक्ष सा गिरा पडा है, वही मेरा भाई नकुल जी उठे"

युधिष्ठिर की बात समाप्त होते ही भील रूपी देव ने अपने देव रूप मे प्रगट होकर कहा—"युधिष्ठिर! भीमकाय शरीर वाले, बलिष्ट भीमसेन को छोडकर नकुल को तुम ने क्यो जिलाना ठीक समझा? मैंने तो सुना था कि तुम भीम को ही अधिक स्नेह करते हो। और नही तो कम से कम अर्जुन को ही जिला लो, जिस का रण कौशल सदैव तुम्हारी रक्षा करता रहा। इन दो भाईयो को छोडकर तुमने नकुल को जिलाने की इच्छा प्रकट की, इसका क्या कारण है?

युधिष्ठिर बोले—"देवराज! मनुष्य की रक्षा न भीम से होती है न अर्जुन से। धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है और विमुख होने पर धर्म ही से मनुष्य का नाश होता है। मेरे पिता की दो पत्नियों मे से एक मैं, कुन्ती पुत्र बचा हूं। मैं चाहता हू कि माद्री का भी एक पुत्र जी जाये। जिससे हिसाब बराबर हो जाए। इसी लिए मैंने नकुल को जिलाने की इच्छा प्रगट की। धर्म नीति यही कहती है।" पक्षपात से रहित राजन्! तुम्हारे सभी भाई जी उठेगे।—"इतना कह कर उस ने अमृत नीर बर्षाया और अचेत भ्राताओ में पुन चेतना लौट आई।

उस के पश्चात देव ने द्रौपदी को लाकर देते हुए कहा—"द्रौपदी हरण, मृग द्वारा अरणी ले जाना और आप सभी को मूर्छित करना यह मेरा ही काम था। मैं सौधर्म इन्द्र का प्रीति पात्र एक एक देव हूं। आप के धर्म ध्यान मे मेरा आसन डोला और मैंने

पता लगाया कि क्या कारण है। जब मुझे ज्ञात हुआ कि तुम लोगो पर आपत्ति आने वाली है, मैं वहा से चल कर आया और यह सब माया रची। जब तुम लोग मूर्छित अवस्था मे पडे थे, तब कनक ध्वज द्वारा सिद्ध कृत्या तुम्हारा बध करने आई। और तुम्हे मृत समझकर, मेरे समझाने से वह वापिस लौट गई और क्रुद्ध हो कर उसने कनकध्वज की ही हत्या करदी।

इस अवसर पर मैने जो तुम्हारी परीक्षा ली, इस से मुझे ज्ञात हो गया कि तुम वास्तव मे धर्मराज हो। तुम्हे कोई परास्त न कर सकेगा। अब तुम्हारे बारह वर्ष पूर्ण हो रहे है। तुम्हारा एक वर्ष गुप्त रहने का काल भी ठीक प्रकार व्यतीत होगा। दुर्योधन तुम्हारा पता न लगा सकेगा।"

यह कह कर देव वहाँ से चला गया।

× × × × × ×

इस प्रकार कितने ही कष्ट सहन करते २ बनवास की बारह वर्ष की अवधि समाप्त हो गई। इस बीच अर्जुन ने पाशु पात विद्या सिद्ध कर ली, मामवभी नामक जलाशय के पास युधिष्टर की अपने पिता जो देव बन गए थे, से भेंट हो गई। अपने भाई दुर्योधन को मुक्त करके अपनी विशाल हृदयता का प्रमाण दे दिया।

यह कथा सुन कर जो कोई अपने आचार विचार को शुद्ध करने का प्रयत्न करेगा, वह अवश्य ही धर्म पथ पर बढ सकेगा।
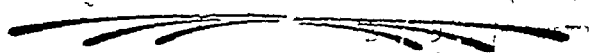
पाण्डव दास रूप में

वनवास की अवधि पूर्ण होने पर युधिष्ठिर अपने आश्रम मे रहने वाले विद्वानो से बोले —

हे विद्वानो ! धृतराष्ट्र और उनके पुत्रो के जाल मे फस कर हमे अपने राज्य से हाथ धोने पडे। और महाराज पाण्डु की सन्तान होकर भी वनो मे दीन–दरिद्रो की भाति जीवन व्यतीत करना पडा। यद्यपि हम बडी कठनाई से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, परन्तु आप लोगो की कृपा व समय समय पर मुनि राजो के सतसग से यह दरिद्रय पूर्ण जीवन भी हमने बहुत आनन्द पूर्वक व्यतीत किया। परन्तु अब हमारा वनवास काल समाप्त हो गया और अब हमे शर्त के अनुसार एक वर्ष तक अज्ञात वास मे रहना होगा। और कितनी कठोर शर्त है यह आप को ज्ञात ही है, अत. हमारे साथ आप लोगो का रहना ठीक नही है। आप के रहते हम अज्ञात वास मे नही रह सकते। हमे प्रत्येक उस व्यक्ति से छुप कर रहना होगा जो भय से अथवा प्रलोभ मे आकर दुर्योधन को हमारा पता वतलादे। अतः आप से विदा चाहते है। आप हमे आशीष देकर विदा करे।"

कहते कहते युधिष्ठर की आखे डब डबा आई। विद्वानो ने कहा—"महाराज ! आप के स्वभाव, दया भाव और प्रेम के कारण ही हम वन मे आप के साथ रहे। आप के मन की व्यथा

को हम समझते हैं। परन्तु विपत्तिया किस पर नही पडती। जो विश्व विभूतिया होती हैं, उन पर सकट आते ही हैं, सकटो में ही उनकी परीक्षा होती है। विश्वास रक्खें कि आप शत्रुओ पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे।"

विद्वानो और अन्य मित्रों को इस वार्तालाप के पश्चात महाराज युधिष्ठिर ने विदा दी। वे सभी हस्तिनापुर की ओर चले गए और वहा जाकर लोगो में यह बात फैला दी कि पाण्डव आधी रात को हमे सोता छोड़कर कहीं चले गए। यह बात सुनकर उन लोगों में भान्ति भान्ति की शकाए उत्पन्न हो गई जो पाण्डवो के प्रशंसक अथवा भक्त थे। कुछ लोग तो इस समाचार से बहुत ही दुखित हो गए।

विद्वानों तथा अन्य साथियो के चले जाने के उपरान्त पाण्डव एकान्त में बैठ कर भावी कार्य क्रम पर विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन को सम्बोधित करके कहा—"अर्जुन! तुम लौकिक व्यवहार में निपुण हो। तुम्हीं बताओ कि यह तेरहवा वर्ष किस देश मे और कैसे बिताया जाय?"

अर्जुन बोला—"महाराज! स्वय धर्म देव ने आप को वरदान दिया है, इस लिए मुझे पूर्ण आशा है कि हमारा तेरहवा वर्ष भी सुगमता से कट जाये गा और दुर्योधन हमारा पता न लगा सके गा चारों ओर पाँचाल, मत्सय, शाल्व, वैदेह, वालिहक, दशार्ण, शूरसेन, मगध आदि कितने ही देश हैं। उस मे से आप जिसे पसन्द करे वही चलकर रहे। हां, मेरी राय यह है कि हम सभी को साथ ही रहना चाहिए। वेप चाहे भिन्न भिन्न हो।

"फिर भी तुम इन सभी देशों मे से किसे पसन्द करते हो?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"महाराज! मेरी राय तो यह है कि मत्सय देश मे जाकर रहा जाय। वहा का अधि पति महाराज विराट है, उस की राजधानी बड़ी ही सुन्दर और स्मृद्ध है। आगे आप की जैसी मर्जी।" —अर्जुन बोला।

'हाँ, विराट राजा से तो मैं भी परिचित हू, वे बडे ही शक्ति सम्पन्न, धर्म पर चलने वाले, धैर्यवान और सुलझे हुए वयोवृद्ध है, हमे चाहते भी बहुत है। दुर्योधन की बातो मे भी आने वाले नही है। इस लिए मेरी भी यही राय है कि उनके यहा ही छुप कर रहा जाय।"—युधिष्ठिर ने अर्जुन की बात का अनुमोदन करते हुए कहा।

"अच्छा, यह तो तय हुआ समझो, पर यह भी तो सोचना है कि हम लोग वहां किस वेष मे रहेगे और उनका कौनसा काम करेंगे ?"—अर्जुन ने प्रश्न उठाया और यह सोच कर उस का जी भर आया कि जिन धर्मराज युधिष्ठिर ने सम्राट पद प्राप्त किया था, वे ही अब विराट के सेवक या दास बन कर रहेगे। और जिन धर्मराज को छल कपट छू तक भी नही गया, उन्हे ही छद्म वेष मे रह कर नौकरी करनी पडेगी ?

कुछ देर विचार करने के उपरान्त युधिष्ठिर बोले—"लो भाई! मैने अपने लिए तो सोच लिया। मै तो महाराज विराट से प्रार्थना करूगा कि वे मुझे अपने दरबारी काम के लिए रख लें। मैं सन्यासी का सा वेष बना कर कंक के नाम से रहा करूगा। राजा के साथ मै चौपड खेला करूगा और इस प्रकार उनका मन बहलाया करूगा। चौपड खेलने के अतिरिक्त मैं राज पण्डित का काम भी कर लूगा। ज्योतिष शकुन, नीति आदि शस्त्रों तथा जो कुछ ज्ञान मुझे है, उस से राजा को हर प्रकार मे प्रसन्न रखूगा। साथ ही सभा मे राजा की सेवा टहल भी कर लूगा। कह दूगा कि राजा युधिष्ठिर का मै मित्र बन चुका हू। मै इस प्रकार रहूगा कि विराट को कोई सन्देह भी नही हो पायेगा और दुर्योधन के गुप्तचर भी न समझ पायेगे कि वास्तव मे मैं कौन हू। अब तुम लोग बताओ कि क्या क्या काम करोगे ?"

युधिष्ठिर की बात सुन कर सभी अपने अपने सम्बन्ध मे सोचने लगे। कुछ देरी तक सभी विचार मग्न रहे, पूर्ण शांति व्याप्त रही, तभी शांति भग करते हुए युधिष्ठिर बोले—"भैया भीम! तुम बताओ कि कौन सा काम करोगे? तुम से तो आज

तक किसी की बात सहन करनी नहीं जानी। जिस ने तुम्हारे स्वाभिमान को चोट पहुचाई उसी को तुम ने अपने क्रोध का शिकार बनाया। तुम ने हिडम्बा सुर का वध किया, एक चक्रा नगरी मे वकासुर का बध कर के नगरवासियों को चिन्ता मुक्त किया। जब भी हम पर विपदा आई तुम अपने असीम बल की पतवार से हमारी नौका पार लगाते रहे। तुम कैसे किसी का सेवक होना स्वीकार करोगे? और कैसे अपने को काबू मे रख सकोगे। वहा तो जिस के आधीन रहोगे उसकी उचित, अनुचित सभी बाते सहनी पड़ेगी। आह! तुम कैसे अपने को छुपा सकोगे? महावली कैसे किसी का दास रह सकेगा? मुझे सभी से अधिक चिन्ता तुम्हारी है। जिस प्रकार मुश्क और अगारे को कितना ही छुपा कर रक्खो पर वह छुप नही पाता, इसी प्रकार तुम्हारा गुप्त रहना दुर्लभ है।"

कहते कहते युधिष्ठिर का गला रुध गया। उन्होने अपने आंसू पीते हुए कहा—"मुझे क्या पता था कि मेरा प्यारा भीम कभी किसी का दास बनने पर भी विवश होगा।"

भीम उन्हे धैर्य बन्धाते हुए बोला—"महाराज! आप क्यो अधीर होते है? मैं परिस्थित को भलि प्रकार समझता हू। बारह मास की ही तो बात है, जसे तैसे व्यतीत कर लूगा। मेरा विचार है कि मैं राजा विराट का रसोइया बन कर रहूगा। आप जानते ही है कि मै रसोई बनाने मे बडा ही कुशल हू। राजा को ऐसे ऐसे स्वादिष्ट भोजन बना कर खिलाया करूगा, जो उन्होने कभी खाये न हो। मेरे कार्य से वे प्रसन्न हो जाये गे। जगल से लकड़िया भी ले आया करूगा, इस के अतिरिक्त राजा के यहा कोई पहलवान आया करेगा, तो उस से कुश्ती लड कर राजा का मन बहलाया करूगा। आप विश्वास रक्खे कि मै कभी अपने को प्रकट न होने दूंगा।"

जब कुश्ती लडने की बात युधिष्ठिर ने सुनी तो उनका मन विचलित हो गया; वे सोचने लगे कि कहीं भीम सेन कुश्ती लडने लडने ही मे कोई अनर्थ न कर बैठे जिसके कारण कोई और विपत्ति

खडी हो जाय और सारा बना बनाया खेल ही धूल में मिल जाये। युधिष्ठिर की बात भीम ने ताडली और शका समाप्त करने के लिए भीम ने कहा—"भ्राता जी! आप निश्चिन्त रहे। मैं किसी को जान से नही मारूगा। हा जो अधिक अकड फू दिखाया करेगा उसकी हड्डिया अवश्य चटखा दिया करूगा, पर किसी को प्राण रहित नही करूगा।"

"हा' कहीं कोई नया उत्पात न खडा कर देना ?"

"आप विश्वस्त रहे। ऐसी कोई बात नही होगी जिस से मेरे कारण आप को किसी विपत्ति मे फसना पडे। हसते हुए भीम ने कहा।

"भैया अर्जुन! तुम्हारी वीरता और कान्ति तो छिपाये नही छिप सकती। तुम कौन सा काम करोगे ?" युधिष्ठिर ने भीम से आश्वस्त होकर अर्जुन से पूछा।

अर्जुन ने उत्तर दिया—"भाई साहब! मैं भी अपने को छिपा लूगा। विराट के रनवास मे रानियो और राजकुमारियो की सेवा टहल किया करूगा।"

"तुम्! रनवास मे भला रक्खेगा कौन ?" युधिष्ठिर हस कर बोले।

"मैं बृहन्नला बन जाऊगा। मैं सफेद शख की चूडिया पहन लूगा, स्त्रियो की भाति चोटी गूथ लूगा और कचुकी भी पहन लूगा। इस प्रकार विराट के अन्त पुर मे रह कर स्त्रियो को नाचना गाना भी सिखाया करूगा। जब कोई मुझ से पूछेगा तो वह दूगा कि मैंने द्रौपदी की सेवा मे रह कर यह हुनर सीख लिया है।"—अर्जुन यह कह कर द्रौपदी की ओर देख कर मुस्करा दिया।

अर्जुन की बात सुन कर युधिष्ठिर फिर उद्विग्न हो उठे। बोले—"देखो कर्मों की गति कैसी है। हमे कैसे कैसे नाच नचा रहा

हैं। जो कांति और पराक्रम मे वासुदेव के समान है, जो भारत देश का रत्न है, और जो मेरू पर्वत के समान गर्वोन्नित है; उसी अर्जुन को राजा विराट के रनवास मे नपुसक बन कर जाना पड़ेगा और रनवास मे नौकरी करने की प्रार्थना करनी पड़ेगी। उफ! हमारे भाग्य में क्या क्या लिखा है?"

इसके पश्चात युधिष्ठिर की दृष्टि नकुल और सहदेव पर पड़ी। दुखित हो कर पूछा—"भैया नकुल! तुम्हारा कोमल शरीर यह दुख कैसे सहन कर सकेगा? तुम कौन सा काम करोगे?"

नकुल जो अब तक अपने सम्बन्ध में पूर्ण विचार कर चुका था बोला—"मै विराट के अस्तबल मे काम करूंगा। घोड़ों को सधाने और उनकी देख रेख करने मे मेरा मन लग जायेगा। घोड़ों के इलाज का मुझे अच्छा ज्ञान है। किसी भी घोड़े को मैं काबू मे भी ला सकता हूं। फिर चाहे घोड़ा सवारी का हो, अथवा रथ का, सभी को मै साध लिया करूंगा। विराट से कह दूंगा कि पाण्डवों के यहां मै अश्वपाल के काम पर लगा हुआ था। निश्चय ही मुझे अपनी पसन्द का काम मिल जायेगा।"

अब सहदेव की बारी आई। युधिष्ठिर बोले—"बुद्धि मे वृहस्पति और नीति शस्त्र मे शुक्राचार्य ही जिसकी समता कर सकते हैं, और मत्रणा देने मे जिसके समान कोई भी नही, ऐसा मेरा प्रिय अनुज सहदेव क्या काम करेगा?"—युधिष्ठिर का गला उस समय अवरुद्ध था।

सहदेव बोला—"भ्राता जी! जब सभी छोटा से छोटा कार्य करने को तैयार हैं, आप जैसे महाराजाधिराज, व धर्मराज नौकर बन कर सेवा टहल करने को तैयार हो गए, भीम भैया महाबली रसोइया, अर्जुन जैसा धनुर्धारी नपुंसक और नकुल भैया अस्तबल का सेवक बन कर कार्य करेंगे तो फिर मुझे किस बात की परेशानी है। मैं अपना नाम तान्ति पाल रख कर विराट के चौपायो की देख भाल करने का काम कर लूंगा। गाय बैलों को किसी प्रकार की बीमारी न होने दूंगा और जगली जानवरों से उनकी रक्षा किया

करूंगा कि उनकी संख्या भी वढती जाये, वे हृष्ट पुष्ट हों और दूध भी अधिक देने लगे।"

इस के पश्चात युधिष्ठिर द्रौपदी से पूछना चाहते थे कि तुम कौनसा काम करोगी, पर उसका साहस न हुआ। मुह से शब्द ही न निकलते थे वे मूक से बने रहे, जो आदरणीया है, देवी के समान जिसकी पूजा होनी चाहिए, वह सुकुमार राज कुमारी किसी की कैसे और कौनसी नौकरी करेगी। युधिष्ठिर को कुछ न सूझा। मन ही मन व्यथित होकर रह गए यह सोच कर भी उनका मन सिहर उठता था कि जिसने सदा ही दास दासियो से सेवा कराई है, जो दूसरो को आदेश देती रही है, वह कैसे किसी की दासी वन कर उसके आदेशो का पालन कर सकेगी ?

द्रौपदी समझ गई, और स्वय ही बोली—"महाराज ! आप मेरे लिए शोकातुर न हो। मेरी ओर से निश्चिन्त रहे। सैरन्ध्री वन कर मैं राजा विराट के रनवास मे काम करूगी। रानियो और राजकुमारियो की सहेली वन कर उन की सेवा टहल भी करती रहूगी। अपनी स्वतन्त्रता और सतीत्व पर भी कभी आच न आने दूंगी। राजकुमारियों की चोटी गूथने और उनके मनोरजन के लिए हसी खुशी से वाते करने के काम मे लग जाऊगी। मैं कहूगी कि महारानी द्रौपदी की कई वर्ष तक सेवा शुश्रुषा करती रही हूं।"

द्रौपदी की वात सुन कर युधिष्ठिर के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसकी सहन शीलता की प्रशसा करते हुए बोले—"धन्य हो कल्याणी ! वीर वश की बेटी हो तुम ! तुम्हारी यह मगलकारी वाते और सहन शीलता का आदर्श तुम्हारे कुल के अनुरूप हैं।"

विद्याधर, खेचर आदि कितने ही अनेक प्रकार के लोग अर्जुन के मित्र थे। साथ ही महाराज युधिष्ठिर के पास वह अगूठी भी थी जो उन के पिता पाण्डु को किसी समय एक विद्याधर ने दी

थी। पाठकों को याद होगा कि उसी अगुठी के सहारे पाण्डु नृप कुन्ती से मिले थे। इस प्रकार की कितनी ही सुविधाए वेष बदलने और रूप रग आदि इच्छानुसार परिवर्तित न करने के लिए पाण्डवों को उपलब्ध थी। अर्जुन ने उस समय पाण्डु नृप वाली अगूठी के सहारे अपना नपुंसक जैसा रूप धारण कर लिया और विराट नृप की राजधानी की ओर चल पड़े।

※ पन्द्रहवां परिच्छेद ※

कीचक बध
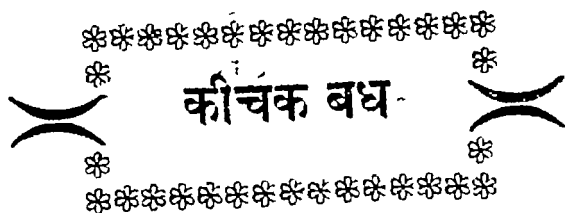
मत्सय नरेश विराट सिहासन पर विराजमान थे। एक सेवक ने आकर उन्हे प्रणाम करते हुए कहा—"महाराज की जय विजे हो एक सन्यासी आप के दर्शन करना चाहता है। अपना नाम और आने का तात्पर्य कुछ भी नही बताता।"

विराट नृप ने सेवक को आदेश दिया कि उसे दरबार मे आने दो।—और कुछ देर बाद एक सन्यासी वेपधारी व्यक्ति विराट के सामने आ उपस्थित हुआ। ब्राह्मण समझ कर विराट ने उस का अभिवादन किया और आने का कारण पूछा।

वह बोला—"मेरा नाम कक है, मैं महाराजाधिराज युधिष्ठिर का मित्र हू। चौसर खेलने, ज्योतिष राजनीति आदि मे निपुण हू। जब से सम्राट युधिष्ठिर का राज्य दुर्योधन ने छीन लिया और वे जगलों मे चले गए, तभी से बेकार मारा मारा फिर रहा हूं। सम्राट युधिष्ठिर को मैंने बहुत खोजा, पर कही पता न लगा। जीवन यापन का कोई साधन नही था। आप के गुणों की प्रशसा सुनी। युधिष्ठिर भी आप की बड़ी ही प्रशसा किया करते थे, अत विवश होकर आप की शरण आया हू। यदि आप मुझे अपनी सेवा मे रख ले तो अति कृपा हो। महाराज युधिष्ठिर द्वारा पुन सिहासनारूढ होने पर मैं उनके पास चला जाऊगा।"

विराट ने युधिष्ठिर का नाम सुना तो उन्हे बडी प्रसन्नता हुई वह कह बैठे—महाराजाधिराज युधिष्ठिर का जिक्र करके तुम ने हमारे मन में व्यापक दुख को हरा कर दिया। "ओह! कितना अन्याय हुआ उन के साथ? वे तो वास्तव में वडे ही बुद्धिवान, दयावान और धर्म नीति का पालन करने वाले अद्वितीय नरेश है। पर उनकी एक भूल ने ही उन्हे राजा से रंक बना दिया। पर तुम उनके मित्र हो, अपने को चौसर के खेल में निपण वताते हो, फिर तुम्हारे रहते युधिष्ठिर चौसर मे क्यो हार गए?"

"महाराज! उस समय मैं उनके पास नही था, उन्हे तो धोखे से हस्तिनापुर बुलाया गया था, यदि मैं उनके साथ होता तो फिर शकुनि की क्या मजाल थी कि वह उन्हे परास्त कर देता।" —कक ने कहा।

"जो भी हो, हम तुम्हे निराश नही करेंगे। महाराज युधिष्ठिर के दरबार की भांति ही इस दरबार को समझो।" विराट बोले।

'महाराज! मुझे आप से ऐसी ही आशा थी। वास्तव मे आप के सम्बन्ध मे महाराज युधिष्ठिर ने जो वताया था, वह अक्षरश सत्य सिद्ध हो रहा है।—मेरे साथ महाराज युधिष्ठिर के कुछ और सेवक भी है। जो अपने अपने काम में सर्व प्रकार से निपुण है। वे भी जीवन, यापन के लिए ही आप की शरण आये है।" कक रूपी युधिष्ठिर ने कहा।

विराट ने उसी समय उन लोगो को भी वुला लिया। भीम से पूछा—"तुम महाराज युधिष्ठिर के यहा क्या काम करते थे?"

"महाराज! मै उनकी रसोई मे काम करता था, मुझ से वह वहुत प्रसन्न थे।"

"डील डौल से तो तुम्हारे कथन का समर्थन नही होता।"

"मुझे वचपन से पहलवानी का शौक रहा है, और महाराज युधिष्ठिर भी मुझे कभी कभी कुश्तियां लडाकर मनोरजन किया

करते थे, बस यह डील डोल उसी की निशानी है।"—भीम बोला।

"तो फिर यहां भी तुम्हें रसोई के साथ साथ कुश्तियां भी दिखानी पड़ा करेंगी।"—विराट ने कहा।

—और भीम को रसोइया रख लिया गया। फिर नम्बर आया अर्जुन का।

"क्या तुम भी महाराज युधिष्ठिर के सेवक थे?"—नपुंसक के रूप में अर्जुन से विराट ने प्रश्न किया।

"जी! मैं सेवक नहीं सेविका थी।"

तुम्हारा यह रूप क्या है, वस्त्र नारियों से, आवाज और शरीर की बनावट पुरुषों सी। आधा तीतर आधा बटेर।"—विराट ने हंसते हुए कहा।

"महाराज! प्रकृति ने मुझे न पुरुष बनाया और न स्त्री। न जाने क्या इच्छा थी प्रकृति की। बस बीच बीच का ही रूप बन गई। मेरा नाम बृहन्नला है।" बृहन्नला रूपी अर्जुन ने कहा।

"तो बृहन्नला! तुम किस कार्य में दक्ष हो?"

"महाराज मैं राजकुमारियों को नाचना, गाना, शृंगार करना आदि आदि बहुत से काम जिनका सरकार से वास्ता नहीं, रानियों और राज कन्याओं से ही सम्बन्ध है, करती रही हूँ।"

इसी प्रकार नकुल और सहदेव ने अपने पूर्व निश्चयानुसार अपने अपने योग्य कार्य बताए। विराट ने युधिष्ठिर के नाम पर उन्हें उनकी मन पसन्द काम दे कर नौकर रख लिया। द्रौपदी और बृहन्नला को रनवास में लगा दिया गया।

कंक राज पन्डित के स्थान पर नियुक्त कर दिये गए थे. वे विराट के साथ चौसर खेल कर दिन व्यतीत करते, समय समय पर

उचित परामर्श देते और नीति सम्बन्धी बाते बता कर विराट के सामने आने वाली समस्याएं सुलझाते। भीम रसोई मे जी लगा कर काम करता, विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना कर राजा को खिलाता और विराट के राज्य के कितने ही पहलवानो से कुश्ती लड कर राजा का मनोरंजन करता, इस प्रकार उसने विराट का मन जीत लिया। नकुल और सहदेव अस्तबल व पशुशाला में मन लगा कर काम करते, और घोड़ों तथा पशुओं की उचित प्रकार से देख भाल करके राजा को सन्तुष्ट करने मे सफल हुए।

उधर अर्जुन बृहन्नला के रूप में विराट की कन्या उत्तरा को नाच गाना सिखाता और द्रौपदी सौरन्ध्री के रूप में रानी सुदेष्णा की मन लगा कर सेवा करती। इस प्रकार वे दोनों ही रनिवास मे छुपकर रहते रहे।

× × × × × × ×

रानी सुदेष्णा का भाई कीचक बडा ही बलवान था, वह अपनी बहन के यहां ही रहता था। उस ने अपने भाईयो को साथ लेकर विराट की सेना को सशक्त बना रक्खा था उसकी वीरता से प्रभावित होकर विराट ने उसे अपनी सेना का सेनापति बना दिया था। वह सारे राज्य पर छा गया था और अपनी चतुरता एवं वीरता से उसने अपना एक ऐसा स्थान पा लिया था कि विराट के राजा होते हुए भी एक प्रकार से मत्सय देश पर कीचक ही राज्य करता था। उस की बात टालने या उसकी इच्छा विरुद्ध चलने का साहस विराट को भी न होता था। अतएव समस्त प्रजा भी रचनात्मक रूप मे कीचक को ही राजा मानती और विराट मन ही मन उससे डरते थे।

कीचक चूलिका नरेश चूलिका का बेटा था। उसे विराट के यहा जो शक्ति प्राप्त थी उस से उसे अहकार हो गया था। वह जो चाहे कर सकता है, इस का उसे अभिमान था।

कीचक ने जब इन्द्राणी समान सुन्दरी द्रौपदी को देखा तो वह एक ही झलक मे अपना दिल दे बैठा। सौरन्ध्री के रूप पर

वह मुग्ध हो गया और उसे दासी समझ कर आसानी से ही फंसा लेने की आशा करने लगा। सौरन्ध्री के प्रति उसकी आसक्ति की यह दशा हो गई कि सोते जागते, हर समय उस के नेत्रो मे सौरन्ध्री की छवि ही घूमती रहती और वह जैसे तैसे उस से मिलने का प्रयत्न करने लगा।

सौरन्ध्री ने कीचक के नेत्रो मे तैरते विषयानुराग को भांप लिया, वह समझ गई कि यह पापी उसे भूखे नेत्रो से क्यो देखता है और उसके नेत्रो मे उमडती वासना की बाढ का क्या परिणाम निकल सकता है, वह उसकी शक्ति को अच्छी तरह समझती थी। अतएव वह सदा ही उस से चौकन्नी रहती, और कोई ऐसा अवसर न आने देती, जिस से कि कभी एकान्त मे कीचक का सामना हो।

पर वह बेचारी दासी जो थी, अपने पति की वर्तमान दशा को भलि प्रकार समझती थी, अत यह जानते हुए भी कि उसका पति इतना महान शक्तिवान है कि कीचक जैसे दुराचारियो को एक ही वार से ठिकाने लगा सकता है, अपने मन मे उठते भय के ज्वार को मन ही मे दफन कर लेती, अपने पति अर्जुन से कभी कुछ न कहती।

वह सोचती, ग्यारह मास बीत चुके, बस एक मास और शेष है, इस समय को जैसे तैसे अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए बिता देना ही ठीक है। कही अर्जुन को इस नीच की दुर्भावना का पता चला गया तो वह आग बबूला होकर इस दुष्ट को दण्डित कर डालेगा और न जाने इस के कारण इसका क्या परिणाम निकले, महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा पूरी न हो सकेगी और पुन. उन्हे १२ वर्ष के लिए वनवास मिलेगा।

परन्तु कीचक की पाप दृष्टि तो उन कुत्तो की भांति सदा उसका पीछा करती रहती थी, जो कि मांस के एक टुकडे के लिए जीभ निकाले फिरते हैं। सौरन्ध्री रूपी दीप शिखा पर कीचक रूपी पतिंगा जल मरने तक को तत्पर था। जहा यह दीप शिखा पहुचती, वही कीचक की भूखी दृष्टि आ जाती। सौरन्ध्री के

एक, एक पग पर वह अपने हृदय को न्योछावर करने को तत्पर रहता; उस के लिए अब वह केवल उसकी बहन की दासी नहीं रह गई थी; उसके हृदय की रानी, उसके हृदय की एक एक धड़कन मे सौरन्ध्री का नाम बस गया था। वह प्रत्येक क्षण उस को अपनी कामवासना का शिकार बनाने की युक्तियां सोचता रहता वह जब भी सौरन्ध्री को देखता उसके रक्त का ताप मान बढ़ जाता, हृदय की गति तीव्र हो जाती और उस का मन उसको अपने निकट खींच लेने के लिए उतावला हो जाता, पर सौरन्ध्री कभी ऐसा अवसर ही नहीं आने देती, जब कि वह कामान्ध एकान्त में उसे पा सके।

परन्तु भेडिये की माद मे रह कर भेडिए का सामना न हो यह भला कैसे सम्भव है? एक दिन अनायास ही सौरन्ध्री का सामना हो गया। एक सौरन्ध्री थी और दूसरा था कीचक। इनके अतिरिक्त वहा कोई न था।

"सौरन्ध्री!"—कीचक ने पुकारा।

सौरन्ध्री चौक पड़ी और कीचक को देखते ही उसका सारा शरीर काप उठा। भय उस के मन पर छा गया। अपनी मनो दशा छुपाने की उस ने लाख कोशिश की पर कीचक भाप गया।

"तुम कुछ भयभीत दिखाई देती हो। क्या बात है?"

"जी, कोई देख ... ."

"ओह यह बात है? नही नही इस बात से भयभीत होने की तुम्हे कोई आवश्यकता नही। तुम जानती हो यहाँ मेरा राज है, विराट तो नाम मात्र के लिए है।"

सौरन्ध्री ने वहा से खिसकने का प्रयत्न किया तो दुष्ट कीचक बोल उठा—"भागती कहा हो? तनिक मेरी छाती पर तो हाथ धर कर देखो। तुम्हारे लिए मेरे हृदय की धडकनें क्या कहती हैं सौरन्ध्री! कदाचित ससार मे तुम ही एक मात्र सुन्दरी हो जिसके सौन्दर्य ने मेरी आंखो से नीद और हृदय से चैन छीन लिया है

पर तुम हो कि मै जितना तुम्हारे निकट आने का प्रयत्न करता हू, उतनी ही तुम मुझ से दूर रहने के लिए प्रयत्नशील रहती हो। आखिर इतनी घृणा का क्या कारण है ?"

"आप को किसी पर-नारी से ऐसी बाते करते लज्जा नही आती ?"—सौरन्ध्री ने अपने मनोभावो को छुपाने का प्रयत्न किया और कीचक की बातों से उस के हृदय मे उस के प्रति जो घृणा एव क्रोध का तूफान उठा था, उसे रोके रहने का असफल प्रयत्न किया, पर जैसे किसी कटोरे मे मात्रा से अधिक पानी भर देने से पानी छलक पडता है, उसी प्रकार सौरन्ध्री का क्रोध भी छलक पडा।

"तुम लज्जा की बात कहती हो, पर मेरे हृदय की दशा को नही जानती ? तुम्हे पता नहीं कि मैं तुम्हारे लिए किस प्रकार तडप रहा हू। तुम्हारा सौभाग्य है कि मुझ जैसे सर्व शक्ति सम्पन्न सेना पति ने अपना मन तुम जैसी दासी पर वार दिया है। पर वास्तव मे तुम्हारे रूप ने मुझे घायल कर दिया है। और तुम्ही मुझे लज्जा का पाठ पढाती हो। सौरन्ध्री ! मेरे हृदय से इतना अन्याय पूर्ण खेल मत करो।"- कीचक ने बहुत ही प्रेम पूर्ण स्वर से कहा।

सौरन्ध्री की आखो मे खून उबल आया, बोली—"कामान्ध होकर यह मत भूलो कि मैं एक बलिष्ठ गंधर्व की पत्नी हूं। मेरे साथ पाप लीला रचाने का विचार भी तुम्हारे लिए नाश का कारण बन सकता है। समझे ?"

"सुन्दरी ! तुम्हारे रूप में जितनी शीतलता है, तुम्हारे कण्ठ में भी उतनी ही नम्रता होनी चाहिए। मैं तो समझता था कि तुम मुझे अपने पर आसक्त जानकर हर्षतिरेक से उछल पडोगी, पर देखता हूं कि तुम्हारा दिमाग आस्मान पर चढ गया है। गीदड के विप्ट की आवश्यकता पड़े तो गीदड पहाड पर जा चढता है। इसीलिए तो कदाचित किसी ने कहा है।

गर गदही के कान मे कह दू कि मैं तुझ पर फिदा।
बहुत मुमकिन है कि वह भी घास खाना छोड दे ॥"

—कीचक ने इतना कह-कर सौरन्ध्री की ओर घूर कर देखा।

मैं यहा दासी के रूप मे हू, पर इसका अर्थ यह नही कि मैं तुम्हारी कामाग्नि का शिकार हो जाऊ? —सौरन्ध्री बोली।

सौरन्ध्री! जब से मैंने तुम्हे देखा है, मैं तुम्हारे रूप का प्रशसक और तुम्हारे प्रेम का भूखा हो गया हू। तुम यदि अपने भाग्य के सितारे को चमकाना चाहो तो मेरे प्रेम का उत्तर प्रेम में दो फिर देखो मैं तुम्हे दासी से रानी बना दूंगा।"

"तेरी रानी के पद पर मै एक बार नही सहस्त्र बार थूकती हूं। धिक्कार है तुम्हारी आत्मा को धिक्कार है तुम्हारे उच्च पद पर तुम अपनी वासना के मद मे इतना भी भूल गये कि मैं किसी की पत्नी हू। और पतिव्रता नारी स्वप्न मे भी किसी पर पुरुष की ओर नही देखती?"—अपने क्रोध को नयन्त्रित रखते हुए सौरन्ध्री ने कहा।

कीचक का रोम रोम जल उठा, एक बार उसका हाथ खड्ग की मूठ पर गया, पर तत्क्षण सम्भल कर उसने अपने पर नियत्रण किया, क्रोध को पोकर बोला—"कल्याणी! तुम्हारी बाते तो इतनी कटु हैं कि मुझे जैसा वीर उन्हे सहन नहीं कर सकता। पर क्या करू बिना जाने पहचाने ही मैं तुम्हें अपना हृदय दे बैठा हूं। अतएव मैं फिर तुम्हे सुपथ पर आने के लिए अवसर देता हूं। वास्तव मे तुम्हारा यह अलौकिक रूप, दिव्य छवि और तुम्हारी यह सुकुमारता ससार मे अतुल्य है। तुम्हारा उज्ज्वल मुख तो चन्द्रमा को भी लज्जित कर रहा है। तुम जैसी मनोहारिणी स्त्री इससे पहले मैंने ससार मे नही देखी। कमलो मे वास करने वाली लक्ष्मी की साक्षात मूर्ति को दासी के रूप में देखकर मुझे मानसिक दुःख होता है। हे साकार विभूति, लज्जा, श्री, कीर्ति और काति जैसी देवियो का प्रति मूर्ति! तुम तो सर्वोत्तम सुख भोगने योग्य हो, पर हाय! तुम जघन्य दुःख भोग रही हो। मैं तुम्हारा उद्धार कर तुम्हे तुम्हारे अनुरूप स्थान देना चाहता हू। तुम चाहो तो मैं तुम्हारे लिए अपनी अन्य पत्नियो को त्याग दू, या उन सभी को तुम्हारी सेविकाए बना दू। मेरी प्रेम याचना स्वीकार करो और अपने भाग्य पर गर्व करो कि दासी होते हुए

भी तुम्हारे रूप पर मुझ जैसा शूरवीर आसक्त हो रहा है। वह शूरवीर जिसके शौर्य से मत्सय नरेश तक कापता है, जिसकी उगली के इशारे पर सारा मत्सय देश नाचता है। जिसके असोम बल के सामने विश्व के सभी योद्धा सिर झुकाते हैं। ऐसे वीर की पटरानी बनने का अवसर तुम्हें मिला है, इसे हाथ से जाने देना बुद्धिमानी नही है।"

कीचक की इस सीख का भी सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी पर कोई प्रभाव न पडा, उसने दात पीसते हुए कहा—निर्लज्ज! अपने इसी पौरूष पर इतराता है जो एक स्त्री के रूप के सामने नतमस्तक हो गया। एक सती की लाज का सौदा करने का साहस करता है। मुझे ज्ञात नही था कि विराट नरेश के राज प्रासाद मे ऐसे नीच लोग भी रहते है. जिन्हे लज्जा, सभ्यता, धर्म और बुद्धि छू तक नही गई। मैं अपने सतीत्व के सामने सारे ससार की वीरता, उच्च से उच्च पद और स्वर्ग के वैभव तक को ठुकरा सकती हू। याद रख कि मुझ जैसी पतिव्रता के सामने तेरे सारे प्रलोभन और भय व्यर्थ सिद्ध होंगे। खबरदार! जो भविष्य मे कभी इस प्रकार का विचार भी तेरे मस्तिष्क मे उभरा। ...."

"ओ दासी! कीचक के नम्र निवेदन को ठुकराने का परिणाम क्या होगा? जानती है?"—कीचक ने क्रोध से जलते हुए कहा।

"जानती हूं। तेरा क्रोध उबल पडेगा और तू स्वयंमेव अपनी मृत्यु को आमन्त्रित करने से न चूकेगा?"—सौरन्ध्री बोली।

अपमानित कीचक सौरन्ध्री के उत्तर से तिल मिला उठा। उस ने सौरन्ध्री की ओर हाथ बढाया, पर वह विद्युत गति से वहा मे हट गई। क्रोधाग्नि मे जलता कीचक देखता ही रह गया।

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

शास्त्रो मे ठीक ही कहा है कि वासना लिप्सा मे फसे वीर भी कायर हो जाते हैं, उनकी बुद्धि पर वासना परदा डाल देती है और

वह नाश को प्राप्त होते है। यह ऐसा दावानल है जो मनुष्यत्व को भस्म कर डालता है।

मदान्ध कीचक पर सौरन्ध्री के दृढता पूर्वक कहे गए कटु वचनों का भी कोई प्रभाव न हुआ। सती द्रौपदी के धमकी व चेतावनी भरे वाक्यों से भी उसकी वासना का नशा हिरन न हुआ। वह स्वयं ही बेचैन रहा और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए विभिन्न उपाय करने पर विचार करने लगा।

एक दिन कामदेव का दास कीचक अपनी बहन रानी सुदेष्णा के पास गया। बाल उलझे हुए। नेत्रों में लाली ऐसी लाली जो इस बात का प्रतीक थी कि वह कई दिन से सोया नही है। कपड़े भी कई दिन से नही बदले गए थे। ऐसी अवस्था मे गया वह अपनी बहन के सामने।

सुदेष्णा उसकी इस दशा को देखते ही विस्मित रह गई।

सुदेष्णा ने पूछा—"भैया ! यह कैसी दशा बना रक्खी है! कुशल तो है।"

"कुशल तो तुम्हारे हाथ मे है।"

"क्यो क्या बात है ?"

"बहन ! चारो ओर से निराश होकर तुम्हारे पास आया हूं अब तुम्ही हो जो मुझे जीवन दान दे सको।"

सुदेष्णा का हृदय कांप उठा, एक अजीव अशका उस के मन में जागृत हो गई। बोली—"क्या मेरे बस की बात है? तो फिर तुम्हें काहे की चिन्ता है। जो बात है निस्संकोच कहो। मैं अपने भैया के लिए अपने प्राण तक दे सकती हूं।"

"बहन ! मुझे तुम्हारे प्राण नही चाहिएं, मुझे अपने प्राण चाहिएं।"

कौन है ऐसा शत्रु जिसके कारण तुम्हारे प्राणो प

आ बनी। क्या संसार में ऐसा भी कोई है जिस से तुम इतने भय-भीत और निराश हो गए। मत्सय देश में तो ऐसा कोई भी नही। तुम साफ साफ क्यो नही............"

कीचक बीच ही मे बोल उठा। "इस धरती पर ऐसा कोई वीर नही उत्पन्न हुआ जिस से मुझे किसी प्रकार का भय हो। तुम इस सम्बन्ध मे निशंक रहो। पर

जब आते हैं किस्मत के फेर
मकड़ी के जाल मे फसते है शेर"

"पहेलियाँ क्यों बुझा रहे हो। साफ साफ बताओ न। मै तुम्हारी बातों से बेचैन हो उठी हूं।" सुदेष्णा बोली।

"बहन! विवश हो कर लज्जा को ताक पर रख कर अपनी बहन के सामने मैं अपनी बात कह रहा हू। वह जिस की मुट्ठी में मेरे प्राण है, तुम्हारी नई दासी है, सैरन्ध्री।"

कीचक की बात ने सुदेष्णा को और भी चक्कर मे डाल दिया यद्यपि एक बार उसकी छाती धड़की, और वह सही बात का अनुमान लगाते लगाते रह गई। शका को विश्वास में बदलने के लिए पूछ बैठी—"भैया! उस दासी के हाथ मे तुम्हारे प्राण कैसे हो सकते है। वह तो स्वय हमारी ही कृपाओ की मोहताज है।"

सुदेष्णे! रूप मे वह शक्ति है जिसके सामने ससार की समस्त शक्तियां शक्ति हीन हो जाती है।"—कीचक ने कहा।

"तो यूं कहो न कि काम वासना वह बला है जो सिंह को कुत्ते के रूप में परिणत कर डालती है।"—सुदेष्णा ने सब कुछ समझ कर अपने भाई को एक सीख देने के लिए कहा।

"तुम भी मुझे निराश कर दोगी, ऐसी तो मुझे स्वप्न मे भी आशा न थी। इतना तो सोचो कि तुम्हारे और मेरे शरीर में ... ... कि अभिन्न सम्बन्ध है। तुम ने जिस कोख मे पैर पसारे है, उसी कोख मे मुझे जीवन मिला है। मै जो भी हूं, जैसा

भी हूं, तुम्हारा भाई हूं। तुम्हारे ही सहारे मैं अपने देश को छोड़ कर यहां चला आया। मैं सदा ही तुम्हारे राज्य, तुम्हारे पति के सिंहासन के लिए अपने प्राण तक देने को तैयार रहा। तुम्हारे शत्रुओं को अपना शत्रु समझा। जान बूझ कर मृत्यु से टक्कर लेने में भी नहीं हिचका। क्यों? क्या केवल तुम्हारे लिए ही नहीं। तुम्हारे सुहाग और तुम्हारे पति के सिंहासन के लिए ही क्या मैंने रण भूमि में शत्रुओं को नहीं ललकारा। आज मेरा काम पड़ा है तो क्या मुझे तुम्हारे उत्तर से लज्जित होना पड़ेगा?"

रानी सुदेष्णा को यह समझते देर न लगी कि कीचक काम देव के पूरी तरह से अधिकार मे आगया है, वासना ने उसे उस स्थान पर लेजा पटखा है जहाँ से वापिस लौटाना असम्भव नहीं तो अति कठिन कार्य अवश्य है फिर भी उस ने कहा—"भैया! सौरन्ध्री मेरी दासी है, तो तुम्हारी भी दासी ही है। तुम सेना पति हो। इस राज्य के सब से ऊचे व सम्मानित आसन पर आसीन हो। तुम अपनी दासी के मोह जाल मे फसो यह तो तुम्हें शोभा नही देता। तुम्हारे घर मे एक से एक सुन्दर रानी है।"

"सुदेष्णे! प्रेम और आसक्ति नीच और ऊच के झगटो से ऊपर की बाते है। रूप सौंदर्य चाहे जहा हो उसके आकर्षण में कोई कमी कदापि नही होती। यह वह जादू है जिसका वार कभी खाली नही जाता। तभी तो लोग कहते है कि प्रेम अन्धा होता है। मेरे मन मे सौरन्ध्री की छवि इतनी चुभ गई है, कि निकाले नही बनती। इस सम्बन्ध मे कोई भी सीख व्यर्थ है।" —कीचक बोला।

रानी सुदेष्णा ने गम्भीरता पूर्वक उसे समझाने की चेष्टा करते हुए कहा—"मनुष्य को अपनी प्रतिष्ठा, मान और लोक लज्जा के लिए कितनी ही प्रिय वस्तुओं को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। धर्म त्याग का ही रूप है। वीर वह नही है जिस के शरीर मे अतुल्य शक्ति है, अथवा जो अपने शत्रुओ पर विजय पाता है, वरन वह है जो दुष्ट इच्छाओ दोषो कमजोरियो और अपनी इन्द्रियो पर विजय पाता है। काम मनुष्यत्व का सब मे बड़ा व भयंकर शत्रु

है, जो उस पर विजय पाता है, वास्तव मे वही वीर है। तुम स्वयं वीर हो, अपने को वीर कहलाना चाहते हो, अपने शौर्य पर तुम्हे गर्व है, फिर तुम काम देव के वशीभूत होकर एक दासी के सामने प्रेम याचना करो, या वासना के लिए अपने शौर्य को कलंकित करो; तुम्ही सोचो यह तुम्हारे लिए लज्जा की बात नही तो और क्या है ?"—

'बहन ! मै स्वयं अपनी कमजोरी पर लज्जित हूं। परन्तु अब तो बिना सौरन्ध्री को प्राप्त किए मेरा जीवन दुर्लभ है। जो भी हो। अब तो कोई ऐसा उपाय करो जिस से सौरन्ध्री मुझे स्वीकार करे, वरना मैं उसके मोह मे प्राण दे दूंगा।"

"भैया ! सौरन्ध्री जितनी रूपवती है, उतनी ही उच्च विचारो की सती भी। वह किसी बलवान गंधर्व की पत्नी है। पर—स्त्री पर कुदृष्टि डालने का दोष कर रहे हो। जानते हो यह कितना बडा पाप है। पता नही इसके कारण तुम्हे कितने नारकीय दुख भोगने पडे। यदि तुम इस लिए भी तयार हो जाओ तो भी सौरन्ध्री पति व्रत धर्म का उल्लघन करने को तैयार हो जायेगी, इसकी आशा मैं तो कर नही सकती। वह तो साक्षात सती प्रतीत होती है। इसी कारण बताओ मैं कर ही क्या सकती हू ?" सुदेष्णा ने विवशता प्रकट करते हुए कहा।

कीचक बोला—"सुदेष्णे ! लोग जितने उच्च दीखते है वास्तव मे होते उतने ऊचे नही। स्त्रियो के स्वभाव से मै भलि भाति परिचित हूं। प्रत्येक जीव सुख चाहता है। सुख का मोह मनुष्य से दुष्कृत्य से दुष्कृत्य करा डालता है। वैभव का आकर्षण बडा ही भयानक होता है। तुम यदि उसे मेरे द्वारा उपलब्ध सुख का मोह दर्शाओ तो विश्वास रक्खो कि वह अवश्य पिघल जायेगी। तुम प्रयत्न तो करो।"

'उसके ललाट पर चमकता तेज कदाचित तुमने नही परखा,—सुदेष्णा ने कीचक को सौरन्ध्री की उच्चता समझाने हेतु कहा—उस के तेज की शक्ति के सामने मैं किसी ऐसी बात

की आशा ही नही कर सकती जिसे स्वय मैं ही अधर्म समझती हू। वह तो धर्म के सम्बध में पारंगत है। मैं उस से ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं कर सकती जिसके स्वीकार होने की किंचित मात्र भी आशा नही ."

"ऐसा लगता है कि तुम पर उसकी बातों का जादू चल गया है। वरना तुम तो उसकी मालकिन हो, भला तुम्हारा वह क्या बिगाड सकती है ?"

"हा बिगाड तो नही सकती, पर मैं अधर्म से अपने को सम्मिलित नही करना चाहती।"

"तो फिर यह क्यो नही कहती कि मै तुम्हारे काम मे कोई सहायता ही नही करना चाहती।"

"नही, भैया नही, ऐसी कोई बात नही है। पर तुम तो पत्थर पर जोंख लगवाना चाहते हो।"

"यही तो बात है, तुम जिसे पत्थर समझती हो, वास्तव मे उसका रूप भले ही पाषाण समान हो, है वह अन्दर से पोला ही, बिल्कुल मोम समान। तुम एक बार प्रयत्न तो करके देखो।"

रानी सुदेष्णा कीचक के बारम्बार आग्रह के कारण विवश हो गई उसी काम के लिए जिसे करना वह स्वय पाप समझती थी। पर वह पाप करने मे घबराती भी थी। उसने कहा—"भैया ! तुम मुझे विवश कर रहे हो, अपनी स्थिति का दुरुपयोग कर रहे हो।—अच्छा ! मै इतना कर सकती हू कि मैं सैरन्ध्री को तुम्हारे पास एकान्त मे अकेली भेज दू। और तुम वहा उसे समझा बुझा कर प्रसन्न कर लेना। बस इस मे अधिक की आशा मुझ से मत करो।

कीचक को यह बात माननी पड़ी।

★ ★ ★ ★ ★ ★

एक पर्व के अवसर पर कीचक ने अपने घर बड़े भोज का आयोजन किया और सोम रस तैयार कराया। सौरन्ध्री को फासने के लिए ही यह षड्यन्त्र रचा गया था। रानी सुदेष्णा ने सौरन्ध्री को बुला कर कहा—"कल्याणी! भैया के यहा बहुत ही अच्छा सोम रस तैयार किया गया है। मुझे बड़े जोर की प्यास लगी है। तुम भैया के यहा जाओ और एक कलश भर कर सोम रस ले आओ।"

रानी का आदेश सुनकर सौरन्ध्री (द्रौपदी) का कलेजा धड़क उठा। बोली—'इस अन्धेरी रात्रि मे मै कीचक के यहां अकेली कैसे जाऊ? मुझे डर लगता है। महारानी आपकी कितनी ही अन्य दासियां है। उन मे से किसी एक को भेज दीजिए। मुझे इस कार्य के लिए क्षमा ही कर दे तो बड़ी कृपा हो।"

"सौरन्ध्री! भैया के घर जाने मे तुम्हे डर काहे का? तुम राज महल की दासी हो। तुम्हारे ऊपर कोई निगाह उठा कर भी देख ले तो उसकी आफत आ जाए। जाओ तुम्हे कोई भय की बात नही है।" सुदेष्णा बोली।

"आपने सदा मेरे ऊपर कृपा की है। क्या आज इस आदेश से मुक्त करके मुझे कृतज्ञ न करेंगी? वास्तव मे मै वहां जाते हुए घबराती हू। वरना आज तक मैंने आप के किसी आदेश को टालने की चेष्टा नही की।"—सौरन्ध्री ने नम्र शब्दो मे विनती की।

सुदेष्णा ने क्रोध का अभिनय करते हुए कहा—"सौरन्ध्री! तेरा यह साहस कि मेरी ही अवज्ञा करने लगी? भय का बहाना बनाकर क्यो धोखा देती है? साफ साफ क्यों नहीं कहती कि तू जाना नही चाहती?"

सौरन्ध्री ने नम्रता पूर्वक कहा—"महारानी जी! आप कृपया मेरी नियत पर सन्देह न कीजिए। मै आपकी दासी हू और आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। परन्तु सत्य यह

है कि सेनापति मुझे कुदृष्टि से देखते हैं। वे कामदेव के वशीभूत होकर धर्म को भूल जाते है उनकी आखो मे सदा ही वासना अंकित रहती है। वे काम सन्तप्त हो मेरे सतीत्व का हरण करना चाहते हैं। अतएव इतनी गहन रात्रि मे मैं उनके घर जाती घबराती हू। मै ने जब के यहा नौकरी की थी, आपको याद होगा कि आपने मेरे सतीत्व की रक्षा का वचन दिया था। अतएव आप मुझे वहा न भेजिए। वे काम से पीडित है, मुझे देखते ही अपमान कर बैठेगे।"

"तू तो काम से बचने के साथ साथ मेरे भाई पर भी दोषा-रोपण करने लगी ?—रानी सुदेष्णा ने बल खाते हुए कहा—क्या तू अपने को इतनी रूपवती समझती है कि कोई उच्चपदासीन राज-कुमार अपनी चन्द्र मुखी रानियो को छोड कर तुझ दासी पर कुदृष्टि डालेगा। नही यह सब तेरी बहानेबाजी है"

"नही, महारानी ! आप ऐसा न कहे मै आप के आदेश का पालन करने के लिए प्राण तक दे सकती हू। पर अपने सतीत्व की रक्षा करना भी तो मेरा धर्म है। मैं यू ही किसी पर दोषारोपण नही करती।"—सौरन्ध्री ने कहा।

"तो फिर तुझे ही जाना होगा। मैं कहती हू कि मेरे आदेश का पालन करते हुए तझे कोई आँख उठा कर भी नही देख सकता तू कलश लेकर जा और रस लेकर तुरन्त चली आ।

रानी की आज्ञा का पालन करना आवश्यक हो गया। सौरन्ध्री रोती और डरती हुई कलश लेकर कीचक के घर की ओर चली। मन ही मन वह जिनेन्द्र व शील सहायक देव का स्मरण करती जाती थी। भयभीत हरिणी की भाँति उसने कीचक के रनवास भवन मे पदार्पण किया।

उसे देखते ही कीचक आनन्द विभोर हो उठा। हर्षातिरेक से उछल कर खड़ा हो गया, बोला—सुन्दरी ! तुम्हारा हार्दिक स्वागत है। तुम ने मेरे घर पधार कर मेरे लिए जो उल्लास का प्रादुर्भाव किया है, उसके लिए शत शत धन्यवाद ! आज की रात्रि

का प्रभाव मेरे लिए वडा मगलमय होगा।"

सौरन्ध्री ने अपने मन मे उठे घृणा एव क्रोध के तूफान को रोक कर कहा—"मुझे महारानी जी ने सोमरस लेने के लिए यहा भेजा है। कृपया कलश भरवा दीजिए। उन्हे प्यास सता रही है।"

"और मुझे जो तुम्हारे सौंदर्य की प्यास सता रही है, क्या तुम्हे उसका तनिक सा भी ध्यान नही। इतनी कठोर मत वनो, मृग नयनी!"—कीचक वोला।

"घर पर आये शत्रु का भी अपमान नही किया करते। क्या वह रीति भी भूल गए। कामान्ध होकर असभ्य मत वनो। सौरन्ध्री वोली।

"मै तुम से सभ्यता की शिक्षा नही लेना चाहता। मुझे तो प्रेम की तृप्ति की भिक्षा चाहिए।"

"सेनापति! आप राज कुल के है और मै ठहरी एक नीच दासी। फिर आप मुझे क्यो चाहने लगे? यह अधर्म करने पर आप क्यों तुले हुए है। मैं पर-नारी हू। यदि आप ने मेरा स्पर्श भी किया तो आप का सर्वनाश हो जायेगा। स्मरण रखिये कि मैं एक गधर्व की पत्नी हूं। वे क्रोध मे आगए तो आपका प्राण ही लेकर छोड़ेंगे।"—द्रौपदी ने पुन. उसे सावधान किया।

"कल्याणी! तुम जो भी हो, मेरे लिये रानी हो। मैं तुम्हारे प्रेम के लिए प्राण तक न्योछावर कर सकता हू। हां वस मुझे एक वार तृप्त कर दो। मैं तुम्हारे लिए स्वर्ग समान वैभव के द्वार खोल दूंगा। मैं तुम्हारी इच्छा पर अपना सब कुछ होम करने को प्रस्तुत रहूंगा। मेरा प्रेम ऊपरी नही है, इसका सम्बन्ध मेरी आत्मा से है। यदि तुम मेरी हो जाओ तो फिर गधर्व तो क्या ससार की कोई शक्ति मेरे नाश का कारण नही वन सकती। प्रिय रानी! आओ मुझे जीवन दान दो।" कीचक ने फिर वही वेसुरी रागिनी छेड़ी।

"मैं तुम्हारी मूर्खता में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहती-

सौरन्ध्री ने आवेश मे आकर कहा—मुझे रानी जी ने आज्ञा दी है कि अविलम्ब सोमरस ले आऊ। अत. रस देते है या चली जाऊ।"

"कल्याणी! रस तो कोई और दासी भी लेजा सकती है—कीचक ने कामान्ध होकर कहा—तुम आई हो तो मेरी कामना को तृप्त व मुझे सन्तुष्ट करती जाओ। तुम मधुर कण्ठ वाली सौम्य मूर्ति हो, करूणा की प्रति मूर्ति हो, कठोर मत बनो। आओ जीवन का सच्चा आनन्द ले।"

"पापी! मुझे दासी रूप मे देख कर तेरा मस्तक फिर गया है। मैंने कभी स्वप्न मे भी पर पुरुष की ओर कुदृष्टि से नही देखा, धर्म विरुद्ध आचरण नही किया। अपने धर्म व सतीत्व के प्रभाव से मैं तुझे तेरी मदान्धता का मजा चखा दूगी।"—सौरन्ध्री ने क्रोध मे आकर कहा।

अनुन्य विनय और अग्रह से काम न बनता देख दुष्ट कीचक ने बल पूर्वक अपनी इच्छा पूर्ण करनी चाही और सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी का हाथ पकड कर खीच लिया। सौरन्ध्री ने कलश वहीं पटक दिया और झटका मार कर उस से अपना हाथ छुडाकर राज सभा की ओर भागी। क्रोध से भरा और द्रौपदी से मात खाया हुआ कीचक चोट खाये नाग की भाति उसके पीछे दौडने लगा। सौरन्ध्री हरिणी की भाति भय विह्वल होकर विराट नरेश की दुहाई मचाती हुई राज सभा मे जा पहुंची। वह हाप व काप रही थी। उस ने अवरुध कण्ठ से सारी सभा को सुना कर विराट नरेश के सामने जाकर कहा—"दुहाई है महाराज की! यह कैसा अन्याय है। कैसा आप का शासन है। आपका सेनापति मेरे सतीत्व को नष्ट करने पर तुला है। वह बल पूर्वक मुझे भ्रष्ट कर डालना चाहता है। बचाइये! बचाइये! मेरे सतीत्व की रक्षा कीजिए। वह दुष्ट व्यभिचारी . ..."

इतने ही मे कीचक भी वहा आगया। वह क्रोध मे पागल हो गया था। मदाध ने आगे बढ कर सौरन्ध्री को ठोकर मार कर गिरा दिया और अपशब्द कहे। सारे सभा सद देखते रह गए। किसी

का साहस न पड़ा कि उस अन्याय का विरोध करता। मत्सय नरेश को जिस ने अपनी मुट्ठी मे कर लिया था उस के विरुध बोलने का साहस भला कौन करता। उस समय राजसभा मे युधिष्ठिर और भीम सेन भी वैठे थे। अपनी आखो के सामने द्रौपदी का इस प्रकार अपमान होते देख कर दोनो भाई अमर्ष से भर गए। भीम तो उस दुष्टात्मा को मार डालने की इच्छा से क्रोध के मारे दात पीसने लगा। उसकी आखें लाल हो गई, भौंहे टेडी हो गई और ललाट से पसीना वहने लगा। वह क्रोधावेश मे उठना ही चाहता था कि युधिष्ठिर ने अपना गुप्त रहस्य प्रगट हो जाने के भय से अपने पैर के अगूठे से उसका अगूठा दवा कर सकेन पूर्वक उसे रोक दिया।

चोट खाई हुई सिहनी की भाति सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी गर्जना कर उठी।—"मेरे पति समस्त विश्व को मार डालने की शक्ति रखते हैं, मैं उस परिवार की वहू हू जो सारे जगत को अपने अस्त्रो शस्त्रों से भस्म कर सकता है। किन्तु वे धर्म के पाश से वन्धे है मैं सम्मानित धर्म पत्नी हू। तो भी आज एक सूत पुत्र ने मुझे लात मारी है। भरी सभा मे मुझ पर अन्याय किया है, एक पतिव्रता का अपमान हुआ है, और सभी सभासद सव मौन वैठे है, किसी को उस अन्याय पर कुछ कहने का साहस नही हो रहा। क्या इसी विरते पर आप लोग न्याय रक्षक कहलाने का दम भरते है? हाय! जो शरणार्थियो को सहारा देने वाले हैं और इस जगत मे गुप्त रूप मे विचरते रहते है वे मेरे पति महारथी व उनके योद्धा भ्राता आज कहा है? अत्यन्त वलवान तथा तेजस्वी होते हुए भी वे अपनी प्रियतमा एव पतिव्रता पत्नी को एक सूत पुत्र के हाथो अपमान होते कैसे कायरो की भाति सहन कर रहे हैं? आज पतिव्रता का अपमान हो रहा है, क्या इन भुजाओ और पैरो पर वज्र नही टूटेगा जिन मे मेरे शरीर का स्पर्श हुआ है?"

क्रन्दन करती सौरन्ध्री उठी और निर्भय होकर विराट नरेश को ललकार कर वोली—"मैंने तो सुना था कि मत्सय नरेश न्याय प्रिय व निर्भय व्यक्ति है, पर आज उनको भार्या के सामने यह दुष्कृत्य हुआ है जो किसी हीन से हीन नरेश के दरवार मे भी

नही होता। निरपराध नारी को अपने सामने मार खाते देखकर भी जिसकी भुजाए नही फरकी, जिसकी जिह्वा नही हिली, उसे न्यायधीश कहलाने, और किसी देश का राज्य सचालन का क्या अधिकार है। शास्त्र कहते है जो पीडितो की रक्षा नही कर सकता, न्याय का संरक्षण नहीं कर सकता जिसकी भुजाए निरश्रतो और निपराधियों की रक्षा मे नही उठ सकती, जो नारी को उस का उचित स्थान नही दिला सकता, व्यभिचारियों को दण्ड नहीं दे सकता, वह शासनारूढ रहने का अधिकारी नही है. ऐसे नरेश के होने से तो देश को बिना नरेश रहने मे ही भला है। मैं तो समझती थी कि विराट नरेश की व्यवस्था विराट है, हृदय भी विराट है, ज्ञान और क्षमता भी विराट ही होगी पर आज ज्ञात हुआ कि वह नाम मात्र का नरेश है। वरना शासन सता तो अन्यायियो के हाथ मे है।"

कीचक क्रन्दन करती सौरन्ध्री को एक ठोकर मार कर चला गया और कहता गया—मूर्ख ! मेरे विरुद्ध कितना ही शोर मचा, कितना ही विलाप कर, इन सब से कुछ होने वाला नही है। मैं जो चाहू वह कर सकता हू। भेड बकरियाँ सिह का क्या खाकर सामना करेगी।"

बिलखती सौरन्ध्री विराट और उसके सभासदो को उलाहना देती रही। कीचक के जाने के बाद सभासदो ने उस कलह का कारण पूछा। अवरुद्ध कण्ठ से सौरन्ध्री ने कीचक के पापाचार का भण्डा फोड किया। विराट ने उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न किया, सभासद मन ही मन कीचक को कोसने लगे। विराट भी बिलखती सौरन्ध्री के वृतात को सुनकर दुखित हुए, उन्हें क्रोध भी आया, पर बिल्कुल ऐसे ही जैसे किसी चिडिया को बाज पर आता है। विराट क्रोध करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे।

एक सभासद ने सौरन्ध्री (द्रौपदी) की व्यथा सुनकर कहा—"यह साध्वी जिस पुरुष की धर्म पत्नी है, उसे जीवन मे महानतः लाभ मिला है। मनुष्य जाति मे ऐसी सदाचारणी और सती का मिलना कठिन ही है। मैं तो इसे मानवी नहीं देवी मानता

हू ।"

दूसरा बोला—"जिसका धर्म सेनापति जैसे अत्यन्त बलवान उच्चपदासीन, वैभव शाली, सर्व शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के प्रलोभनो और धमकियो के सामने भी नही डिगा, वह धन्य है, दासी रूप मे देख कर हमे आश्चर्य होता है यह तो किसी उच्च कुल की सन्तान है ।"

जब समस्त सभासद मुक्त कण्ठ से द्रौपदी की प्रशसा कर रहे थे, उसी समय युधिष्ठर ने द्रौपदी को लक्ष्य कर के कहा—"सौरन्ध्री ! अब यहा क्यो खडी हो, विलाप करते और मोती समान अश्रु बिन्दु लुटाने से क्या लाभ ? तेरा पति और उसके भाई गन्धर्व अभी समय नही देखते । इसी लिए नही आ रहे । समय को देख कर, परिस्थिति का सही मूल्याकन न करके, क्रोध और आवेश मे जो कार्य होता है वह दुखदायी ही होता है । अवसर पाकर वे तेरा प्रिय कार्य अवश्य ही करेगे । तू सन्तुष्ट रह । अपने पति पर और अपने धर्म पर विश्वास रख । महल मे रानी सुदेष्णा के पास जा और प्रतिज्ञा कर । न्याय की रक्षा करने के लिए महाराज विराट भी उत्सुक है तेरे पति की तो बात ही न पूछो क्रोध को पी जाना ही श्रेयस्कर है ।"

सौरन्ध्री के बाल खुले थे, कमर पर छिटक रहे केश उसके टूक टूक हुए हृदय का प्रतिबिम्ब प्रतीत होते थे, नेत्र अश्रुपूर्ण थे और दहकते अगारो की भाति जल रहे थे । वह महाराज युधिष्ठिर जो अनुचर रूप मे थे की बात समझ गई और वहा से चली गई ।

रानी सुदेष्णा ने जो सौरन्ध्री की दशा देखी तो उनका मन सशंक हो उठा । मन के भाव छुपाते हुए उस ने पूछा—"कल्याणी ! तुम्हारी यह क्या दशा हो गई है ? तुम तो सोमरस लेने गई थी कलश कहा है ? हैं हैं, यह तुम्हारे नेत्रो मे अश्रुबिन्दु क्यो बिखर रहे हैं ? क्या किसी ने कोई अनर्थ कर डाला ?

रानी पर सौरन्ध्री का कोई सन्देह नही था, अपनी स्वामिन समझ कर उसने सिसकियां भर कर, सुबकते हुए, कहा—"महा-

रानी जी! वही हुआ जिसकी मुझे आशंका थी। उस समय आप ने मेरी एक न सुनी और आज सेनापति ने मेरे साथ घोर अत्याचार किया।"

विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए रानी ने पूछा—"यह मैं क्या सुन रही हूं। मुझे सब कुछ बताओ कि उसने तुम्हारे साथ क्या अन्याय किया।"

"उस दुष्ट ने मेरा सतीत्व भंग करने का असफल प्रयास किया—सौरन्ध्री वेष धारिणी द्रौपदी बोली—और जब मैंने उस काम सन्तप्त, कामान्ध और व्यभिचारी का विरोध किया तो उसने बल पूर्वक पाप लीला करनी चाही, मैं उसकी बलिष्ट भुजाओं से मुक्त होकर राज दरबार की ओर भागी। उसने पीछा किया और भरे दरबार में मुझे मारा। सभी सभासद और यहां तक कि महाराज भी यह सारा दृश्य मौन बैठे देखते रहे। किसी को इतना भी साहस न हुआ कि उस पापी को दुष्कृत्य के विरोध में एक शब्द भी कहता।"

"क्या इतने समय में यह सब कुछ होगया?—आश्चर्य प्रकट करते हुए सुदेष्णा ने कहा—तुम्हें वापिस आने में देरि हुई तभी मेरा माथा ठनका था। हाय! मुझ ही से भूल हो गई जो तुम्हें विवश करके वहां भेजा।........ पर अब पश्चाताप से क्या होता है। वास्तव में कीचक ने यदि ऐसा ही किया है तो यह उसका घोर अपराध है। तुम कहो तो मैं उसे मरवा डालूं।"

बेचारी सौरन्ध्री ने रानी के शब्दों को उसी रूप में समझा जिस रूप में कहे गए थे, जबकि रानी भी कदाचित जानती होगी कि कहने को वह कह गई पर यह बात उस के बस के बाहर की थी।

सौरन्ध्री ने उत्तर दिया—'महारानी जी! आप को कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। उस दुष्ट को वही दण्ड देंगे जिनका वह अपराध कर रहा है।"

रानी सौरन्ध्री के शब्दों को सुन कर सिहर उठी। भयातंक

आशका से उसका हृदय कपित हो गया।

अपमानित सैरन्ध्री (द्रौपदी) लज्जा और क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गई थी। अपनी हीन और असहाय अवस्था पर उसे बडा क्षोभ हुआ। उस का धीरज टूट गया। अपना परिचय ससार को मिल जाने से जो अनर्थ हो सकता था उस की भी चिन्ता न कर के वह मन ही मन कीचक के वध की बात सोचने लगी। कहते हैं कि उस ने सर्व प्रथम अर्जुन से जो उस समय वृहन्नला के रूप मे थे, अपनी व्यथा और कीचक वध का प्रस्ताव कहा। अर्जुन बोले—प्रिये! तुम्हारे अपमान की बात सुन कर मेरे हृदय पर जो बीत रही है उसे मैं शब्दो मे व्यक्त नही कर सकता। मेरा खून खौल रहा है। भुजाए फडक रही हैं। बार बार गाण्डीव का स्मरण हो रहा है। मुझे अपने पर नियत्रण रखना दुर्लभ हो रहा है। परन्तु फिर भी मुझे महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का ध्यान आता है। मैंने तुम ने और मेरे अन्य भाईयो ने उनकी प्रतिज्ञा के कारण जो जो कष्ट उठाए हैं, वे ऐसे हैं जिन के कारण कोई भी स्वभिमानी व्यक्ति विचलित हो सकता है। और तुम ने तो हम सभी से अधिक दुख भोगे हैं और भोग रही हो। पर मैं इस समय भ्राता जी के आदेश से बन्धा हू। विवश हू, बल्कि पगु ही समझो।"

यशस्वी अर्जुन की बात से द्रौपदी को शान्ति न मिली। दुखित होकर बोली—"प्राण नाथ! मै पांचाल नरेश की पुत्री हू, क्या इन्ही दुरावस्थाओ मे डालने के लिए ही आप मुझे स्वयवर मे जीत कर लाये थे? उस दिन की बात तो आप न भूले होंगे जब दुष्ट दु.शासन मुझे 'दासी' कह कर, मेरे केश पकड कर भरी सभा मे खीच लाया था। और भरी सभा मे मुझे वस्त्र हीन करने की चेष्टा की थी। आज भी मेरे केशों मे मुझे उस पापी के हाथो की दुर्गन्ध आती है। उस अपमान की आग मे मैं सदा ही जलती रहती हू। मेरे अतिरिक्त ससार मे और कौन सी राज कन्या है जो इतने अन्याय सहन कर के भी जीवित हो? वन-वास के दिनों मे दुष्ट जयद्रथ ने मेरा स्पर्श किया, वह मेरे लिए

दूसरा अपमान था. वह भी मैंने सहन किया और अब यहा के राजा विराट के सामने भरी सभा मे मै अपमानित हुई। कीचक ने भरी सभा में मुझे ठोकर मारी और महाराज युधिष्ठिर तथा भीम सेन बैठे देखते रह गए। इस बात से मेरे हृदय को कितनी चोट पहुची मै ही जानती हू।"

"दुष्ट कीचक कितने ही दिनो से मेरे सतीत्व को नष्ट करने का षडयन्त्र कर रहा है। वह इस देश का वास्तविक नरेश है। विराट तो नाम मात्र के ही नरेश है। उस दिन कामान्ध ही मुझे बल पूर्वक अपनी वासना की अग्नि मे जलाना चाहा, मै जैसे तैसे बच निकली और अपमानित हुई पर ऐसे कब तक काम चलेगा? प्रति दिन उसके पाप पूर्ण प्रस्तावो को सुन कर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। जब मै महाराजाधिराज युधिष्ठिर को, जो धर्मराज कहलाते है, अपनी जीविका के लिए कायर नरेश की उपासना करते देखती हू, तो मेरा हृदय फटा जाता है।"

महाबली भीमसेन को जब मै रसोइया के रूप मे देखती हू, तो मुझे बहुत दुख होता है। पाकशाला मे भोजन तैयार होने पर जब वे वल्लभ नाम धारी रसोइया के रूप मे विराट की सेवा मे प्रस्तुत होते है तो मेरा हृदय रोने लगता है। और आप जो अकेले ही रथ मे बैठ कर मनुष्यो की तो क्या देवताओ को भी पराजित करने की शक्ति रखते है आज रनिवास मे विराट की कन्याओ को बृहन्नला के वेष मे नाच गाना सिखाते दिखाई पडते है तो मेरे हृदय मे कितनी वेदना होती है, उसे व्यक्त करना सम्भव नही है। और! कितना बड़ा अनर्थ है कि धर्म में, सत्य भाषण मे और शूरता मे जो जगत प्रसिद्ध हैं वही हो जडे बने हुए है। आपके छोटे भाई सहदेव को जब मैं गौओं के साथ ग्वालो के वेष मे आते देखती हू तो मेरे शरीर का रक्त सूख जाता है, बरबस अश्रु छल छला आते है। मुझे याद है जब वन को आने लगी उस समय माता कुन्ती ने रोकर कहा था—"पाचाली! सहदेव मुझे बडा प्यारा है, यह मधुर भाषी सभ्य धर्मात्मा तथा अपने सब भाइयो का आदर करने वाला है, किन्तु है बडा ही सकोची। तुम इसे अपने हाथ से ही भोजन कराना। देखना! इसे कोई कष्ट न होने पाये।"

आज उसी सहदेव को देखती हू कि गौओ के पीछे डण्डा लेकर प्रातः
से सायकाल तक घूमता है और रात्रि को कम्बल बिछा कर सो जाता
है। जो रूखा सूखा मिलता है उसी से उदर पूर्ति कर लेता है।
यह सब देख देख कर दुखी होती हू, हृदय का रक्त पीती हू, आसू
मन ही मन पी जाती हू, बोझल मन लिए जीती हू। यह कैसी
समय की विडम्बना है कि सुन्दर रूप, अस्त्र विद्या और मेधा
शक्ति इन तीनो गुणो से सम्पन्न है वह प्रिय नकुल बेचारा आज
विराट जैसे नरेश की अश्व शाला का सेवक है। मनुष्यो की सेवा
न कर के उसे घोडो की सेवा मे लगा देखती हू फिर क्या मेरा हृदय
विदीर्ण नही होता ? न जाने कैसे जी रही हू।" पूर्व जन्म के
दुष्कर्मों का ही फल है।

'देखा, शास्त्रो के प्रति कूल कार्य करने का परिणाम।
महाराजाधिराज युधिष्ठिर को यदि जूए का दुर्व्यसन न होता तो
सारे परिवार की यह अधो गति क्यो होती ? मेधावी पाण्डु की
बहू, पाचाल देश की राज कुमारी, आज किस दशा मे है, सुनने
वाले भी रो उठेगे। मेरे इस क्लेश से पाण्डवों और पांचाल राज्य
का भी अपमान हो रहा है। आप के जीवित होते मुझे यह कष्ट
भोगने पडे, धिक्कार है ऐसे जीवन को।"

कहते कहते सौरन्ध्री (द्रौपदी) क्रोध से भर गई, पर
अपने पर नियंत्रण रखते हुए वह फिर बोली—"एक दिन समुद्र
के पास तक की धरती जिसके आधीन थी आज वही द्रौपदी सुदेष्णा
के आधीन हो कर सदा भयभीत रहती है। यही नही, कुन्ती
नन्दन ! पहले मैं किसी के लिए, स्वय अपने लिए भी उबटन नही
पीसती थी परन्तु आज राजा विराट के लिए चन्दन घिसना पडता
है रानी के लिए उबटन पीसना होता है। देखो ! मेरे हाथो मे
घट्टे पड गए हैं। क्या ऐसे ही थे पहले मेरे हाथ।

कहते हुए द्रौपदी ने अपने हाथ अर्जुन के सामने फैला दिए
और सिसकती हुई बोली"—न जाने मैंने क्या ऐसा अपराध किया
जिसका फल मुझे इतना भयकर भोगना पड़ रहा है।"

अर्जुन ने उसके पतले पतले हाथो को देखा, सच मुच काले काले दाग पड गए थे। उन हाथो को अपने मुह से लगा कर वे रो पडे। नेत्रो से सावन भाद्रो की झडी लग गई। क्लेश से पीडित हो कर अर्जुन कहने लगे—'पांचाली ! मेरे गाण्डीव को धिक्कार है, तुम्हारे काले पड गए हाथो को देख कर मुझे आत्म ग्लानि हो रही है। क्या करू जी में आता है कि ऐश्वर्य के मद उन्मत्त कामान्ध कीचक का इसी क्षण वध कर डालू, इस कायर नरेश को यमलोक पहुचा दूं पर क्या करू भ्राता जी की प्रतिज्ञा मेरे रास्ते में रोड़ा बन गई है। प्रिये ! जहाँ मेरे पास शक्ति है, उत्साह है, विद्या है वही मुझे बुद्धि भी मिली है। भ्राता जी ने धर्म और बुद्धि से काम न लिया तो उन्हे और उन के आश्रित हम सबो को आज का दिन देखने को मिला यदि वही भूल अर्थात बुद्धि से काम न लेने की भूल मैं भी करू तो क्या पता हम पर और क्या विपदाए पडे। तुम बुद्धि मती हो। क्रोध का दमन करो। पूर्व काल में भी कितनी ही पतिव्रता नारियो ने पतियो के साथ दुख भोगे हैं। सती सीता का उदाहरण तुम्हारे सन्मुख है। अतएव कल्याणी ! तुम कुछ दिनो के लिए सन्तोष करो। वह दिन शीघ्र ही आयेगा जब तुम्हारे कष्टो का निवारण करने के लिए मैं स्वतन्त्र हो जाऊगा।"

सौरन्ध्री रूपी द्रौपदी को इसी प्रकार समझा बुझा कर अर्जुन ने शांत किया। पर अलग होते ही पुन कीचक द्वारा किया गया अपमान उसके हृदय को कचोटने लगा। उसे रह रह कर अपमान का तुरन्त बदला लेने की इच्छा सताती। तब उसका ध्यान भीम सेन की ओर गया और उस के हृदय ने कहा—"पाचाली ! ऐसे समय भीम सेन; केवल भीम सेन ही तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिए तैयार हो सकता है, बदला लेना है तो उसी के पास चल।"—और उस ने निश्चय कर लिया कि वह भीमसेन से एकान्त मे मिलेगी और अपनी व्यथा सुना कर इस के निवारण का उपाय करने को कहेगी। वह अवश्य ही ऐसे आडे समय पर सब कुछ कर डालने को तैयार हो जायेगा। उसकी भुजाओ में शक्ति है, उस के रक्त मे गर्मी है, उस के मन मे चंचलता है। उत्साह क्रोध और शत्रु पर

विजय पाने को उसकी उत्कंठा ही उसका गुण बनी हुई है। वह अवश्य ही कीचक का वध करने को तैयार हो जायेगा। यदि कीचक का वध न हुआ तो उस का मन सदा ही अपमान से जलता रहेगा और किसी बार भी भयकर घटना घट जाने का भय बना रहेगा।

सभी बातें विचार कर उस ने भीमसेन से मिलने का निश्चय कर ही लिया।

× × × × × × ×

रात्रि अपने यौवन पर है। अल्हड रात्रि का घोर तिमिर व्याप्त है। पहरे दारो के अतिरिक्त सभी निद्रामग्न है। कभी कभी कुत्तो के भूंकने से रजनी की निस्तब्धता विदीर्ण हो जाती है। दूर जगलों मे सियार अपनी स्वभाविक ध्वनि से वन की शाति को भंग कर देते हैं। पहरे दारो की आवाज और सैनिको की सीटियो की ध्वनि भी कभी कभी तिमिर मे चुभ जाती है। रनिवास मे पूर्ण शाति है, सभी खर्राटे भर रहे है, पर बेचारी द्रौपदी को नीद कहा, हार्दिक वेदना मे वह तड़प रही है।

जब उसे विश्वास हो गया कि अब कोई नही है जो उस की गतिविधियो को देख सके। वह उठी और बिल्ली के पैरो मे पग रखती हुई रनिवास से बाहर हो गई। पहुची भीमसेन के पास जाकर भीम सेन को जगाया। उसे इतनी रात्रि को द्रौपदी के आकस्मिक आगमन से आश्चर्य हुआ। आखे मल कर उस ने देखा और विस्मय पूर्ण शब्दो मे बोला—"है, यह क्या? पाचाली तुम यहा, इतनी रात्रि को कैसे?" "तुम यहा खर्राटे भर रहे हो। पर मुझे नीद कैसे आये। मेरे हृदय मे तो विष पूर्ण तीर चुभा है।"—द्रौपदी बोली।

"साफ साफ बताओ ना कि क्या बात है? क्या कोई भयंकर घटना घटी है?"

"इस मे भयकर घटना और क्या हो सकती है कि पर

प्रतापी मेधावी नरेश पाण्डु की बहू, पाचाल की राज कन्या के सतीत्व को राहू ग्रस जाना चाहता है। मैं जिसने कभी कुन्ती माता का भी भय नही माना आज वही द्रौपदी भयभीत हरिणी की भाँति अपने को बचाने का प्रयत्न कर रही है। वीर पुरुषो के सग निर्भय होकर जीवन व्यतीत करने वाली नि सहाय अबला की भाति ठोकरे खा रही है। बोलो और क्या भयकर घटना होनी शेष रही है?" सिसकती हुई द्रौपदी बोली।

"क्या हुआ?" विस्फारित नेत्रो से देखते हुए भीमसेन ने पूछा।

"यह पूछो कि क्या नही हुआ? क्या उस दिन की बात भूल गए जब भरी सभा मे पापी कीचक ने मुझे लात मारी थी।— द्रौपदी ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा—महाबली! आखिर मैं यह अपमान पूर्ण जीवन कब तक व्यतीत करती रहू? मुझ से यह अपमान नही सहा जाता नीच दुरात्मा कीचक का तुम्हे इसी समय वध करना होगा। महारानी होकर भी यदि मैं विराट की रानियो के लिए चन्दन व उबटन पीसती रही, और दासी बनी तो तुम लोगों की प्रतिज्ञा के लिए। तुम लोगो की खातिर ऐसे लोगो की सेवा चाकरी कर रही हू जो आदर के योग्य नही है। मै आज रनिवास मे थर थर कापती रहती हू। मेरे इन हाथो को तो देखो।"

कह कर द्रौपदी ने अपने हाथ भीमसेन के आगे पसार दिये। भीमसेन ने देखा कि कोमलागनी द्रौपदी के हाथो मे काले काले दाग पड गए है। भीमसेन का मन रो पड़ा। आक्रोश मे आकर बोला—"कल्याणी! धिक्कार है मेरे बाहु बल को, धिक्कार है अर्जुन की शूरता को। हमारे जैसे बलिष्टो के रहते तुम्हारी यह दशा हो हमारे लिए डूब मरने की बात है। अब मैं न तो युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा का पालन करूंगा, न अर्जुन की सलाह की ही चिन्ता करूंगा। जो तुम कहो गी वही करूगा इसी घडी जाकर कीचक का वध किए देता हूं।"—इतना कह कर भीमसेन उसी क्षण फुरती से उठ खड़ा हुआ। भीमसेन को इस प्रकार एक दम उठते हुए

देख कर द्रौपदी सम्भल गई और भीमसेन को सचेत करते हुए बोली—"नही, नही आक्रोश मे कोई ऐसा कार्य मत कर बैठना जिस से कोई नई विपत्ति आने का भय हो। उतावली मे कोई काम कर बैठना ठीक नही।"

"तो फिर ?"

"तुम्हे सर्व प्रथम यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि मेरे इस प्रकार मिलने को रहस्य मे ही रखना होगा। किसी से भी इसका जिक्र न हो। दूसरे कोई ऐसा उपाय करना होगा कि कीचक का वध भी हो जाय पर गुप्त रूप मे। किसी को कानो कान पता न चले कि किस ने उसे मारा। कीचक का वध इस लिए आवश्यक है कि वह दुष्ट अपनी नीचता से बाज न आयेगा और समय पाकर फिर अपना कुत्सित प्रस्ताव करेगा। अवसर पाकर बलात्कार करने का प्रयत्न करेगा। परन्तु इस का यह भी तो अर्थ नही कि तुम उस पापी को दण्डित करते करते स्वय ही विपत्ति मे फस जाओ ?"—द्रौपदी संम्भल कर बोली।

"तो कोई उपाय ही सोचो।"

"हा तुम भी विचार करो।"

फिर दोनो विचार मग्न हो गए। दोनों सोचने लगे। और बहुत सोच विचार के उपरान्त यह निश्चय पाया कि कीचक को धोखे से राजा की नृत्यशाला के किसी एकान्त स्थान मे बुला लिया जाय और वही उसका काम तमाम कर दिया जाय।

× × × × × × ×

दूसरे दिन प्रातः काल अनायास ही दुरात्मा कीचक का सामना हो गया। पूर्व योजित योजना के आधार पर सैरन्ध्री रूपी द्रौपदी ने उस दुष्ट से बच निकलने की कोई चेष्टा न की। कीचक ने निकट पहुंच कर कहा—"देखा ! मेरा प्रभाव। मैंने तुम्हे भरी सभा मे विराट के सामने ही लात मार कर गिरा दिया, किसी को चू तक करने का साहस न हुआ तुम समझती थी कि विराट की

शरण जाकर तुम्हारी रक्षा हो सकेगी, पर मूर्ख सौरन्ध्री क्या तू नहीं जानती कि विराट तो मत्स्य देश का नाम मात्र का राजा है, असल मे तो मैं ही यहा का सब कुछ हू। यदि मेरी इच्छा पूर्ति करोगी तो महारानी का सा सुख भोगोगी, और मैं तुम्हारा दास बन कर रहूगा। वरना तुम्हारा जीवन भी दुर्लभ हो जायेगा। मेरे पजे से तुम्हे कोई नही बचा सकता। इस लिए मेरी बात मान लो।"

उस समय द्रौपदी ने कुछ ऐसा भाव बनाया मानो कीचक का प्रस्ताव उसे स्वीकार है और वह उस के प्रभाव मे आ गई है। वह बोली।

सेनापति! मैं आप की बात टालने का साहस भला कैसे कर सकती हू। पर लोकलज्जा मेरे आड़े आती है। मैं सच कहती हू कि मुझे अपने पति से बड़ा भय लगता है। यदि आप मुझे वचन दे कि आप मेरे साथ समागम की बात किसी को मालूम न होने देगे तो मैं आप के आधीन होने को तैयार हूं! लोक निन्दा से मैं डरती हू और यह नही चाहती कि यह बात आप के साथी सम्बन्धियो को ज्ञात हो। बस इतनी सी ही बात है।"

कीचक की वाछे खिल गई। आनन्द विभोर हो कर बोला—"बस इतनी सी बात पर तुम परेशान हुई फिरती हो और व्यर्थ ही बात का बतगड बनवा रही हो। तुम्हे विश्वास आये न आये पर वास्तव मे मै तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करूगा और इस बात का पता किसी को न चलने दूगा। मैं वचन देता हू कि मै तुम्हारे रहस्य को अपना रहस्य समझ कर अपने हृदय मे दफन कर दूगा। बस मुझे तो तुम्हारी 'हा' की आवश्यकता थी। अब बोलो मैं तुम्हारे लिए और क्या कर सकता हूं।"

"आप की सेवा मे फिर यह दासी भी उद्यत है।"

"तो फिर मधुर मिलन के लिए कोई समय, कोई स्थान?"

"नृत्य शाला मे स्त्रिया दिन के समय तो नृत्य कला सीखती

रहती हैं—द्रौपदी ने अपने मन मे उठ रहे घृणा तथा क्षोभ के भयकर
तूफान को छुपाते हुए कहा—रात को वे सब अपने घर चली जाती
है। वहा कोई नही रहता। वही स्थान उपयुक्त है आप आज
रात्रि को वही आकर मुझ से मिले। मैं वही मिलूगी, किवाड
खुले होगे आप चुप चाप वहा आ जाये। देखिये किसी को कुछ
भी पता न चले।"

कीचक के आनन्द का ठिकाना न रहा।

वडी वेचैनी से दिन बीता। वारम्वार कीचक आकाश की
ओर देखता रहा, उसके अनुमान से वह दिन द्रौपदी के चीर की
भाति बढता जा रहा था। पर द्रौपदी का चीर तो असीम था,
दिन तो उतना ही लम्बा था, आखिर किसी तरह रात हुई।
कीचक के दिन ढले ही स्नान किया। रात्रि का अधकार फैलते
ही बन ठन कर निकला और दबे पाँव नृत्य शाला की ओर बढा।
नृत्य शाला के किवाड खुले थे, देखते ही उसका हृदय बासो उछलने
लगा। शीघ्रता से वह अन्दर घुस गया ताकि कोई देख न
ले।

नृत्य शाला मे अधेरा था। कीचक ने गौर से देखा तो
पलग पर कोई लेटा हुआ दिखाई दिया। उस ने समझा उस के
स्वप्नो की रानी पलग पर लेटी है। उस के हृदय ने
कहा—

ओह! अपने वचन की कितनी धनी है वेचारी। कदाचित
दिन ढले ही आ गई है और मेरी प्रतिक्षा करते करते थक कर पलग
पर सो गई है।"

अधेरे मे टटोलता हुआ पलग के पास पहुचा। और धीरे से
फुस फुसाहट मे बोला—

"मेरे हृदय की रानी! मृग नयनी! प्रियतमा! तुम आ
गई। ओह! मुझे कितनी देर हो गई। क्षमा करना। मै
तुम्हारे वचन की पूर्ति के लिए बहुत छुपकर यहा आया हू।"

कीचक ने पलग पर लेटी हुई आकृति को सौरन्ध्री समझ कर वडे प्यार से उस पर हाथ फेरा। उस समय कामातुर होने के कारण उसका हाथ काप रहा था। उस ने कहा—"कोमलांगनी उठो। मैं आगया। मैं तुम्हारा प्रेमी! कितने दिनो से जिस कल्पना को मन मे सजोया था आज उसकी पूर्ति हुआ चाहती है। मेरे मन की चाह पूर्ण होगी। तुम जो सारे ससार मे सर्वाधिक सुन्दर हो, आज मुझ मिली। कितना उल्लास है मेरे मन मे? वस क्या वताऊ। मुझ जैसा सौभाग्य शाली और कौन होगा, जिसे तुम जैसी अप्सरा का प्रेम मिला हो।"

उसी समय वह आकृति विद्युत गति से जाग उठी, झपट कर उस ने कीचक दुष्ट का हाथ पकड लिया। जिस प्रकार मृग पर सिह झपटता है, उस प्रकार वह आकृति झपटी। और कीचक का हाथ दवोच लिया। और इतने जोर का धक्का मारा कि प्रेम विह्वल कीचक धड़ाम से धाराशायी हो गया। कीचक समझ गया कि आकृति सौरन्ध्री न होकर उस का पति गंधर्व ही है। गधर्व से पाला पडा जान कर वह सम्भल कर उठा। कीचक भी कोई कम शक्तिवान न था। वह उठा और भिड गया। दोनो मे मल्ल युद्ध होने लगा। यह इन्द्र वाली और सुग्रीव के युद्ध के समान था। दोनो ही वडे वीर थे। उन की रगड से वास फटने की सी कडक के समान भारी शब्द होने लगा। जिस प्रकार प्रचन्ड आधी वृक्ष को झझोड़ डालती है उसी प्रकार कीचक से लड़ने वाले योद्धा ने उसे धक्के दे देकर सारी नृत्य शाला मे घुमाया। वली कीचक ने भी अपने घुटनो की चोट से शत्रु को भूमि पर गिरा दिया। तव वह वीर दण्ड पाणि यमराज के समान वडे वेग से उछल कर खडा हो गया। एक वार क्रुद्ध होकर उसने कीचक को अपनी भुजाओ मे कस लिया, जैसे रस्सी से पशु को वाध देते है। अव कीचक फूटे हुए नगारे के समान जोर जोर से डकारने और उसकी भुजाओ मे अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करने लगा। तनिक सी देरी ही मे कीचक का गला उस वीर के हाथ मे गया और उसने कीचक के सभी अंगों को चकना चूर

कर दिया। कीचक की पुतलियां बाहर निकल आई। उसी समय जबकि कीचक अन्तिम सासे गिन रहा था, वह वीर बोला —"दुष्ट कीचक! तेरे पापाचार का दण्ड देने के लिए मैं आया था। याद रख भीम के ससार मे रहते किसी की शक्ति नही जो उस सन्नारी की लाज से खिलवाड कर सके, जिसे तू सौरन्ध्री समझता है।"

तो वह वीर था भीमसेन। वह भीमसेन जिस के बाहु बल पर महाराजाधिराज युधिष्ठिर और माता कुन्ती को बहुत ही अभिमान था।

भीमसेन ने उस दुष्ट की ऐसी गति बनादी कि उसका एक गोलाकार मास पिंड सा बन गया। फिर द्रौपदी से विदा लेकर भीमसेन रसोई घर मे चला गया और आराम से सो रहा।

इधर द्रौपदी ने नृत्य शाला के रखवालो को जगाया और बोली—'तुम्हारा सेनापति दुष्ट कीचक कामांध होकर प्रतिदिन मुझे तग किया करता था। आज वह मुझ से बलात्कार करने आया था। मेरे पति के भ्राता गधर्व ने अनायास ही यहां पहुंच कर उस दुष्ट को दण्डित किया। जाओ देखो तुम्हारे सेनापति की क्या गति हुई। व्यभिचारी, मदान्ध और अत्याचारियो की यह दशा होती है। देखो तुम्हारे सेनापति वहा मृत पड़े हैं।"

सुनते ही रखवाले काप उठे। उन्हो ने जाकर देखा कि वहाँ पर सेनापति नही, बल्कि खून से लथ पथ एक मास पिंड पड़ा था।

× × × × × × ×

कीचक के भाई उपकीचक कहलाते थे। नृत्य शाला के पहरेदारो ने कीचक की मृत्यु का समाचार उपकीचको को दिया। यह ऐसा समाचार था कि उपकीचको को सुनते ही बड़ा आघात लगा पर उन्हे तुरन्त ही विश्वास न हुआ कि ससार में कोई ऐसी

भी शक्ति हो सकती है जो कीचक जैसे शूरमा का वध कर सकती है। उनकी समझ मे न आया कि सेनापति कीचक क्योकर मारा गया। इस समाचार की सच्चाई को जानने के लिए वे दौडे दौड नाट्य शाला गए और जव उन्होने कचक का मास पिण्डी की भाति पडा शव देखा, तो हठात उनकी आखो से अश्रु धारा बह निकलो। वे सव उस शव के चारों ओर बैठ कर करुण क्रन्दन करने लगे। विलाप करते करते जव उन्हे बहुत देरी हो गई और उधर राज प्रासाद के सभी लोग कीचक के अन्तिम दर्शन करने एकत्रित हो गए तो उपकीचको मे से एक बोला—"इस प्रकार विलाप करते रहने से क्या लाभ! अब चलो भ्राता जी का अन्तिम सस्कार कर ले। जो होना था सो तो हो ही गया।"

अपने आंसू पोछ कर एक बोला—"पर अभी तक यह तो पता चला ही नही कि यह दुस्साहस किस मूर्ख ने किया कि सेनापति का वध कर डाला। हम लोगो के रहते वह वदमाश हमारे भाई का वध कर के निकल जाये यह तो हमारे लिए डूब मरने की वात है।"

"हा ठीक है। हम उस मूर्ख दुस्साहसी का सिर काट डालेगे हम उसे जीवित नही छोडेगे। हम उसे वता देगे कि कीचक परिवार पर हाथ उठाना अपने नाश को निमन्त्रित करना है।" तीसरे उपकीचक ने कहा।

फिर तो सभी की मुट्ठिया वध गई। सभी क्रुद्ध होकर कीचक के हत्यारे को गालियां देने लगे। पहरेदार को बुलाया गया और हत्यारे के वारे मे पूछा। जव उस ने वताया कि कीचक का वध सौरन्ध्री के कारण हुआ और हत्यारा गधर्व सेनापति की हत्या करके निकल गया तो उन सभी को सौरन्ध्री पर वहुत क्रोध आया। उन्होंने सौरन्ध्री को पकड़ लिया।

एक उपकीचक वोला—"इस स्त्री के कारण ही हमारे भ्राता का वध हुआ। यही है कीचक को हत्या की जिम्मेदार।

हम यह किसी प्रकार सहन नही कर सकते कि कीचक का वध करा कर यह पापिन जीवित रह कर हृदय जलाती रहे। इसे भी कीचक के साथ ही जलना होगा।"

ठीक है, ठीक है। इसे भी कीचक के शव के साथ ही जला दो।" समस्त उपकीचकों ने कहा।

राजा विराट कीचक के वध से बड़े दुखित थे क्योंकि अब वे अपने को निस्सहाय समझने लगे। कीचक से वे जहा भयभीत रहते थे, वही उसके सहारे वे निश्चिन्त थे। उन्हे अपने वैरियो का कोई भी भय नही रहा था। परन्तु कीचक के वध से उन के सामने पुन. वैरियो का भय उपस्थित हो गया था। और साथ ही वे उस गधर्व से बहुत ही भयभीत थे जिसने कीचक को मार डाला था। वे सोचते थे कि सौरन्ध्री के कारण आज तो कीचक जैसा बलवान सेनापति मारा गया, कल को कही कुछ और न हो जाय।

इस लिए जब उपकीचकों ने सौरन्ध्री को कीचक के शव के साथ ही जला डालने का निश्चय किया तो उन्हों ने कोई विरोध न किया। यद्यपि उसी समय उन्हे यह भी ध्यान आया कि सौरन्ध्री के जला डालने पर यदि गधर्वों ने मत्स्य देश को ही तहस नहस कर डालने की ठान ली तो क्या होगा? पर उसी समय उन्हे यह भी ध्यान आया कि यदि उपकीचको के आड़े आये और वे रुष्ट हो गए तो क्या होगा। बस इन प्रश्नो से विराट बड़े असमजस मे पड गए। चक्कर में पड़े विराट को कुछ न सूझा कि क्या करें। बस वे चिन्तित रहे।

उधर उपकीचको ने कीचक की अर्थी के साथ सौरन्ध्री को बाध लिया। और श्मशान भूमि की ओर चल पड़े। पाचाल देश की राजकुमारी और परम तेजस्वी धनुर्धारी अर्जुन की जीवन संगिनी द्रौपदी, सौरन्ध्री के वेष मे उस समय उपकीचको के चगुल में फस कर अबला की भाति विलाप कर रही थी। उस ने करुण क्रन्दन करते हुए कहा—"कहा है मेरे सिरताज! कहां है मेरे

जीवन साथी वीर ! कहां हैं मेरे रखवारे शूरवीर। हाय! मुझे 'अबला समझ कर यह दुष्ट जीवित ही चिता मे जलाने लेजा रहे हैं। दौडो ! मुझे बचाओ।"

इसी प्रकार आवाहन करती, विलाप करती, चीखती पुकारती द्रौपदी अर्थी के साथ बधी हुई श्मशान भूमि में गई। लगता था कि आज द्रौपदी के जीवन का अन्त कायर उपकीचकों के हाथो ही होना है।

श्मशान भूमि मे चिता सजाई गई। कीचक का शव रख दिया गया और अग्नि लगाई ही जाने वाली थी, कि द्रौपदी ने बड़े करुण शब्दो में रोकर कहा—"पापियो किसी सन्नारी को जीवित जलाते हुए तुम्हे लज्जा नही आती ? क्या वीर पुरुषो का यही धर्म है ? एक अबला के साथ इतना अन्याय करते हुए तुम्हारा हृदय नही कांपता ? अरे दुष्टो इतना तो सोचो कि तुम भी किसी नारी की ही सन्तान हो। तुम ने भी किसी नारी की कोख से ही जन्म लिया।"

पर उन दुष्टो की समझ में एक बात न आई। तब द्रौपदी ने पुकार कर कहा—"हे नाथ! आप तो दुखियों के सहारे हैं। आप के धनुष में तो इतनी शक्ति है कि सम्पूर्ण मत्स्य देश को भी नष्ट भ्रष्ट कर डाले ऐसी दशा में आपकी सहधर्मिणी दुष्टो के हाथों अबला की नाई जीवित जलाई जा रही है, तो आप कहां हैं ? नाथ! आप ने तो जीवन पर्यन्त मेरा साथ देने और मेरी रक्षा करने की शपथ ली थी।"

कुछ देरी रुक कर बोली—"हे दिशाओं! मेरे सहयोगी उस वीर गधर्व से जाकर कहदो, जिस ने कीचक जैसे बलिष्ट को मार गिराया कि इस समय यदि उस ने सहयोग न दिया तो वह जिसकी आंखों से आंसू न बहने देने के लिए वह गंधर्व ससार भर से टक्कर लेने को भी तैयार हो जाता है, इस ससार से चली जायेगी और हृदय में शिकायत लेकर मरेगी कि जब समय आया तो पाच बलशाली

गंधर्वों मे से एक भी काम न आया ।"

"इस चुडैल को भौंकने दो जी ! लगाओ आग । हम ने बहुत धुरंधर गधर्व देखे है।" एक उपकीचक ने इतना कहा और आग लगानी चाही ।

उसी समय श्मशान भूमि के एक कोने से आवाज़ आई—

"ठहरो ! अभी आग न लगाना ।"

देखा तो एक बडे वृक्ष को कधे पर रक्खे हुए एक भीमकाय व्यक्ति चला आ रहा है । उसे देखते ही उपकीचक सन्न रह गए । काटो तो शरीर मे रक्त नही । गला सूख गया । हाथ और पैर कापने लगे । उस आगन्तुक के शरीर और कन्धे पर रक्खे वृक्ष को देख कर उन्होने समझा कि हो न हो यही वह गधर्व है जिसे सैरन्ध्री पुकार रही थी ।

आते ही उस वीर ने देखते ही देखते सभी उपकीचको को मार डाला । उन मे से किसी का साहस न हुआ कि उसका मुकाबला करता । द्रौपदी के उल्लास का ठिकाना न रहा ।

बात यह थी कि वह वीर भीमसेन था । जो उपकीचकों से पहले ही श्मशान भूमि मे आ छुपा था ।

उपकीचकों को मार कर द्रौपदी को भीमसेन ने नगर को भेज दिया और स्वय दूसरे रास्ते से महल मे चला गया ।

× × × × × ×

विराट चिन्ता मग्न बैठे थे । एक दूत ने प्रवेश करते हुए प्रणाम किया और हकलाते हुए कुछ कहना चाहा ।

विराट नरेश ने उसकी ओर देखा । वे समझ गए कि दाल मे कुछ काला है । पूछ बैठे—"कहो, कहो क्या बात है ?"

"महाराज गजब हो गया ।"

"क्या बात है ?"

"उप...... ....कीचक मारे गए।" उस ने कापते हुए कहा।

सुन कर विराट भी कांप उठे। स्वय कुछ न पूछ सके। कक ने पूछा—"कैसे मारे गए उपकीचक ? किस ने मारा उन्हे ?

"महाराज ! श्मशान भूमि मे जब सौरन्ध्री को कीचक के शव के साथ चिता पर रख कर आग लगानी चाही। उसी समय कोई गधर्व वहाँ पहुचा और उसने सभी उपकीचको को मार डाला।" दूत ने कहा।

कक रूपी युधिष्ठिर समझ गए कि वह गधर्व कौन हो सकता है। फिर भी कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा -"हैं—क्या ऐसा हो गया—यह तो वडा बुरा हुआ।"

विराट के मुख से कुछ भी न निकला। उनकी आखों के सामने तो महानाश की कल्पना आ गई।

× × × × × × ×

सौरन्ध्री ! हम तुम्हारी सेवा से वड़े प्रसन्न है। तुम वास्तव मे वडी ही बुद्धि मति सन्नारी हो।" रानी सुदेष्णा ने कहा।

द्रौपदी हाथ जोड कर वोली—"आप मुझ से सन्तुष्ट हैं यह मेरे लिए वडी सौभाग्य की वात है।"

"परन्तु रुष्ट न होना। अब महाराज को तुम्हारी सेवाओं की आवश्यकता नही रही। मुझे खेद है कि अब मैं तुम्हारी सेवाओ से वचित रहूंगी।"—रानी वोली।

ऐसी क्या त्रुटि हुई मुझ मे ?" द्रौपदी ने विस्मित हो

कर पूछा।

"नही त्रुटि तो कोई नही हुई। पर अब हम तुम्हे अपने महल मे नही रख सकते।"

"सो क्यो?"

"बात यह है कि महाराज तुम्हारे गधर्वों से घबराते हैं। और वह नही चाहते कि तुम्हारे कारण कोई नई मुसीबत खडी हो जाय।"—रानी सुदेष्णा ने कहा।

राजा विराट ने पहले ही रानी सुदेष्णा को कह दिया था कि सौरन्ध्री को उचित पुरस्कार देकर विदा कर देने मे ही हमारा कल्याण है। पता नही उसके गधर्व क्या कर डाले। इसी लिए सुदेष्णा ने जो स्वय ही द्रौपदी से भयभीत हो गई थी, उक्त बात कही थी।

द्रौपदी को बडी ठेस लगी। फिर भी उसने नम्रता पूर्वक कहा—"महारानी जी! केवल १५ दिन मुझे और यहा रहने की आज्ञा दे दीजिए। तब तक मेरे पति का एच्छिक कार्य तथा मन्तव्य पूर्ण हो जायेगा। और वे स्वय ही मुझे यहा से ले जायेंगे। आप ने जहा और बहुत सी कृपाए की हैं इतनी और कीजिए।"

रानी ने यह बात विराट से जा कही। और उन दोनो ने. द्रौपदी के पति के भय से, द्रौपदी की विनती स्वीकार कर ली।

नगर के जो लोग भी द्रौपदी को देखते, कह उठते—"इस का रूप ही इतना आकर्षक है कि कोई वीर उस पर आसक्त होकर अपने प्राण दे तो कोई आश्चर्य की बात नही। पर है यह बडी भयानक। इस की ओर किसी ने कुदृष्टि से देखा और प्राण गए।"

द्रौपदी से सभी घबराने लगे थे। अतएव कोई उसे किसी कार्य को न कहता। बात तक करते हुए घबराते। परन्तु द्रौपदी इसी प्रकार सेवा कार्य करती रही। जबकि रानी सुदेष्णा उसे कहा करती कि वह अधिक काम न किया करे। आराम से रहे।

※ सोलहवां परिच्छेद ※

दुर्योधन विचार मग्न बैठे थे। उस के पास ही उस समय भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, त्रिगर्त्त देश के राजा और दुर्योधन के भाई भी उपस्थित थे। विचार इस बात पर हो रहा था कि पाण्डवो का पता कैसे लगाया जाय।

एक गुप्तचर ने प्रवेश किया। दुर्योधन शीघ्रता से पूछ बैठा—"बोलो! क्या समाचार लाये? कुछ पता चला पाण्डवो का?"

वह सिर नीचा कर के खड़ा हो गया।

"कुछ कहो भी कही सुराग लगा?"—दुर्योधन ने उत्सुकता से पूछा।

"महाराज! मैं और मेरे साथियों ने कई देशो मे खोज की। पहाड़ो की गुफाओ मे, ऊचे ऊचे शिखरो पर, जगलो मे, जनता की भीड़ो मे, मेलो मे ग्रामो तथा नगरो मे, जगलियो और खेत मजदूरो किसानो आदि मे ढूढा पर पाण्डवो का कही पता न चला। उनके इन्द्रसेन आदि सारथि द्वारका पुरी पहुंचे है, उन से भी पता चलाया। पर यह पता न लग सका कि वे कहा गए। जीवित

है या मर गए । कुछ समझ मे नही आता कि वे किधर निकल
गए।" —उस गुप्तचर ने खेद पूर्वक कहा ।

"गाव मे नही, शहरों मे नही, पहाडो पर नही, जगलों
मे नहीं तो फिर वे कहाँ निकल भागे। उन्हे जमीन खा गई या
आसमान निगल गया? नही, नही तुम मूर्ख हो। तुम ने ठीक
प्रकार देखा ही नही। वरना वे सूई तो है नही कि कही पत्तो या
राख मे दुबके पड़े रहे। तुम सब नमक हराम हो।"—दुर्योधन ने
गर्ज कर कहा।

उसी समय एक और गुप्तचर आया।

दुर्योधन ने उसकी ओर टेढी नजर डाल कर कहा—"हा, तुम
लो! तुम ने भी कुछ किया या नही?"

"महाराज! मैने समस्त साधु सन्तो के उपाश्रय देखे। विद्वानो
के आश्रमों मे खोज की। पर पाण्डव कही दिखाई न दिए और
जब मुझे विश्वास हो गया कि पाण्डव इस धरती पर है ही नही तो
वापिस चला आया।"—गुप्तचर ने कहा।

अभी दुर्योधन उसकी बात पर टिप्पणी भी नही कर पाया
था कि एक दूत ने आकर कहा—"महाराज मत्स्य देश से जो हमारे
गुप्तचर आये है उन्होने बताया है कि मत्स्य का सेनापति कीचक
किसी गंधर्व के हाथो बड़े रहस्य पूर्ण ढग से मारा गया। और उस
के बाद कीचक के सारे भाई भी मार डाले गए।"

इस समाचार से दरबार मे उपस्थित सभी लोग विस्मित
रह गए। त्रिगर्त राज सुशर्मा समाचार सुन कर उछल पड़ा। उस
ने सन्तोष की सांस लेते हुए कहा—"ओह कितना शुभ समाचार
है। आज मेरे हृदय को शांति मिली। कीचक मार डाला गया
तो मेरी छाती पर रक्खी एक भारी शिला उतर गई। मत्स्य देश
की सेनाओ ने कई बार हमारे ऊपर आक्रमण किए और वे सब
आक्रमण दुष्ट कीचक के कारण ही हुए। कीचक ने मेरे बन्धु

वांधवो को वहुत तग किया था। कीचक बड़ा ही बलवान, क्रूर, असहन शील और दुष्ट प्रकृति का पुरुष था, वह मारा गया अब हम मत्स्य नरेश से अच्छी तरह निबट सकते है।"

दुर्योधन ने कहा—"त्रिगर्त्तराज! लो तुम्हारी चिन्ता तो समाप्त हुई। अब जब कहोगे तभी तुम्हारे शत्रु से बदला ले लिया जायेगा, पर पहले यह तो सोचो कि पाण्डवो का पता कैसे चले। उनके अज्ञात वास का समय समाप्त होने वाला है। यदि शीघ्र ही उनका पता न चला तो अज्ञात वास काल समाप्त होते ही वे गुर्राते हुए यहा आ पहुचेगे और एक बड़ी मुसीबत खड़ी हो जायेगी। यद्यपि वे बेचारे अब हमारा कुछ भी नही बिगाड़ सकते परन्तु फिर भी यह कितना अच्छा हो कि हम अज्ञात वास काल मे ही उन्हे ढूढ निकाले और वे यहा आकर क्रोध को पीते हुए पुन वारह वर्ष के लिए जगलो की खाक छानने के लिए चले जाये।"

कर्ण ने परमर्श देते हुए कहा—"मै आप के विचारो से सहमत हू। मेरी राय से तो अब दूसरे कुशल गुप्तचर भेजे जाये जो भिन्न भिन्न देशो में जाये तथा सुरम्य सभाओ मे, सिद्ध महात्माओ के आश्रमो मे, राज नगरो में, गुफाओं मे वहा के निवासियो से वडे ही विनीत शब्दो मे युक्ति पूर्वक पूछ कर पता लगावे।"

दुशासन वोला—"राजन्! जिन दूतो पर आपको विशेष भरोसा हो वही शीघ्र ही मार्ग व्यय लेकर चले जायें। देरी करना ठीक नही है।"

दुर्योधन ने तत्वादर्शी द्रोणाचार्य की ओर दृष्टि डाली, तो वे वोले—"पाण्डव शूरवीर, विद्वान, वुद्धिमान, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से चलने वाले है। ऐसे महापुरुष न तो नष्ट होते हैं और न किसी से पराजित हो। उन मे धर्मराज तो बड़े ही शुद्धचित्त, गुणवान, सत्यवान नीतिमान, पवित्रात्मा और तेजस्वी हैं। अपनी शुभ प्रकृति के कारण उन मे इतनी शक्ति है कि जब वह छुप कर रहना चाहें तो

उन्हे अपनी आंखों से देख कर भी कोई पहचान न सकेगा। अतः इस बात को ही ध्यान में रख कर हमे विद्वान, सेवक, सिद्ध पुरुष अथवा उन अन्य लोगो से, जो कि उन्हे पहचानते हैं, ढूढवाना चाहिए।"

दुर्योधन महाराज युधिष्ठिर की प्रशसा से चिडता था, उस ने कहा—"गुरुवर! आप तो पाण्डवों को न जाने क्या समझते हैं। आप मुझे पूर्ण प्रयत्न कर लेने दीजिए, जब मेरे गुप्तचर उन्हे खोज निकालेंगे और वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पुन १२ वर्ष के लिए वनो में भटकने चले जायेंगे तब आप का भ्रम टूटे गा।"

द्रोणाचार्य मौन रह गए। उसी समय दुर्योधन ने भीष्म पितामह की ओर देख कर कहा—"पितामह! आप भी तो अपना मत दीजिए। पाण्डवो की खोज कैसे की जाय। अब उनके अज्ञात वास के दिन समाप्त हो रहे हैं। यदि शीघ्र ही कोई उपाय न किया गया तो पाण्डव इस दांव मे बच निकलें गे और फिर युद्ध ठानदेंगे।"

पितामह बोले—"पाण्डवों की प्रशसा सुनना तुम नही चाहते। अतः मैं उनकी शक्ति का बखान नही करता। हा, इतना अवश्य कहता हू कि जहा धर्मराज तथा उनके शुभ प्रकृति के भ्राता होंगे, उस देश मे समृद्धि का राज्य होगा, वहा उत्तरोत्तर उन्नति हो रही होगी। धन धान्य की बाहुल्यता हो गई होगी और वह राज्य सभी प्रकार के आतकों से शून्य होगा।"

"इस का तो यह अर्थ हुआ कि हम पहले उस देश की खोज करें जिसमें गत दस ग्यारह मास के भीतर समृद्धि का साम्राज्य हुआ हो।" दुर्योधन बोला।

"दीपक जहां जलेगा, वहां प्रकाश होगा, और जहां प्रकाश है वहीं दीपक को खोज लो।" पितामह बोले।

दुर्योधन ने कहा—"पितामह! आप तो हमे कोई सीधा

सादा उपाय बताइये। समय कम है। आप की राय की हमे आवश्यकता है और आप की कृपा विना हमारा किसी कार्य मे सफल होना दुर्लभ है।"

तब भीष्म जी बोले—"राजन्! युधिष्ठिर जैसे धर्मराज, अर्जुन जैसे धनुर्धारी और भीम जैसे बलवान से टक्कर लेनी आसान बात नही है। फिर भी चूकि तुम टक्कर लेना ही चाहते हो तो इतना करो कि ऐसे महाबली की खोज कराओ जिस ने गत दस ग्यारह मास मे कोई विचित्र तथा दुस्साहस पूर्ण कार्य किया हो, जिस को देख कर या सुन कर लोग अचम्भे मे पड़ गए हो। बस समझ लो कि वह भीम ही है। क्योकि भीम शांत प्रकृति का व्यक्ति नही है। जैसे रवि मेघ खण्डो के नीचे छुपा होने पर भी अपना अस्तित्व बिल्कुल ही नही छुपा सकता उसी प्रकार भीमसेन लाख छुपने का प्रयत्न करे पर वह कोई न कोई ऐसा दुस्साहस पूर्ण कार्य अवश्य ही कर बैठेगा, जिस से सभी चकित हो जायें। याद रक्खो कि भीम की टक्कर का अब बस एक ही व्यक्ति और शेष है वह है बलराम। कीचक था, पर भीम से कम।"

इतना सकेत पा कर कर्ण ने तुरन्त पूछा—"राजन्! पितामह ने एक बात बडे काम की कही। कीचक वास्तव में बडा ही बलवान था। तनिक इस बात का पता तो लगाइये कि कीचक का वध कैसे हुआ।"

दुर्योधन ने तुरन्त उस दूत को बुलवाया जिस ने कीचक के वध का समाचार दिया था और उस ने पूछा कि कीचक का वध किस ने और कैसे किया।

वह बोला—"महाराज यह तो ज्ञात नहीं हुआ कि कीचक को किस ने मारा। पर इतना सुना है कि उसका वध किसी स्त्री के कारण हुआ।"

दुर्योधन ने बात ताड ली। वह एक दम प्रसन्न हो उठा और उल्लासातिरेक मे बोला—"लीजिए पता लग गया। हम ने पाण्डवो को खोज लिया।"

कर्ण के हर्ष का ठिकाना न रहा। पूछा—"कैसे ? कहा हैं यह ? बताइये तो सही।"

"वे मत्स्य देश मे है।"

"यह कैसे ज्ञात हुआ ?"

"कीचक को भीम तथा बलराम दो ही वीर मार सकते है। बलराम का कीचक से कोई द्वेप नही। अवश्य ही उसे भीम ने मारा है और जिस स्त्री के कारण उसका वध हुआ वह द्रौपदी होगी।"—दुर्योधन ने उत्साह पूर्वक कहा।

"ठीक है। आप बिल्कुल ठीक कहते है।"—कर्ण बोला।

उसी समय त्रिगर्त्त देश के वीर सुशर्मा ने कहा—"तो फिर आप मुझे मत्स्य देश पर आक्रमण करने दीजिए। यदि पाण्डव वहा छुपे है तो वे अवश्य ही विराट की ओर से युद्ध करने आयेंगे। तब उन्हे हम पहचान लेगे और आप अपने मन्तव्य मे सफल होगे।"

दुर्योधन ने सुशर्मा की बात स्वीकार करली और उसने निश्चय किया कि सुशर्मा मत्स्य देश पर दक्षिण की ओर से आक्रमण करे और जब विराट अपनी सेना लेकर सुशर्मा के मुकाबले के लिए जाये तो उसी समय मैं अपनी सेना लेकर उत्तर की ओर से छापा मार दूगा। दूतर्फा युद्ध के द्वारा हम विराट का सारा गोधन ले आयेंगे। उसे परास्त कर उसका राज्य छीन लेगे और यदि पाण्डव वहा हुए तो उनका पता लग जायेगा। साथ ही यदि पाण्डव युद्ध करने आये तो उन्हे युद्ध स्थल पर मार कर निर्विघ्न राज्य करने का अवसर पा जायेंगे।

विराट नरेश ने दुर्योधन की मित्रता को सदैव ठुकराया था इस लिए दुर्योधन तो उस पर खार खाये बैठा था और सुशर्मा विराट से बदला लेने का इच्छुक था। कर्ण प्रत्येक दशा मे दुर्योधन को प्रसन्न देखना चाहता था। इस लिए तीनो ने मिल कर पूरी योजना बना ली और सेनाओ को तैयार रहने का आदेश दे दिया गया।

× × × × × × ×

योजना अनुसार सुशर्मा ने दक्षिण की ओर से मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया। मत्स्य देश के दक्षिणी भाग में त्रिगर्त राज की सेना छा गई और गायों के झुण्ड के झुण्ड सुशर्मा की सेना ने हथिया लिए, लहलहाते खेत उजाड़ डाले, बाग बगीचों को तबाह कर दिया। ग्वाले तथा किसान जहां तहां भाग खड़े हुए और राजा विराट के दरबार मे दुहाई मचाने लगे। विराट ने जब यह समाचार सुना उसे बड़ा खेद हुआ। उसने कहा -"हा, शोक! ऐसे समय पर शूरवीर कीचक नहीं रहा। उसी की मृत्यु का समाचार पा कर ही सुशर्मा को मत्स्य देश पर आक्रमण करने का साहस हुआ।"

उन्हे चिन्तातुर होते देख कर कंक (युधिष्ठिर) ने उनको सान्त्वना देते हुए कहा—राजन्! आप चिन्तित क्यो होते है। कीचक नही रहा तो क्या मत्स्य राज्य अनाथ हो गया? आप सेनाए तो तैयार करवाये। सुशर्मा जैसे लोगो का यह भ्रम आपको तोडना ही चाहिए कि कीचक मारा गया तो विराट नरेश के पास कोई शक्ति ही नही रही।"

"यह भ्रम टूटे तो कैसे? मैं स्वयं तो वृद्ध हो चुका हूं। कीचक और उपकीचक सभी मारे गए अब सेना मे ऐसा कोई वीर नही जो सुशर्मा का सामना कर सके। अफसोस कि मैने सैरन्ध्री को अपने रनिवास मे स्थान देकर स्वयं ही अपनी बरबादी को निमन्त्रित किया।"—इतना कह कर विराट बहुत दुखित होने लगे।

उसी समय कंक ने कहा—"महाराज! आप घबराइये नही। यद्यपि मैं सन्यासी ब्राह्मण हूं फिर भी अस्त्र विद्या जानता हूं। मैने सुना है कि आपके रसोइये, वल्लभ अश्वपाल ग्रंथिक और ग्वाला तन्तिपाल भी बड़े कुशल योद्धा हैं। मैं कवच पहन कर रथा रूढ़ होकर युद्ध क्षेत्र मे जाऊंगा। आप उनको भी आज्ञा देदें। उनके लिए रथों, वस्त्रो तथा अस्त्र शस्त्रो का प्रबन्ध करदें। फिर देखिये कि सुशर्मा का भ्रम कैसे टूटता है।"

"क्या वास्तव मे तुम चारो अस्त्र शस्त्र चलाना जानते हो?"

"हा, महाराज ! आप निश्चिन्त हो।"

"तो क्या तुम्हें विश्वास है कि सुशर्मा को मुह ...."

"हा, हा, सुशर्मा बेचारा किस खेत की मूली है।"

यह सुन विराट बड़े प्रसन्न हुए। उनकी आज्ञा अनुसार चारो वीरो के लिए रथ तैयार होकर आ खडे हुए। अर्जुन को छोड शेष चारो पाण्डव उन पर चढ कर विराट और उसकी सेना सहित सुशर्मा से लडने चले गए।

राजा सुशर्मा और राजा विराट की सेनाओ मे घोर युद्ध हुआ दोनो ओर के असख्य सैनिक खेत रहे। सुशर्मा तथा उसके साथियो ने राजा विराट को घेर लिया और रथ से उतरने पर विवश कर दिया। अन्त मे सुशर्मा ने विराट को कैद करके अपने रथ पर विठा लिया और विजय का शख वजाते हुए अपनी छावनी मे चला गया। जब राजा विराट वन्दी बना लिए गए तो उनकी सेना तितर वितर होगई। सैनिक प्राण लेकर भागने लगे। यह हाल देख कर युधिष्ठिर भीम को आज्ञा देते हुए वोले—"भीम! अब तुम्हे जी लगा कर लडना होगा। लापरवाही से काम नही चलेगा। अभी हो विराट को छुडा लाना होगा। तितर वितर हो रही सेना को एकत्रित करना होगा और फिर अपने बाहुबल से सुशर्मा का दर्प चूर्ण करना होगा।"

भीमसेन को तो ज्येष्ठ भ्राता के आदेश की देरी थी। अभी युधिष्ठिर की बात पूर्ण भी न होने पाई थी कि भीमसेन दौड कर एक भारी वृक्ष के पास गया और उसे उखाड़ने लगा। युधिष्ठिर ने तुरन्त जाकर उसे रोका और कहा—यदि तुम सदा की भाति पेड उखाडते तथा सिंह की सी गर्जना करने लगे तो शत्रु तुम्हे तुरन्त पहचान लेगा। इस लिए और लोगों की ही भांति रथ पर बैठे हुए धनुष बाण के सहारे लडना ठीक होगा।"

भ्राता की आज्ञा मान कर भीम सेन रथ पर से ही सुशर्मा की सेना पर बाणो की बौछार करने लगा। थोड़ी देरि की लडाई के बाद भीम ने विराट को छुडा लिया और सुशर्मा

को वन्दी वना लिया। मत्स्य देश की सेना जो सुशर्मा के भय से भाग गई थी पुन मैदान मे आ डटी और सुशर्मा की सेना से युद्ध करने लगी। भीम सेन के नेतृत्व में विराट की सेना ने सुशर्मा की सेना पर विजय प्राप्त करली।

विराट भीम का ऐसा पराक्रम देख कर वहुत ही प्रसन्न हुआ। युधिष्टर ने कहा—"महाराज! सुशर्मा का हर्ष चूर्ण करने के लिए ही हम लोग आये थे। वह हो गया। अब सुशर्मा को मुक्त कर दीजिए क्योकि क्षमा शीलता धर्म का आभूषण है दया वीरो को शोभा देती है।"

कंक रूपी युधिष्ठर की वात महाराज विराट ने स्वीकार कर ली और सुशर्मा को मुक्त कर दिया।

※सतारहवां परिच्छेद※

दुर्योधन से टक्कर

(राजकुमार उत्तर)

उधर राजा विराट, चार पाण्डवो के सहयोग से सुशर्मा से लड रहे थे, इधर उत्तर दिशा से दुर्योधन ने अपनी सेनाओ तथा सहयोगियो सहित आक्रमण कर दिया । उसकी सेनाओ ने लाखों गौए हाँक ली; लहलाते खेतों को नष्ट कर डाला । ग्रामीण अपने प्राण लेकर भाग खडे हुए और उन्हो ने जाकर राजकुमार उत्तर के सामने दुहाई मचाई ।

बोले- "दुहाई है राजकुमार की हम पर भारी विपदा का पहाड़ टूट पडा है। कौरव सेना हमारी गाए भगा लेजा रही है। हमारे खेतों खलिहानो को तबाह कर डाला गया है । हमारे ग्रामो पर मौत मडरा रही है। हम बरबाद हो रहे है । हमें बचाइये ।"

राजकुमार बोला—"तुम्हारी व्यथा को सुन कर हमारा हृदय शोकातुर हो गया है । हमें तुम्हारे प्रति सहनुभूति है । विश्वास रक्खो कौरव सेनाओ का सिर कुचल दिया जायेगा। बस महाराज को वापिस आ लेने दो । वे दुष्ट सुशर्मा को परास्त करने गए है। आते ही होगे ।"

"राजकुमार ! महाराज तो जाने कब तक लौटे । —ग्वाले और किसान दीनता पूर्वक बोले—युद्ध मे न जाने कितना समय लग जाए । उस समय तक तो हमारा सर्वनाश हो जायेगा ।

और क्या पता कौरव सेना तबाही मचाती हुई उस समय तक राजधानी तक भी पहुच जाय। आप हमारे राजकुमार हैं भावी राजा है। इस अवसर पर आप ही हमारे एक मात्र रक्षक हैं।"

जिस समय ग्वाले और कृषक अपनी दुख भरी गाथा सुना रहे थे, कितने ही नगरवासी वहा आगए थे और रनिवास की स्त्रिया ऊपर खडी २ सारी वाते सुन रही थी। राजकुमार भला अपने को कायर कहलाने को कब तैयार हो सकता था, उसने जोश मे आकर कहा—"घबराने की कोई बात नही है। यदि महाराज नही तो क्या हुआ मैं तो हूं। यदि मेरा रथ हाकने वाला कोई सारथी मिल जाये तो मैं अकेला ही जाकर शत्रु सेना के दात खट्टे कर दूगा और एक २ गाय उन दुष्टो के फदे से छुडा लाऊगा। ऐसा कमाल का युद्ध करूगा कि लोग भी विस्मित होकर देखते रह जायेगे। कहेंगे—'कही यह अर्जुन तो नही है' मैं महाराज विराट की सन्तान हू। मेरी भुजाओ मे क्षत्रिय रक्त दौड़ रहा है।"

ग्वाले और कृषक राजकुमार उत्तर की इस उत्साह पूर्ण वात को सुन कर वडे प्रसन्न हुए। उन्होने हाथ जोड कर गद गद कण्ठ से कहा—"धन्य हो राजकुसार ! आप वास्तव मे वीर सन्तान हैं। आपके रहते मत्स्य देश वासियो को भला किस का भय? वस कृपा कर जल्दी ही चले चलिए।"

"अरे ! तुम वड़े मूर्ख हो। बात नही समझे ? मै कह रहा हू कि एक सारथी का प्रवन्ध करदो। यदि रण स्थल मे रथ हाकने का अनुभव रखने वाला कोई सारथी मिल जाय तो मैं अभी, इसी समय चल सकता हूं। वरना पैदल थोडे ही युद्ध होता है। और ऐसे सारथी सभी महाराज के साथ गए हैं। ऐसी दशा में तुम्ही वताओ मैं कर क्या सकता हू ?"—राजकुमार उत्तर ने ग्वालो तथा कृषको के सामने एक उलझन उपस्थित करदी। अब भला वेचारे ग्वाले और कृषक कहा से सारथी लायें। उनका मुह फैला का फैला रह गया। विवशता नेत्रो मे झाकने लगी। उन बेचारो का क्या पता कि राजकुमार के पास सारथी हो या न हो पर वल तथा साहस की वहुत कमी है।

उस समय द्रौपदी भी रनिवास की अन्य स्त्रियों के साथ खडी सारी बातें सुन रही थी। उसने राजकुमारी उत्तरा के पास जाकर कहा —"राजकन्ये। देश पर विपदा आई हुई है। ग्वाले और कृषक घबराये हुए राजकुमार के आगे दुहाई मचा रहे हैं कि कौरवों की सेना उत्तर की ओर से नगर पर आक्रमण कर रही है। और मत्स्य देश की सैकडो हजारों गाए लूट ली है। इस समय महाराज दक्षिण की ओर सुशर्मा से युद्ध करने गए हैं। राजकुमार देश की रक्षा के लिए युद्ध करने को तैयार है, किन्तु कोई सुयोग्य सारथी नही मिलता। इसी से उनका जाना अटका हुआ है।"

"तो इस में मैं क्या कर सकती हूं?"

"आपकी वृहन्नला रथ चलाना जानती है। जब मैं पाण्डवो के रनिवास में काम किया करती थी तो उस समय मैंने सुना था कि वृहन्नला कभी कभी अर्जुन का रथ हाक लेती है। यह भी सुना था कि अर्जुन ने उसे धनुर्विद्या भी सिखाई है। इस लिए आप अभी वृहन्नला को आज्ञा दे दे कि राजकुमार उत्तर की सारथी बनकर रणांगण मे जाकर कौरव सेना को रोके।"

—द्रौपदी के मुख मे यह बात सुन कर राजकुमारी के आश्चर्य की सीमा न रही।

"सैरन्ध्री! क्या वृहन्नला इतनी गुणवती है? आश्चर्य है।"

"और जब वह युद्ध में जाकर अपने कमाल दिखायेगी तो आपको और भी अधिक आश्चर्य होगा? अर्जुन इसी कारण तो वृहन्नला का बहुत आदर करते थे।"

"कहीं तू झूठ ही तो नही कह रही?"

"क्या आपने मेरे मुख से आज तक कोई असत्य सुना?"

राजकुमारी निरुत्तर हो गई।

उसने अपने भाई के पास जाकर कहा—भैया! मैंने सुना है कि तुम कौरव सेनाओं का संहार करने जा रहे हो।"

'तो इस मे आश्चर्य की क्या बात है ? क्या मैं वीर विराट की सन्तान नही हूं ।"

"भैया ! मुझे आज तुम्हारे मुख से यह बात सुनकर कितना हर्ष हो रहा है, बस मैं ही जानती हूं । तुम विजयी होकर लौटो मेरी यही हार्दिक कामना है ।"

उत्तरे ! विजय तो मेरी निश्चित हैं पर मैं जाऊ तो कैसे ? कोई सारथी तो है ही नही ।"

"भैया ! मैं तुम्हे यही शुभ सवाद सुनाने आई थी ।"

"क्या ?"

"सारथी मिल गया और वह भी अर्जुन का ।"

आश्चर्यपूर्वक उत्तर ने पूछा—"कौन है वह ? कहा है ?"

"यह हमारी बृहन्नला है ना । यह अर्जुन का रथ हाका करती थी । इसे अर्जुन ने धनुर्विद्या भी सिखाई है । बस यह तुम्हारे सारथी का काम देगी ।"

अपनी बनी बनाई धाक को चोट पहुचने के भय से राजकुमार उत्तर ने कहा—"उत्तरे ! तुम भी कैसी मूर्खता की बातें करती हो । कहा बृहन्नला नपुसक और कहाँ युद्ध रथ का सारथी । अरे तुम ने भाग तो नही खा ली तनिक सोचो तो कि क्या अर्जुन को यही मिली थी रथ हाकने को ?"

"नही भैया ! सौरन्ध्री कहती है अर्जुन इसे बहुत स्नेह करते थे । तुम युद्ध मे जाना चाहो तो बृहन्नला को अपना सारथी बना लो । न जाना चाहो तो दूसरी बात है ।"

उत्तरा की इस बात से राजकुमार उत्तर ने अपनी बात बनाए रखने के लिए कहा—"नही ! मुझे तो कोई आपत्ति नहीं बृहन्नला यदि वास्तव मे रथ हाक सके । तो मेरे साथ चले ।"

"तुम अब जवान हो। किसी भी दिन तुम्हे शासन की बागडोर सम्भालनी पड सकती है, इस लिए युद्ध मे जाओ और अपनी तलवार के जौहर दिखा कर कीर्ति तथा यश प्राप्त करो।"

जब किसी को वीर कहने लगो तो उसे भी अपने बारे मे भ्रम होने लगता है। फिर उत्तर तो अपने को वीर समझता ही था। यह उसका पहला अवसर था कि अकेला युद्ध के लिए तैयार हो, लडकपन के उत्साह तथा चचलता ने जोर मारा और वह तैयार हो गया।

राजकुमारी उत्तरा ने रनिवास से जाकर वृहन्नला से कहा —"वृहन्नला ! मेरे पिता की सम्पत्ति और मत्स्य देश वासियो की गौओ को कौरव सेनाए लूट लिए जा रही हैं दुष्टो ने ऐसे समय पर आक्रमण किया है कि जब राजा नगर मे नही है। मेरे भैया उत्तर उन दुष्टो को मार भगाने के लिए युद्ध करने जाने को तैयार है, पर उन्हे कोई सारथी नही मिल रहा। सौरन्ध्री कहती है कि तुम्हे अस्त्र शस्त्र चलाना आता है और तुम अर्जुन का रथ हाक चुकी हो, तो तुम्ही राजकुमार उत्तर का रथ हाक ले जाओ न ?"

"वाह राजकुमारी जी !—वृहन्नला रूपी अर्जुन ने कहा --आप भी बहुओ से चोर सरवाने जैसी बाते करती हैं। कहा मैं और कहा सारथी बनना। आप मेरा वध करवाना चाहती है तो अपने आप सिर काट डालिए। पर मुझ कौरव वीरो की तलवार से काटने का दण्ड न दीजिए। ओह ! जिस समय युद्ध मे धनुषो की टंकार सुनाई देगी। हाथी घोडो की चिघाड गूजेगी, मेरी छाती फट जायेगी। मैं तो बिना मारे ही मर जाऊगी। हाय ! उस समय तो मेरे शव को कोई ठिकाने लगाने वाला भी होगा। राजकुमारी जी ! मैं सग्राम मे नही जाऊगी।"

वृहन्नला की कृत्रिम घबराहट के भावो को व्यक्त करने वाली बात ने राजकुमारी का विश्वास न डिगा। उसने कहा— "वृहन्नला बात बनाने की चेष्टा न करो। ऐसे सकट के समय मे भी यदि तुम काम न आओगी, तो तुम्हारी विद्या और योग्यता का भला क्या लाभ ?"

"अजी राजकुमारी जी! योग्यता तो मेरे पास भी नहीं फटकती और विद्या की पूछती हो, तो वह तो एक मील दूर से ही मुझ से नक सिकोड कर भागती है। हा, कौरव सेनाओ को नाच गा कर रिझाना हो तो फिर बन्दी तैयार है, पर इस के लिये साजिन्दे भी दरकार हैं।" —वृहन्नला ने आंखें मटकाते हुए कहा।

वृहन्नले! तू मुझे निरा मूर्ख क्यो समझती है। वात वना कर बहकाने से क्या लाभ! तुझे मैं भलि प्रकार समझती हू और सौरन्ध्री तो तेरी रग रग से परिचित है।"—राजकुमारी बोली।

"अजी! सौरन्ध्री का क्या ठिकाना। वह नपुंसको को भी अर्जुन समझ बैठे? अपना तो काम नाचना गाना है, और बेचारी सौरन्ध्री सग्राम को भी हीजड़ो का खेल समझ बैठी है। उनसे पहले यह तो पूछिए कि नाट्यशाला और सग्राम भूमि मे दूरि कितने अंगुल की होती है।" वृहन्नला ने अपने को छुपाने का भरसक प्रयत्न करते हुए कहा।

"तू अपनी बहानेवाजी से उस राज्य के सकट के समय काम आने से मुह छुपाती है, जिसका तूने इतने दिनो तक नमक खाया है और ऐश से रही। आज काम न आयेगी तो क्या मरहम वना कर फोडे पर लगाई जायेगी? ठीक ही है नपुसक से आडे समय पर काम आने की आशा रखना रेत से तेल निकालने के समान है।" राजकुमारी उत्तरा ने क्षुब्ध होकर कहा।

वृहन्नला ने इस ताने से प्रभावित सी होकर कहा—"राजकुमारी! आप तो इतनी सी वात पर रुष्ट हो गई। भला मैं आपके काम न आऊगी तो किस के काम आ सकती हू। मैं तो यह कहती थी कि आप तो ऐसी को सारथी के काम पर नियुक्त कर रही है जो घोडो से इतना घबराती है कि छाती वासो कूदने सी लगती है और घोडों की लगाम तो क्या अपने हृदय की लगाम तक सम्भ लने मे सफल नहीं होती। फिर भी संकट आया है तो लीजिए अब यह काम भी कर लूगी। आप रथ जुड़वाइये और इन लचकीले हाथों मे घोडो की लगाम दीजिए। इस नजाकत

से हाकूगी। कि मुए कौरव मोहित न होकर रह जाये तो तब कहिए।"

उसी समय द्रौपदी वहा आ गई और उसी के साथ साथ रनिवास की अन्य स्त्रिया भी यह देखने के लिए वहा पहुची कि बृहन्नला सारथी रूप मे कैसे जा रही है। द्रौपदी ने कहा—"अभी बाते ही हो रही हैं, तुम्हे तो अब तक नगर से बाहर हो जाना चाहिए था।"

"नगर से बाहर कहा उसे तो महल से निकलने मे ही मौत आ रही है। कहती है कि घोडो को हाकना तो यह जानती ही नही।" राजकुमारी उत्तरा बोली।

"क्यो री बृहन्नला! क्या ऐसे समय मे भी तुम्हे हास्य परिहास ही सूझ रहा है।"—द्रौपदी ने कहा।

"नही जी! हास्य परिहास तो आप को सूझा है। भला मै और युद्ध मे सारथी बन कर जाऊं। स्वामी सुनेगे तो क्या कहेगे?"—बृहन्नला वेषधारी अर्जुन ने द्रौपदी को सकेत कर के कहा।

सकेत को समझ कर द्रौपदी बोली—"स्वामी तो स्वय रण स्थल मे अपने हाथ दिखा रहे हैं। यही समय है जब नरेश को तुम अपना कमाल दिखा सको। और फिर तुम्हे अपने कमाल दिखाने का अवसर भी तो मिल रहा है। एक साल पूर्ण होना चाहता है जब से तुम ने महाराज विराट का नमक खाना आरम्भ किया है। अब भी यदि अपनी वफादारी का प्रमाण देने तथा उचित अवसर से लाभ उठाने का प्रयत्न न किया गया तो बृहन्नला के वास्तविक रूप को कौन जानेगा?"

द्रौपदी का इतना सकेत पाना था कि बृहन्नला की बातो की दिशा ही बदल गई, उसने कहा—"तो फिर सैरन्ध्री! जो थोड़ा बहुत मैं जान पाई हूं उसे अवश्य काम लाऊगी। पर कोई भूल हो गई तो तू जाने।"

"हा, हा तुम जाओ तो सही।"

तो फिर मुझे कोई बढिया सी साढी तो दिलवा दीजिए।"

'साढी क्यो ?"

कौरव वीरो के सामने जाना है। उन में राजे महाराजे वहां होगे राजकुमार होगे। उन के सामने इन साधारण कपड़ो मे जाऊगी तो लाज की मारी मर न जाऊगी। कोई क्या कहेगा कि राजा विराट के महल मे रहती है और कपडे तक...... "

द्रौपदी (सौरन्ध्री) ने वात वीच ही मे काट दी—"वृहन्नला। सारथी वन कर जाना है, अथवा नाचने ? कुछ सोच कर तो वात करो ."

"हाय राम ! सारथी वनूगी तो राजकुमार ही की तो। फिर यह कपडे क्या लजायेगे नही ."

"वृहन्नले ! वात क्यो वनाती हो। कपडे तो वही पहनो ना, जो अर्जुन की सारथी वन कर पहनती थी। देखो ! अव परिहास अच्छा नही। विलम्व न करो।"—द्रौपदी वोली।

"तो फिर आप यो क्यो नही कहती कि मुझे अर्जुन की सारथी का भेष धरना है।"

'और क्या... .. ..."

कवच लाया गया और राजकुमार ने सोत्साह उसे दिया। वृहन्नला के वेष मे अर्जुन नाटक करता हुआ उसे उल्टी ओर से पहनने लगा। देख कर सभी स्त्रियां खिल खिला कर हस पडी। किसी ने कहा—"फिर तो वृहन्नला ने राजकुमार को जिता दिया समझो। यह क्या वहां घोडे हांकेगी। जिसे कवच पहनना भी नही आता।"

उस समय द्रौपदी को अर्जुन पर वडा क्रोध आया। और अर्जुन ने कान दवा कर कवच ठीक प्रकार पहन लिया। परन्तु

भी वह सभी के सामने नाचने लगा। स्त्रियो की हसी रोके न रुकती थी। परन्तु जब महल से बाहर आकर उस ने घोड़ो को रथ मे जोता तो वह एक कुशल सारथी प्रतीत हुआ। राजकुमार उत्तर जब रथ मे आकर बैठा तो राजकुमारी ने कहा—"भैया! मत्स्य राज की लाज अब तुम्हारे हाथ है।"

उत्तर मे बृहन्नला ने कहा—"विश्वास रक्खो कि युद्ध मे राजकुमार की विजय अवश्य होगी। और शत्रुओ के अस्त्र शस्त्र हरण करके रनिवास की स्त्रियो को पुरस्कार के रूप मे दे दिए जायेंगे।"

राजकुमार ने इस घोषणा का अपनी गौरवमयी मुस्कान से समर्थन किया और बृहन्नला ने रथ हाक दिया। जैसे ही घोड़ो को चलने का इशारा किया और रथ चल पड़ा तो रनिवास की स्त्रियो के आश्चर्य की सीमा न रही। सिंह की ध्वजा फहराता रथ बड़ी शान से कौरव सेना का सामना करने चल पड़ा। उस समय बृहन्नला की कुशलता, चपलता तथा निपुणता देखकर सभी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे।

* अठारहवां परिच्छेद *

वृहन्नला रण योद्धा के रूप में

वृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर जब नगर से चला तो उस का मन उत्साह से भरा था वह बार बार कहता—"रथ तेजी से चलाओ। देखो जिधर कौरव सेना गौए भगाए ले जा रही है, उसी ओर भगाओ रथ को।"

राजकुमार का आदेश पाते ही वृहन्नला ने घोड़ो की वाग ढीली करदी और घोडे बडे वेग से भागने लगे। हवा से बाते करते हुए अश्व तीव्र गति से राजकुमार को कौरव सेना की ओर लेजा रहे थे। राजकुमार उत्साह के मारे रथ मे बैठा बैठा ही उछल उछल कर कौरव सेना को देखने का प्रयत्न कर रहा था। चलते चलते दूर कौरवो की सेना दिखाई देने लगी। धूल उड़ रही थी जो पृथ्वी से उठ कर आकाश को स्पर्श कर रही थी। उस धूल के आवरण के पीछे विशाल सागर की भांति चारो ओर कौरवो की विशाल सेना खडी थी। राजकुमार ने तो अपने मस्तिष्क मे कौरव सेना की यह कल्पना की थी कि कुछ व्यक्ति होंगे जो झुण्ड बनाए हुए गौए भगा ले जा रहे होगे। परन्तु वहा तो वह विशाल सेना थी जिसका संचालन भीष्म, द्रौण, कृप, कर्ण और दुर्योधन जैसे महारथी कर रहे थे। देख कर उत्तर के रोगटे खड़े होगए। कहां उसकी कल्पना और कहा यह वास्तविकता? उसे कंप कंपी होने लगी। वह सम्भल न सका। सामने थे हजारो अश्व सवार, रथ सवार, गज सवार और पैदल वीर,

समस्त प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से लैस। रथों पर भिन्न भिन्न चिन्हो की पताकाएं फहरा रही थी। जिधर दृष्टि जाती उधर रणवीर ही रणवीर दिखाई देते। और फिर साहस ही के लिए तो वह विशाल सेना क्या थी, सीधा नाश का महासागर उमड़ा था। इस लिए इतनी विशाल सेना को देख कर ही राजकुमार का अंग अंग कम्पित हो गया। भय विह्वल होकर उसने दोनो हाथों से अपनी आंखें मूद ली। उस से यह सब कुछ देखते भी न बना।

बोला—"बृहन्नला ! रथ रोक लो।"

रथ फिर भी चलता रहा।

कापती आवाज मे राजकुमार ने डूबते स्वर मे कहा—बृहन्नले ! क्या कर रही है रथ रोको, रथ रोको।"

बृहन्नला ने घोडों की बाग खींच ली। पूछा—"कहिए ! क्या हुआ ?"

"क्यो ?"

"मैं नही लडूगा मुझे मेरे घर पहुचा दो। जल्दी करो, कही ...ु ने मुझे देख लिया तो मेरी खैर नही।"

बृहन्नला ने राजकुमार की बात सुनी तो उसे इस कायरता ...र बडा क्रोध आया। फिर भी सावधानी से कहा—"राजकुमार! कैसी कायरता की बात कर रहे हो ? तुम तो शत्रु से लडने आये हो। विजय प्राप्त करने आये। और कहते हो कि ... ..."

"नही, नही बृहन्नला। इतनी बडी सेना से भला मैं अकेला कैसे लड सकता हू ?"—भयभीत राजकुमार ने कहा—"वह देखो कितनी बडी सेना खडी है। लगता है सारी दुनियां को समेट लाये है कौरव।"

"इतनी बडी सेना हुई तो क्या बात है। एक सिंह के सामने चाहे लाख भेड़ भी आ जायें, सिंह का क्या बिगड़ता है ?"

"तुम नहीं जानती बृहन्नले ! इस सेना में बड़े बड़े वीर होगे। बडे बडे अनुभवी सेनानी होगे और मैं ठहरा अकेला और अभी बालक। मुझ में इतनी योग्यता कहां कि इन कौरवो से पार पा सकू"

'किन्तु तुम तो शत्रुओं से युद्ध करने आये हो, तुम मत्स्य देश के भावी राजा हो। सारे देश का भाग्य तुम्ही हो। मत्स्य देश की लाज आज तुम्हारे ही हाथ मे है।"

"राजा तो मेरे पिता है—राजकुमार उत्तर ने कहना आरम्भ किया—और वे ही सेना लेकर सुशर्मा को परास्त करने गए है। सेना भी सारी उनके ही साथ है। फिर भला मैं अकेला इन असख्य शत्रुओं से कैसे लड़ू ?

बृहन्नला बोली—"राजकुमार। महल मे तो तुम बड़ी डीगे हांक रहे थे। बिना कुछ आगा पीछा सोचे मुझे साथ लेकर युद्ध के लिए चल पड़े और प्रतिज्ञा करके रथ पर बैठे थे। नगर के लोग तुम्हारे ही भरोसे पर हैं। सौरन्ध्री ने मेरी प्रशसा करदी और तुम जल्दी मे तैयार होगए मैं तुम्हारी वीरता पूर्ण बातो को सुनकर तुम्हारे साथ चलने को तैयार होगई। अब यदि हम गाए छुडाए बिना वापिस लौट जायेगे तो लोग हमारी हसी उडायेंगे इस लिए मैं तो लौटने को तैयार हू नही। तुम घबराते क्यो हो। डट कर लड़ो।"

बृहन्नला मे घोडो के रस्से ढीले कर दिए थे। रथ बड़े वेग से जा रहा था। बृहन्नला ने उसे रोकने की कोशिश नही की और शत्रु सेना के निकट पहुंच गया। यह देख उत्तर का जी और घबरा गया। उसने सोचा कि मौत के मुहाने पर आगया।

"तुम रथ रोकती क्यो नही ?"

"रथ तो शत्रुओ की सेना मे घुस कर रुकेगा।"

"नहीं, नही, यह मेरे बस का रोग नही। मैं नहीं लड़ूगा। मैं जान बूझकर मौत के मुंह में नहीं कूदूगा।'

"तुम ने तो शत्रुओ के वस्त्र व शस्त्र हरण करके रनिवास की स्त्रियो को पुरस्कार स्वरूप देने की प्रतिज्ञा की है। सोचो तो सही, तुम उन्हे कैसे मुह दिखाओगे।"—बृहन्नला ने लोक लाज का भय दर्शाकर उसे सम्भालना चाहा।

"कौरव जितनी चाहे गौए चुरा कर ले जाये—उत्तर कहने लगा—स्त्रिया मेरी हसी उडाएं तो भले ही उडाए। पर मैं लडूंगा नहीं। लड़ने से आखिर लाभ ही क्या है? मैं लौट जाऊगा। रथ मोड लो।"

"नही! मैं राजकुमार की हसी उड़वाना नही चाहती। मुझे अपनी इज्जत का भी तो ख्याल है।"

"भाड मे जाये तुम्हारी इज्जत। मै मौत के मुह में नही कूदूंगा। तुम रथ नही मोडोगी तो मैं रथ से कूद कर अकेले ही पैदल लौट पडूंगा।"

"राजकुमार! ऐसी बाते मुह से न निकालो। तुम वीरो की सन्तान हो। तुम्हारी भुजाओ मे इतनी शक्ति है कि ऐसी ऐसी एक नही हजार कौरव सेनाओ को आन की आन मे मार भगाए। और फिर तुम्हारे साथ मैं भी तो हू। मै मरूगी तो तुम मरना वरना कौन भला तुम्हारे मुकाबले पर डट सकता है।"

बृहन्नला के साहस दिलाने पर भी उत्तर अपने को न सम्भाल पाया। उसने आवेश मे आकर कहा—"तुम्हे तो अपनी शान से मोह नही। पर मैं क्यो मरू? तुम रथ नही लौटाती तो न लौटाओ। मै पैदल ही भाग जाऊगा।"

कहते कहते राजकुमार उत्तर ने धनुष बाण फेंक दिए और चलते रथ मे ही कूद पड़ा। भय के मारे वह आपे मे न रहा और पागलो की भांति नगर की ओर भागने लगा।

"राजकुमार! ठहरो, भागो मत। क्षत्रिय होकर तुम ऐसा करते हो। छी छी! देखा शत्रु क्या कहेंगे। नगरवासी क्या कहेंगे?" कहते हुए बृहन्नला के भागते राजकुमार का पीछा

किया। उसकी चोटी नागिन सी फहराने लगी। साडी अस्त व्यस्त होकर हवा मे उडने लगी। आगे आगे उत्तर पीछे पीछे बृहन्नला। उत्तर बृहन्नला की पकड मे नही आ रहा था और रोता हुआ इधर उधर भाग रहा था। सामने कौरव सेना के वीर आश्चर्य चकित हो यह दृश्य देख रहे थे। उन्हे हंसी भी आ रही थी।

आचार्य द्रोण के मन में कुछ शका जागृत हुई। सोचने लगे—"कौन हो सकता है यह? वेष भूषा तो स्त्रियों सी, पर चाल ढाल पुरुषो के समान प्रतीत होती है। ····· पर नपुसक सा व्यक्ति रण स्थल में क्यों आया?"

दूसरे वीर भी कुछ ऐसी ही बातें सोच रहे थे। प्रकट रूप मे आचार्य द्रोण बोले—"इसका भागना तो प्रकट करता है, कि यह कोई बलिष्ट व्यक्ति है। आगे वाला व्यक्ति रोता हुआ भाग रहा है और पीछे वाला उसे पकडने दौड रहा है। आखिर चूहे बिल्ली की दौड़ इन मे आपस मे क्यों हुई? कही स्त्री वेष मे कोई योद्धा तो नही? और कही अर्जुन ही हो तो ···· ?"

"अर्जुन नही हो सकता—कर्ण ने कहा—और अगर हुआ भी तो क्या? अकेला ही तो है। दूसरे भाईयो के बिना अर्जुन हमारा कुछ नही बिगाड सकता। पर इतनी दूर की क्यो सोचे?"

"तो फिर यह नपुसक रूपधारी कौन हो सकता है?" —द्रोणाचार्य ने प्रश्न उठाया।

"बात यह है कि राजा विराट अपनी समस्त सेना लेकर सुशर्मा के मुकाबले पर गया मालूम होता है। नगर मे अकेला राजकुमार ही होगा। कोई कुशल सारथी मिला न होगा तो रनिवास मे सेवा टहल करने वाले हीजडे को सारथी बना लिया और हम से लडने चला आया है।"—कर्ण ने उत्तर दिया।

इधर यह बाते हो रही थी उधर बृहन्नला राजकुमार उत्तर को पकडने का प्रयत्न कर रही था। जो तोड कर इधर उधर

भागने वाले राजकुमार को भाग दौड करके वृहन्नला ने पकड ही लिया। राजकुमार हाथ जोडकर बोला —"वृहन्नला! मैं तेरे पैरो पडता हू। मुझे छोड दे। मैं युद्ध नही करूगा। मेरी शेखियो पर न जा। मुझे मेरी माता के पास चला जाने दे।"

"राजकुमार! तुम्हे मैं लाई हू। मुझे अपने साथ तुम लाये हो। दोनो साथ आये है तो साथ ही वापिस जायेगे। शत्रुओ से क्यो हसी उडवाते हो। क्षत्रिय कभी पीठ दिखाकर नही भागा करते। तुम इतना डरते क्यो हो?"

कहते कहते वृहन्नला ने उसे बलपूर्वक ले जाकर रथ पर बैठा ही तो दिया। बेचारे उत्तर ने बहुत प्रयत्न किया कि वृहन्नला से छूटकर भाग जाये। पर वह अपने को छुडा न सका। परन्तु वह था तो बहुत ही घबराया हुआ। काँप रहा था। उसने वृहन्नला से कहा "मुझे छोड दो। मैं तुम्हे बहुत धन दूगा, सुन्दर सुन्दर वस्त्र दूगा। तुम जो चाहो मुझ से माग लेना। मुह मागी वस्तु दे दूगा। तुम तो बडी अच्छी हो। देखो, तुमने मेरा कहना कभी नही टाला। इस समय मेरी इतनी सी बात मान लो। मुझे नगर में ले चलो। कही युद्ध मे मुझे कुछ हो गया तो मेरी मा रो रो कर मर जायेगी। उसने मुझे बडे प्रेम से पाला है। मैं बालक ही तो हू। बचपने मे बडी २ बाते कर गया था। मैंने कोई लडने वाली सेना देखी थोड़े ही थी। अब कौरवो की सेना देखकर तो मेरे प्राण ही निकले जा रहे है। वृहन्नला! मुझे इस संकट से बचाओ। मेरी अच्छी वृहन्नला! मैं जीवन भर तुम्हारा उपकार मानूंगा।"

इस प्रकार राजकुमार उत्तर को बहुत घबराया हुआ जानकर वृहन्नला ने उसे समझाते हुए तथा उसका साहस बढाते हुए कहा—'राजकुमार! घबराओ, नही। तुम्हारा कुछ नही बिगड़ेगा।"
"नही, नही मर जाऊगा मैं तो। मुझ से नही लड़ा जावेगा।"
"तुम तो बस घोडो की रास सभाल लो। इन कौरवो से मैं अकेली ही लड़ लूगी। तुम केवल रथ हांकते रहना। इसमे जरा भी न डरो। इस प्रकार निर्भय होकर डटे रहोगे तो मैं अपने प्रयत्न मे

ही कौरवों को मार भगाऊंगी, गौओं को छुड़ा लूंगी। और तुम यशस्वी विजेता के नाम से प्रसिद्ध होगे।"—वृहन्नला ने कहा।

सुनकर राजकुमार के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या कह रही हो हजारों वीर एक ओर और तुम अकेली दूसरी ओर नहीं, नहीं भला यह कैसे सम्भव है ?"

"तुम घोड़ों की रास तो सभालो। देखो पानी की काई की भांति क्षण भर में इस सेना को बीच से ही काटती हू।"

"नहीं, नहीं। तुम तो स्वय ही मर जाओगी और साथ ही मुझे ले मरोगी। ना ऐसी मूर्खता मैं नहीं करूंगा। मेरी मानो तो विलम्ब न करो, भाग चलो। प्राण है तो सब कुछ है। वरना ...."

"राजकुमार! मुझ पर विश्वास करो। मैं तुम्हारा बाल भी बाका न होने दूगी!"

बड़ी कठिनाई से राजकुमार घोड़ों की रास सभालने को तैयार हुआ। तब वृहन्नला ने कहा—"नगर के बाहर जो श्मशान है, उसके पास वाले शमी के वृक्ष की ओर रथ को ले चलो।"

—और रथ उस ओर तेजी से चल पड़ा।

उधर आचार्य द्रोण उनकी गतिविधियो को सावधानी से देख रहे थे, उन्हे शंका हो रही थी कि नपुसक के वेष मे कहीं अर्जुन न हो। सकेत से यह बात उन्होने भीष्म को भी बतादी।

यह चर्चा सुन दुर्योधन कर्ण से बोला—"हमे इस बात से क्या मतलब कि नपुसक के वेष में कौन है। मान लिया कि अर्जुन है फिर लाभ ही लाभ है। शर्त के अनुसार पाण्डवों को फिर बारह वर्ष के लिए वनवास भुगतना पडेगा।"

उधर शमी के वृक्ष के पास पहुच कर वृहन्नला ने उत्तर से कहा—"राजकुमार! तुम्हारी जय हो। बस अब एक काम और करो, इस शमी के वृक्ष पर चढ जाओ। ऊपर एक गठरी टगी है,

से उतार लाओ।"

"क्यो ?"

"उस मे कुछ हथियार बधे है।"

"नही, इस वृक्ष पर तो लोग कहते है, किसी बुढिया की लाश टगी है। मैं नही चढूंगा।"

"राजकुमार! तुम क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी इतने डरपोक क्यो हो? वृक्ष पर चढ जाओ और देखो तो सही वह लाश है, अथवा शस्त्रो की गठरी।"

"माना कि उस मे शस्त्र ही है, तो भी रथ मे किन शस्त्रो की कमी है? जो मुझे बेकार वृक्ष पर चढाते हो।"

"तुम नही जानते राजकुमार! रथ के अस्त्र शस्त्र मेरे काम के नही। वृक्ष पर टगी गठरी मे ही मेरे काम के अस्त्र शस्त्र है। तुम चढो भी।"

"आखिर उस गठरी मे ऐसे कौन से अस्त्र शस्त्र है जिन के विना तुम्हारा काम न चलेगा।"

"मै जानता हू कि उस गठरी मे पाडवो के अस्त्र शस्त्र है।"

यह बात और भी आश्चर्य जनक थी, उत्तर के लिए। उस ने कहा—"तुम तो ऐसी पहेलिया बुझा रहे हो कि अपनी तो समझ मे खाक नही आता।"

वृहन्नला ने एक वार आखें तरेर कर उसकी ओर देखा और कहा—"राजकुमार! तुम इतने कायर होगे, मुझे स्वप्न मे भी आशा नही थी।"

लाचार होकर उत्तर को उस वृक्ष पर चढना पडा। उस पर जो गठरी थी, उसे खूब देखभाल के पश्चात उतारा और मुह बनाते हुए नीचे उतर आया। वृहन्नला ने ज्योही गठरी खोली उस मे से सूर्य की भान्ति जगमगाने वाले दिव्यास्त्र निकले।

उन अस्त्रो की जगमगाहट देखकर उत्तर की आंखे फैली-की-फैली रह गई। जगमगाहट की चकाचौंध से अधा सा होकर कुछ देर वह यूही देखता रहा। फिर सम्भल कर बोला—"बृहन्नला! यह तो बड़े विचित्र अस्त्र है।"

"इसी लिए तो इनकी मुझे आवश्यकता थी।"

राजकुमार ने इन दिव्यास्त्रो को एक एक करके बड़े कौतूहल के साथ स्पर्श किया। इन दिव्यास्त्रो के स्पर्श मात्र से राजकुमार उत्तर का भय जाता रहा और उसमे वीरता की बिजली सी दौड़ गई। उत्साहित होकर पूछा—"बृहन्नला! सचमुच क्या यह धनुष बाण और खडग पाण्डवो के है? मैंने तो सुना था कि वे राज्य से वचित होकर जगलो मे चले गए थे और फिर १२ वर्ष बाद उनका कुछ पता न चला कि मर गए या जीते हैं। क्या तुम पाण्डवो को जानती हो? कहा है वे?"

तब बृहन्नला ने कहा—"राजा विराट की सेवा करने वाले कक ही युधिष्ठिर हैं।"

राजकुमार को असीम आश्चर्य हुआ। पूछा—"क्या सच?"

"हा, हा महाराज युधिष्ठिर वही हैं।"

"अरे?"

"और रसोइया वल्लभ वास्तव मे भीमसेन है। और जिस का अपमान करने के कारण कीचक को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा वही सैरन्ध्री पांचाल नरेश की यशस्वनी राजकुमारी द्रौपदी है। अश्वपाल ग्रंथिक, और ग्वाले का कार्य करने वाला तंतिपाल और कोई नही, नकुल तथा सहदेव ही हैं।"—बृहन्नला ने कहा, जिसे सुनकर जहां राजकुमार को आश्चर्य हुआ, वहा हर्ष भी।

वह पूछ बैठा—"तो फिर वीर अर्जुन कहां है?"

"अर्जुन तुम्हारे सामने उपस्थित है।"

राजकुमार उत्तर ने आँखे मल मल कर अपने सामने इधर उधर दूर तक देखा और फिर बोला—"कहां है वीर अर्जुन ?"

"वह मैं ही हूं।"

बृहन्नला की यह बात सुनकर राजकुमार खोया सा रह गया। बृहन्नला वेषधारी अर्जुन बोला—"राजकुमार ! घबराओ नही। अभी अभी मेरी बात की सत्यता का प्रमाण मिल जाता है। भीष्म, द्रोण, और अश्वस्थामा के देखते देखते कौरव सेना को मैं अभी ही हरा दूंगा, सारी गौए छुडा लाऊगा और तुम्हे यशस्वी बना दूगा।"

यह सुनते ही उत्तर हाथ जोडकर अर्जुन को प्रणाम करके बोला—"पार्थ ! आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ। क्या सचमुच ही मैं इस समय यशस्वी धनजय को अपने सामने देख रहा हू ? जिन्होने मुझे कायर मे वीरता का सचार किया क्या वे विजयी अर्जुन ही है ? नादानी के कारण यदि मुझ से कोई भूल हुई तो आप इस के लिए मुझे क्षमा करदे"।

कौरव सेनाओं को देखकर कही फिर उत्तर घबरा न जाय और उसे विश्वास हो जाय कि वास्तव मे अर्जुन वही है, अर्जुन ने पूर्व युद्धो की कुछ मुख्य मुख्य घटनाए सुनाना आरम्भ करदीं। इस प्रकार उत्तर को सन्तुष्ट करके तथा उसका साहस बढाकर अर्जुन ने रथ कौरव सेना के सामने ला खडा किया। चूडिया उतार फेंकी और अगुलि त्राण पहन लिये। खुले खुले केश सवार कर कपडे से कस कर बांध लिए। जिन प्रभु का ध्यान लगाया और गाण्डीव धनुष सम्भाल लिया। इस के पश्चात गाण्डीव पर डोरी चढाकर तीन बार टकार किया। जिसे सुनकर कौरव सेना के कुछ वीरों के दिल दहल गए और कुछ हठात चीख उठे—"अरे यह तो अर्जुन के गाण्डीव की टकार है।"

कौरव सेना टंकार की दसों दशाओ को गुंजा देने वाली ध्वनि से स्वस्थ भी न होने पाई थी कि अर्जुन ने खडे होकर अपने देव दत्त नामक शख की ध्वनि की, जिससे कौरव सेना घर्रा उठी। उस मे सनसनी सच गई कि अर्जुन आगया।

उन्नीसवां परिच्छेद
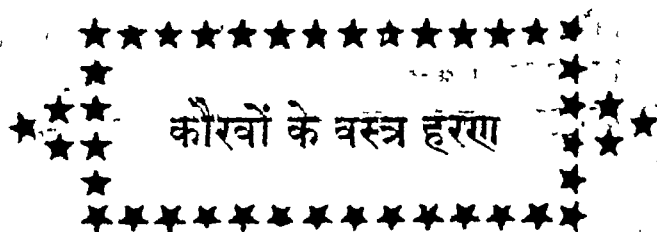
अर्जुन का रथ जब धीर-गभीर घोष करता हुआ आगे बढ़ा तो धरती हिलने लगी। गाण्डीव की टंकार सुनकर और अर्जुन का मुकावले पर आना जानकर कौरव वीरो का कलेजा कांप उठा।

उस समय द्रोणाचार्य बोले, "सेना की व्यूह रचना सुव्यवस्थित ढंग पर कर लेनी होगी। इकट्ठे होकर सावधानी से लड़ना मालूम होता है सामने अर्जुन आगया है जिसके सामने आना जान कर ही हमारे सैनिक भयभीत होगए है।"

आचार्य की शका और घबराहट दुर्योधन को न सुहाई। वह कर्ण से बोला—"पाण्डवो को अपनी शर्त के अनुसार १२ वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञात वास मे व्यतीत करना था। परन्तु अभी तेहरवा वर्ष पूरा नही हुआ और अर्जुन प्रकट हो गया। हमारे तो भाग्य खुल गए। आचार्य को तो चाहिए कि वे आनन्द मनावें पर वे तो भय विह्वल हो गए है। बात यह है कि पाण्डवो का स्वभाव ही ऐसा होता है। उनकी चतुरता तो दूसरो के दोष निकालने में ही दिखाई पड़ती है। अच्छा यही होगा कि इन्हे पीछे रख कर हम आगे बढ़े और स्वय सेना का सचालन करें।"

कर्ण तो ठहरा दुर्योधन का घनिष्ट मित्र। उसकी हां में हां मिलाता हुआ बोला—"विचित्र बात है कि सेना के नायक तथा

मुख्य योद्धा तक भयभीत है, कांप रहे हैं जब कि उन्हें दिल खोल कर लड़ना चाहिए। आप लोग यही रट लगा रहे है कि सामने जो रथ आ रहा है उस पर धनुष ताने अर्जुन बैठा है। पर वहां अर्जुन के स्थान पर परशुराम भी हो, तो हमे क्या डर है? मैं तो अकेला ही उसका सामना करूंगा और आपको उस दिन जो वचन दिया था उसे आज पूर्ण करके दिखाऊंगा। सारी कौरव सेना और उस के सभी सेना नायक भले ही खड़े देखते रहें, चाहे गायों को भगा ले जायें, मैं अन्त तक डटा रहूंगा और यदि वह अर्जुन ही है तो अकेला ही उस से निबट लूंगा।"

कर्ण को यों दम भरते देख कर कृपाचार्य झल्ला उठे। बोले—"कर्ण! मूर्खता की बातें न करो। हम सब को मिल कर अर्जुन का मुकाबला करना होगा, उसे चारों ओर से घेर लेना होगा। नहीं तो हमारे प्राणों की खैर नहीं। अर्जुन की शक्ति को मैं अच्छी प्रकार जानता हूं। तुम अकेले ही उसके सामने जाने का दुस्साहस मत कर बैठना।"

कर्ण को यह बात अपने गर्व तथा मान पर आघात प्रतीत हुई उसने चिढ कर कहा—"आचार्य जी तो अर्जुन की प्रशंसा करते ही नहीं थकते। इन्हें अर्जुन की शक्ति बढा चढा कर दिखाने की आदत सी होगई है। न जाने उनकी यह बात भय के कारण है अथवा अर्जुन के साथ अधिक प्रेम होने के कारण है। जो हो, जो डरपोक है अथवा केवल उदर पूर्ति के लिए ही दुर्योधन के आश्रित हैं वे भले ही हाथ पर हाथ धरे खड़े हैं न करें युद्ध या वापिस लौट जाय। मैं अकेला ही डटा रहूंगा। जो शत्रु की प्रशंसा करते हैं या उसके भय के मारे होश हवास खो रहे हैं भला उनका यहां क्या काम।"

जब कर्ण ने आचार्य पर इस प्रकार अभियोग लगाया, और ताना मारा तो उनके भानजे अश्वत्थामा से न रहा गया। उसने झल्ला कर कहा—"कर्ण! अभी तो गायें लेकर हम हस्तिनापुर नहीं पहुंचे हैं। किया तो तुम ने अभी तक कुछ नहीं और डींग हांक रहे हो दुनिया भर की। हम भले ही क्षत्रिय न हों, शास्त्र

रटने वाले तथा शिक्षा देने वाले हो हो, पर राजाओ को जुए मे हराकर उनका राज्य छीनने तथा वनो मे भटकने के लिए भेजने की बात हमने न क्षत्रियोचित धर्म मे देखी है और न शास्त्रों में पढी है। फिर जो लोग युद्ध के द्वारा राज्य जीतते हैं वे भी अपने मुंह मे अपनी डींगे नहीं हांका करते। तुम लोगों ने कौनसा भारी पहाड़ उठा लिया जो ऐसी शेखी बघार रहे हो? अग्नि चुप चाप सब चीजो को पकाती है, सूर्य चुप चाप सब जगह प्रकाश करता है और पृथ्वी अखिल चराचर का भार वहन करती है। फिर भी यह सब अपनी प्रशसा आप नहीं करते। तब जिन क्षत्रिय वीरो ने जुआ खेलकर राज्य छीन लिया है, उन्होने कौन-सा ऐसा पराक्रम किया है जो अपने मुह-मिया मिठ्ठू बनकर फूले नही समाते। जैसे शिकारी जाल फैला कर भोली तथा निरपराधी चिडियों को फसा लेता है, इसी प्रकार तुम लोगो ने पाण्डवो को फंसाकर राज्य छीना, फिर इतनी लज्जा तो होनी ही चाहिए कि अपने मुंह से अपनी प्रशसा न करो।"

दुर्योधन तिलमिला कर बोला—'अश्वस्थामा! ठीक ही तो कह रहा था कर्ण। हम पाण्डवो से किस बात मे कम हैं? कर्ण की टक्कर का पाण्डवो मे है कौन? हम ने किसे धोखा दिया जो हम लज्जित हो?"

अश्वस्थामा ने तुरन्त उत्तर दिया —"ऐसे शूरवीर हो तो बताओ किस युद्ध में पाण्डवो को हराया है आप लोगो ने? एक वस्त्र मे द्रोपदी को भरी सभा के बीच खींच लाने वाले वीरो! बताओ तुम ने उसे युद्ध मे जीता था? लेकिन सावधान हो जाओ आज यहा चौपड का खेल नही है जो शकुनि के द्वारा चालाकी मे कोई पासा फेंका और राज्य हथिया लिया। आज तो अर्जुन के साथ रणागण मे दो दो हाथ करने का सवाल है अर्जुन का गाण्डीव चौपड की गोटें नही फेंकेगा, बल्कि अपने बाणों की बौछार करेगा। कर्ण की धीस से काम चलने वाला नही है। यहां जिह्वा की नही बल की लडाई है।"

कर्ण आवेश के मारे जलने लगा। गरजकर बोला—"अश्व-

स्थामा ! अर्जुन तो अर्जुन उसके साथ तुम जैसे उसके प्रशंसक भी आ जायें तो कर्ण उनका डट कर मुकाबला करने वाला है। चौपड के खेल की बात उठाकर पाण्डवो की मूर्खता के प्रति सहानुभूति दर्शाने वाले योद्धा ! राजा दुर्योधन की सेना मे खडे होकर शत्रु का पक्ष लेते हुए तुम्हे लज्जा नही आती।"

"लज्जा तो उसे आये जो दुर्योधन की चापलूसी करते हुए न्याय अन्याय मे भेद करना ही भूल गए। अथवा लम्बी चौडी डींगे हाक कर युद्ध जीतने का स्वप्न देखे। मुझे लज्जा क्यो आने लगी है ?"---अश्वस्थामा ने क्रुद्ध होकर कहा।

दुर्योधन को अश्वस्थामा की खरी खरी बातो ने विचलित कर दिया। क्रोध के मारे कांपते हुए उसने कहा—"अश्वस्थामा ! आचार्य जी के कारण मैं तुम्हारी बातें सहन कर रहा हू। वरना अभी ही इस मूर्खता का मजा चखा देता। तुम यह भी भूल गए कि अपनी बातो से किसे अपमानित कर रहे हो। स्मरण रक्खो कि मैं अपमानित होने के लिए कभी तैयार नही हू। जिस समय हस्तिना पर राज्य के धन से तुम आनन्द लूटते हो उस समय तुम्हे यह क्यो नही याद आता कि यह वही धन है जो उसी दुर्योधन की सम्पत्ति है जिस ने पाण्डवो को जुए मे हराया है। ऐसे लज्जाशील हो तो पाण्डवो के साथ जाकर भीख मागते क्यों नही घूमते ?"

'जिनके बल पर तुम अकडते हो, उनके लिए ऐसी बाते मुह से निकालते समय यह मत भूलो कि तुम सौभाग्य शाली हो कि आचार्यो के शुभ कर्मों के प्रताप से तुम्हारा पाप का घड़ा अभी तक तिर रहा है।"—अश्वस्थामा ने बिगड कर कहा।

"देखते हो, आचार्य जी ! अश्वस्थामा का दिमाग कितना बिगड गया है ?"—दुर्योधन ने कृपाआचार्य की ओर देखकर कहा।

कौरव वीरो को इस प्रकार आपस मे झगड़ते और परि-स्थिति चिन्ता जनक होते देख भीष्म पितामह बडे खिन्न हुए। वे हस्तक्षेप करते हुए बोले—बुद्धि मान व्यक्ति कभी अपने आचार्य का अपमान नही करते। योद्धा को चाहिए कि देश तथा कालको

देखते हुए उसके अनुसार युद्ध करे। कभी कभी बुद्धिमान भी भ्रम मे पड जाते हैं। समझ दार दुर्योधन भी क्रोध के कारण भ्रम मे पड गया है और पहचान नही पा रहा है कि सामने वही वीर, अर्जुन है। अश्वस्थामा ! कर्ण ने जो कुछ कहा मालूम होता है, वह आचार्य को उत्तेजित करने के लिए ही था। तुम उसकी बातों पर ध्यान न दो द्रोण, कृपा तथा अश्वस्थामा कर्ण तथा दुर्योधन को क्षमा करें। सम्पूर्ण शास्त्रो का ज्ञान एव क्षत्रियोचित तेज आचार्य कृप, द्रोण, और उनके यशस्वी पुत्र अश्वस्थामा को छोड कर और किस मे एक साथ पाया जा सकता है। परशुराम को छोड कर द्रोणाचार्य की वराबरी करने वाला और कौनसा ब्राह्मण है ? यह आपस मे लडने झगडने तथा वाद विवाद करने का समय नही है। अभी तो हम सव को एक साथ मिलकर शत्रु का मुकाबला करना है। शत्रु सामने धनुष ताने खड़ा है और तुम सब लोग आपस मे झगड रहे हो, यह लज्जा की बात है।"

पितामह के इस प्रकार समझाने पर आपस मे झगड रहे दुर्योधन, अश्वस्थामा आदि कौरव वीर शांत होगए।

उस समय दुर्योधन ने कहा—'पितामह ! आज वडे हर्ष का अवसर है। पाण्डव अपनी-मूर्खता से फिर शिकार हुए। अर्जुन अज्ञात वास की अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही प्रकट होगया।"

" बेटा दुर्योधन ! अर्जुन प्रकट होगया वह ठीक है। पर उनकी प्रतिज्ञा का समय कल ही पूर्ण हो चुका। इस लिए तुम्हारा प्रसन्न होना व्यर्थ है।" —भीष्म जी ने कहा।

"—नही पितामह अभी तो कई दिन शेष है।"

"—तुम भूलते हो, दुर्योधन ! पाण्डव कभी ऐसी भूल नहीं करने वाले।'

"—परन्तु हमारे हिसाब से अभी तेहरवा वर्ष पूरा हुआ ही नही।"

"—बेटा ! चन्द्र और सूर्य की गति, वर्ष, महीने और पक्ष

विभाग के पारस्परिक सम्बन्ध को अच्छी प्रकार जानने वाले ज्योतिषी मेरे कथन की पुष्टि करेगे। तुम लोगो को हिसाब मे कही भूल हुई है। इसी लिए तुम्हे भ्रम हुआ है। ज्यो ही अर्जुन ने अपने गाण्डीव की टकार की, मै समझ गया कि प्रतिज्ञा की अवधि पूर्ण होगई।"

—भीष्म पितामह ने ऐसी बात कह कर दुर्योधन की प्रसन्नता पर धूल फेर दी।

वह बोला—"पितामह! खेद कि हम पाण्डवो का पता न लगा सके। और अब अवधि पूर्ण होते ही हमे अर्जुन से लडना पड़ रहा है। जिसकी मुझे आशंका थी वही हुआ। आज तो उस भय कर युद्ध का श्री गणेश समझिये जो वे मेरे विरुद्ध राज्य छीनने के लिए करेगे।"

—"मेरा विचार है कि युद्ध आरम्भ करने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि पाण्डवो के साथ सन्धि कर ले या नही,—भीष्म पितामह गभीरता पूर्वक बोले—यदि सन्धि करने की इच्छा हो तो उस के लिए अभी समय है। बेटा, खूब सोच विचार कर बताओ कि तुम न्यायोचित सन्धि के लिए तैयार हो या नही।"

"पूज्य पितामह! मैं सन्धि नही चाहता। राज्य तो रहा दूर मैं तो उसका कोई अश भी उन्हे नही दे सकता। इसी लिए सधि की बात छोडिये अब तो लडने की तैयारी कीजिए। देखिये। कितना सुन्दर अवसर है कि हमारी इतनी विशाल सेना का सामना अकेला अर्जुन करेगा। यही उन मे सब से अधिक वीर हैं। यदि युद्ध मे हम इसे मार भगाए या इसका बध हो जाये तो फिर शेष चार भाइयो को कभी भी लडने का साहस नही हो सकता।"—दुर्योधन ने कहा।

"पाण्डवो ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की है तो तुम्हे भी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना ही श्रेयस्कर है। वरना रक्त पात होगा और उसका परिणाम चाहे जो हो, परन्तु उसका उत्तर दायित्व तुम पर आयेगा। इस लिए यदि मेरी राय मानो तो सन्धि के लिए उद्यत

हो जाओ।"—भीष्म पितामह ने अपनी राय प्रकट करते हुए कहा।

दुर्योधन ने बात टालना ही लाभ प्रद जानकर कहा—"पितामह! शत्रु हमारे सिर पर खडा है; और हम ऐसे समय युद्ध न करके सन्धि की बात चलाए यह अच्छी बात नहीं है। आप इस समय तो युद्ध की ही योजना बनाइये।"

यह सुन द्रोणाचार्य बोले—"भीष्म जी की राय ठीक होते हुए भी चूँकि हम तुम्हारी सहायता के लिए आये है, इस लिए तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिए हमारा कर्तव्य है हम युद्ध की योजना बनाये। अच्छा तो फिर सेना का चौथाई भाग अपनी रक्षा के लिए साथ लेकर दुर्योधन हस्तिना पुर की ओर वेग से कूच करदे। एक हिस्सा गायो को भगा ले जायें। शेष जो सेना रहेगी उसे हम पांच महारथी साथ लेकर अर्जुन का मुकाबला करे। ऐसा करने से ही राजा की रक्षा हो सकती है।"

आचार्य की योजना कुछ वाद विवाद के पश्चात स्वीकृत हुई और फिर उनकी आज्ञानुसार कौरव वीरो ने व्यूह रचना की।

उधर अर्जुन राजकुमार उत्तर से कह रहा था—"उत्तर! सामने की शत्रु सेना मे दुर्योधन का रथ दिखाई नहीं दे रहा है। अभी अभी वह कही गुम होगया। कवच पहने जो खड़े है वे तो भीष्म पितामह है, लेकिन दुर्योधन कहाँ चला गया। इन महारथियो की ओर से हट कर तुम रथ को उस ओर ले चलो जहां दुर्योधन हो।"

दुर्योधन भाग रहा होगा, भागता है तो भागने दो। आप को तो गौओ से मतलब।"—उत्तर बोला।

"मुझे भय है कि कही दुर्योधन गौओ को लेकर हस्तिना पुर की ओर न भाग रहा हो।"—अर्जुन ने उत्तर दिया।

उत्तर की समझ मे बात आगई और उसने रथ उसी ओर हांक दिया जिधर से दुर्योधन वापस जा रहा था। जाते जाते

अर्जुन ने दो दो बाण आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की ओर इस प्रकार मारे कि जो उनके चरणों में जाकर गिरे। इस प्रकार अपने बड़ों की वन्दना करके अर्जुन ने दुर्योधन का पीछा किया।

पहले तो अर्जुन ने गाये भगा ले जाने वाली सेना की टुकड़ी के पास जाकर बाण वर्षा की। तीव्र गति मे हो रही बाण वर्षा के कारण सेना तनिक सी देर मे ही इस प्रकार तितर-बितर हो गई जैसे मिट्टी के ढेलो की मार से काई। सैनिक प्राणो को लेकर भागने लगे और अर्जुन ने उनके अधिकार से गौओ को मुक्त करा लिया। फिर ग्वालो को गाये विराट नगर की ओर लौटा ले जाने का आदेश देकर अर्जुन दुर्योधन का पीछा करने लगा।

अर्जुन को दुर्योधन का पीछा करते देख कर भीष्म आदि सेना लेकर अर्जुन का पीछा करने लगे और शीघ्र ही उसे घेरकर बाणो की बौछार करने लगे। अर्जुन ने उस समय अद्भुत रण-कुशलता का परिचय दिया। सब से पहले उसकी कर्ण से टक्कर हुई। कितनी ही देरी तक कर्ण अबाध गति से बाण वर्षा करता रहा। अर्जुन तथा कर्ण का युद्ध देखकर कितने ही सैनिको के होश जाते रहे। कुछ ही देर बाद अर्जुन ने एक ऐसे दिव्यबाण का प्रयोग किया कि कर्ण घायल हो गया और फिर उसे सभलने का तनिक सा भी अवसर न दे बाणो पर बाण मारता रहा। कर्ण बुरी तरह घायल हुआ और अन्त मे उसे भागते ही बना।

तब द्रोणाचार्य ने उसे ललकारा—"अर्जुन! अब सम्भलो। सावधानी से युद्ध करो।"

अर्जुन ने बाण छोडकर प्रणाम किया और बोला—"गुरुदेव! आप भी सावधानी से सामने आइये।

दोनो मे भयकर युद्ध होने लगा। कितनी ही देर तक दोनो ओर से बाण वर्षा होती रही। अन्त मे द्रोणाचार्य ने दिव्यास्त्रो का प्रयोग आरम्भ कर दिया, पर उन अस्त्रो को अर्जुन बीच ही में अपने अस्त्रो द्वारा प्रभाव हीन कर देता। फिर अर्जुन ने दिव्यास्त्रो का आक्रमण किया, जिसे द्रोणाचर्य सभाल न पाये और

उनकी बुरी गत होने लगी। हाथ पाव कांप उठे। यह देखकर अश्वस्थामा आगे बढा और अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। अर्जुन स्वयं नही चाहता था कि उसके हाथो गुरुदेव द्रोणाचार्य के साथ कोई अशुभ घटना घटें, इस लिए उनकी ओर से हटकर अश्वस्थामा की ओर ध्यान प्रकट करके उसने द्रोणाचार्य को खिसक जाने के लिए मौका दे दिया। आचार्य भी ऐसे अवसर को खोना न चाहते थे, वह सुअवसर समझ शीघ्रता से खिसक गए।

उनके चले जाने के पश्चात अर्जुन अश्वस्थामा पर टूट पड़ा। दोनों मे भयायक युद्ध होता रहा। द्रोणाचार्य के दोनो ही शिष्य थे, और अश्वस्थामा तो ठहरा उनका पुत्र। पर अर्जुन को आचार्य ने पुत्रवत शिक्षा दी थी। दोनो ही धुरन्धर योद्धा थे इस लिए प्रत्येक एक दूसरे को पछाडने के लिए प्रयत्न शील रहा। परन्तु जब अर्जुन ने गाण्डीव द्वारा दिव्यबाणो की वर्षा आरम्भ की तो अश्वस्थामा के लिए मुकाबले पर टिक पाना असम्भव होगया —और कुछ ही देर मे अश्वस्थामा परास्त होगया।

तब कृपाचार्य की बारी आई। वे जाते ही क्रुद्ध होकर अर्जुन पर टूट पडे। पर जिस वीर ने द्रोणाचार्य का साहस हर लिया था उसके सामने बेचारे कृपाचार्य क्या कर सकते थे। वे पूरी शक्ति से लडे। जो भी अस्त्र शस्त्र उनके पास थे, पूरी शक्ति से उन्हे प्रयोग किया। परन्तु जब तक वे स्वय अपने सभी अस्त्र शस्त्रों को अदल बदल कर प्रयोग नही कर चुके, अर्जुन ने अपना वार न किया। अन्त में कुछ देर के लिए अर्जुन ने अपने अस्त्र आक्रमण के रूप मे प्रयोग किए और कृपाचार्य हार खा गए।

अर्जुन को युद्ध कला की अच्छी शिक्षा मिली थी और था उस में अद्भुत बल। वह निशाना मारने मे कभी चूकता नही था, उसके हाथो मे बडी फुर्ती थी और उसके बाण, बहुत दूर तक मार कर सकते थे। जिसके कारण वह अपने शत्रुओं के बाणो को अपने पास तक पहुचने से पहले बीच ही मे तोड डालता था। अतएव वह उन सभी वीरों को परास्त करने मे सफल हुआ जो उस के सामने आये।

फिर अर्जुन ने उत्तर को लक्ष्य करके कहा—"जिस रथ पर सुवर्णमय ताड के चिन्ह वाली ध्वजा लहराती है, उसी ओर मुझे ले चलो। वह मेरे पितामह भीष्म जी का रथ है, जो देखने मे देवता के समान जान पडते है, परन्तु मेरे साथ युद्ध करने के लिए पधारें है।"

उत्तर का शरीर बाणो से घायल हो चुका था। परन्तु अभी तक वह किसी प्रकार यह सब घाव सह रहा था, क्योकि इस बात ही ने कि वह वीर अर्जुन का रथ हाक रहा था, एक असीम साहस भर दिया था। फिर भी उस समय वह काफी शिथिलता अनुभव कर रहा था। बोला—"वारवर! अब मै आप के घोडो पर नियन्त्रण नही रख सकता। मेरे प्राण सन्तप्त है, मन घबरा रहा है। आज तक कभी भी मैंने इतने वीरों को युद्ध रत नहीं देखा था। आप के साथ जब मैं इतने वीरों को लडते देखता हू तो मेरा हृदय विचलित हो जाता है। गदाओं के टकराने का शब्द, शखो की उच्च ध्वनि, वीरों का सिहनाद, हाथियो की चिघाड तथा बिजली की गड गडाहट के समान गाण्डीव की टकार सुनते सुनते मेरे कान वहरे हुए जाते है, स्मरण शक्ति क्षीण हो रही है। अब मुझ मे चाबुक और बागडोर सभालने की शक्ति नही रह गई है।"

अर्जुन ने उसे धैर्य बधाते हुए कहा—"नरश्रेष्ठ, डरो मत, तुम राजा विराट की वीर सन्तान हो। तुम पराक्रमी हो, मत्स्य नरेश के सर्व विख्यात वश के रत्न हो। सावधान होकर बैठे रहो धीरज रख कर घोडो पर नियन्त्रण रक्खो। बस थोडी देरी की बात और है मैं शीघ्र ही समस्त शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर लूगा और फिर विजय पताका फहराता हुआ राजधानी लौटूगा। लोग जानेंगे कि कौरव सेना पर विजय प्राप्त करने वाले यशस्वी एव पराक्रमी वीर तुम्ही हो। फिर सारा नगर तुम्हारी जय जयकार मनायेगा। राजा तुम्हारी वीरता को सुनकर गद गद हो उठेगे। देखो इतना बडा मान बस थोडे समय मे ही तुम्हे मिलने वाला है। तुम देखते जाओ मैं कैसे तीर चलाता हू, कैसे दिव्यास्त्रो का प्रयोग करता हू सभी को गहरी दृष्टि से देखो, ताकि तुम भी भविष्य मे इसी प्रकार

युद्ध कर सको। तुम ने अब तक जो साहस दर्शाया है वह प्रशंसनीय है।"

इस प्रकार अर्जुन ने उत्तर को धीरज बधाया। और फिर उत्तर साहस पूर्वक रथ को उसी ओर ले चला, जिधर भीष्म पितामह अपने अग रक्षको, सहयोगियो तथा साथी योद्धाओ के बीच खडे थे। अपनी ओर अर्जुन को आते देख कर निष्ठुर पराक्रम दिखाने वाले शातनु नन्दन भीष्म जी ने बडे वेग से अर्जुन पर बाण वर्षा आरम्भ करके धीरता पूर्वक उसकी गति रोकदी। अर्जुन उन के बाणों को बीच ही मे काटता रहा और कुछ ही देरी बाद एक ऐसा बाण मारा कि भीष्म जी के रथ की ध्वजा कट कर गिर पड़ी इसी समय महाबली दु शासन, विकर्ण, दु सह, और विविंशति इन चार ने आकर धनजय को चारो ओर से घेर लिया। दु शासन ने एक बाण से विराट नन्दन उत्तर को बीधा और दूसरे से अर्जुन की छाती पर चोट की। इस से क्रुद्ध होकर धनजय ने एक ऐसा तीखा बाण मारा जिस से दुःशासन का सुवर्णजटित धनुष काट दिया और फिर एक के बाद दूसरा तडातड पाच बाण उसकी छाती को निशाना बनाकर मारे। उन पाच पैने बाणो की मार से कराहता हुआ दु शासन युद्ध छोड कर भाग खडा हुआ। परन्तु तभी विकर्ण अर्जुन पर बाण वर्षा करने लगा। कुछ समय तो अर्जुन ने उसके प्रहार मे अपनी रक्षा करने के लिए ही गाण्डीव का प्रयोग किया, पर एक बार उस के ललाट पर अर्जुन ने एक तीखा बाण मारा, जिसके लगते ही घायल होकर विकर्ण रथ से गिर पडा। तदनन्तर दु सह और विविंशति अपने भाई का बदला लेने के लिए अर्जुन पर बाणो की वर्षा करने लगे। पर दोनो के एक साथ प्रहार से भी अर्जुन तनिक सा भी विचलित न हुआ, उस ने कुछ देर अपनी रक्षा की ओर दाँव लगा कर ऐसे बाण चलाये, जो उन दोनो के बाणो को तोडते हुए उन के घोडो, सारथी और स्वय उनके शरीरों को बीधने मे सफल हुए।

वीर अर्जुन द्वारा चलाए गए बाणो से जब दु सह और विविंशति के घोड मारे गए और उनका शरीर लोहू-लुहान होगया, तो उनके सेवक उन्हे युद्ध भूमि से हटा कर उचित चिकित्सा के

लिए दूर ले गए। और जिसका कभी निशाना गलत न बैठता था, वह अर्जुन सेना मे चारो ओर प्रहार करने लगा।

धनजय के ऐसे पराक्रम को देखकर दुर्योधन की सेना के शेष रहे सभी वीर चारो ओर से अर्जुन पर टूट पडे और एक साथ ही वाण चलाकर अर्जुन को इतना अवसर न दिया कि वह किसी पर वाण चला सके। अनेक स्थानो पर उस का कवच टूट गया और उसके शरीर मे कई घाव होगए परन्तु वीर अर्जुन तनिक सा भी हतोत्साहित न हुआ। उसने तुरन्त ही एक ऐसा बाण मारा, जो मेघाच्छादित आकाश मे कोधती बिजली की भाति चमका और उस के प्रभाव से कौरव वीर बेहोश होने लगे। कहीं आग सी बिखरी और कही दुगध ने वीरो को घेर लिया। घबरा कर कुछ वीर प्राण लेकर वहा से भाग खडे हुए। कुछ जीवित होते हुए भी मृत समान गिर पडे। हाथी तक मूर्छित होगए, इस से सभी कौरवो का उत्साह ठण्डा पड गया, सारी सेना तितर बितर होगई और साहसी वीर तक निराश होकर इधर उधर चारो ओर भाग पडे।

यह देखकर शान्तनुनन्दन भीष्म जी ने अपने सुवर्णजटित धनुष और मर्म भेदी बाण लेकर अर्जुन पर धावा कर दिया। सब से पहले उन्होने अर्जुन के रथ पर फहराती ध्वजा पर फुफकारते हुए सर्पो के समान आठ बाण मारे। जिससे ध्वजा तार तार हो गई। अर्जुन ने इस प्रहार के उत्तर मे एक लम्बे भाले से भीष्म जी का छत्र काट डाला, वह कटते ही भूमि पर आ गिरा और फिर उनके सारथी को, घोडो को, ध्वजा को और पार्श्व रक्षकों को घायल कर दिया। भीष्म पितामह भला कैसे सहन कर सकते थे कि कोई उनके सामने आकर उनके रथ, सारथी, घोडो आदि को घायल कर दे और उसका कुछ भी न बिगड़े, उन्होंने क्रुद्ध होकर दिव्यास्त्रो का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इन के उत्तर मे अर्जुन ने भी दिव्यास्त्र प्रयोग किये। और इस प्रकार दोनों मे बडा रोमाचकारी युद्ध होने लगा।

कौरव भीष्म जी के रण कौशल को देखकर उनकी प्रशसा करते हुए कहने लगे— 'भीष्म जी ने अर्जुन के साथ जो भयकर

युद्ध ठाना है, वह बडा ही दुष्कर कार्य है। अर्जुन बलवान है, करुण है रण कुशल और फुर्तीला है, तभी तो डटा हुआ है; वरना कौन है जो भीष्म जी के प्रहारो के आगे इस प्रकार ठहर सके।"

उस समय अर्जुन तथा भीष्म दोनो ने ही प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, रौद्र, वारुण, कौबेर, याम्य और वायव्य आदि दिव्यास्त्रो का प्रयोग कर रहे थे। कभी भीष्म जी किसी अस्त्र से अग्नि वर्षा करते तो उसके उत्तर मे अर्जुन बिना मेघ के ही सावन भादों सी झडी लगा देते, वर्षा होने लगती और भीष्म जी एक अस्त्र मार कर उस वर्षा को तुरन्त वायु के वेग से समाप्त कर देते। कभी अर्जुन मूर्छित कर डालने वाला अस्त्र चलाता तो भीष्म जी उस को प्रभाव हीन करने के लिए कोई अस्त्र प्रयोग करके तुरन्त ऐसा वाण मारते कि चारो ओर धूल ही धूल के बादल दिखाई पडते।

अर्जुन तथा भीष्म जी सभी अस्त्रो के ज्ञाता थे। पहले तो इन मे दिव्यास्त्रो का युद्ध हुआ, इसके बाद वाणो का सग्राम छिडा। अर्जुन ने भीष्म का सुवर्णमय धनुष काट डाला। तब महारथी भीष्म जी ने एक ही क्षण मे दूसरा धनुष लेकर उस पर प्रत्यचा चढा दी और क्रुद्ध होकर वे अर्जुन के ऊपर वाणो की वर्षा करने लगे। एक वाण अर्जुन की बायी पसली मे लगा। परन्तु अर्जुन के मुह से कोई चीत्कार न निकला। उस ने हसते हुए तीखी धार वाला एक वाण मारा और भीष्म जी का धनुष दो टुकड़े होगया। उसके बाद दस वाण मार कर भीष्म जी की छाती पर प्रहार किया, छाती पर कवच टूट गया और भीष्म जी का इतनी पीडा हुई कि वे रथ का कूवर थाम कर देर तक बैठे रह गए। भीष्म जी को अचेत जान कर सारथी को अपने कर्तव्य की याद आ गई और वह रथ को युद्ध भूमि से दूर ले गया।

* बीसवां परिच्छेद *

दुर्योधन की पराजय

भीष्म जी सग्राम का मुहाना छोड कर रण से बाहर हो गए, उस समय अर्जुन का रथ दुर्योधन की ओर बढा। दुर्योधन भी क्रुद्ध होकर हाथ मे धनुष ले अर्जुन के ऊपर चढ आया। उस ने कान तक धनुष खीच कर अर्जुन क ललाट मे तीर मारा, और वह बाण ललाट मे घुस गया, जिस से गरम गरम रक्त की धारा बह निकली। अर्जुन के ललाट को ही चोट नही पहुची, बल्कि उस के मान को भी ठेस पहुची। उसकी भुजाओ का रक्त उबल पडा और विपाग्नि के समान तीखे बाणो से दुर्योधन को बीधने लगा। इस प्रकार दोनो मे भीषण युद्ध होता रहा। तत्पश्चात अर्जुन ने एक पैने बाण द्वारा दुर्योधन की छाती बीध डाली और उसे घायल कर दिया। तभी दुर्योधन के अग रक्षक वीर चारो ओर से टूट पडे परन्तु अर्जुन ने सभी मुख्य मुख्य योद्धाओ को मार भगाया। योद्धाओ को भागते देख दुर्योधन ने सभल कर आवाज लगाई—"वीरो! भागते क्यो हो? ठहरो मै अभी ही इस दुष्ट को ठिकाने लगाता हू। ठहरो, हम सब मिल कर इसें मार भगायेंगे।" तभी अर्जुन ने एक दिव्यास्त्र छोड़ा जिससे चारो ओर धुआ ही धुआं छागया! इस अद्‌भुत पराक्रम को देख कर कौरव वीरो के और भी पाव उखड गए और वे दुर्योधन को चिल्लाता छोड कर अपने प्राणो की रक्षा के लिए भागते ही रहे। तब दुर्योधन ने अपने को अकेला पाया और उसी समय अर्जुन ने एक ऐसा अस्त्र प्रयोग किया कि आग की लपटे

बरसने सी लगी। दुर्योधन ने भी, तब तो अपने वीरों का अनुकरण श्रेयस्कर समझा और वह भी वहा से निकल भागा।

अर्जुन ने देखा कि दुर्योधन घायल हो गया है और वह मुह से रक्त वमन करता बडी तेजी के साथ भागा जा रहा है। तब उसने युद्ध की इच्छा से अपनी भुजाए ठोक कर दुर्योधन को ललकारते हुए कहा--- 'धृष्टराष्ट्रनन्दन! युद्ध मे पीठ दिखा कर क्यो भाग रहा है? अरे, इस से तेरी विशाल कीर्ति नष्ट हो जायेगी। तेरे विजय के बाजे कैसे बजेंगे? तूने जिन धर्मराज युधिष्ठिर का राज्य छीन लिया और अपनी इस कपट पूर्ण विजय पर फूला नही समाता, उन्ही का आज्ञाकारी यह माहयम पाण्डव, तो इस ओर खडा है, तनिक मुह तो दिखा। राजा के कर्तव्य का तो स्मरण कर। तुझे डूब मरने को कदाचित उधर कोई ताल न मिले, आ मैं मौत का रास्ता दिखाऊ। ... अरे, तू तो भागा ही जा रहा है। हां, तेरा कोई रक्षक नही रहा, जल्दी भाग, मेरे हाथो क्यो मरता है।"

कह कर अर्जुन ने एक व्यग्य पूर्ण अट्टहास किया।

इस प्रकार युद्ध मे अर्जुन द्वारा ललकारे जाने पर दुर्योधन को बडी लज्जा आई। उसके सम्मान को धक्का लगा था जिसे वह यूही सहन नही करने वाला था। वह चोट खाये हुए नाग की भाति पीछे लौटा। अपने क्षत विक्षत शरीर को किसी प्रकार संभाल कर वह अर्जुन के मुकाबले पर आया और उस ने अपने वीरो को पुकार कर कहा—कौरव वीरो! तुम्हे अपने पौरुष की सौगंध! आज अर्जुन का गर्व चूर्ण किए बिना गए तो तुम्हे जीने का कोई अधिकार नही। लौटो और युद्ध करो। दुर्योधन का जो भी मित्र, सहयोगी अथवा साथी हो, आड़े समय पर काम आने की इच्छा रखता हो, यदि वह अभी तक जीवित है तो आये और मेरा साथ दे।"

इस पुकार को सुन कर युद्ध भूमि से दूर विश्राम करता, कर्ण दुर्योधन की सहायता के लिए दौड पड़ा। उत्तर की ओर से कर्ण

को आते देख, पश्चिम दिशा से भीष्म जी धनुष चढाये लौट पडे।
द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दु.शासन भी अपने अपने
धनुष लिए दुर्योधन की रक्षार्थ युद्ध भूमि मे आ गए। इन सभी
ने चारो ओर से अर्जुन को घेर लिया और जसे मेघ गिरि पर जल
बरसाते है, इसी प्रकार यह सभी अर्जुन. पर बाण तथा दिव्यास्त्र
बरसाने लगे। अर्जुन अपनी रक्षा के लिए अपने दिव्यास्त्रो को
तीव्र गति से प्रयोग करने लगा और अन्त मे, यह समझ कि उन
सभी का, जो प्राणो का मोहत्याग कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से
आक्रमण कर रहे है, ऐसे ही सफल सामना दुर्लभ है, उस ने तुरन्त
कौरवो को लक्ष्य करके सम्मोहन नामक अस्त्र प्रकट किया, जिसका
निवारण होना कठिन था। उसी समय उस ने अपने हाथो मे
भयकर आवाज करने वाले अपने शख को थाम कर उच्च स्वर से
बजाया उसकी गभीर ध्वनि मे दिशा-विदिशा, भूलोक तथा आकाश
गूज उठे उस समय बहुत सभलते संभलते भी कौरव वीर मूर्छित
होगए, उनके हाथो से धनुप और बाण गिर पड़ तथा वे सभी परम
शात—निश्चेष्ट हो गए।

तब उसे अपनी उस घोषणा का ध्यान आया, जो उसने
राजकुमार उत्तर की ओर से रनिवास की स्त्रियो के सम्मुख की थी,
और जिसका समर्थन स्वयं राजकुमार उत्तर ने अपनी गौरव पूर्ण
मुस्कान से किया था। अत. उत्तर से कहा—"राजकुमार! जब
तक कौरव वीर सचेत नही हो जाते, तुम इनके बीच से निकल
जाओ और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वस्थामा तथा दुर्योधन
आदि प्रमुख वीरों के ऊपरी वस्त्र उतार लो। मै समझता हू कि
पितामह भीष्म सचेत है क्यो कि वे इस सम्मोहनास्त्र का निवारण
करना जानते हैं अत. उनके घोडों को अपनी बायीं ओर छोड़ कर
जाना, क्योकि जो होश मे है, उन से इसी प्रकार सावधान होकर
चलना चाहिए।" .. ... और हा दुर्योधन तथा कर्ण के वस्त्र
भी ले आना।"

अर्जुन के ऐसा कहने पर राजकुमार उत्तर घोडों की बागडोर
छोड कर रथ से उतर पडा और कौरव वीरो के वस्त्र उतार लाया।
उन दिनों प्रथा के अनुसार वस्त्र हरण करना जीत का चिन्ह
समझा जाता था।

※ इक्कीसवां परिच्छेद ※
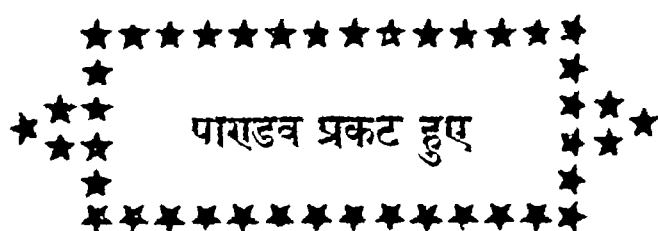
जब राजा विराट चार पाण्डवों की सहायता से त्रिगर्त-राज सुशर्मा को परास्त करके नगर मे वापिस आये तो पुरवासियो ने उनका बडी धूमधाम से स्वागत किया। सारा नगर सजा हुआ था, जिधर से सवारी निकली पुष्प तथा मुद्राओ की वर्षा हुई। लोगो ने जय जयकार मनाई। विरुदावली गाई गई। अन्त.पुर मे तो उनका बहुत ही उल्लास पूर्ण स्वागत किया गया। पर जब उन्होने राजकुमार उत्तर को वहा न पाया तो उस के बारे मे पूछ ताछ की। स्त्रियो ने बताया कि राजकुमार कौरवो से लडने गए है। उन स्त्रियो की आखो मे तो राजकुमार उत्तर कौरव सेना की कौन कहे सारे विश्व पर विजय पाने योग्य था, और इसी लिए बडे उल्लास से उन्होने राजा को यह शुभ समाचार सुनाया था परन्तु राजा तो इस समाचार को सुन कर ही एक दम चौंक पडे। उनके विशेष पूछने पर स्त्रियो ने सारा वृत्तात, कौरव सेना का आक्रमण, गाए चुराना, ग्वालो की टेर, और वृहन्नला को सारथी बनाकर राजकुमार उत्तर का युद्ध के लिए जाना यह सभी कुछ बताया।

राजा चिन्तित हो उठे। दुखी होकर बोले—"राजकुमार उत्तर ने एक हीजडे को साथ लेकर यह बड़े दुस्साहस का कार्य किया है। इतनी बडी सेना के सामने आख मूद कर ही कूद

पड़ा। कहा कौरवो की विशाल सेना, उसके यशस्वी रणकुशल वीर सेनानी और कहा मेरा सुकोमल प्यारा पुत्र? अब तक तो वह कभी का मृत्यु के मुह में पहुंच चुका होगा। इस मे कोई सन्देह ही नही है।"—कहते कहने बूढे राजा का कण्ठ रुध गया।

स्त्रियो को यह देख कर बडा ही आश्चर्य हुआ।

राजा ने अपने मन्त्रियो को आज्ञा दी कि सारी सेना ले जाय और यदि राजकुमार जीवित हो तो उसे सुरक्षित यहा ले आये। मन्त्रियो ने तुरन्त आदेश का पालन किया। सेना चल पड़ी, राज कुमार को खोजने।

राजा का हृदय पुत्र प्रेम मे फटा जाता था, वे बडे बेचैन थे। उन्होने कहा—"हाय! दुख एक साथ किस प्रकार टूटा है कि उधर सुशर्मा ने आक्रमण किया और इधर कौरवो ने। मैं तो किसी प्रकार बच आया पर हाय मेरा पुत्र मेरे हाथों से गया।"

इस प्रकार शोकातुर होते देख कर सन्यासी वेष धारी कंक ने उन्हे दिलासा देते हुए कहा—"आप राजकुमार की चिन्ता न करें। बृहन्नला सारथी बन कर उन के साथ गई हुई है। उसे आप नही जानते, मै भलि भाति जानता हू। जिस रथ की सारथी बृहन्नला होगी, उस पर चढ कर कोई भी युद्ध मे जाय, उसकी अवश्य ही जीत होगी। इस लिए आप विश्वास रक्खें, राजकुमार विजेता होकर ही लौटेंगे। इसी बीच सुशर्मा पर आपकी विजय का समाचार पहुंच गया होगा, उसे सुन कर भी कौरव सेना मे भगदड़ मच गई होगी। आप चिन्ता न करें।"

"नही, कंक! मेरा बेटा अभी बडा कोमल है, वह इतने वीरो के सामने भला क्या कर सकता है। और बृहन्नला कुछ भी क्यो न हो, है तो हीजडा ही। उस के बस की क्या बात है।" राजा ने कहा।

"आप क्या जाने? बृहन्नला कितनी रणकुशल है?"

"कितनी भी हो अकेला चना क्या भाड़ फोडेगा ?"

इसी प्रकार कक तथा राजा के मध्य वार्ता चल रही थी कि उत्तर का भेजा हुआ समाचार मिला—"राजन् ! आप का कल्याण हो। राजकुमार जीत गए। कौरव सेना भाग गई। गाये छुडा ली गई।"

यह सुन कर विराट आखे फाड कर देखते रह गए। उन्हे विश्वास ही न होता था कि अकेला उत्तर सारो कौरव सेना को जीत सकेगा। वह अपने पुत्र के वास्तविक बल को जानते थे। और उन्हे यह भी विश्वास था कि जिस सेना का सचालन जगत विख्यात रण विद्या शिक्षक गुरू द्रोणाचार्य, देवता स्वरूप महान तेजस्वी भीष्म, साहसी रण कुशल कृपाचार्य महाबली दुर्योधन और असीम साहस के धारणकर्ता दानवीर कर्ण के हाथो में हो उसे परास्त करना, असम्भव को सम्भव कर दिखलाने के समान है। वे जानते थे कि यह वीर अर्जुन के अतिरिक्त और किसी के बस की बात नहीं है परन्तु उन्होने अपने कानो से ऐसी बात सुनी थी, जिस पर कदाचित कोई विश्वास न करेगा। इस लिए उन्हे अपने कानो पर अविश्वास होने लगा।

पूछ बैठे—"क्या कहा ? क्या मेरे पुत्र उत्तर ने कौरव वीरो को परास्त कर दिया ? क्या यह सही है ?"

दूत बोला "जी महाराज ! आप के राजकुमार ने कौरव सेना को मार भगाया। युद्ध मे भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, विकर्ण, दुर्योधन विविंशति, दु शासन, दु सह आदि सभी महारथी बुरी तरह घायल हुए। उन्हो ने जितनी गौए हाक ली थी, सभी छुडा ली गई और अब राजकुमार कौरव वीरो के वस्त्र हरण करके विजय पताका फहराते हुए नगर लौट रहे है ."

राजा विराट इस समाचार को पुन सुन कर मारे उल्लास के उछल पड़े और अपने मन्त्रियो को सम्बोधित करते हुए बोले— जाओ राजकुमार के स्वागत के लिए सारा नगर दुल्हन की भाति सजवा दो। निर्धनो को मुह मांगा दान दो। जेलो मे सड रहे

वन्दियो को मुक्त कर दो। नगर वासियो से कहो कि वे दीप मालिका का उत्सव मनाए। राज प्रसाद का शृ गार कराओ और राजकुमार का अभूत पूर्व स्वागत करो।"

मन्त्रियो ने आज्ञा पाकर समस्त प्रबन्ध कर दिया।

कक ने उस समय कहा—"राजन्! देखिये मैंने कहा था ना, कि राजकुमार के साथ बृहन्नला है तो फिर आपको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बृहन्नला के होते कौरव वीरों की क्या मजाल कि जीत सके। आप नही जानते राजन्! कि बृहन्नला रण कौशल मे कितनी प्रवीण है। वह तो शत्रुओ के लिए पराजय का सन्देश समझिए।"

किन्तु विराट तो अपने लाडले के पराक्रम पर गर्व कर रहे थे, उन्होने कहा—"कक, बृहन्नला तो नपुसक है, उसे रण कौशल की क्या तमीज. और यदि वह कुछ जानती भी हो तो भी उसे तो रथ ही हाकना था, युद्ध तो राजकुमार ने ही किया होगा। इस विजय मे बृहन्नला का क्या हाथ है ?

"राजन्! मैं फिर कहता हू बृहन्नला के सामने तो देवराज इन्द्र तथा श्रीकृष्ण के सारथी भी नही ठहर सकते। और यदि कही युद्ध मे उसके मुकावले पर देवता भी उतर आये तो भी विजय बृहन्नला की हो। उसी महावली बृहन्नला के कारण आपके पुत्र की विजय हुई—"कक ने बृहन्नला को विजय का श्रेय देते हुए जोरदार शब्दो मे कहा।

"नही, नही. शिशु सिह उत्तर का मुकावला अव कोई नही कर सकता, यह प्रमाणित हो गया—"राजा विराट ने कहा और तभी एक दासो को वुला कर उन्होने कहा—"आज हम वहुत प्रसन्न हैं। यह समझ मे नही आता कि हम अपनी प्रसन्नता को कैसे प्रकट करें। जाओ जरा चौपड़ की गोटे तो ले आओ, इस खुशी मे कक से दो दो हाथ ही हो जायें। आज खुशी के मारे मैं पागल हुआ जा रहा हू।"

दासी ने तुरन्त आदेश का पालन किया। दोनों खेलने वैठ गए

और खेलते समय भी बाते होने लगी।

"देखा, राजकुमार का शौर्य ? विख्यात कौरव वीरो को अकेले मेरे बेटे ने ही परास्त कर दिया। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और दुर्योधन, अहा, हा, हा सब की वीरता, ख्याति तथा निपुणता धरी की धरी रह गई—' विराट ने कहा।

"नि.सन्देह आप के पुत्र भाग्यवान है. नही तो उन्हे बृहन्नला जैसी सारथी कैसे मिलती ? राजकुमार की वीरता, और उस पर भी बृहन्नला जैसी सारथी का साथ, दोनो ने मिल कर कौरवो का अभिमान भग कर डाला—"कक बोले।

विराट झुझला कर बोले—"ब्राह्मण! आपने भी क्या बृहन्नला बृहन्नला की रट लगा रखी है ? मै अपने महावीर राज कुमार की बात कर रहा हू और आप हैं कि उस हीजडे के सारथीपन की बड़ाई कर रहे हैं।"

कक ने गम्भीरता पूर्वक धीरज से कहा—"राजन्! आपको सत्य के मानने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। बृहन्नला को आप साधारण सारथी न समझे वह जिस रथ पर बैठेगी उस पर कोई साधारण से साधारण रण योद्धा चाहे क्यो न सवार हो, पर विजय उसी की होगी। आज तक उसके चलाए रथ पर युद्ध मे जाकर कोई विजय प्राप्त किये लौटा ही नही। यह उसके शुभ कर्मों, ज्ञान तथा निपुणता का प्रभाव है, जिसे वे सभी मानते हैं जो उसकी वास्तविकता से परिचित है।"

कक की बात पर राजा विराट को बहुत क्रोध आया और उसने अपने हाथ का पासा कक (युधिष्ठिर) के मुह पर दे मारा और बोला —कक! खबरदार जो फिर ऐसी बाते की। जानते हो तुम किस से बाते कर रहे हो?"

पांसे की मार से युधिष्ठिर के मुख पर चोट आई और खून बहने लगा। सौरन्ध्री उस समय वहा उपस्थित थी, उस ने जब कक (युधिष्ठिर) के वदन से रक्त बहते देखा तो दौडकर अपनी साड़ी से उसे साफ करने लगी। पर साडी का वह कोना, जिस मे रक्त

पोछा गया था, रक्त से तर हो गया। तब पास ही मे रक्खे एक सोने के प्याले मे उस ने रक्त लेना आरम्भ कर दिया, ताकि रक्त की धारा फर्श तथा कपडो को न खराब करदे। यह देख राजा विराट ने आवेश मे आकर कहा "सौरन्ध्री! यह क्या कर रही है। सोने के प्याले मे रक्त भर रही है? क्यो?"

सौरन्ध्री बोली—'राजन्! आप नही जानते कि आप ने —कितना भयकर अनर्थ कर डाला। जिनके वदन से रक्त बह रहा है, वे कितने महान व्यक्ति हैं, आप को नही मालूम। यह इसी योग्य है कि इनका रक्त सोने के प्याले मे लिया जाय।"

राजा विराट को सौरन्ध्री की बात अच्छी न लगी। वे दात पीसने लगे। उस समय एक दूत ने आकर सूचना दी कि राजकुमार उत्तर रण भूमि से वापिस आगए हैं। और उसी समय राजा ने स्वय राजकुमार के स्वागत मे बजा रहे मागलिकवाद्य यत्रो की ध्वनि सुनी। जय जयकार की ध्वनि गूंज रही थी। और बाजों के स्वर चारो ओर सुनाई दे रहे थे। राजा उल्लास पूर्वक अपने बेटे का स्वागत करने के लिए उठ और बाहर चल दिए, परन्तु उसी समय राजकुमार उत्तर वहाँ पहुच गया। उसने पिता को सादर प्रणाम किया। राजा ने उसे अपनी छाती से लगा लिया।

राजकुमार की दृष्टि कक की ओर गई। उनका मुह लहू-लुहान देख कर उस ने कहा—"पिता जी! इन्हे क्या हुआ? "बेटा! तुम्हारी विजय की सूचना पाकर जब हम अपना हार्दिक उल्लास प्रकट कर रहे थे, उस समय यह महाशय बार बार वृहन्नला की प्रशसा के पुल बाध रहे थे। इन का विचार था कि विजय वृहन्नला के कारण हुई, इस मे तुम्हारी वीरता का कोई हाथ नही। जब यह बात सुनते सुनते मेरे कान पक गए तो मैंने इनकी जबान बन्द करने के लिए आवेश मे आकर इनके मुह पर पासा फेक दिया। बस उसी से रक्त बह निकला। और कोई बात नही है।"—राजा ने कहा।

पिता की बात सुनकर राजकुमार उत्तर भय के मारे कांप उठा। उसकी चिन्ता की सीमा न रही। क्योंकि वह तो जानता

था कि कक वास्तव मे कौन है। बोला—पिता जी! आपने इन धर्मात्मा के साथ यह व्यवहार करके घोर पाप कर डाला। ऐसा पाप किया है आप ने कि इसका फल आपको क्या भोगना होगा, मैं नही जानता कि यह दास रूप मे आज भले ही है,पर वह हैं एक महान आत्मा। आप अभी ही इनके पैर पकड़ कर क्षमा याचना कीजिए, अपने किए पर पश्चाताप कीजिए, वरना ऐसे शुभ कर्मो वाले महा पुरुष के साथ अन्याय करने के फल स्वरूप, सम्भव है हमारा वश ही समाप्त हो जाये।"

पुत्र की बात सुन कर राजा को बडा आश्चर्य हुआ। अपने से कंक के प्रति ऐसी पुत्र की भावना का रहस्य उनकी समझ मे न आया। बोले—"तुम कैसी बातें कर रहे हो। मेरी तो समझ मे कुछ नही आता। कक भले ही विद्वान हो पर इस का यह अर्थ तो नही कि अपने स्वामी की बातो को झुटलाए और तुम जैसे वीर के शौर्य को एक हीजड़े के सामने नगण्य सिद्ध करे।"

"पिता जी! आप नही जानते कि कंक कौन है। जब आप जानेंगे तो स्वयं लज्जित होंगे। आप मेरे कहने से ही इन से क्षमा याचना करें।"

उत्तर की बात सुनकर राजा सोच मे पड़ गए। परन्तु जब से उन्होंने राजकुमार की कौरव वीरो पर विजय का समाचार सुना था तभी से वे राजकुमार का हृदय से आदर करने लगे थे, इस लिए जब बार बार उत्तर ने आग्रह किया तो उन्होंने कक से क्षमा याचना की।

× × × ×

राजा विराट ने बडे प्रेम तथा आदर से उत्तर को अपने पास बिठा लिया और बोले—"बेटा! अब तुम बताओ कि तुमने कौरव वीरों के साथ कैसे युद्ध किया? उन्हे कैसे परास्त किया? युद्ध मे क्या क्या हुआ? मैं तुम्हारी वीरता की सारी कथा सुनने को लालायित हूं।"

उत्तर ने कहा—"पिता जी! वास्तविकता यह है कि मैंने

कोई सेना नही हराई। मैंने कोई गौ नही छुडाई।

राजकुमार की बात सुन कर राजा की आँख फैल गई।

"क्या कह रहे हो तुम ?"

"ठीक ही कह रहा हू पिता जी।"

"तो फिर कौरव सेना को किस ने मार भगाया ?"

"वह तो किसी देव कुमार का चमत्कार था। उन्हो ने ही कौरव सेना को तहस नहस करके गौए छुडा ली। मैं तो बस देखता ही रहा।"

बडी उत्कठा के साथ राजा ने पूछा—"कौन था वह देव कुमार ? कहा हैं वह ? उसे अभी ही बुला लाओ। मैं उस के दर्शन कर अपनी आखे धन्य करना चाहता हू, जिसने मेरे पुत्र को मृत्यु के मुह से बचाया और मेरे शत्रु को परास्त कर के हमारा गोधन उन से मुक्त करा लिया। मुझे बताओ वह कौन है। मैं स्वय उसके दर्शन करूगा।"

"पिता जी ! वह महान आत्मा अचानक प्रकट हुए और अपना चमत्कार दिखा कर अनायास ही अर्न्तद्धान होगए। मम्भव है शीघ्र ही पुन यही प्रकट हो।"—राजकुमार बोला। उस ने यह वात इस लिए कही कि अर्जुन ने उस से उसके बारे मे कुछ न बताने का वचन ले लिया था।

× × × ×

राजकुमार की विजय के उपलक्ष मे राज्य मन्त्रियो ने एक विशेष उत्सव का आयोजन किया, जिस मे राजा के सभी प्रमुख व्यक्तियो, सेना के मुख्य नायको और मुख्य कर्मचारियो को निमन्त्रित किया। उस विशेष दरबार मे राज्य के कोने कोने से प्रसिद्ध प्रसिद्ध कलाकार निमन्त्रित किए गए थे। सभास्थल बहुत ही मनमोहक एव आकर्षक ढग से सजाया गया था। नृत्य तथा अन्य कला प्रदर्शनो का भी प्रबन्ध था। वह उत्सव राज्य के इतिहास मे

अभूतपूर्व ही था।

नगर के मुख्य व्यक्ति अपने अपने लिए नियुक्त आसनो प विराज मान थे कि कक, बल्लभ, तंतिपाल, ग्रथिक और बृहन्नल ने सभा स्थल में प्रवेश किया। सभी उपस्थित लोगो की दृ उन पाचो की ओर गई। वे सभा मे उपस्थित लोगों, नगर प्रमुख व्यक्तियो, राज्य कर्मचारियो, सेना नायको तथा अ उपस्थित प्रतिष्ठित लोगो के बीच से निकलते हुए राजकुमारो नियत आसनो पर जा बैठे। इस बात को देख कर सभी उपस्थि सज्जनो मे खलबली सी मच गई। यह एक अनहोनी घटना थी कहा सेवक और कहा राज कुमार? राजकुमारो के आसन प सेवको के बैठ जाने से सभी का आश्चर्य स्वभाविक ही था। स आपस में कानाफूसी करने लगे। कोई उनकी आलोचना कर रह था तो कोई कह रहा था—"भई, इन लोगो की सेवाओ से राज बहुत प्रसन्न होगे। क्या पता सुशर्मा को परास्त करने मे इन मिले सहयोग तथा युद्ध मे इनकी वीरता से प्रसन्न होकर राजा उन्हे इस आसन पर बैठने की अनुमति दे दी हो। राजाओ क क्या है जिसको सम्मानित करना हो उसे किसी प्रकार भी सम्मा दे सकते है।"

परन्तु उन पाँचो के इस प्रकार निर्भय होकर राजकुमारो स्थानो पर बैठ जाने से सभी उपस्थित व्यक्ति उनके विषय मे कु न कुछ चर्चा अवश्य ही करने लगे। पर वे थे कि अपने आसन पर ठाठ से बैठे थे। मानो वे उन पर बैठने के पूर्ण रुपेण अधि कारी हो।

कुछ ही देर बाद चोबदारों ने आवाज लगाई—"सावधान अनुशासन, मत्स्य राज्य के नरेश यशस्वी, कर्मवीर, न्यायी, प्रताप विराट महाराज पधार रहे है।" सभी उपस्थित व्यक्ति उनके सम्मान मे सिर झुका कर खडे होगए। राजा आये और उपस्थित सज्जनो का अभिवादन स्वीकार करके अपने लिए नियत उच्च आसन पर विराजमान हुए। समस्त लोग अपने अपने आसनो पर बैठ गए। राजा ने चारो ओर विराजित निमन्त्रित व्यक्तियो पर दृष्टि डाली।

ौर जब उनकी नजर उन पाचो (पाण्डवो) पर पडी। उन के ोध का ठिकाना न रहा। रोम रोम मे चिनगारिया जल उठी। डो कठिनाई से वे अपने को नियन्त्रित कर पाये। ज़ी मे आया क वे उन से इस धृष्टता के लिए सारे दरवार के सामने ही उत्तर ागे और दण्ड स्वरूप धक्के देकर वहा से निकलवा दे। पर उसी मय उन्हे उन पाचो की सेवाओ का ध्यान आया। उन्हे सुशर्मा के मुकाबले पर इनका पराक्रम स्मरण हो आया। इस लिए वे स्वय अपने आसन से उठे और उनके पास जाकर पूछा

आप लोग जानते है कि यह आसन किन के लिए है ?"

भीमसेन बोल उठा—"जी।"

"तो फिर आप लोग इन आसनो पर कैसे आ बैठे ?"

क्यों कि यह हमारे जैसो के लिए ही हैं।"—भीम ने उत्तर दिया।

"क्या आप लोग नही जानते कि यह राज कुमारो के बैठने का स्थान है ?"

'ज्ञात है।"

"तो फिर आप का यह साहस कैसे हुआ कि सेवक होकर राज कुमारो का स्थान ग्रहण करे।"

"क्यों कि हमे इन स्थानो पर बैठने का अधिकार है।"

वह कैसे ?"—आवेश मैं आकर राजा ने पूछा।

"हम राजकुमार जो ठहरे।"—भीम बोला।

"दिमाग तो खराब नही हुआ ?"

'दिमाग़ खराव हो हमारे शत्रुओं का। हम तो अपना स्थान स्वय पहचानते है।"

"मैं आप लोगो की सेवाओ से सन्तुष्ट हू। इस लिए आप को

इस धृष्टता के लिए क्षमा करता हू और आदेश देता हू कि आप तुरन्त यह स्थान रिक्त करले।"

"और यदि हम ऐसा न करे तो······ ?"

राजा दात पीसने लगा।

क्रुद्ध न होइये। आप यह बताइये कि यदि कोई अपना उचित स्थान स्वय ग्रहण करले, तो क्या वह अपराध करता है?"

"लेकिन आप लोग सेवक है राजकुमार नही।"

"आप की सेवा करते रहे तो इसका यह अर्थ तो नही कि हम राजकुमार ही नही रहे।"

"अच्छा आप ऐसे नही मानेगे ?"

"देखिये आप हमे सेवक समझना ही छोड दे तो अच्छा है।"

"तो क्या समझू आप को ?"

"यही कि हम पॉचो राजकुमार है।"

"भाँग तो नही खाली है ?"

"यदि यही प्रश्न कोई आप से करे ?"

"तो उसका उत्तर वल पूर्वक दिया जायेगा। आप लोग मुझ वल प्रयोग के लिए विवश न करे।"

इस प्रकार वातो-वातो में ही झझट खडा होते देख, युधिष्ठर (कक) ने वीच में हस्तक्षेप करना आवश्यक समझा और वे वोले—राजन् ! आप रुष्ट न हो। भीमसेन ठीक कहता है।"

भीम का नाम सुन कर राजा विराट आश्चर्य चकित रह गए। वौले—"भीमसेन कौन ?

"आप भीम सेन को नही जानते ?"

"क्यो नही ? परन्तु क्या यह भीमसेन है ?"

"जी हा ।"

भीमसेन ने कक की ओर सकेत करके कहा--"और यह है महाराज युधिष्ठिर ।"

फिर तो महाराज युधिष्ठिर ने अपने सभी भ्राताओ का परिचय दिया और यह भी बता दिया कि इतने दिनो सेवको के रूप मे वे सब क्यो रहे -

अर्जुन ने फिर सारी सभा को अपना परिचय दिया । जब लोगो को पता चला कि सेवको के रूप मे पाण्डव हैं तो सारी सभा मे कोलाहल मच गया । सभी के चेहरे खिल उठे । चारो ओर आनन्द एव उल्लास छा गया । पाण्डवो की जय जयकार मनाई गई ।

राजा विराट का हृदय कृतज्ञता, आनन्द तथा आश्चर्य से तरगित हो गया वे सोचने लगे, पाचो पाण्डव और राजा द्रुपद की पुत्री मेरे यहा सेवा टहल करते हुए अज्ञात होकर रहे, इन्हो ने मेरे तथा मेरे पुत्र के प्राणो की रक्षा की, मैंने उन्हे साधारण सेवको की भाति रक्खा, फिर भी कभी भी उन्हो ने मेरी अवज्ञा न की मैं कैसे इन सबका बदला चुकाऊ ? मैंने महाराज युधिष्ठिर के मुह पर पासा फेंक कर मारा, फिर भी वे आज्ञाकारी सेवक की भाति सहन कर गए, द्रौपदी के साथ कीचक तथा उपकीचको ने अन्याय किया, पर मैंने उस की सहायता न की और फिर भी पाण्डव सब कुछ सहन कर के आज्ञाकारी सेवक बने रहे, इन सब बातो के लिए कैसे उन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करू ? यह सोच कर राजा विराट का जी भर आया । वे युधिष्ठिर से बार बार गले मिले और गद गद होकर कहा—"मैं आप का ऋण कैसे चुकाऊ ? मेरा यह सारा राज्य आपका है । मैं आपका अनुचर बन कर कार्य करूगा । यदि मुझ से कोई भूल होगई हो तो क्षमा करें ।

युधिष्ठिर ने प्रेम पूर्वक कहा--"राजन् ! मैं आपका बहुत

आभारी हूं। राज्य तो आप ही रखिये। आप ने आड़े समय पर हमें जो आश्रय दिया, वही लाखो राज्यो के बराबर है।"

विराट ने कुछ सोचने के बाद अर्जुन से आग्रह किया कि आप राजकन्या उत्तरा से विवाह करले।

अर्जुन ने उत्तर दिया--"राजन्! आप का बड़ा अनुग्रह है। परन्तु मैं आप की कन्या को नाच तथा गाना सिखाता रहा हू अतः वह तो मेरे लिए बेटी के समान है। अतएव मेरे लिए यह उचित नही कि अपनी शिष्या के साथ विवाह करू।"

'लेकिन मैं तो चाहता हू कि अपनी कन्या का विव आप ही के परिवार मे सम्पन्न करके एक भार से मुक्त हो जाऊ, आप के परिवार से एक सशक्त सम्बन्ध स्थापित करके धन्य हो जाऊ और आपकी सेवा करके अपने को कृत्य कृत्य करलू"—राजा विराट ने विनीत भाव से कहा। अर्जुन कुछ देरो के लिए विचार विमग्न हो गया और अन्त मे कहा—"यदि आप की यही इच्छा है तो आप अपनी कन्या को मेरे पुत्र अभिमन्यु की सहधर्मिणी बना सकते हैं। इस सम्बन्ध को मैं सहर्ष स्वीकार कर लूगा।"

राजा विराट ने अर्जुन का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस के लिए हार्दिक आभार प्रगट किया।

अभी यह बातें हो ही रही थी कि एक चोबदार ने प्रवेश किया राजा तथा पाण्डवो का अभिवादन कर के उसने कहा—'महाराज! हस्तिना पुर नरेश दुर्योधन की ओर से एक दूत कोई विशेष सन्देश लेकर आया है। और महाराज युधिष्ठिर से मिलना चाहता है।"

"उसे सादर व ससम्मान यहा ले आओ" युधिष्ठिर ने आज्ञा दी।

दूत ने आकर राजा विराट तथा पाण्डवों को प्रणाम किया।

युधिष्ठिर ने पूछा—"कहिये, आप कहा से पधारे?"

"मुझे महाराज दुर्योधन ने एक सन्देश लेकर भेजा है।"—उसने कहा।

'क्या सन्देश है"?

"गाधारी पुत्र ! महाराज दुर्योधन का कहना है कि आप को प्रतिज्ञा के अनुसार १२ वर्ष बनवास तथा १ वर्ष अज्ञावास करना था। पर उतावली के कारण प्रतिज्ञा पूर्ति के पहले ही अर्जुन पहचाने गए हैं। अतएव शर्त के अनुसार आप को बारह वर्ष के लिए और बनवास करना होगा।"

दूत की बात सुन कर महाराज हस पडे और बोले— "आप शीघ्र ही वापिस जाकर दुर्योधन से कहे कि वे पितामह भीष्म और ज्योतिष शास्त्रों के जानकारों से पूछ कर इस बात का निश्चय करे कि अर्जुन जब प्रकट हुआ तब प्रतिज्ञा की अवधि पूर्ण हो चुकी थी अथवा नही। मेरा यह दावा है कि तेहरवा वर्ष पूर्ण होने के उपरान्त ही अर्जुन नें गाण्डीव धनुष की टंकार की थी।"

आज्ञा पाकर दूत हस्तिना पुर की ओर लौट पडा।

राजा विराट ने सभी उपस्थित व्यक्तियो को सुनाकर घोषणा की कि वास्तव मे कौरव सेना का विजेता वीर अर्जुन है और यह उत्सव उसी हर्ष के उपलक्ष में मनाया जायेगा।

फिर क्या था, मंच पर चुने हुए कलाकार आये। उन्हों ने अपनी कला का प्रदर्शन आरम्भ कर दिया। उल्लास पूर्ण गीतों तथा नूपुरो की ध्वनि गूँज उठी और हर्ष का वातावरण मस्ती से झूम उठा।

* बाईसवां परिच्छेद *

अज्ञात वास की अवधि पूर्ण हो चुकने के कारण पाचो पाण्डव द्रौपदी सहित प्रकट रूप में रहने लगे। एक दिन युधिष्ठिर ने अपने सभी भ्राताओ को अपने पास बुलाकर कहा:—

हमारी प्रतिज्ञा कभी की पूर्ण हो चुकी। शर्त के अनुसार अब हमे हमारा राज्य मिल जाना चाहिए। परन्तु लक्षण बता रहे हैं कि दुर्योधन सीधी तरह से हमे राज्य वापिस नही देने वाला। उसने हम से १३ वर्ष तक वनवास व अज्ञात वास करवा लिया, पर अब भी उसकी इच्छा हमे राज्य हीन रखने की ही है। ऐसी दशा मे अब हमे सोचना है कि क्या करे? आप सभी विचार करें कि भावी कार्यक्रम क्या हो?"

अर्जुन ने कहा—"धर्मराज! हम तो सदा आप के आज्ञाकारी रहे हैं। पूज्य पिता जी के उपरान्त आप ही हमारे सरक्षक हैं। आप ने जुआ खेला, हम चुप रहे। आप ने राज्य हार दिया, हम कुछ न बोले। द्रौपदी का अपमान हुआ हम खून का घूट पी कर रह गए। आप ने वनवास और अज्ञात वास की शर्त मानी, हम ने उसे स्वीकार कर लिया। जो जो विपदाएं हम पर आई, हम ने सहर्ष सहन किया। और अब भी आप ही की इच्छा के दास हैं। हम तो पहले ही अनुभव करते थे कि १२ वर्ष का बनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास तो दुष्ट दुर्योधन का एक बहाना है।

वरना वह हमे टरकाना ही चाहता है पर आप ठहरे धर्मराज। आप ने अपनी जबान की भाति ही उसकी जबान को समझा और उसकी बात मान ली। पर वह चाहता था कि १२ वर्ष तक तो हम चुप चाप वनों मे पडे रहे और एक वर्ष की अज्ञात वास की अवधि मे वह हमारा पता लगा कर १३ वर्ष के लिए और बनो मे भेज दे। फिर एक वर्ष का अज्ञात वास करें और इसी प्रकार हम जीवन भर करते रहे। परन्तु उस की वह योजना सफल नही हुई, अब उस के पास राज्य देने से इन्कार करने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। इस लिए अब जो कुछ आप आज्ञा दे हम वही करे।"

भीमसेन बोला—"भैया अर्जुन ठीक कहते है। तेरह वर्ष पश्चात भी हमारे सामने वही एक मात्र रास्ता है; राज्य पाने का कि हम अपने बाहुबल का प्रयोग करे। दुष्ट बुद्धि दुर्योधन इस प्रकार नही मानने वाला। इतना भला मानुस होता तो जुए मे कपट से राज्य न छीनता।"

युधिष्ठिर जानते थे कि उनके भाइयो का मत अक्षरशः सत्य है, फिर भी वे धर्म नीति का उल्लघन न कर सकते थे, बोले—"अभी से युद्ध की ही बात सोच लेना भूल है। हम ने जो कुछ किया उस से हमारा पक्ष दृढ हुआ और दुर्योधन को अन्यायी सिद्ध करने में हम सफल हुए। अब सारा ससार हमारे पक्ष का समर्थन करे गा। इस लिए किसी निष्कर्ष पर पहुचने से पूर्व हमे अपने सहयोगियो, मित्रो तथा सम्बन्धियो से परामर्श करना चाहिए। हम उनकी सहायता विना कुछ कर भी तो नही सकते।"—महाराज युधिष्ठिर ने कहा।

"आप ठीक कहते हैं राजन् हमें अपने स्नेही मित्रो तथा सहयोगियों से मत्रणा करनी चाहिए"—नकुल बोला।

सहदेव ने भी उस समय अपनी राय प्रकट करते हुए कहा—'मेरा विचार है कि अब समय नष्ट करने से कोई लाभ नही हमे अपने सभी मित्रो कृपालु सहयोगियो विचारवान तथा विद्वान सम्बन्धियो को बुला कर परामर्श करना चाहिए और वे जो कुछ कहें वैसा ही करना उचित है।'

इस प्रस्ताव को सभी ने स्वीकार किया और निश्चयानुसार अपने भाई बन्धुओ एव मित्रों को बुलाने के लिए दूत भेज दिए गए।

+ + + + + + ×

भाई बलराम, अर्जुन की पत्नी सुभद्रा तथा पुत्र अभिमन्यु और यदुवश के कई वीरों को लेकर श्री कृष्ण पान्डवों के निवास स्थान पर आ पहुचे। उनके आगमन का समाचार पाकर पाण्डवो तथा राजा विराट ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

इन्द्र सेन, काशी राज, और वीशैव्य भी अपनी अपनी सेनाओं के मुख्य नायको सहित वहां पहुच गए। पांचाल राज द्रुपद के साथ शिखण्डी और द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी के पुत्र भी वहा आ पहुचे। और भी कितने ही राजा अपनी अपनी सेनएं लेकर युधिष्ठिर के पास आगए।

सर्व प्रथम विधि पूर्वक अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह किया गया। इस के पश्चात विराट राजा के सभा भवन मे सभी आगन्तुक राजा लोग एकत्रित हुए।

विर ट राजा के पास श्री कृष्ण तथा युधिष्ठिर बैठे, द्रुपद के पास बलराम तथा सात्यकि। और द्रुपद के पुत्र, अन्य प.ण्डव तथा पाण्डवो के पुत्र स्वर्ण जटित सिहासनो पर जा बैठे। समस्त प्रतापी राजाओ के अपने अपने आसनो पर विराज मान होने के उपरान्त श्री कृष्ण युधिष्ठिर से कुछ बातचीत करने के पश्चात उठे और कहने लगे :—

"सम्मान्य बन्धुओ तथा वीर मित्रो! सबल पुत्र शकुनि ने कपट द्यूत मे हराकर महाराज युधिष्ठिर का राज्य जिस प्रकार हथिया लिया और उन्हें बनवास तथा अज्ञात वास के नियम मे बाध दिया, यह सब तो आपको ज्ञात ही है। पाण्डवो ने अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिए कितने प्रकार की दु सह कठनाईयो को झेला, और तेरह वर्ष तक कैसे कैसे दारूण दु ख भोगने पड़े, इसे बताने की आवश्यकता नही है। पाण्डव उस समय भी अपना राज्य वापिस लेने मे समर्थ थे, परन्तु वे सत्यनिष्ठ थे, उन्हे बल से अधिक धर्म

ाति का पालन किया। अब हम यहा इस लिए एकत्रित हुए हैं कि
कुछ ऐसे उपाय सोचे, जो युधिष्ठिर तथा राजा दुर्योधन के लिए लाभ
प्रद हो, कर्मानुकूल हो और कीर्तिकर हो, न्यायोचित हो और जिन
से पाण्डवो एव कौरवो का सुयश बढे। जिसकी वस्तु है उसे मिल
जाये, क्योकि अधर्म के द्वारा तो धर्मराज युधिष्ठिर देवताओ का
राज्य भी नही लेना चाहेगे। यद्यपि धृतराष्ट्र के पुत्रो ने उन्हे
धोखा दिया और भाति भाति की यातनाए पहुचाई, फिर भी
युधिष्ठिर तो उनका भला ही चाहते हैं। आप को कौरवो के
अन्यायो तथा पाण्डवो की न्याय प्रियता, दोनो पर ही ध्यान देना
है। हाँ, धर्म न्याय तथा अर्थ से मुक्त ही तो युधिष्ठिर को एक
गाँव का आधिपत्य भी स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही।
परन्तु यह सर्वविदित है कि जिस राज्य को इनसे छीना था, वह इन
के परम प्रतापी पिता और स्वय इनके वाहुबल के द्वारा विजित
हुआ था। यह लोग दुर्योधन से अपना हक माँगते है! इसलिए
इनकी माँग सर्वथा धर्मानुकूल है। आज लोग यह भी जानते ही
हैं कि कौरव बाल्यकाल से ही पाण्डवो के विरूद्ध भिन्न भिन्न प्रकार
के षडयन्त्र रचते रहे है। और उन्ही षडयन्त्रा की एक कडी थी
जुए की बाज़ी। जुए मे युधिष्ठर को हराया गया और हारी हुई
सम्पत्ति को पुन. प्राप्त करने के लिए जो शर्त रक्खी गई। उसे
पाण्डवो ने पूर्ण किया। इसलिए दुर्योधन को अव शर्त के अनुसार
इनकी सम्पत्ति लौटा देने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।
पर चूंकि इस समय दूसरे के पक्ष के विचारो का पता नहीं है।
इसलिए सबसे पहले, मेरे अपने विचार से एक ऐसे व्यक्ति को दूत
बनाकर भेजना होगा, जो धर्मात्मा, परिभचित्त, कुलीन, सावधान
और सामर्थ्यवान हो। ताकि वह दुर्योधन को समझा बुझाकर
उसके कर्त्तव्य का वोध करा कर उसकी इच्छा जान सके दुर्योधन को
राय जानने पर ही कोई कार्यक्रम स्वीकार किया जाना चाहिए।
आप सभी नीतिवान, विद्वान, न्याय प्रिय लोग यहाँ उपस्थित हैं,
अत इस सम्वन्ध मे दोनो पक्षो के गुणो को ध्यान मे रखकर
सोचिए कि अधिकारी को उसका अधिकार दिलाने के लिए क्या
किया जाना चाहिए।"

यह थी श्री कृष्ण की वह वात जिसके आधार पर उस दिन

की मत्रणा होनी थी। श्री कृष्ण ने अपना वक्तव्य समाप्त करके बलराम की ओर देखा।

तब बलराम उठे और बोले—"कृष्ण ने जो मत व्यक्त किया वह मुझे न्यायोचित लगता है और राजनीति के अनुकूल भी श्री कृष्ण ने जो मत व्यक्त किया वह जैसा धर्मराज के लिए हितकर है, वैसा ही कुरूराज दुर्योधन के लिए भी है। वीर कुन्ती पुत्र आधा राज्य कौरवो के लिए माँगते हैं। अत. यदि दुर्योधन इन्हे आधा राज्य दे दे तो वह बडी आनन्द से रह सकता है। बिना किसी युद्ध के, सन्धि से, शान्ति पूर्ण ढग से ही यह समस्या सुलझ जाये तो उससे न केवल पाण्डवो की ही बल्कि दुर्योधन और उसकी सारी प्रजा की भी भलाई होगी। सब सुख चैन से रह सकेंगे और व्यर्थ का रक्तपात भी बच जाएगा। क्योकि मैं इस बात का मानने वाला हूं कि अहिसा के सिद्धान्त से जो मिलता है, कल्याण उसी से होता है। यदि केवल एक राज्य के लिए निरपराधी मनुष्यों का रक्त बहे तो यह हम सभी के लिये बडे कलक की बात होगी। अत. इसके लिए यह आवश्यक है कि महाराज युधिष्ठिर की ओर से कोई नीतिवान दूत जाये और वह युधिष्ठिर का विचार वहाँ जाकर सुनाये तथा महाराज दुर्योधन का विचार सुने। वहाँ जो दूतजाए उसे. जिस समय सभा मे भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वस्थामा विदुर, कृपाचार्य शकुनि कर्ण तथा शास्त्र और शास्त्रो मे पारगत दूसरे धृतराष्ट्र पुत्र उपस्थित हो और जब सब वयोवृद्ध तथा विद्या वृद्ध पुरवासी भी वहाँ आ जाए, तब उन्हे प्रणाम करके वे बातें कहनो चाहिए जिन से महाराज युधिष्ठिर के पक्ष का प्रतिपादन हो और दुर्योधन को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो। किसी भी अवस्था में कौरवो को कुपित नही करना चाहिये। उसे बड़ी नम्रता से अपनी बात कहनी होगी और चाहे कैसा भी उत्तेजना का अवसर आये पर वह क्रोध मे न आये। ज़रा झुकने से जो काम आसानी से निकल आता है वह तनने से कठिनाई से ही निकलता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि दुर्योधन ने सबल होकर ही इन का राज्य छीना था। युधिष्ठिर की जुए मे आसक्ति थी, यह धर्म विरुद्ध लत के शिकार थे। जिन भाषित धर्म के प्रतिकूल चल कर इन्हो ने जुआ खेला था, फिर यदि शकुनि ने इन्हे जुए मे हरा दिया

नहीं ठहराया जा सकता।
। केवल इसी बात से उसे अपराधी नहीं ठहराया जा सकता।
युधिष्ठिर स्वय जानते हैं कि स्वय इनके भाइयों ने ही उन्हे जुआ
खेलने से रोका था और इन्हे पहले से ही मालूम था कि शकुनि एक
मजा हुआ खिलाडी है और वे उनके सामने खेल मे ठहर नही सकते।
शकुनि की निपुणता और अपने नौसिखये पन को ध्यान मे रखते
हुए और अपने भ्राताओं के मना करने पर भी युधिष्ठिर ने जुआ
खेला और अपना राज्य हार गए। यह तो आखों देखे अपने पैरो
पर स्वय ही कुल्हाडी चलाना था। इस लिए दुर्योधन के पास
युधिष्ठिर का राज्य चला जाना, दुर्योधन का अन्याय पूर्ण कार्य
नही कहा जा सकता। अब तो उस खोये हुए राज्य को प्राप्त
करने के लिए बहुत नम्रता पूर्वक ही कहा जा सकता है।
एक ही रास्ता है राज्य वापिस लेने का, कि बहुत ही
झुक कर प्रार्थना की जाये। इस लिए दूत बन कर जाने
वाला व्यक्ति मृदु भाषी हो, युद्ध प्रिय न हो। उस का उद्देश्य
किसी न किसी प्रकार समझौता करना ही हो। यह बात आप को
स्पष्ट कर देना चाहता हू कि पाण्डवो ने जो दु सह, दारुण दुख
भोगे है, वे महाराज युधिष्ठिर के धर्म के प्रति कूल कार्य के
कारण ही भोगने पडे। इस लिए हे राजा गण। दुर्योधन की मीठी
बातो से ही समझाने का प्रयत्न कीजिए। शाति पूर्ण ढग से जो
सम्पत्ति मिल जाये वही सुख प्रद होगी। युद्ध चाहे जिस उद्देश्य
से किया जाये, उस मे अन्याय तथा हिंसा होती ही है और इस
की हिंसा से जहा तक बचा जा सके उतना ही अच्छा है। यद्यपि
गृहस्थाश्रम मे रह कर विरोधी हिंसा से बचना असम्भव है, राष्ट्र
तथा धर्म के लिए ऐसी हिंसा करनी पडती है, फिर भी जान
बूझ कर युद्ध करना और हिंसा तथा निरपराधियो का रक्त बहाना,
अधर्म है। युद्ध के द्वारा न्याय की स्थापना होना असम्भव है।
वैर मे वैर निकालने से वैर बढता है। तीर्थङ्करो का उपदेश है
कि हिंसा दूसरी हिंसाओ की जननी होती है। हिंसा किसी भी
समस्या का पूर्ण समाधान नही कर सकती। पाण्डवो ने स्वय
अपनी आत्मा के साथ अन्याय किया है और दुर्योधन यदि शांति
वार्ता के द्वारा समस्या नही सुलझाता तो वह स्वय अपनी आत्मा के
साथ अन्याय करेगा। केवली भगवान् ने कहा है कि एक पाप

दूसरे पाप को जन्म देता है जो धर्म के प्रति कूल कार्य करते है वे विपदाओं मे फसते है। इस लिए दुर्योधन को अन्यायी बताने से पहले हमे अपने पक्ष की त्रुटियो को भी अपने सामने रखना चाहिए और वही उपाय अपनाना चाहिए जिस से शाति स्थापित हो।"

बलराम के कहने का सार यह था कि युधिष्ठिर ने जान बूझ कर अपनी इच्छा से जुआ खेल कर राज्य गवाया है। यह ठीक है कि शर्त के अनुसार उन्होने १२ वर्ष और एक वर्ष का अज्ञात वास भी भोग कर अपना प्रण निभा दिया। इस से वे दासता से मुक्त होकर स्वतन्त्र रहने के अधिकारी हो गए और खोये हुए राज्य को वापिस भी माग सकते है. परन्तु इसका अर्थ यह नही कि दुर्योधन यदि उन्हे राज्य वापिस न दे तो वे बल पूर्वक उसे वापिस लेने का उन्हे अधिकार हो गया। क्योकि राज्य वापिस करने की दुर्योधन से याचना की गई थी और उसने एक शर्त रख दी थी, अब दुर्योधन का अपना कर्तव्य है कि वह राज्य वापिस करे। पर इस का यह अर्थ नही हो जाता कि यदि वह स्वेच्छा से राज्य वापिस न करे तो उसे ऐसा करने के लिए वाध्य किया जाय। हा, हाथ जोड कर उस से अपना वचन पूर्ण करने की प्रार्थना की जा सकती है। जुआ खेलना अधर्म है और जान बूझ कर अपनी सम्पत्ति को उस में गवाना बहुत ही बडी नादानी है, लेकिन ऐसी नादानी करने वाले को यह अधिकार कदापि नही है कि वह अपनी भूल सुधारने के लिए बल प्रयोग करे।

इस के अतिरिक्त एक ही वश के लोगो का आपस मे लड़ मरना भी बलराम को अच्छा न लगा। बलराम की राय थी कि युद्ध अनर्थ की जड होता है। उस से कभी भलाई नही हो सकती।

परन्तु बलराम की बातो को सुन कर पाण्डवो का हितैषी सात्यकि आग बबूला हो गया। उस से न रहा गया। उठ कर कहने लगा—"बलराम जी की बात मुझे तनिक भी तर्क सगत प्रतीत नही होती। वाक पटुता से उन्होने अपने विचार को न्यायोचित भले ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया हो, पर न्याय को अन्याय सिद्ध

रने का उनका प्रयास मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगा। हर किसी
ात का सुन्दरता से समर्थन किया जा सकता है और शब्द जाल के
ारा अन्याय को न्याय सिद्ध करने की चेष्टा भी की जा सकती है।
किन्तु जो स्पष्ट अन्याय है वह कदापि न्याय नही हो सकता,
न अधर्म धर्म ही हो सकता है। बलराम जी की बातो का मैं जोरो
से विरोध करता हू। क्यो कि यह ठीक है कि धर्म राज जुआ
खेलना नही जानते थे और शकुनि इस क्रिया मे पारंगत था। किन्तु
इनकी उस मे श्रद्धा नही थी। ऐसी स्थिति मे यदि उस ने इन्हे
जुए के लिए निमन्त्रित कर के, जब कि यह उस निमन्त्रण को
राजाओ की रीति के अनुसार अस्वीकार नही कर सकते थे, इन की
सम्पत्ति को जीत लिया तो वह धर्मानुकूल जीत नही हो जाती।
अजी! कौरवो ने तो इन्हे जुए के लिए कपट पूर्वक बुलाया था,
फिर उनका यह कार्य न्यायोचित कैसे हो सकता है? कौन नहीं
जानता कि खेल मे बारम्बार महाराज युधिष्ठिर को ललकारा
गया। और खेल मे हारने के पश्चात दुर्योधन ने राज्य वापिस
करने के लिए एक शर्त रक्खी। वह शर्त धर्मराज ने पूर्ण करदी।
अब दुर्योधन की ओर से चीख पुकार हो रही है कि अर्जुन १३वें
वर्ष की अवधि पूर्ण होने से पहले ही प्रकट हो गया। उन की यह
बात सरासर झूठ है। बात यह है कि दुष्ट दुर्योधन वास्तव मे हर
प्रकार से अन्याय पर अडा हुआ है। वह नीच बिना बल प्रयोग
के मानेगा ही नही। एक नही हजार दूत भेजिए वह दुरात्मा तो
तभी मानेगा जब वह और उस के भाई युद्ध मे मेरे तीरो के
सामने अपने को मृत्यु का ग्रास होते पायेगे। मै युद्ध मे अपने
बाणो से उस नीच को बाध्य कर दूगा कि वह धर्म राज के चरणो
मे सिर रख कर अपने अन्यायो के लिए क्षमा याचना करे और यदि
ऐसा नही होता तो उसे, उसके मन्त्रियो सहित यमपुरी पहुचा दूगा।
उस दुष्ट को शान्ति की वार्त्ता से अकल नही आयेगी, उसकी बुद्धि
तो युद्ध मे ही ठिकाने आयेगी। भला ऐसा कौन है जो सग्राम
भूमि मे गाण्डीव धारी अर्जुन, चक्र पाणि श्री कृष्ण, दुर्धर्ष भीम,
धनुर्धर नकुल, सहदेव, वीरवर विराट, द्रुपद तथा उन के पुत्रों,
अभिमन्यु आदि पराक्रमी वीरो का वेग सहन कर सके। मैं अकेला
ही अपने बाणों से कौरवो के होश ठिकाने लगा दूगा। धर्म रा

युधिष्ठिर भिख मंगे नहीं हैं जो दुर्योधन से याचना करते फिरें। वे अपने राज्य के अधिकारी हैं, उनकी यही कृपा काफी है कि उन्होने अपने साम्राज्य के दो भाग सहन कर लिए। उनकी यही धर्म निष्ठा तथा न्याय प्रियता पर्याप्त है कि वे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए इतने कष्ट उठाते फिरे। तेरह वर्ष तक वनो की खाक छानना और सेवक बन कर दूसरो की चाकरी करना हसी खेल नही है। यदि पाण्डवों ने यह स्वीकार कर लिया तो इसका यह अर्थ नही होगया कि कौरव कुल कलंकियों के सामने माथा रगडते फिरें। ठीक है एक ही वृक्ष की दो शाखाएं होती हैं एक फलो से लदी होती है और दूसरो पर फल आता ही नही। एक ही कोख से जन्मे दो व्यक्ति भी इसी प्रकार दो भिन्न मनो वृति के होते हैं। अब आप श्री कृष्ण तथा बलराम को ही ले, आपस मे भाई भाई हैं, पर एक न्याय का पक्ष पाती है तो दूसरा अन्याय का। परन्तु हम लोग जो यहा इकट्ठे हुए है, दुर्योधन के अधर्म के पक्षपाती नही। हम धर्म राज को उनका अधिकार दिलाने पर विचार करते आये हैं, इस लिए हमारा धर्म है कि हम न्याय के पक्ष मे कोई भी पग उठाने से न घवराये। तलवार लेकर सामने आये शत्रु से लडना अधर्म नही है। अन्यायी को उसके अपराध का दण्ड देना अधर्म नही है। और कपट से जुए मे हरा कर किसी की सम्पत्ति को हडप जाने वाले की प्रशसा करना धर्म नही है। मेरा विचार है कि अब विलम्ब करने से कोई लाभ नही होगा हमे तुरन्त रणभेरी वजाने को तैयार होना चाहिए और धृतराष्ट्र के बेटो को उन के अन्याय का मजा चखा देना चाहिए।"

सात्यकि की दृढता पूर्ण और जोर दार बातो से राजा द्रुपद बड़े प्रसन्न हुए वे अपने आसन से उठे और बोले—

"सात्यकि ने जो कहा वह बिल्कुल ठीक है मैं उस का समर्थन करता हू। जिस व्यक्ति की आखो पर लोभ की पट्टी बाधी जाती है, वह न्याय तथा धर्म नीति की बाते पहचान हा नही सकता। दुर्योधन को आधा राज्य मिला, वह उस मे ही सन्तुष्ट न हुआ, उस ने षडयन्त्र करके पाण्डवों का समस्त राज्य छीन लिया। अब वह किसी भी प्रकार मीठी मोठी बातो से मानने वाला नही।

लातो के भूत बातो से नही माना करते दुर्योधन से महाराज युधिष्ठिर को उनका अधिकार दिलाने के लिए युद्ध करना ही होगा। पाण्डवो और कौरवो का फैसला रण भूमि मे ही होगा। फिर भी मेरे कहने का यह तात्पर्य कदापि नही है कि सन्धि वार्ता चलाई ही न जाय। हमे पहले अपने दूत शल्य, धृष्ट केतु, जयत्सेन, केकय, आदि मित्र राजाओ के पास भेज देने चाहिए; ताकि वे युद्ध की तैयारी करने लगे और दूसरी ओर सधि वार्ता के लिए निपुण विद्वान दूत भेजना चाहिए। जो हर प्रकार से दुर्योधन को समझाये और उसे सन्धि के लिए तैयार करे। यदि दुर्योधन फिर भी सन्धि के लिए तैयार न हो फिर रण के लिए ललकारना चाहिए। आप चाहें तो मेरे दरबार मे रहने वाले एक विद्वान शास्त्रज्ञ, नीतिवान राजा पुरोहित को दूत बना कर भेजदे। आप जो कहेगे उसी के अनुसार वे कार्य करेगे। इस प्रकार जिस तरह भी हो हमे महाराज युधिष्ठिर को उनका राज्य दिलाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। मेरी यही सम्मति है।"

राजा द्रुपद की बात समाप्त होने पर श्री कृष्ण उठे और कहने लगे:—

"सज्जनो! पांचाल राज ने जो सलाह दी है वही ठीक है। वह राज नीति के भी अनुकूल है, उसी पर चलना चाहिए। ठीक है दुर्योधन की प्रकृति तथा स्वभाव को देखते हुए उस से यह आशा करना कि वह सन्धि के लिए तैयार हो जायेगा और शाति पूर्वक इस समस्या को सुलझाने का प्रयास करेगा, व्यर्थ है। हमे प्रत्येक सम्भव तथा धर्मानुकूल उपाय करने के लिए तैयार रहना चाहिए, तो भी नीति कहती है कि हम सर्व प्रथम अपनी ओर से शाति पूर्वक सन्धि वार्ता करने का प्रयास करे। महाराज युधिष्ठिर की ओर से एक दूत जाना ही चाहिए। कौन शक्ति इस के लिए उपयुक्त है और उसे क्या बाते वहा जाकर कहनी चाहिए, किस प्रकार सन्धि वार्ता उसे चलानी चाहिए, इस सम्बन्ध मे राजा द्रुपद ही निर्णय करले, जिसे वे उपयुक्त समझे उसे ही वे स्वय समझा बुझा कर भेज दे। दुर्योधन के दरबार मे जिन सुलझे हुए तथा वयोवृद्ध लोगो के सामने हमारे दूत को अपनी बाते रखनी है, उन

सभी के साथ बाल्य काल मे पांचाल राज खेले है: द्रोण तथा भीष्म आदि सभी के स्वभाव तथा गुणो से वे परिचित ही है और हम लोग तो उन के शिष्य वत है। अत: इस सम्बन्ध मे उनका प्रत्येक कार्य हमे मान्य होगा। अब हमे आज्ञा दी जाय कि अपनी अपनी राजधानियो को लौट जाय। क्योकि हम तो अभिमन्यु के विवाह मे ही विशेष रूप से शामिल होने आये थे। पाचाल राज इस सम्बन्ध मे जो करे और अन्तिम निश्चय जो हो, उस से हमे सूचित कर दिया जाय।"

इस अवसर पर महाराज युधिष्ठिर बोले—"मैंने अब तक सभी सम्मानित बन्धुओ तथा हितैषियो की बाते सुनी। आप सभी के उदगार सुन कर मुझे अनुभव हुआ कि आप सभी हमारी सहायता के लिए तैयार हैं। बलराम जी ने जो भी मत व्यक्त किया, उस से हमे कोई खेद नही हुआ। यदि आप सभी यह अनुभव करते हो कि हमे राज्य वापिस मांगने का कोई अधिकार नही है तो हम प्रसन्नता पूर्वक अपना अधिकार छोडने के लिए तैयार है। परन्तु यदि आप हमारे पक्ष का समर्थन करते है तो मेरी इच्छा है कि यह मामला सन्धि वार्ता द्वारा ही सुलझ जाये। यदि दुर्योधन हमें कुछ भी देने को तैयार हो तो हम युद्ध नही करेंगे। फिर भी इस सम्बन्ध मे आप सभी जो निर्णय करेंगे हमे स्वीकार होगा।"

अन्त मे सभी उपस्थित सज्जनो ने अपने अपने विचार प्रकट करके एक ओर सन्धि के लिए दूत भेजने और दूसरी ओर युद्ध की तैयारिया करने की राय दी। और इस कार्य क्रम का सचालन राजा द्रुपद को सौपा गया।

निश्चय हो जाने के पश्चात श्री कृष्ण अपने साथियों सहित द्वारिका लौट गए। विराट, द्रुपद, युधिष्ठिर आदि युद्ध की तैयारियां करने लग गए। चारो ओर दूत भेजे गए। सब मित्र राजाओ को सेना एकत्रित करने और अस्त्र शस्त्र तैयार रखने के सन्देश भेज दिए गए। सन्देश मिलते ही पाण्डवो के पक्ष के राजा गण अपनी अपनी सेना सज्जित करने लगे।

इधर पाण्डवो के समस्त सहयोगी युद्ध की तैयारियों मे लगे उधर दुर्योधन को अपने गुप्तचारो द्वारा पाण्डवो की तैयारियो का पता लग गया और उसने भी जोर शोर से तैयारिया आरम्भ कर दी। उसके सहयोगी भी जी जान से तैयारियो मे लग गए। अपने मित्र राजाओ के पास दुर्योधन की ओर से सन्देश भेजे गए और सेनाए इकट्ठी की जाने लगी। इस प्रकार सारा भारत खण्ड युद्ध के कोलाहल से गूजने लगा। राजा लोग इधर से उधर दौरे करते। सैनिकों के दल के दल जगह जगह आते जाते। सेनाओ मे वीर पुरुषो की भर्तिया खुल गई। कारीगर शस्त्र तैयार करने मे जुट गए। रथ, हाथी और घोडो को तैयार किया जाने लगा। दुर्योधन ने अपनी सेनाओ का बकाया वेतन चुकना कर दिया और सैनिको को प्रसन्न करने के लिए वेतन मे वृद्धि करने के साथ साथ अन्य प्रकार की सुविधाए दी जाने लगी। सारे देश मे उथल पुथल मच गई और प्रजा को यह समझते देर न लगी कि एक भयकर युद्ध का सूत्रपात हो रहा है। चारो ओर सेनाओ की भीड लग गई और पृथ्वी भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्रो के परीक्षणो मे काप उठी।

\+ \+ \+ \+ \+ \+ \+

द्रुपदा राजा ने अपने महा मत्री पुरोहित को बुला कर कहा—"विद्वानो मे श्रेष्ठ! आप पाण्डवो की ओर से दूत बन कर दुर्योधन के पास जाए। पाण्डवों के गुणो से तो आप परिचित है ही और दुर्योधन के गुण भी आप से छिपे नही। आप को यह भी ज्ञात है कि किस प्रकार कपट पूर्वक दुर्योधन ने अपने मित्रो के सहयोग से और धृतराष्ट्र की सम्मति से पाण्डवो को जुए के लिए निमत्रित करके उनका राज्य छीन लिया। विदुर ने तो न्याय की बात कही थी, किन्तु दुर्योधन ने उसकी एक न सुनी। राजा दुर्योधन का धृतराष्ट्र पर अधिक प्रभाव है। आप वहा जाए और धृतराष्ट्र को नीति की बातें समझाएं। विदुर से भी आप बातें करें। वे तो हमारे पक्ष मे रहेगे ही, सन्धि वार्ता को वे पसन्द करेंगे। भीष्म द्रोण, कृप, कर्ण आदि से अलग अलग बात करके प्रत्येक को सन्धि

के लिए तैयार कर। इस प्रकार सम्भव है कि भीष्म, द्रोण, कृप, आदि दुर्योधन के हितैषियो, मन्त्रियो तथा सेना नायको मे परस्पर मतभेद होजाय। यदि उस विषय मे उन सभी मे मतभेद हो जाये तो उन मे फिर एकता होना कठिन है। एकता यदि हुई भी तो उस में काफी समय लगेगा। इस समय मे उनकी तैयारिया शिथिल पड जायेगी और पाण्डव युद्ध की काफी तैयारी कर लेंगे। आप सन्धि की वार्ता इस प्रकार करें कि दुर्योधन आदि उत्तेजित न हो सके और सन्धिवार्ता मे काफी समय लग जाये। इस प्रकार यदि सन्धिवार्ता सफल भी न हुई तो हमे यह लाभ पहुचेगा कि उस समय मे हम अपनी तैयारिया पूर्ण कर लेगे और दुर्योधन सन्धि वार्ता मे लगा होने के कारण अधिक न कर सकेगा। यह जानते हुए भी दुर्योधन समझौते को तैयार न होगा, हमारे शांति दूत के जाने से हमे काफी लाभ होगा।"

महा मत्री ने द्रुपद की सारी बाते सुनी और बोला—"महाराज! आप विश्वास रक्खें, मैं धृतराष्ट्र तथा उसके सहयोगियो को समझौता करने के लिए रजा मन्द करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दूगा और यदि वे समझौते के लिए तैयार न भी हुए तो उन मे दरार तो पड ही जायेगी।"

द्रुपद राजा ने इस प्रकार अपने महा मत्री को समझा बुझ कर हस्तिनापुर भेज दिया और स्वय युद्ध की तैयारियो मे लग गया समझौते के लिए इस प्रकार दूत भेजना और इस समझौता वार्ता की आड मे युद्ध की तैयारिया करना तथा शत्रु की तयारियो को मन्द कर देने की कूट नीति ऐसी थी जिसका अनुसरण आज के युग मे भी होता है। फिर भी धर्मराज युधिष्ठिर समझौते के लिए हार्दिक रूप मे इच्छुक थे।

* तेईसवां परिच्छेद *

श्री कृष्ण अर्जुन के सारथी

शांतिचर्चा के लिए दूत भेज देने के उपरान्त पाण्डवो की ओर से युद्ध की तैयारिया जोर शोर से होने लगी। सभी मित्र राजाओ को युद्ध की तैयारिया करने का सन्देश भेजा जा चुका था, परन्तु श्री कृष्ण जैसे त्रिखण्डा नरेश की सहायता प्राप्त करने के लिए केवल सन्देश ही पर्याप्त न था। क्योकि श्री कृष्ण जितने पाण्डवो से सम्बन्धित थे, उतने ही कौरवो से। दोनों पक्ष ही उनसे सहायता माग सकते थे, अतः अर्जुन स्वय ही सहायता मागने के लिए द्वारिका पहुंचा।

दूसरी ओर दुर्योधन को पाण्डवों की तैयारी का समाचार मिल चुका था और उसे यह भी पता लग चुका था कि श्री कृष्ण उत्तरा के विवाह से निवृत होकर द्वारिका लौट आये हैं। इस लिये वह भी इस विचार से कि कहीं, पाण्डव उन से सहायता का वचन न लेले, श्री कृष्ण के द्वारिका पहुचने का समाचार सुनते ही द्वारिका की ओर चल पडा। सयोग की बात कि जिस दिन दुर्योधन द्वारिका पहुचा उसी दिन अर्जुन भी वहा पहुच गया। श्री कृष्ण के भवन मे दोनो एक साथ ही प्रविष्ट हुए। द्वारपाल ने बताया कि श्री कृष्ण उस समय विश्राम कर रहे है। दोनो ही श्री कृष्ण के निकट सम्बन्धी होने के कारण उनके शयनागार मे भी पहुच जाने का अधिकार रखते थे। इस लिए दुर्योधन तथा अर्जुन दोनो ही

शयनागार मे चले गए। आगे दुर्योधन था, पीछे अर्जुन। उस समय श्री कृष्ण सो रहे थे। दुर्योधन जाते ही उनके सिरहाने रक्खे एक ऊंचे आसन पर जा बैठा, परन्तु अर्जुन जो पीछे था, श्री कृष्ण के पैताने ही हाथ जोडे खडा रहा।

कुछ देर बाद श्री कृष्ण की निद्रा भग हुई, तो सामने खड़े अर्जुन को देखा। उठ कर उसका स्वागत किया और कुशल पूछी। बाद मे घूम कर आसन पर बैठे दुर्योधन को देखा तो उसका भी स्वागत किया कुशल समाचार पूछे। उसके बाद दोनो स उन के आने का कारण पूछा।

दुर्योधन शीघ्रता से पहले बोल उठा—"श्री कृष्ण! ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे तथा पाण्डवो के बीच जल्दी ही कोई महा युद्ध छिड ज येगा। यदि ऐसा हुआ तो मै आप से प्रार्थना करने आया हू कि आप मेरी सहायता करें।"

श्री कृष्ण बोले 'परन्तु मेरे लिए तो पाण्डव-तथा कौरव दोनो ही स्नेही हैं।"

"यह ठीक है कि पाण्डव तथा कौरव दोनो पर ही आपका समान प्रेम है- दुर्योधन ने कहा—और हम दोनो को ही आप से सहायता प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु सहायता की याचना करने पहले मै आया। पूर्वजा से यह रीति चली आई है कि जो पहले आये उसी का काम पहले हो। और आज भी सभी सद्बुद्धि प्रतिष्ठित सज्जन इसी रीति पर अमल करते हैं। और आप सज्जनो मे श्रेष्ठ है. अत वडो की चलाई रीति के अनुसार आप को पहले मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए।"

श्री कृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा।

अर्जुन बोला- "दुर्योधन जिस उद्धेश्य को लेकर यहां पधारे है, मै भी उसी उद्धेश्य से आया हू। यदि दुर्योधन ने शाति वार्ता स्वीकार न की तो युद्ध होगा, उस मे आप हमारी सहायता करें।

दुर्योधन ने कहा—"श्री कृष्ण! आप को पहले मेरी याचना

स्वीकार करनी होगी।"

यह सुन श्री कृष्ण दुर्योधन की ओर देख कर बोले—"राजन्! यह हो सकता है कि आप पहले आये हो। पर मेरी दृष्टि तो कुन्ती पुत्र अर्जुन पर ही पहले पडी। आप पहले पहुचे जरूर, पर मैंने तो पहले अर्जुन को ही देखा। वैसे मेरी दृष्टि में आप दोनो ही समान हैं। इस लिए कर्तव्य भाव से मैं आप दोनो की समान रूप मे सहायता करूंगा। पूर्वजो की चलाई प्रथा यह है कि जो आयु में छोटा हो पहले उसे ही पुरस्कार देना चाहिए। अर्जुन आप से छोटा है, इस लिए मैं सब से पहले उसी से पूछता हूं कि वह क्या चाहता है?"

और अर्जुन की ओर मुड कर वे बोले—"पार्थ! सुनो कौरव तथा पाण्डव मेरे लिए दोनो समान हैं। दोनो ही मेरे पास सहायता के लिए आये हैं। इस लिए मैंने निश्चय किया है कि दोनों की सहायता करू। एक ओर मेरे परिवार के वीर हैं, जो रण कौशल मे मुझ से किसी प्रकार कम नहीं। जो बड़े साहसी और वीर है। उनकी अपनी एक सेना भी है और सभी यादव वीरों को एकत्रित करके उनकी एक बडी सेना बनाई जा सकती है। यह सब एक ओर है और दूसरी ओर मैं स्वयं हूं। अकेला ही। और मेरी प्रतिज्ञा है कि पाण्डवो तथा कौरवो के बीच होने वाले किसी युद्ध मे शस्त्र नहीं उठाऊगा। अर्थात मे निःशस्त्र हू। अब तुम इन दोनो मे जिसे अपनी सहायता के लिए मागना चाहो, माग सकते हो। तुम मुझ निःशस्त्र को चाहते हो अथवा मेरे वंश वालो की सेना को?"

बिना किसी हिचकिचाहट के अर्जुन बोला—"आप शस्त्र उठावें या न उठावें, आप चाहे लडे अथवा न लड़े, मैं तो आप को ही चाहता हू।"

दुर्योधन के आनन्द की सीमा न रही उसने हर्षचित होकर कहा—"बस, मुझे आप अपने वंश के वीर तथा अपनी सेना दीजिए।"

श्री कृष्ण ने स्वीकृति देते हुए कहा—"अर्जुन ने मुझे मागा है, इस लिए मेरे वश के वीर तथा सेना आप की सहायता के लिए शेष रह गए। आप निश्चिन्त रहिए।"

दुर्योधन मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—"अर्जुन निरा मूर्ख निकला, वह बहुत बडा धोखा खा गया। निःशस्त्र कृष्ण को लेकर वह क्या कर सकेगा? लाखो वीरो से भरा भारी भरकम सेना सहज ही मे मेरे हाथ लग गई।

यह सोचता और पुलकित होता वह बलराम जी के पास गया। हर्षातिरेक मे झूमते दुर्योधन को देख कर बलराम ने उस के आनन्द का कारण पूछा। उस ने श्री कृष्ण के पास जाने और पाण्डवो को नि शस्त्र श्री कृष्ण तथा कौरवो को विशाल सेना मिलने की बात सुनाई। ध्यान पूर्वक सारी बात सुनने के बाद बलराम ने पूछा—"आप इस बात से बडे प्रसन्न हैं, यह खुशी की बात है। अब आप मुझ से क्या चाहते है?"

"आप तो श्री कृष्ण के वश के वीर ठहरे, और हैं मेरे पक्षपाती। आप भीमसेन की टक्कर के योद्धा हैं, आप तो हमारी ओर रहेगे ही।—"दुर्योधन ने कहा।

"मालूम होता है कि उत्तरा के विवाह के अवसर पर मैंने जो बात कही थी, उसकी सूचना आप को मिल गई। मैने तो कई बार कृष्ण से कहा कि पाण्डव तथा कौरव दोनों हमारे बराबर के सम्बन्धी हैं, मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में भी बहुत कुछ कहा। पर कृष्ण तो मेरी सुनता ही नही। अच्छा होता कि आप लोग आपस मे मिल कर रहते। पर आप लोग लडेगे ही, यह दुख की बात है। हां, मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इस युद्ध मे तटस्थ रहूगा। क्यों कि जिधर कृष्ण न हो उधर मेरा रहना ठीक नही और मैं सम्पत्ति के लिए व्यर्थ का रक्त पात ठीक नही समझता। मैं जुए को भी धर्म के प्रतिकूल समझता हू और एक ही वश के दो पक्षो का रण क्षेत्र मे उतरना भी अच्छा नहीं समझता। इस कारण मैं तुम्हारी सहायता नही कर सकता। मेरा तटस्थ रहना ही उचित है

—"बलराम ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा।"

दुर्योधन बोला—"आप तटस्थ रहने की बात कह कर मुझे निराश कर रहे है, जब कि आप किसी को निराश नही किया करते।"

"दुर्योधन तुम निराश क्यो होते हो। तुम तो उस वश के हो जिसे राजा लोग पूजते है। साहस से काम लो, तुम्हे कमी किस बात की है। तुम्हारे पास इतनी विशाल सेना है। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और भीष्म पितामह जैसे रण कुशल वीर है। जाओ क्षत्रियोचित रीति से युद्ध करो।—"बलराम बोले।

"किन्तु आप मेरी सहायता न करे यह दुख की बात है।"

मेरी सहायता तो शाति वार्ता मे ही मिल सकती है। मेरे विचार से युद्ध से कोई समस्या हल नही होती। और यदि मुझे युद्ध मे जाना ही पडे तो मैं कृष्ण के विरोध मे नही जा सकता।

बलराम का उत्तर सुन कर दुर्योधन मौन रह गया। बलराम ने फिर उसे प्रोत्साहित किया।

हस्तिना पुर को लौटते समय दुर्योधन का दिल बल्लियो उछल रहा था। वह सोच रहा था अर्जुन खूब बुद्धू बना। नि.शस्त्र श्री कृष्ण को माग बैठा। कितना सौभाग्य शाली हू मैं। द्वारिका की विशाल सेना अब मेरी है और बलराम जी का स्नेह मुझ पर ही है। फिर किस बात की कमी है। बेचारे निःशस्त्र श्री कृष्ण मेरे विरुद्ध क्या काम आयेगे ? इसी प्रकार अपने मन मे लड्डू फोड़ता हुआ वह अपनी राजधानी जा पहुचा।

× × × ×

दूसरी ओर—

दुर्योधन के चले जाने के उपरान्त श्री कृष्ण ने पूछा—"सखे अर्जुन ! एक बात बताओ। तुम ने मेरी इतनी विशाल सेना की अपेक्षा मुझ नि शस्त्र को क्यो पसन्द किया ?"

अर्जुन बोला—'भगवन्! मैं भी आप ही की भांति यश प्राप्त करना चाहता हूं। आप त्रिखण्ड के स्वामी बने, क्योंकि आप मे इतनी शक्ति है कि इन तमाम राजाओ को युद्ध में परास्त कर सकते हैं। आप ने अपने बल से जरासिन्ध जैसे त्रिखण्ड पति को कुचल डाला। इधर मुझ मे भी इतनी शक्ति है कि अकेला ही इन सभी को हरादूं। मेरी चिरकाल से यह इच्छा थी कि आप को सारथी बना कर अपने शौर्य से इन सभी राजाओ पर विजय प्राप्त करू। आज मेरी वह इच्छा पूर्ण हो रही है। अब मैं आप को साथ लेकर आपके समान यश प्राप्त कर सकूगा।''

श्री कृष्ण के अधरों पर मुस्कान उभर आई। बोले—"अच्छा, तो यह बात है, मुझ से ही होड़ करने के लिए, मुझे ही मांगा? खैर यह तुम्हारे सद्भाव के अनुकूल ही है।"

इस के पश्चात कुछ और बाते हुई और अन्त मे श्री कृष्ण ने अर्जुन को बड़े ही प्रेम से विदा किया।

चौबीसवाँ परिच्छेद

मामा विपक्ष में

इस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया और पार्थ-सारथी की पदवी पाई।

मद्र देश के राजा शल्य नकुल तथा सहदेव की मा माद्री के भाई थे। उन्हें एक सन्देश वाहक के द्वारा समाचार मिला कि उन के भानजे पाण्डव उपलव्य नगर (विराट की राजधानी के निकट) मे अपना खोया राज्य वापिस लेने के लिए युद्ध की तैयारिया कर रहे हैं तो उन्होने एक बडी भारी सेना एकत्रित की और उसे लेकर पाण्डवो की सहायता के लिए उस नगर की ओर चल पडे, जहाँ पाण्डव युद्ध की तैयारिया कर रहे थे।

कहा जाता है कि शल्य की सेना इतनी वडी थी कि रास्ते मे चलते हुए वे जहा कही भी पडाव डालते, उनकी सेना का पडाव एक योजन से कुछ अधिक (लगभग ½ मील) तक लम्बा फैल जाता। इतनी विशाल सेना के यात्रा करने का समाचार दूर दूर तक फैल गया।

यह बात दुर्योधन तक भी पहुँची। वह सोचने लगा. इतनी विशाल सेना का पाण्डवों के पक्ष मे चला जाना संकट का कारण बन सकता है। इस लिए किसी प्रकार शल्य को अपनी ओर मिला

लेना चाहिए। अपने मित्रो से विचार विमर्श करने के उपरान्त उस ने अपने कुशल कर्मचारियो को आदेश दिया कि जहा कही भी शल्य की सेना डेरे डाले, वही पहुच कर उसे समस्त प्रकार की सुविधाए पहुचाई जाये। किसी प्रकार का कष्ट सेना तथा राजा शल्य को न होने पाये। साथ ही रास्ते मे जहा तहा विशाल मण्डप बनवाये गए। सारा रास्ता, जिस से सेना को गुजरना था, बहुत ही आकर्षक ढग पर सजवा दिया गया। जहाँ भी पडाव पडता राजा शल्य और उसकी सेना का बहुत ही सुन्दर ढग से सत्कार किया जाने लगा। राज्य के समस्त साधन शल्य तथा उनकी सेना को प्रसन्न करने मे लगा दिए गए। खाने पीने की वस्तुओ का सुन्दर प्रवन्ध कर दिया गया। प्रत्येक पडाव पर उनकी सेना तथा उन के मन बहलाव के लिए भी अच्छे कलाकारो को नियुक्त किया जाता। रहने, खाने पीने और मनोरजन का इतना सुन्दर प्रवन्ध देख कर राजा शल्य मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। और जब इस सुप्रवन्ध को उन्होने प्रत्येक पडाव पर पाया तो वे चकित रह गए। इतनी विशाल सेना के लिए इतना सुप्रवन्ध किया जाना वास्तव मे बहुत कठिन था मद्रराज ने सोचा कि उनके भानजे युधिष्ठिर ने इस दशा मे होते हुए भी इतना शानदार स्वागत करके दिखाया है कि वह उनका कितना आदर करता है।

एक वार एक पडाव पर उन्होने आदर सत्कार मे लगे कर्मचारियो को बुला कर कहा—"हमारी सेना और हमारी इतनी खातिर दारी करने वाले लोगो को हम जितनी भी प्रशसा करे कम ही है। इस अभूत पूर्व सत्कार तथा अतिथ्य के लिए हम प्रवन्धको के हृदय से आभारी हैं। हम इस सत्कार के प्रवन्धको को अपनी ओर से उनकी कार्य कुशलता, निपुणता तथा परिश्रम के लिए पुरस्कृत करना चाहते हैं, आप लोग कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर से हमारी ओर से कहे कि वे इस के लिए बुरा न माने और हमे अपनी सम्मति दे दे।"

कर्मचारी चाहते थे कि वे उसी समय मद्रराज का भ्रम निवारण हेतु बता दें कि उनका सत्कार दुर्योधन की ओर से किया जा रहा है, पर वे उस समय चुप रहे क्यो कि उन्हे ऐसी कोई आज्ञा दुर्योधन

की ओर से नही मिली थी । अत उस समय वे चुप रहे और यह बात दुर्योधन से जा कही दुर्योधन गुप्त रूप से मद्र राज की सेवा के साथ साथ चल रहा था, ताकि उचित अवसर पाकर वह मद्र राज से अपनी सहायता का वचन ले सके । जब दुर्योधन ने उक्त बात सुनी तो उसकी बाछे खिल गई । समाचार देने वालो को उसने अच्छा पुरस्कार दिया ।

× × × × × × × ×

महाराज को उसके निजि मन्त्री ने आकर बताया—"महाराज हस्तिनापुर नरेश दुर्योधन आपके दर्शन करना चाहते है ।"

दुर्योधन के अनायास ही आ टपकने का समाचार सुनकर शल्य को बहुत आश्चर्य हुआ । फिर भी उन्हो ने तुरन्त आदेश दिया - "उन्हे ससम्मान ले आओ ।" ज्यों ही दुर्योधन को उन्हो ने अपने सामने देखा उन्हो ने पारिवारिक सम्बन्धी होने के कारण उससे स्नेह प्रदर्शित करते हुए बैठाया । बोले—"दुर्योधन ! अनायास ही तुम कैसे आ धमके ?"

"मुझे ज्ञात हुआ कि आप अपने सत्कार के प्रबन्ध से बहुत प्रसन्न हुए हैं ! इसे अपना सौभाग्य समझकर आप की प्रसन्नता के लिए अपना आभार प्रकट करने के लिए ही मैं चला आया । बात यह है कि आप के सेना सहित उपालव्य नगर की ओर जाने का समाचार मुझे अनायास ही मिला । बस जल्दी मे जो कुछ हो सका किया । अहो भाग्य कि आप उस से सन्तुष्ट है । सुना है आप सत्कार के प्रबन्धको को पुरस्कृत करना चाहते हैं, यह हमारे लिए बहुत ही प्रसन्नता की बात है फिर भी आपकी प्रसन्नता ही हमारे लिए पर्याप्त है, इस सत्कार का इस से बडा और पुरस्कार क्या हो सकता है कि आप ने प्रशंसा कर दी ।—"दुर्योधन ने अपनी बातो द्वारा अपने कार्य को जिस पर अभी रहस्य का आवरण पडा था, निरावरण कर दिया ।

दुर्योधन की बात सुन कर शल्य आश्चर्य चकित रह गए जिस के विरुद्ध लड़ने के लिए वे पाण्डवो के पास इतनी विशा

सेना लेकर जा रहे हैं। दुर्योधन ने यह जान कर भी इतना सुन्दर सत्कार किया, यह कितना वडा एहसान कर दिया. दुर्योधन ने यह जान कर वे वड असमजस मे पड । वे सोचने लगे कि यह जानते हुए भी कि उक्त सारी सेना उसी के विरुद्ध काम आयेगी यह सेना उसके नाश का कारण भी वन सकती है इस सेना के वल पर उस मे राज गद्दिया छीनी जा सकती है दुर्योधन ने इतना शानदार स्वागत सत्कार किया इतनी उदारता का होना सचमुच एक वडी बात है। सोचते सोचते अनायास ही उन के हृदय मे दुर्योधन के प्रति आदर तथा स्नेह की भावना जागृत हो गई

प्रसन्न होकर बोले—"राजन! तुमने जो कुछ किया उस के भार से मैं दबा सा जाता हू। तुम्हारा यह ऋण मैं कैसे चुकाऊ?

दुर्योधन बोला—"महाराज! यह एहसान की तो कोई वात नही यह तो मेरा कर्तव्य था। आप जैसे युधिष्ठर के लिए वैसे मेरे लिए। मैंने तो कुल रीति अनुसार आप को मामा समझ कर ही यह सत्कार किया।

'फिर भी तुम्हे यह तो ज्ञात ही होगा कि हम अपनी सेना सहित पाण्डवो की सहायता के लिए जा रहे है। मद्र राज बोले।"

"आप मेरे विरोध मे भी जाते हो फिर भी आप का सत्कार करना तो मेरा कर्तव्य है ही।" दुर्योधन ने अपने मन की वात छिपाते हुए कहा।

"जो भी हो हम तुम्हारे, इस भार से कैसे मुक्त हो सकते हैं, यही मेरे सामने प्रश्न है।"

"आप वास्तव मे मुझ से इतने ही प्रसन्न है तो कृपया आप अपनी सेना सहित मेरी सहायता करे।" —दुर्योधन ने उपयुक्त अवसर समझ कर मन की वात कही।

"वडी जटिल समस्या आ गई। विचारो मे डूबे मद्रराज

बोले ।

दुर्योधन ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—"आप युद्ध आरम्भ होने पर मेरी ओर से अपनी सेना सहित लडे, मैं बस यही प्रत्युपकार चाहता हूं ।

सुन कर मद्र राज सन्न रह गए ।

शल्य को असमजस मे पडे देख कर दुर्योधन बोला—"आप के लिए जैसे पाण्डव वैसे ही कौरव । आप से हम दोनो का बराबर ही नाता है इसी लिए मैने आप से प्रार्थना की है । यदि आप हम दोनो को सम्मान दृष्टि से देखते हैं और केवल कौरवो को इस लिए नही ठुकराते कि हम माद्री की सन्तान नही हैं, तो आप को हमारी ओर से लड़ने मे क्या आपत्ति है ?

दुर्योधन के उपकार से मद्रराज अपने को कुछ दबा सा अनुभव कर रहे थे, उन्होने विवश होकर कहा—"तुम ने अपनी उदारता से मुझे जीत लिया है । अच्छा ऐसा ही होगा ।"

शल्य ने दुर्योधन द्वारा किए गए आदर सत्कार का बोझ तले अपने को दबे हुए अनुभव करके ऐसा कहने को कह तो दिया, पर उनका मन अशात हो गया । उन पर दुर्योधन की उस चाल का कुछ इतना गहरा प्रभाव पडा कि वे अपने पुत्रो के समान प्यार करने योग्य भानजो— पाण्डवो — की सहायता करने जाते समय अपना निश्चय बदल कर दुर्योधन की सहायता का वचन दे दिया । पर कुछ देर तक वे मन ही मन ग्लानि अनुभव करते रहे । कई बार उन्हे अपने पर लज्जा आई । परन्तु वे अपने दिए वचन से लौट भी तो नही सकते थे ।

फिर वह सोचने लगे कि अब वह आगे जाये या पीछे लौटें । मन में एक विचार उठा -"कैसे जायेंगे पुत्रवत पाण्डवो के सामने ? किस मुह से कहेगे कि उन्होने आदर सत्कार के मूल्य पर अपने निर्णय तथा पाण्डवो के प्रति प्रेम को बेच डाला ? कैसे बतायें उन्हें कि दुर्योधन के द्वारा किए आदर के बदले में उन्होने अपने

पाण्डवो के प्रति प्रेम को तिलाजलि देकर पक्ष परिवर्तन कर लिया ?"

फिर एक विचार मन मे उठा—"दुर्योधन को वचन तो दे ही दिया परन्तु युधिष्ठिर मे बिना मिले लौट जाना इस से भी अधिक भयकर भूल होगी।"

"राजन! मै तुम्हें वचन तो दे चुका, और उसे निभाऊगा भी, परन्तु जाने से पहले युधिष्ठिर से भी मिल लेना आवश्यक समझता हू। अतः अभी मुझे विदा दो।"

दुर्योधन जानता था कि शल्य जैसे क्षत्रिय राजाओ का वचन झूठा नही हो सकता, इस लिए उसने उन की बात स्वीकार करते हुए कहा—"आप चाहते हैं तो अवश्य ही मिलिए। परन्तु ऐसा न हो कि प्रिय भानजो को देख कर वचन ही भूल जाये।"

दुर्योधन की इस बात से शल्य तिलमिला उठे। उन्हे क्रोध आया, पर अपने आवेश को रोकते हुए कहा "नही, भाई यह शल्य का वचन है। जो कह चुका वह असत्य सिद्ध नही होगा। तुम निश्चिन्त होकर अपने नगर लौट जाओ।"

दुर्योधन ने इस के बाद उनसे विदा ली और शल्य उपप्लव्य की ओर प्रस्थान कर गए।

× × × × × × ×

उपप्लव्य नगर बहुत ही आकर्षक ढग पर सजा था। द्वार पर शहनाइया बज रही थी। स्त्रिया गीत गा रही थी चारो ओर भिन्न भिन्न भाति की सुगन्ध बिखेरी जा रही थी और पाण्डवो की सेना, कर्मचारी, मित्र, सहयोगी, बन्धु बान्धव सभी शल्य के स्वागत मे खडे थे। ज्यो ही शल्य की सवारी नगर के द्वार पर पहुची अस्त्र शस्त्रो मे रग बरगी। पुष्प मालाए आकाश की ओर फेंकी गई जो वापस मद्र राज के ऊपर आकर गिरी। गानो तथा नफीरी की मधुर स्वर लहरी गूज उठी बाजों के द्वारा स्वागत गान गाया गया सेना ने

सलामी दी। पाण्डवो ने चरण रज ली मद्रराज ने सभी पाण्डवो को प्रेम पूर्वक छाती से लगा लिया। हर्षातिरेक और स्नेह के कारण मद्रराज की पलकें भीग गईं मामा को सामने देख कर नकुल और सहदेव के आनन्द की तो सीमा ही नही रही।

जब मद्रराज विश्राम कर के पाण्डवो से मिले तो सर्व प्रथम उन्होने पूछा—"युधिष्ठिर ! १३ वर्ष कैसे बीते ?" इस के उत्तर मे पाण्डवों ने १३ वर्ष तक उठाई विपताओ का वृतांत कह सुनाया। सुन कर मद्रराज बोले---"मनुष्य को अपने ही कर्मो का फल कैसा कैसा भयकर भोगना पड़ता है यह तुम लोगों की बातो से ज्ञात हुआ। शास्त्रों की शिक्षाओ के प्रतिकूल कार्य करके, जुआ खेल कर, तुम लोगो को जो फल भोगना पडा, आशा है भावी सन्ताने इस से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी।"

इन बातो के पश्चात भावी युद्ध की बातें चलीं। तब महाराज ने द्रवित होते हुए कहा—"धर्मराज ! मैं तुम्हे यह दुखद समाचार किस मुंह से सुनाऊ। कि मैं कौरवो के पक्ष मे रहने का वचन दुर्योधन को दे चुका हू।"

यह बात सुनते ही पाण्डवों के हृदय पर वज्रपात सा हुआ वे मग्न रह गए। बोले कुछ नहीं एक बार सब के चेहरो पर छाई गम्भीरता को देख कर शल्य स्वय दुखित हुए और वह सारी आप बीती सुनाई जो यात्रा मे गुजरी थी।

मद्रराज की बात सुन कर महाराज युधिष्ठिर मन ही मन सोचने लगे "जो हुआ, वह हमारी ही भूल के कारण। हा शोक दुर्योधन इस बात से भी हम से बाजी मार गया।

अपने निकट के रिश्तेदार समझ कर इनकी ओर से हम लापरवाह रहे और इनकी कोई खबर न ली, इसी का यह परिणाम है।"

महाराज युधिष्ठिर को इस बात से बहुत बडा धक्का लगा था, परन्तु उन्होने अपने मन की व्यथा को प्रकट नही किया। अपन

मन की भावनाओं को दबा कर बोले—"मामा जी ! आपने दुर्योधन के स्वागत सत्कार के कारण उसे जो वचन दिया है आप उसे पूर्ण करें। परन्तु मै बस इतनी ही बात आप से पूछना चाहता हूं कि आप रण कौशल में बहुत निपुण है, अवसर आने पर कर्ण आप को अपना सारथी बना कर अर्जुन का बध करने का प्रयत्न करेगा मैं यह जानना चाहता हू कि उस समय आप अर्जुन की मृत्यु का कारण बनेगे या अर्जुन की रक्षा का प्रयत्न करेगे ? मैं यह प्रश्न उठा कर आप को असमंजस मे नहीं डालना चाहता था, पर पूछने को मन कर आया तो पूछा लिया।"

मद्रराज बोले— "बेटा युधिष्ठिर ! मैं धोखे में आकर दुर्योधन को वचन दे बैठा, इस लिए युद्ध तो उनकी ओर से ही करूगा। पर एक बात बताए देता हू कि यदि कर्ण अर्जुन का बध करने की इच्छा से मुझे अपना सारथी बनायेगा तो मेरे कारण उस का तेज नष्ट हो जायेगा और अर्जुन के प्राणो की रक्षा हो जायेगी। चिन्ता न करो जुए के खेल मे फँसकर तुम्हे और द्रौपदी को जो कष्ट झेलने पड़े अब उनका अन्त आ गया समझो। तुम्हारा कल्याण होगा। इस समय की भूल के लिए मुझे क्षमा करना।

* पचीसवाँ परिच्छेद *

सन्धि वार्ता

पाचाल नरेश के महामत्री जब हस्तिनापुर पहुचे तो एक राजदूत की भाति उनका आदर सत्कार किया गया वे वहा जाकर अतिथि हो गए और ऐसे अवसर की खोज मे रहे जब कि दरबार मे भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण विदुर कृप, आदि आदि सभी वयोवृद्ध विद्वान, राजनितिज्ञ तथा प्रभावशाली व्यक्ति उपस्थित हो ' एक दिन जब उन्हे पता चला कि कौरव वश के सभी प्रमुख व्यक्ति सभा मे उपस्थित हैं, और हस्तिनापुर के राज्य के समस्त सहयोगी तथा सरक्षक दरबार मे बिराजमान हैं तो वे वहां पहुचे। यथा विधि सभी को प्रणाम करके तथा कुशल समाचार कहने तथा पूछने के उपरान्त उन्होने पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा —

"अनादि काल से जो धर्म तत्व, रीति तथा नीति प्रचलित है, उससे आप सभी परिचित हैं । आप लोगो के धर्म सम्बन्धी ज्ञान के विद्वान, नीति सम्बन्धी धुरन्धर और विश्व के सुलझे हुए गुरुजन विद्यमान हैं । आप न्याय के रक्षक है और रीति रिवाजो के मानने वाले है । राजकुल की यह रीति रही है कि पिता की सम्पत्ति पर पुत्रो का समान अधिकार होता है । यह राज्य सिंहासन जिस पर आज महाराज दुर्योधन विद्यमान है, कभी इसे पाण्डु नरेश सुशोभित करते थे। उन्होने अपने बाहुबल तथा पराक्रम से हस्तिनापुर राज्य का

दूर दूर तक विकास किया और भारत खण्ड मे इस खण्ड की इतनी सीमाएं बढाई कि इस क्षेत्र मे सभी इस राज्य से प्रभावित हुए। किसी की भी शक्ति नही हुई कि इस राज्य को चुनौती दे सके। उन के पच महाव्रती मुनि बाणा स्वीकार करने के उपरान्त पाण्डवो का अधिकार था, और पाण्डवो मे भी ज्येष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर का कि वे इस राज की बागडोर को सम्भाले परन्तु पाण्डव उस समय बाल्यवस्था मे थे और विवश होकर पाण्डु नरेश को राज्य सिहासन धृतराष्ट्र को सौपना पडा। लेकिन बिल्कुल इसी प्रकार सिहासन सौपा गया, जैसे पाण्डवो का हाथ उन्होने धृतराष्ट्र के हाथ मे दे दिया था। एक अमानत थी जो धृतराष्ट्र को सौंपी गई। जब उस अमानत के वास्तविक अधिकारी व्यस्क हुए तो धृतराष्ट्र को चाहिए था कि वे उस सिंहासन को उन्हें सौंप देते, जिन कि वह सम्पत्ति थी। परन्तु ऐसा नही हुआ,कौरव पाण्डवो के अधिकार की चुनौती देने लगे और बुद्धिमान धृतराष्ट्र ने पूज्य भीष्म पितामह और महान आत्मा विदुर की सलाह से हस्तिनापुर राज्य को दो भागो मे विभाजित कर के एक भाग्य दुर्योधन को और दूसरा पाण्डवो दे दिया पाण्डवो के दिल पर तनिक भी मैल नही आया। उन्होने उजडे हुए खाण्डव प्रस्थ का जीर्णोद्धार किया। किन्तु वे अभी अपने राज्य के कारोबार को सम्भाल ही पाये थे कि उन पर दूसरी आपत्ति आ पडी और हस्तिनापुर के पराक्रमी नरेश पाण्डु की सन्ताने वनकी खाक छानने के लिए भेज दी गई। इस शर्त पर कि १२ वर्ष के बनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के उपरान्त वे अपनी खोई हुई सम्पत्ति को वापिस लेने के अधिकारी होगे। उन्होने इसी विश्वास पर कि उक्तशर्त समस्त सुलझे हुए तथा माने हुए वयोवद्ध तथा नीतिवान लोगों के सामने रखी गई है, जो पूर्ण होगी. वह राजा दुर्योधन का एक वचन . वह था एक क्षत्रिय राजा का वचन। क्षत्रिय वीरो ने क्षत्रिय राजा के वचन पर विश्वास किया और ज्यो त्यो विभिन्न कष्ट उठा कर उन्होंने १३ वर्ष व्यतीत कर लिए। फिर वह अधिकारी हो गए कि शर्त व वचन के अनुसार अपना राज्य वापिस ले ले लेकिन ऐसा लगता है कि नीतिज्ञो तथा शास्त्रज्ञो के समक्ष दिया गया वचन पूर्ण नही होगा। यदि ऐसा है तो यह कहा का न्याय है कि धृतराष्ट्र की सन्ताने तो सम्पूर्ण राज की अधिकारी बने और पाण्डु नरेश की

सन्तान दर दर को ठोकरे खाती फिरे। क्षत्रिय राजाओ का वचन यदि इस प्रकार तोडा गया तो यह कौरव वश पर ही नही वरन समस्त वीरो के लिए कलक की बात होगी । यदि कौरव राज के दरबार मे विराजमान धर्मात्माओ के रहते यह अन्याय हुआ तो इस कलक की उत्तर दायित्व उन पर भी होगा । पाण्डव सम्पूर्ण राज्य नही चाहते वे चाहते है वही आधा भाग जो स्वय धृतराष्ट्र ने दिया था। यदि उन्होने जुआ खेलने की भूल की थी तो उस भूल का इतना कठोर दण्ड कि १२ वर्ष तक राज्य विहीन होकर मारे मारे फिरे, एक वर्ष तक नौकर चाकर होकर उन्होने विराट नरेश की सेवा की, बहुत ही काफी, है बल्कि अधिक है । इस समय कौरव कुल की प्रतिष्ठा का सवाल है। समस्त क्षत्रिय वीरो की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। पाण्डव राज्य पाने केलिए युद्ध नही चाहते क्योकि युद्ध मे जो भयकर रक्तपात होगा उसका मूल्य पाण्डु नरेश के राज्य के आधे भाग्य के मूल्य से सहस्त्र गुना अधिक होगा । महाराज युधिष्ठिर नही चाहते कि एक ही कुल की सन्ताने आपस मे शत्रु बन कर रण क्षेत्र मे उतरे । वे इस बात के विरुद्ध है कि भाइयो के परस्पर विवाद के लिए भरतखण्ड के करोडो योद्धा एक दूसरे के रक्त के प्यासे बन कर हिंसक पशुओ की भाँति एक दूसरे पर झपटें । यदि युद्ध हुआ तो इतना भयकर होगा कि इस महायुद्धमे पता नही कितने अनगिनत वीर काम आये । कितनी माताओ की गोद खाली हो और कितनी बहनो के सुहाग युद्ध की ज्वाला मे भस्म हो जायें, कितने लाख बालक अनाथ बन जाये । इतने भयकर महायुद्ध को टालना अब आप के हाथ मे है । महाराज युधिष्ठिर की हार्दिक कामना है कि इस विवाद को शाति वार्ता के द्वारा सुलझा लिया जाये । इस लिए न्याय तथा वचन के अनुसार उन का राज्य उन्हें लौटा दिया जाये । मैं यही सन्देश लेकर आया हूं कि महायुद्ध को टालने के लिए आप अपनी ओर से उनकी माँग स्वीकार करने मे विलम्ब करे। यदि समझौते के द्वारा उन्हे उन का भाग लौटा दिया गया तो फिर इस कुल की सन्तानो मे परस्पर सहयोग तथा स्नेह की धारा चल निकलेगी ।"

इतना कह कर दूत ने समस्त उपस्थित नीतिज्ञों की ओर दृष्टि उठाई। सभी के चेहरो पर आते उतार चढ़ाव को परखने के उपरान्त

द्रुपद राज के महामंत्री ने अन्त मे भीष्म पितामह के मुख पर नजरें गडा दी। भीष्म पितामह उनकी प्रश्न वाचक दृष्टि के उत्तर मे बोले —

"आप के द्वारा यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि पाण्डव सकुशल हैं, वे आज शक्ति सम्पन्न हैं. कितने ही पराक्रमी राजा उन की सहायता को तत्पर है कितनी ही विशाल सेनाए उनकी ओर से से युद्ध मे उतरने के लिए तैयार हो रही है इतनी शक्ति बटोर लेने उपरान्त भी पाण्डव युद्ध नही चाहते, वे समझौते के उत्सुक हैं, इस बात को जान कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। और इस बात को दृष्टि मे रखते हुए मुझे यही न्यायोचित जँचता है कि उन्हे उनका राज्य वापिस दे दिया जाय तथा परस्पर मैत्री भाव की नीव डाली जाय। यही कल्याणकारी मार्ग है। मै समझता हू कि अन्य लोग भी ...

अभी भीष्म पितामह की बात पूरा नही हो पाई थी कि कर्ण बीच मे बोल उठा उसे भीष्म पितामह की बात बडी अप्रिय लगी। बडे क्रोध के साथ वह बोला— विद्वान सज्जन ! आप ने जो बात कही, उस मे कोई नई बात नही है कोई नया तर्क आप ने प्रस्तुत नही किया प्रत्युत वही राम कहानी बाच रहे है जो पहले भी पाण्डवों की ओर से कही गई और आज कल कही ही जा रही है। युधिष्ठिर दुर्योधन को यह धौंस देकर अपना राज्य वापिस लेना चाहते है कि उन की ओर मत्स्य राज तथा पाचालराज की बडी भारी सेनाए है परन्तु उन्हे याद रखना चाहिए कि किसी प्रकार की धौंस के द्वारा वे अपना राज्य वापिस नही ले सकते उन्होने अपना राज्य जुए मे हारा था। हारी हुई वस्तु को वापिस मांगने का आज तक किसी को अधिकार नही हुआ और न किसी ने ऐसा साहस ही किया। वे एक ओर शर्त शर्त गाते हैं और दूसरी ओर अपना अधिकार जमाते हैं। दोनों साथ साथ नही चल सकती। जहा तक शर्त का प्रश्न है, तेहरवें वर्ष के समाप्त होने से पूर्व ही अर्जुन पहचान लिया गया, इस लिए शर्त के अनुसार उन्हे पुन: १२ वर्ष के वनवास और १ वर्ष के अज्ञात के वास के लिए जाना चाहिए। उसके उपरान्त शर्त की बात उठायें

और जहा तक अधिकार की बात है स्पष्ट है कि हारी हुई सम्पत्ति पर उन्हे कोई अधिकार नही है । आप उन्हे बता दीजिए कि कौरव किसी धौंस मे नही आने वाले ।"

कर्ण के इस प्रकार बात काट कर बीच ही मे बोल उठने से भीष्म को बडा क्रोध आया । वे बोले— "राधा पुत्र ! तुम व्यर्थ की बातें करते हो । यदि हम युधिष्ठिर के दूत के कहे अनुसार सन्धि न करें तो महायुद्ध छिड जायेगा और मैं जानता हू कि महायुद्ध हुआ तो उस मे दुर्योधन आदि सब को पराजित हो कर मृत्यु का ग्रास बनना होगा। इस लिए भावावेश मे ऐसी आग मत भडकाओ जो कौरवो को जला कर भस्म कर डाले । तुम यदि कौरव राज के हित चिन्तक हो तो डींगें हाकनी छोड कर समय की आवश्यकता और वास्तविकता को परखो। याद रखो कि युद्ध कभी भी लाभ दायक नही होता । मत्स्य राज्य पर आक्रमण की घटना याद करो और अपने को बुद्धिमान सिद्ध करो ।

भीष्म पितामह की बात कर्ण को बडी कडवी लगी । वह कुछ बड बडाने लगा । दुर्योधन भी पेंचोताव खाने लगा । द्रोणाचार्य भी कुछ कहने लगे । इस प्रकार सभा मे खलबली मच गई । यह देख कर धृतराष्ट्र बोले—

"पांचाल राज्य के महामन्त्री ! मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता है कि मेरे प्रिय भतीजे सकुशल हैं और कौरवो से सन्धि के इच्छुक हैं । ठीक है हमे शांति भग नही होने देनी चाहिए । मैं स्वय भी युद्ध के विरुद्ध हू । आप के द्वारा प्राप्त सन्देश का उत्तर मैं अपने समस्त बुद्धिमान परामर्श दाताओ के साथ मन्त्रणा करने के उपरान्त सजय द्वारा भेज दू गा । आप युधिष्ठिर से जा कर कहे कि शीघ्र ही हमारा राजदूत उन की सेवा मे उपस्थित हो कर सारी बातें करेगा । आप अनुभव हीन युवकों की बात पर न जायें । कौरव वंश के वृद्ध बुद्धिमान लोग अपनी ओर से युद्ध रोकने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे ।"

इसी बीच दुर्योधन बोल पडा— 'विद्वद्वर ! आप जाकर यह

अवश्य कह दे कि घमण्ड मे आकर मेरे पौरुष को न ललकारे। उन्हे मुझ से अपने जीवन यापन हेतू कुछ याचना ही करनी है तो याचको की भाति आय परन्तु राज्य पर उन का कोई अधिकार नही। हम किसी की धौंस सहन करने वाले नही है। रण भूमि मे उतरेंगे तो हम उन्हे दिखा देंगे कि दुर्योधन की टक्कर लेना तुम जैसे लोगो के वस की वात नहीं है। दूसरो की सहायता पर राज्य जीतने का स्वप्न देखना छोड दें।"

द्रोणा वोले—'दुर्योधन! अपने वृद्धजनो के विचार का खुले दरबार में विरोध करते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। युद्ध की चुनौती दे कर नाश को निमन्त्रित करना बुद्धि मानी नही है।"

कर्ण फिर भावावेश मे बोला—"हम अभी बूढे नही हुए। हमारा रक्त अभी तक जवान है। हम अपनी मर्यादा पर आंच आने देना नही चाहते। राज्य की भीख धौंस देकर मांगनेवालो को हम मुह तोड जवाव देंगे।"

वात पुन. विगडती देख विदुर जी वोले- "शाति पूर्वक जो विवाद हल हो जाता है वह झगडे से नही। यद्ध किसी भी समस्या का मानवीय हल नही होता। हम सव जिस धर्म के अनुयायी है, अहिंसा तथा शाति उसकी आधार शिलाए है। इस लिए हमे जो कुछ करना है वह ठण्डे दिमाग से सोच समझ कर। पाण्डवो के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं और मैं समझता हू धृतराष्ट्र का उत्तर इस सम्वन्ध मे न्यायोचित तथा उपयुक्त ही है।"

धृतराष्ट्र को सहारा मिला और उन्होने पुनः अपनी वात दोहराई और राजदूत को विदा कर दिया गया।

धृतराष्ट्र ने विदुर तथा भीष्म जी को वुला कर मत्रणा की। उन दोनो ने ही पाण्डवो की प्रशसा और दुर्योधन व कर्ण की नीति की निन्दा की और अपनी ओर मे सजय को समझौता वार्ता चलाने के लिए भेजने का समर्थन किया। तव धृतराष्ट्र ने सजय को वुलाया और वोले—

"संजय! वस्तुस्थिति क्या है तुम भलि भाति जानते हो।

और तुम्हे यह भी ज्ञात है कि पाण्डव बड़े पराक्रमी हैं अपने पिता के समान ही वे प्रतापी है। उन्होने अपने बाहुबल से राज्य का जो विस्तार किया, वह भी मुझे ही सौप दिया था। मैंने उन मे दोष ढूढने का प्रयत्न किया परन्तु कोई दोष न मिला। युधिष्ठिर तो धर्मराज है। उसकी बुद्धिमत्ता, न्यायप्रियता तथा धार्मिकता के आगे तो मेरा सिर भी झुक जाता है। युधिष्ठिर ने दुर्योधन की सारी कुटिलताओ को क्षमा किया। बाल्यकाल से दुर्योधन ने उन्हे मिटाने के षड़यत्र रचे, फिर भी पाण्डव मुझे पाण्डु के स्थान पर मानते रहे। अब उन्होने दुर्योधन की शर्त पूर्ण कर दी और वे अपने खोए राज्य को पुन प्राप्त करने के अधिकारी हो गए। परन्तु दुर्योधन और कर्ण जीते जी उनके राज्य को लौटाना नही चाहते जब कि पाण्डवो के साथ एक बडी शक्ति है। श्री कृष्ण जैसा प्रकाण्ड विद्वान राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ तथा योद्धा सहायक है। राजा विराट उनका भक्त हैं। पाचाल नरेश और उसकी समस्त शक्ति, सात्यकि व उसकी समस्त विशाल सेना, कितनी विशाल शक्ति है पाण्डवो की ओर। जब कि स्वय पाण्डव ही एक महान शक्ति है। अर्जुन अकेला ही दिग्विजय कर सकता है। उस अकेले ने ही मत्स्य राज्य पर कौरवो के आक्रमण के समय समस्त कौरव वीरो को मारभगाया था। जो कर्ण आज बढ बढकर बातें करता है वह स्वय अर्जुन के हाथों मुह की खा चुका है। भीम मे तो असीम बल है उसकी टक्कर का अब पृथ्वी पर एक ही वीर है, वह है बलराम। नकुल सहदेव आदि भी सुलझे हुए योद्धा हैं। और युधिष्ठिर तो अपने पुण्य शुभ प्रकृति तथा शुद्ध विचारो के कारण इतनी महान शक्ति है कि वे चाहे तो सारे कौरवो को भस्म कर डाले। मुझे युधिष्ठिर से भय लगता है। ऐसी दशा मे कोई भी युद्ध का छिड़ना हमारे नाश का ही कारण बन सकता है अत तुम महाराज युधिष्ठिर के पास जाओ और उन के सहयोगियो मे भी मिलो और जिस प्रकार भी हो सन्धि की वार्ता चलाओ। प्रयत्न करना कि वे इधर से कुछ मिले या न मिले, पर सन्धि को तैयार हो जाए। यह भी मालूम करो कि सन्धि कम से कम किन शर्तो पर हो सकती है।

सजय ने उत्तर दिया—"राजन्! आप का विचार बहुत ही

ठीक है आप यह कार्य मेरे ऊपर छोड रहे है तो विश्वास रखिये कि मैं अपना पूर्ण प्रयत्न करूगा कि किसी प्रकार समझौते का रास्ता निकल आये ।"

धृतराष्ट्र ने सारी बाते समझाकर सजय को उपप्लव्य नगर भेज दिया ।

× × × × × × ×

उपप्लव्य नगर पहुचते ही सजय का पाण्डवो की ओर से बहुत आदर हुआ । युधिष्ठिर ने सर्व प्रथम उस से हस्तिनापुर का समाचार पूछा । उसके पश्चात सजय बोला—"राजन् बडे सौभाग्य की बात है कि आज आप अपने सहयोगियो के साथ सकुशल है। राजा धृतराष्ट्र ने आपकी कुशलता पूछी है सत्य व्रत का पालन करने वाली राजकुमारी द्रौपदी तो सकुशल है न ?"

"अर्हन्त भगवान की कृपा दृष्टि से हम सभी कुशल हैं । और सारे कौरव कुल की कुशलता की-कामना करते है '—युधिष्ठिर बोले इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने सजय से उपप्लव्य नगर के पधारने का कारण पूछा ।

सजय बोला— "मुझे महाराज धृतराष्ट्र ने आपकी सेवा में एक सन्देश पहुचाने के लिए भेजा है ।"

कहिये उनका क्या सन्देश है ?"

वे उनका विचार है कि युद्ध किसी भी दशा मे मानव समाज के कल्याण का साधन नहीं बन सकता । इस लिए चाहे जो हो आप युद्ध की कामना न करें ।'—सजय बोला महाराज धृतराष्ट्र का यह सन्देश हम शिरोधार्मय करते है और साथ ही यह भी कह देते है कि हम स्वय युद्ध करने के इच्छुक नही है । परन्तु अपने ऊपर हो रहे अन्याय का प्रतिकार भी चाहते है । यदि किसी प्रकार भी दुर्योधन सन्धि के लिए तैयार हो जाए तो हम युद्ध नहीं करेंगे। युद्ध हमारा उद्देश्य नहीं साधन हो सकता है ।"—युधिष्ठिर बोले ।

संजय ने फिर कहा—"महाराज धृतराष्ट्र स्वयं अपने पुत्रों की हठ मे दुखी है। वास्तव में धृतराष्ट्र के पुत्र निरे मूर्ख हैं। वे न अपने पिता की बात पर ध्यान देते है और न वे भीष्म पितामह की ही सुनते है। वे तो अपनी मूर्खता की धुन मे ही मग्न है। फिर भी आप तो धर्मराज है, सद्बुद्धि है आप को उनकी मूर्खताओं मे उत्तेजित नही होना चाहिए। क्योंकि यदि युद्ध छिड़ा तो एक ही वंश की सन्ताने मारी जायेगी। आप युद्ध के द्वारा चाहे पहाड़ो से लेकर सागर तक का राज्य भी जीत ले, पर तलवार तथा धनुष बाण जैसे अस्त्र शस्त्रों से वृद्धावस्था तथा मृत्यु पर विजय नही पा सकते। त्याग ही सुख की प्राप्ति का साधन है। इस लिए आप जैसे धर्म बुद्धि व्यक्ति को कभी भी युद्ध की बात नही करनी चाहिए। हठ वादी दुर्योधन अपनी मूर्खता के कारण चाहे एक बार आप को राज्य देने से भी क्यो न इन्कार करदे, फिर भी आप युद्ध की बात न करे। धृतराष्ट्र आप की बुद्धि पर विश्वास करते है। उन्हे आप पर पुत्र वत प्रेम है और आप के प्रति उन्हे दुर्योधन से अधिक विश्वास है। इस लिए वे चाहते है कि आप युद्ध का विचार त्याग कर धर्मानुकूल जीवन बिता कर संसार मे यश प्राप्त करे। यदि दुर्भाग्यवश युद्ध छिड गया तो सब मे अधिक दुख धृतराष्ट्र को होगा क्योंकि रक्त चाहे कौरवो का वहे चाहे कुन्ती नन्दनो का उनके लिए एक ही बात है। इस लिए मैं बार बार कह रहा हूं उसका तात्पर्य यह है कि आप राज्य से अधिक धर्म की चिन्ता करें"

संजय की बात सुन कर युधिष्ठिर बोले—"संजय! सम्भव है आप की ही बात सच हो। और यह बात तो बिलकुल सच है ही कि हमे राज्य से अधिक धर्म की चिन्ता होनी चाहिए। क्यो कि केवली प्रभु का भी यही कथन है कि धर्म ही मनुष्य का कल्याण करता है, यही एक मात्र सहारा है। धर्म से ही मनुष्य को वास्तविक सुख प्राप्त होता है। राज्य तथा धन सुख प्राप्ति के साधन नही। फिर भी हम यह समझ कर अन्याय को बढते रहने या फूलने फलने के लिए नही छोड सकते। हम न्याय के रक्षक है। जब तक गृहस्थ्य धर्म मे हैं तब तक अन्याय को रोकना तथा न्याय

के लिए लडना हम अपना कर्तव्य समझते है। हा इस सम्बन्ध मे यह अवश्य ही समझते है कि यदि दुर्योधन किसी भी शर्त पर हम से सन्धि करने को तयार हुआ तो हम सन्धि करना ही अच्छा समझेंगे। हम अपने पूरे राज्य को वापिस लेने की जिद नही करते। और अन्त मे निर्णय श्री कृष्ण पर छोडते है वे दोनो ही पक्ष के हितचिन्तक हैं और धर्म के मर्म को भी समझते है"

श्री कृष्ण उस समय वहा विराजमान थे। बोले "ठीक है जहा मैं पाण्डवो का हितचिन्तक हू वहीं कौरवो को भी सुखी देखना चाहता हू। परन्तु समस्या इतनी जटिल हो गई है और दुर्योधन उसे इतना जटिल बनाता जा रहा है, कि इसे सुलझाने के बारे मे एक दम कुछ नही कहा जा सकता।"

"फिर भी आप किसी प्रकार इसे सुलझाने का तो प्रयत्न करेंगे ही।"—सजय बोला।

"धृतराष्ट्र शांति चाहते है। हम सन्धिवार्ता के लिए पहले ही दूत भेज चुके हैं। और हमे ज्ञात हुआ है कि भीष्म जी तथा विदुर जी दोनो ही शाति व सन्धि के पक्ष मे है। फिर तो समस्या सुलझ जानी चाहिए। श्री कृष्ण जी स्वय ही एक बार प्रयत्न कर के क्यो न देख ले।"—युधिष्ठिर ने कहा।

श्री कृष्ण कुछ सोचने लगे। थोडी देर सभी चुप रहे अन्त मे उस चुप्पी को भग करते हुए श्री कृष्ण ने कहा—"मेरा विचार यह है कि मुझे एक बार स्वय ही हस्तिनापुर जाना होगा। पर दूसरी ओर मैं यह भी समझता हू कि भीष्म, विदुर तथा धृतराष्ट्र की इच्छा सन्धि के लिए हो सकती है, परन्तु दुर्योधन अपने हठ वादी तथा मूर्ख परामर्श दाताओ की कृपा से सन्धि के लिए कभी तैयार हो सकता है इस मे सन्देह है। फिर भी एक बार मैं उसे अवश्य ही समझाऊगा। प्रयत्न करूगा कि यह महायुद्ध छेड़ कर अपनी मृत्यु और अपने परिवार के नाश को निमन्त्रित न करें।"

संजय ने श्री कृष्ण की बात सुनी। उस ने अनुभव किया कि श्री कृष्ण की बात मे कौरवो के लिए एक धमकी भी छिपी है और उन्हे विश्वास हैं कि महायुद्ध मे पराजय कौरवो की ही होगी। कुछ सोच कर संजय बोला—"आप हस्तिना पुर आकर यदि समझाने का प्रयत्न करेंगे तो सम्भव है आप के कहने व समझाने बुझाने से दुर्योधन मान जाय। परन्तु एक बात का ध्यान आप अवश्य ही रक्खें कि दुर्योधन के मूर्ख सलाह कार उसे भडकाते रहते हैं इस बात को आधार बना कर कि देखा, पाण्डवो की ओर से धमकी दी जा रही है। और दुर्योधन को अपनी शक्ति पर अभिमान है इस लिए आप किसी भी प्रकार दुर्योधन के सहयोगियो को उसे उत्तेजित करने का अवसर न दें।"

श्री कृष्ण संजय के परामर्श पर मुस्करा दिए।

युधिष्ठिर ने कहा—"श्री कृष्ण जी! आप जाकर जिस तरह भी हो सन्धि का उपाय खोजे यदि दुर्योधन हमे हमारा पूर्ण राज्य भी न दें तो हम केवल ५ गाँव तक ले कर भी सन्तुष्ट हो सकते हैं आप चाहे तो यह न्यूनतम माग उस से स्वीकार करा कर युद्ध टाल सकेंगे।"

श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर की उदारता की भूरि भूरि प्रशंसा की। अन्त मे बोले युधिष्ठिर! इतनी शक्ति होने और इतनी विशाल सेनाओ का सहयोग प्राप्त कर चुकने के पश्चात भी इतनी न्यूनतम शर्त पर सन्धि करने को तैयार होकर आप ने जो उदारता न्याय प्रियता, धर्म प्रियता और शान्ति प्रियता दर्शाई है, उसकी कदाचित आप के अतिरिक्त आज के युग मे किसी से भी आशा नही की जा सकती। आप की ओर से इतनी छूट देने पर तो सन्धि हो जानी चाहिए। परन्तु यदि इस दशा मे भी सन्धि न हुई तो फिर आप का रणभेरी बजा देना पूर्ण तथा न्यायोचित होगा।"

संजय को युधिष्ठिर की बात सुन कर बहुत ही सन्तोष हुआ और मन ही मन उस ने युधिष्ठिर की बहुत प्रशंसा की। मन ही मन वह युधिष्ठिर की उदारता के प्रति नतमस्तक हुआ और प्रत्यक्ष रूप मे कहने लगा—"धन्य; धन्य राजन्! आप वास्तव मे धर्म

राज है। आप जैसे उच्च विचारों और शुभ मनोवृति आध्यात्मवादी व्यक्ति की कभी पराजय नहीं हो सकती।"

आत्म प्रशंसा सुनने के बाद भी युधिष्ठिर गम्भीर ही रहे। उन्हो के चेहरे पर प्रसन्नता का एक भाव भी द्रवित न हुआ ठीक है महा पुरुष न अपनी प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होते और न अपनी आलोचना से खिन्न ही। वे गम्भीरता पूर्वक बोले—"संजय! आप के द्वारा प्राप्त धृतराष्ट्र के सन्देश से अपार प्रसन्नता हुई है आप उन से जाकर मेरी ओर से कहे कि हमे उन पर विश्वास है हम ने अपने स्वर्गवासी पिता जी के स्थान पर माना है। उन्हो की कृपा से हमे आधा राज्य मिला था और आज यदि वे चाहे और हृदय से प्रयत्न करे तो व्यर्थ का रक्त पात बच सकता है। यदि दुर्योधन हमे जीवन यापन के लिए पाच ग्राम भी देना स्वीकार कर ले तो हम धृतराष्ट्र की सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह कर लेंगे। धृतराष्ट्र हमारे लिए सदा आदरणीय रहे हैं और रहेंगे। उन्ही की कृपा से १२ वर्ष के वनवास व १ वर्ष अज्ञातवास की शर्त पर हमे राज्य वापिसी का आश्वासन मिला था। यदि वह वचन वे पूर्ण करादे तो अहो भाग्य। हम रण भूमि में उनके पुत्रो के शत्रु रूप मे आने की इच्छा नहीं रखते, परन्तु हमे ऐसा करने को विवश किया जा रहा है। श्री कृष्ण जी उनके पास पहुचेंगे। वे दृढता पूर्वक अपने मनोबल को प्रयोग कर के सन्धि का रास्ता खुलवा दें। हम जीवन भर उनके आभारी रहेगे।"

"आप भीष्म पितामह से जाकर कहे कि पाण्डवो को उन की न्याय प्रियता पर पूर्ण विश्वास है। उन्हो ने हमारे दूत के साथ जो सौजन्यता दर्शाई है हम उस के लिए आभारी है। हम जानते है। कि वे शांति के कितने बडे समर्थक है। वे न्याय प्रिय है। वे यदि चाहे तो हम जीवन भर यू ही वनों मे भटकते फिरने के लिए भी तैयार है परन्तु उनके रहते कौरव पक्ष की ओर से अपने वचन का उल्लघन हो यह उन के लिए भी लज्जा की बात है। हमे चाहे किसी रूप में भी रहना पडे और चाहे अन्त मे दुर्योधन की हठ ने विवश होकर शत्रु रूप मे भी रण भूमि

मे आना पडे। फिर भी भीष्म हमारे लिए पूजनीय हैं। हम चाहते हैं कि वे इस अवसर पर कौरवों तथा पाण्डवों दोनो के हित के लिए कार्य करें।"

"दुर्योधन से जाकर कहे कि हम उसके भाई है यदि केवल राज्य के लिए हम भाई भाई आपस मे लडें तो सारा ससार हम पर थूकेगा। हम उस वश के लोग हैं जो राजकुलों मे पूजनीय रहा है। दुर्योधन ने राज्य के दो भाग कराये, तो भी हमने प्रसन्नता पूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। उस ने हमे जुए के लिए निमंत्रित किया, हम ने भाई की भांति स्वीकार कर लिया। उस ने हमें वनवास दिया, हम वनों में चले गए। उस ने १ वर्ष के अज्ञात वास की इच्छा प्रकट की, हम ने राजकुमार होते हुए विराट के दरबार मे सेवा टहल करते हुए अज्ञात वास किया। एक बार जब गन्धर्वों ने उसे बन्दी बना लिया था तो हम ने भाई होने के नाते उसे उन से छुडवाया। मत्स्य राज्य पर आक्रमण के समय अर्जुन चाहता तो उस का वध भी कर सकता था, पर भाई के नाते उस ने ऐसा नहीं किया। अब समय आया है कि वह हमारे प्रति भ्रातृत्व का प्रदर्शन करे और हमे अपना भाई समझ कर हमारे साथ न्याय करे। राज्य चाहे कितना विशाल हो, वह आदमी की आत्मा को महान नही बनाता, मनुष्य सम्पत्ति अथवा उच्चासन के कारण उच्च श्रेणी प्राप्त नही कर सकता और धन धान्य सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिए व्यर्थ है। मनुष्य की महानता उनके शुभ कर्मों मे उस के चरित्र में निहित है। इस लिए वह उदारता का परिचय दे। मनुष्य को कभी अपनी शक्ति पर अहकार नहीं होना चाहिए। अतः उसे हमारे साथ सन्धि कर के इस समस्या को सुलझा लेना चाहिए। न्याय ही राजा का आभूषण होता है। मित्र, सहयोगी, सेना, सम्पत्ति, वन्धु बान्धव कोई भी अन्त समय में आत्मा का साथ नही देता काम आता है तो अपना धर्म। मनुष्य योनी में आकर भी अपनी आत्मा के कल्याण के लिए धर्म का मार्ग न अपनाया तो मनुष्य जन्म व्यर्थ चला गया समझो मृत्यु का क्या ठिकाना, कब आकर ढोल बजादे। इस लिए अहकार को छोड कर उसे सन्धि के लिए तैयार हो जाना चाहिए और हमे अवसर देना चाहिए कि

भविष्य में भी किसी आडे समय पर हम उसके काम आ सके। यदि वह नहीं चाहता कि हमारा छीना हुआ भाग पूरा का पूरा हमे वापिस मिले तो केवल पांच गांव ही हमे दे दे। हम उसी से सन्तुष्ट हो जायेगे। दुर्योधन को मेरा यही सन्देश सुना देना। और अन्त में कहना कि वह अपनी उदारता का परिचय दे, मैं तो सन्धि के लिए भी तैयार हूं और आवश्यकता पडने पर युद्ध के लिए भी।"

संजय ने युधिष्ठिर का सन्देश सुन कर एक वार पुन: उनकी धर्म बुद्धि की प्रशसा की और उनके सन्देश को अक्षरशः पहुचाने का वचन देकर हस्तिना पुर की ओर प्रस्थान कर दिया। परन्तु जाते समय अर्जुन से उनका भेंट हो गई। अर्जुन ने रोक कर कहा —"क्या आप सन्धि का सन्देश लेकर आये थे?"

"हां।"

"तो क्या रहा।"

"आप की ओर से सन्धि की पूर्ण तया कामना है।"

"क्या दुर्योधन भी तैयार है।"

"अभी तो नही।"

"तो फिर आप दुर्योधन से जाकर कहें कि मेरा गाण्डीव धनुष युद्ध के लिए लालायित हो रहा है। तरकश के वाण स्वय उछल उछल कर पूछ रहे है "कब? कब?"—अर्थात दुर्योधन को यमलोक पहुचाने के लिए हमे कब प्रयोग करोगे? श्री-कृष्ण मेरे सारथी होगे तब हम दोनों मिल कर उसे धूल चटा कर ही रहेगे। ऐसा मालूम होता है कि दुर्योधन के नाश के दिन निकट आरहे है।"

छत्तीसवां परिच्छेद

दुर्योधन का अंहकार

उधर संजय ने हस्तिनापुर मे प्रस्थान किया. इधर धृतराष्ट्र उसकी वापिसी की बेचैनी मे प्रतीक्षा करने लगे। रात्रि को उन्हे नींद भी न आई। बिस्तर पर पडे पडे वे करवट बदलते रहे। जब किसी प्रकार भी उन की मानसिक विकलता शात न हुई तो उन्होने विदुर को बुलाया। बोले - "संजय तो शाति दूत बन कर गया है, पर मेरा मन बहुत विकल है। मैं सन्धि व शाति चाहता हू। तुम भी बताओ कि क्या होना चाहिए। दुर्योधन तथा कर्ण तो सन्धि की बात भी सुनना गवारा नही करते। क्या किया जाय ?

विदुर जी ने धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहा—"राजन् ! नीति तो यही कहती है कि पाण्डवो को राज्य वापिस देना ही उचित है। यदि धर्म से घृणा है तो कूट नीति और युक्ति का भी यही तकाजा है क्यों कि स्पष्ट है, श्री कृष्ण चाहे नि.शस्त्र हो कर भी पाण्डवो के साथ है, और मत्स्य तथा पाचाल की सेनाएं पाडवों की ओर से युद्ध मे उतर रही है तो भी हमारा पाण्डवो पर विजय पाना असम्भव है। इस लिए आप किसी भी प्रकार दुर्योधन को समझाए कि वह हठ न करे। सन्धि करले, यदि वह बडा राज्य ही चाहता है, तो अपने बाहुबल से अपने राज्य का विस्तार करे।"

इसी प्रकार विदुर जी गई रात तक धृतराष्ट्र को समझाने

रहे ।

दूसरे दिन संजय भी आ गए।

दरबार लगा था, कौरव कुल के सभी विवेक शील एवं अविवेकी व्यक्ति उपस्थित थे। संजय ने आकर युधिष्ठिर तथा श्री कृष्ण से हुइ चर्चा को सविस्तार कह सुनाया। और अन्त में दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहा—

"विशेषतया दुर्योधन को चाहिए कि अर्जुन की बात ध्यान पूर्वक सुनें।"

बीच ही मे दुर्योधन आवेश मे आकर बोला—"क्या कहा है अर्जुन ने ?"—उस समय दुर्योधन का मुंह तमतमा रहा था।

संजय बोले. -

"अर्जुन ने कहा है कि इस मे कोई सन्देह नही कि मैं और श्री कृष्ण दोनो मिल कर दुर्योधन और उन के साथियो का नाश कर के ही रहेंगे मेरा गाण्डीव धनुष युद्ध के लिए लालायित है। धनुष की डोरी आप ही आप टंकार कर उठती है। तरकस के तीर स्वयं उछल रहे हैं वे तरकश मे झांक कर पूछ लेते हैं कि हमे दुर्योधन को मारने के लिए कब प्रयोग करोगे ? दुर्योधन का विनाश काल निकट आ गया है इसी लिए वह हमे युद्ध के लिए विवश कर रहा है।"

सुनते ही दुर्योधन की आंखो मे खून बरसने लगा। परन्तु भीष्म जी बोले—"दुर्योधन ! निस्सन्देह अर्जुन तथा श्री कृष्ण दोनों मिल कर युद्ध करें तो उनके सामने देवता भी नही जीत सकते। जब वे दोनों एक साथ मिल कर तुम्हारे विरुद्ध लड़ने लग जायेंगे तो तुम्हारा पता भी न लगेगा।"

कर्ण को बड़ा क्रोध आया। वह गरज कर बोला—"जब मै उस अर्जुन नामक छोकरे की प्रशंसा सुनता हूं तो मेरा रक्त खौलने लगता है। जिसे आप देवताओ से भी अधिक समझ रहे

है, और उसके साथी श्री कृष्ण जिनकी प्रशंसा करते आप नहीं अघाते, वह बेचारे तो कल परसों ढोर चराया करते थे। वे क्या जाने लड़ने की सार। मेरे सामने उन दोनों में से एक भी नहीं ठहर सकता और मेरी बात की सच्चाई आप को रण भूमि में ज्ञात हो जायेगी। आप दुर्योधन को भय विह्वल करने की चेष्टा न करें।"

कर्ण की आत्म प्रशंसा का उत्तर उसे ही न देकर भीष्म जी धृतराष्ट्र से बोले—"राजन्? सूत्र पुत्र कर्ण बार बार यही दम भर रहा है कि मैं पाण्डवो को रण भूमि मे खत्म कर दूंगा। किन्तु मैं कहता हूं कि पाण्डवों की शक्ति का सोलहवां भाग भी उस मे नहीं है। तुम्हारा पुत्र उसी की बातों पर युद्ध के लिए तैयार हो रहा है, और स्वयं अपने नाश का आयोजन कर रहा है। वरना उसमे कितनी शक्ति है यह तो मत्स्य देश पर किए आक्रमण के समय ही ज्ञात हो गया था। यदि उस मे अर्जुन जैसे वीर को परास्त करने की शक्ति है तो मत्स्य देश की चढाई मे उसे क्या हो गया था? अर्जुन के सामने से दुम दबा कर क्यो भागा था। इस काण्ड से पहले भी तो एक बार गन्धर्वों के सामने कर्ण ने मुंह की खाई है - उस अवसर पर कर्ण दुर्योधन को शत्रुओ के चगुल मे फसा छोड कर ही भाग आया था परन्तु उन्ही अपार शक्ति वान गन्धर्वो मे अर्जुन ने ही दुर्योधन को मुक्त करा दिया था। जब दो बार कर्ण अर्जुन से मात खा चुका और दुर्योधन दो बार रण क्षत्रो मे पराजित हो चुका, फिर किस बल बूते पर कर्ण दुर्योधन को उकसाता है और दुर्योधन उसकी मूर्खता पूर्ण उत्तेजक बातों पर विश्वास कर रहा है?"

धृतराष्ट्र को भीष्म जी की बात जम गई। बड़े सन्तप्त होकर दुर्योधन को समझाने लगे—"भीष्म जी जो कहते हैं वही तर्क संगत, युक्ति संगत, न्यायोचित और करने योग्य जान पडता है। हमे सन्धि कर ही लेनी चाहिए। इस से हम अपने राज्य को बचा लेगे और व्यर्थ ही सकट मोल लेने से बच जायेंगे। परन्तु तुम्हें तो न जाने क्या होगया है कि मेरी सुनते ही नहीं। जिन मे विवेक है और जिन्हें अनुभव है तुम उन्ही की बात ठुकरा रहे हो।

मेरी मानो और पाण्डवो से सम्मान पूर्वक समझौता करलो।"

दुर्योधन ने कहा—"पिता जी! आप तो व्यर्थ ही भय विह्वल हो रहे हैं मानो हम सब कमजोर है। देखिये हमारे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है* जब कि पाण्डवो के पास केवल ७ अक्षौहिणी सेना ही है। फिर ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सामने पाण्डवो की ७ अक्षौहिणी सेना भला क्या कर सकती है। हमारी इतनी विशाल सेना और कर्ण आदि वीरो के बल से ही तो पाण्डव घबरा गए है और पहले आधा राज्य मागते थे, तो अब भय विह्वल होकर केवल पाच गाव ही मागने लगे। क्या, पाच गाव वाली माग से यह सिद्ध नही होता कि उन्हे अपनी पराजय का निश्चय हो गया है और इसी कारण सन्धि व शाति का ढोग रच कर वे कुछ न कुछ ले मरने के चक्कर मे है। इतने पर भी आपको हमारी विजय पर सन्देह हो तो आश्चर्य की बात है।"

धृतराष्ट्र ने पुन समझाने की चेष्टा की—"बेटा! जब पाच गाव देकर ही युद्ध टल सकता है और हम एक भयकर सकट मे बच सकते है तो बाज आओ युद्ध मे। पाच गांव देने मे तुम्हे क्या आपत्ति है। तुम्हारे पास तो पूरा का पूरा राज्य रह ही रहा है। यह सौदा सर्वथा लाभप्रद है। अब हठ न करो। मान जाओ।"

धृतराष्ट्र का जब इस उपदेश का दुर्योधन पर उलटा ही प्रभाव पडा। वह चिढ गया और क्रुद्ध हो कर बोला—"मैं तो सूई की नोक बराबर भी भूमि पाण्डवों को नही देना चाहता। आप की जो इच्छा हो करे। पाण्डवो मे शक्ति है तो रण भूमि मे आ कर निर्णय करे।"

यह कहता हुआ दुर्योधन उठ खडा हुआ और सभा-भवन के

---

*नोट—आज कल जैसे विभिन्न दलो को मिला कर सेना मे एक डिविजन बनता है, वैसे ही उन दिनो कई विभाग मिला कर एक अक्षौहिणी बनती थी। एक अक्षौहिणी मे २१,८७० रथ और इसी हिसाब मे हाथी, घोडे, पैदल आदि की सख्या होती थी।

द्वार की ओर चल पडा। उस समय भीष्म जी बोले—"जब चीटी के पर निकल आते हैं तो समझो कि उसकी मृत्यु निकट आ गई। दुर्योधन के अहंकार की हद हो गई। विनाश काले विपरीत बुद्धि।"

कर्ण भभक उठा और सभा मे खलबली मच गई। भिन्न भिन्न प्रकार की आवाजे उठी और सभा भग होगई।

* सताईसवां परिच्छेद *

कृष्ण शान्ति दूत बने

युधिष्ठिर विचार मग्न बैठे थे। अभी अभी विराट उनसे कुछ परामर्श लेकर उठे थे। कमरे मे पूर्ण शाति थी और दूर से अस्त्र शस्त्रो तथा सैनिकों के परीक्षण की ध्वनिया आ रही थी। उसी समय श्री कृष्ण ने प्रवेश किया। विचार मग्न युधिष्ठिर की दृष्टि ज्यो ही श्री कृष्ण पर पड़ी, वे अभिवादन के लिए उठ खडे हुए।

प्रणाम के उपरान्त युधिष्ठिर ने उन्हे ससत्कार आसन दिया। श्री कृष्ण बोले—"राजन्! कौरव पाण्डव दोनो के हित के लिए मैं शांति का दूत बन कर हस्तिनापुर जा रहा हू। आप कुछ और कहना चाहे तो मुझे बता दीजिए।"

युधिष्ठिर बोले—"आप हमारे लिए जो कष्ट उठा रहे है हम उस से कभी उऋण नही हो सकते। परन्तु कल से मैं आपके हस्तिनापुर जाने के सम्बन्ध मे ही सोचता रहा हू और अब मैं यह समझ रहा हू कि आपकी हस्तिनापुर यात्रा से समस्या सुलझेगी नही।"

धर्मराज युधिष्ठिर के मुह से अनायास ही ऐसी बात सुन कर श्री कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा—"आपके ऐसा अनुमान लगाने का क्या कारण हो सकता है?"

"वासुदेव ! सजय को धृतराष्ट्र का ही प्रति रूप समझना चाहिए। उन से जो बाते हुई उन्ही के कारण मैं इस निष्कर्ष पर पहुच रहा हू—युधिष्ठर कहने लगे—पहले तो सजय की मीठी २ तथा धर्मानुकूल बाते सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी और मुझे ऐसा महसूस होने लगा था कि सन्धि के लिए उपयुक्त वातावरण बनने की सम्भावना है, पर अन्त मे सजय के मुख से जो निकला उस से मुझे यह सन्देह हो रहा है कि धृतराष्ट्र चाहते हैं कि यदि दुर्योधन हमे कुछ भी न दे तो भी हम युद्ध न करे बल्कि शाति तथा धर्म के नाम पर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। धृतराष्ट्र ने हमारे साथ हुए काण्ड मे जो भूमिका निभाई है उस से स्पष्ट है कि वे मनो बल के सम्बन्ध मे बहुत ही कमजोर आदमी हैं। वे अपने बेटे दुर्योधन के मोह मे न्याय को भी तिलाजलि दे सकते है। सजय ने कोई बात अपने मन की नही कही जो कही वह धृतराष्ट्र की बात थी। इस लिए मैं तो इस परिणाम पर पहुच रहा हूं कि दुर्योधन सन्धि के लिए तैयार नही है और न उस के तैयार होने की आशा ही है इस सम्बन्ध मे धृतराष्ट्र भी निराश है।"

"क्या पांच ग्राम की माग होने पर भी दुर्योधन नही मानेगा ?—श्री कृष्ण ने पूछा।

"हा, दुष्ट बुद्धि दुर्योधन इस न्यूनतम माग को भी स्वीकार नही करेगा, बल्कि सम्भव है कि इस न्यूनतम माग से उस का अहकार और बढ जाये। इस लिए अब मैं आपका हस्तिना पुर जाना भी उचित नही समझता।"—युधिष्ठिर ने कहा।

"राजन् ! हमारा कर्तव्य है कि शाति तथा सन्धि के लिए अपने अन्तिम प्रयत्न कर ले ताकि कोई यह न कह सके कि हम युद्ध के जिम्मेदार हैं। यदि हमारे इस प्रयत्न से भी सन्धि वार्ता सफल नही होती तो फिर रण क्षेत्र मे उतरना हमारे लिए न्यायोचित होगा।"—श्री कृष्ण बोले।

"एक शका मेरे मन अन्दर ही अन्दर कचोट रही है कि

आज कल दुर्योधन के सिर पर अहंकार सवार है। कर्ण आदि ने उस को उत्तेजित कर रक्खा है। वह अब आप को भी अपना शत्रु समझने लगा है। क्यों कि व्यक्ति गत रूप से आप हमारी ओर आ गए हैं। इस लिए शत्रु के पास आप का अकेला इस प्रकार जाना ठीक नहीं है। कहीं अहंकार में अन्धे हो रहे दुर्योधन ने आप के साथ कुछ अनुचित बात करदी या अपने दरबार को ही रण क्षेत्र समझ लिया तो फिर बहुत बुरा होगा।"—युधिष्ठिर ने अपने मन की बात कही।

बात सुन कर श्री कृष्ण के अधरों पर मुस्कान खेल गई, बोले—"राजन् ! आप की चिन्ता व्यर्थ है। मैं दुष्ट बुद्धि दुर्योधन और उसके सहयोगियों तथा परामर्श दाताओं के स्वभाव से परिचित हूं। शत्रु पक्ष ऐसे अवसर पर क्या क्या कर सकता है। यह मुझे ज्ञात है। मैं स्वयं सावधान रहूंगा। परन्तु मैं किसी के लिए यह कहने का अवसर नहीं देना चाहता कि जब कौरव व पाण्डवों के बीच युद्ध ठन रहा था तो कृष्ण ने जो उन दोनों के समान हितैषी थे, जो दोनों के सम्बन्धी थे, उस समय अपने कर्तव्य को निभाने में कोई कसर उठा रक्खी। मैं आप की ओर से शांति व सन्धि का सन्देश ले जा रहा हूं। हर प्रकार से, प्रत्येक सम्भव उपाय प्रयोग कर के दुर्योधन को समझाऊंगा। और यदि उसने तथा उस के सहयोगियों ने कुछ षड़यन्त्र रचना चाहा या अपमान किया तो मैं उनकी सभा में ही उन्हें मौत के घाट उतार दूंगा। आप विश्वास रखिये कि उन आततताईयों के किसी जाल में भी फंसने वाला नहीं।"

"आप की इच्छा को मैं समझ रहा हूं—आप अपनी ओर से कोई कसर नहीं चाहते। अपनी अन्तिम कोशिशें करना चाहते हैं, परन्तु शत्रु की नीति को ध्यान में रख कर ही कुछ करना चाहिए। आप उन से सावधान रहें, यही मैं कहना चाहता था, पर लगता है कि जो बात मैं आप से कहना चाहता था, वह आप पहले ही से जानते हैं।—फिर भी आप जा ही रहे हैं तो मैं हृदय से कामना करता हूं कि आप को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हो। आप हम भाइयों

मे सन्धि करा दे तो यह काम उस सफलता से सहस्त्र गुना अधिक मूल्यवान तथा हितकारी होगा, जो आप की सहायता से रण क्षेत्र मे मिलेगी।"

उसी समय भीम वहा पहुंच गया। जब उसने सुना कि श्री कृष्ण शाति दूत बन कर हस्तिना पुर जा रहे हैं, तो अपने स्वभाव के अनुसार वह क्रुद्ध नही हुआ। उस ने कहा — "सम्पूर्ण राज्य महा युद्ध के द्वारा प्राप्त हो तो भी वह उस से अधिक कल्याण कारी नही हो सकता जो कि राज्य का कोई अंश भी सन्धि के द्वारा प्राप्त होने से। आप सन्धि करा दे तो अहोभाग्य।"

अर्जुन को जब श्री कृष्ण के हस्तिना पुर जाने का समाचार मिला, तो वह भी उनके दर्शन करने वहा आ गए और श्री कृष्ण का अभिवादन कर के बोले —"मधुसूदन! हम युद्ध नही सन्धि चाहते है आप वहा जाकर जैसे भी हो सन्धि वार्ता को सफल बनाने का प्रयत्न कीजिए और विश्वास रखिए कि आप जो भी करा देंगे हमें स्वीकार होगा।

कुछ देर से द्रौपदी दूर खड़ी खड़ी यह सब बाते सुन रही थी, उसे यह बाते पसन्द न आई। उसके मन मे तो प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। जब अर्जुन ने भी सन्धि को ही सराहा तो उस से न रहा गया सामने आ गई और श्री कृष्ण से बोली —"मधुसूदन! मेरे यह खुले हुए केश देख रहे हो?"

श्री कृष्ण समझ गए कि वह क्या कहना चाहती है, तो भी उन्होने द्रौपदी के प्रश्न का ही उत्तर दिया—"हां द्रौपदी आज से नहीं १३ वर्ष पूर्व जब तुम वनवास के लिए गई थी तब भी मैंने इन खुले हुए केशो को देखा था।"

"बस हस्तिना पुर जाने से पूर्व मेरे इन बिखरे बालों को तनिक ध्यान से देखो। इन बिखरे हुए केशो मे मेरे अपमान की कथा छिपी हुई है। इन को दृष्टि मे रखो फिर जो उचित जचे करो। मधुसूदन! आज भीम सेन और धनुर्धारी वीर धनञ्जय मेरे

इन केशो की कहानी भूल सकते है। दुशासन के पापी हाथो में हुआ मेरा अपमान वे भुला सकते है और उन पापियों से मेरे अपमान का प्रतिशोध लेने की उन की प्रतिज्ञा कदाचित उन्हे याद न रही हो, पर आज भी इन बिखरे केशो से मुझे उस पापी के हाथो की गंध आती रहती है। अर्जुन तथा भीम भले ही युद्ध न करें, पर मेरे पिता, जो यद्यपि बूढे ही हैं, फिर भी मेरे पुत्रों को साथ लेकर युद्ध मे कूद पडेंगे। यदि किसी कारण वश पिता जी भी युद्ध करने न आये तो न सही, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तो है। उसी को सेना पति बना कर मेरे पाचो बेटे कौरवों मे लडेंगे। परन्तु किसी न किसी भाति दुष्टो से मेरे अपमान का बदला अवश्य लेंगे। मेरे हृदय मे प्रतिहिंसा की जो आग धु धा दे रही है, उसे धर्मराज की खातिर मैने १३ वर्ष तक दबाये रक्खा भड़कने न दिया। परन्तु अब मुझे से सहा नहीं जाता। जिन के कारण मैंने घोर अपमान सहे, —जिन के कारण मैंने दासी बन कर एक वर्ष तक सेवा टहल की, आज जब मेरे अपमान का बदला लेने का प्रश्न आया तो वे सन्धि की बाते करने लगे। आज वे दुष्ट पापी उन के भाई हो गए जिन्होंने मुझे भरी सभा मे नगा करने का प्रयत्न किया था, यह भाई भाई तो पुन: भाई भाई का राग अलापने लगे परन्तु जब मेरे ऊपर अन्याय हो रहा था, तब क्या था ? इस लिए मधुसूदन मेरी प्रतिज्ञा की लाज रखना। एक पतिव्रता के ऊपर हुए अन्यायो को न भूलना। क्या मैं जीवन भर इन केशों को यू ही बिखरा रहने दूंगी ?" — इतना कहते कहते द्रौपदी की आखे डब डबा आई। उसका गला रुंध गया।

द्रौपदी को इस प्रकार दुखी देख कर श्री कृष्ण बोले—"रोओ मत, बहन ! रोने का तो कोई कारण ही नही। शान्ति स्थापना की जो मैं शर्ते रक्खूगा, उन्हे धृतराष्ट्र के बेटे मानेंगे नही, फलत युद्ध हो कर ही रहेगा। रण स्थल में पडी कौरवों की लाशे कुत्तो और सियारो का आहार बनेंगी। आततायियो का रक्त भूमि पर गन्दे पानी की भांति ढुलता फिरेगा। उनका सर्व नाश हो जाएगा। और पाण्डव पुन: राजसिंहासन के स्वामी बनेंगे। तुम्हारे ऊपर हुए अत्याचार का बदला अवश्य लिया जायेगा। तुम इस बात से निश्चिन्त

रहो।"

इतना कह कर श्री कृष्ण ने पाण्डवो तथा द्रौपदी से विदा ली।

× × × ×

श्री कृष्ण के शांति दूत के रूप मे आगमन की सूचना जब धृतराष्ट्र को मिली तो उन्हो ने सारा नगर सजाने की आज्ञा दी। और विदुर जी से बोले—"वासुदेव के लिए हाथी, घोडे रथ आदि उपहार भेंट आदि करने का प्रबन्ध करो। और भी अनेक उपहार उन्हे भेंट करने का प्रबन्ध किया जाय ऐसी मेरी कामना है, वे प्रसन्न हो जायें कुछ ऐसा करो।"

विदुर जी बोले—"राजन्! आप का विचार ठीक नही। वे ऐसे व्यक्ति नही जो प्रलोभनों के वश में आ जायें अथवा शल्य की भांति वे चक्कर मे आ कर आप के पक्ष में आ जायें। वे तो राज दूत बन कर रह रहे हैं, उन्हे प्रसन्न करने का तो एक ही उपाय है कि वे जो सन्धि वार्ता चलाने आ रहे है आप उसे स्वीकार कर लें।"

धृतराष्ट्र को विदुर की बात ठीक जची और उन्होने उपहारों का प्रबन्ध करने का विचार त्याग दिया।

परन्तु जब दुर्योधन को श्री कृष्ण के आगमन का समाचार मिला उसने सोचा कि श्री कृष्ण का सन्धि वार्ता के लिए आगमन उस के लिए कुछ अच्छा सिद्ध नही होगा क्यो कि उन के आने से कौरवों के समस्त विवेकशील सरक्षक तथा सहयोगी श्री कृष्ण के प्रभाव में आकर सन्धि को तैयार हो जायेंगे। यह भी सम्भव है कि श्री कृष्ण के कारण कौरव वीरो मे दो पक्ष बन जायें। एक सन्धि चाहने वाला और दूसरा युद्ध चाहने वाला। कौरव वीरो के दो भागो मे विभाजित हो जाने से जो दशा उत्पन्न होगी वह

युद्ध में पाण्डवों की विजय के लिए सहायक सिद्ध होगी। तब क्या किया जाय? दुर्योधन यही सोच रहा था कि कर्ण आगया। बोला—"राजन्! श्री कृष्ण तुम्हारे पक्ष में दरार डालने के लिए आ रहे हैं। वे बड़े कूट नीतिज्ञ है और आप इस प्रकार मुह लटकाए बैठे हैं?"

"क्या करू मित्र! श्री कृष्ण का यहां सन्धि वार्ता करने के लिए आगमन हमारी युद्ध को योजनाओ पर कही पानी न फेर दे। यही मैं सोच रहा हूं"—दुर्योधन ने कहा।

"श्री कृष्ण तो अब शत्रुओ के पक्ष मे है। उन्होने पाण्डवो को सहायता देने का वचन दिया है। और है वे प्रमुख व्यक्ति जिन के विपक्ष में होने से आप को भयानक हानि उठानी पड़ेगी। एक शत्रु सेनानी आप के यहां आ रहा है आप श्री कृष्ण के आगमन को इस दृष्टि मे लें।"—कर्ण ने कहा।

बात सुनते ही न जाने दुर्योधन के मन मे क्या आई कि एक हर्ष की रेखा उसके मुख पर खिच गई।

× × × ×

श्री कृष्ण का हस्तिना पुर मे अभूत पूर्व स्वागत किया गया। वे हस्तिना पुर पहुच कर सब से पहले धृतराष्ट्र के भवन मे गए। वहां उनका राजोचित सत्कार किया गया। उस के उपरान्त वे अन्य कौरव वीरों से मिले। और अन्त मे दुर्योधन के भवन मे गए। दुर्योधन ने श्री कृष्ण का शानदार स्वागत किया। कुछ बात चीत हुई और जब वे चलने लगे तो दुर्योधन ने उन्हे उचित आदर-सत्कार सहित भोजन का निमन्त्रण दिया। परन्तु जब तक वे दुर्योधन से बात करते रहे उन्हे यह अनुभव होगया कि दुर्योधन सन्धि सम्बन्धी कोई बात नही करता, बल्कि सन्धि चर्चा को वह कानों पर टाल जाता है और अनेक बातें वह दिखावटी प्रशंसा की उनके लिए कर रहा है। इस लिए दुर्योधन की बातो से उन्हे किसी षड्यन्त्र की बू आई और वे बोले—"राजन्! मै अब राज दूत बन कर आया हू। राज दूतों का यह नियम होता है कि जब

तक उनका कार्य सफल न हो जाय तब तक भोजन न करे। जिस उद्देश्य को ले कर मैं यहां आया हूं वह पूरा हो जाय तब मुझे भोजन का निमन्त्रण दीजिए।"

दुर्योधन और उसके भाइयो ने बहुत हठ किया परन्तु वे न माने और तुरन्त विदुर जी के निवास स्थान की ओर चल पड़े। जहा जा कर उन्हें कुन्ती माता मिली। श्री कृष्ण को देखते ही माता कुन्ती को अपने पाचो पुत्रो की याद आ गई। उन से न रहा गया और जी भर आया। आखो से आसू उमड पड़े। श्री कृष्ण ने पाण्डवों की कुशलता का समाचार सुना कर और प्रत्येक ढग से धैर्य बंधा कर कुन्ती को सान्त्वना दी।

श्री कृष्ण ने विदुर जी के यहा ही भोजन किया और फिर उनसे सन्धि के सम्बन्ध में वार्ता की। विदुर जी तो सन्धि के पक्ष मे थे ही, उन्होने सन्धि के लिए दुर्योधन की इंकार का रहस्य बताते हुए कहा कि दुर्योधन मदांध हो गया है। उस के मित्रो ने उसे चढा रक्खा है। इस लिए सन्धि वार्ता की सफलता मे सन्देह है। फिर भी यदि युद्ध हुआ तो विजय पाण्डवो की ही होगी।

× × × ×

कौरव दरबार लगा था। श्री कृष्ण जी पहुचे, उन का आदर सत्कार करने के पश्चात उन्हे उचित आसन दिया गया। श्री कृष्ण ने अपने आगमन का कारण बताया और धर्म तथा नीति सम्बन्धी बातें बता कर सन्धि करने के लिए जोर डाला। उन्हो ने एक एक करके पाण्डवो पर किए गए दुर्योधन के अत्याचार गिनाए जिन्हे सुन कर दुर्योधन क्रुद्ध हो गया और आवेश मे आकर बोला—'आप सन्धि की वार्ता करने नही मुझे अपमानित करने के लिए आये हैं। और मै अपमान सहन करने का आदी नही हू। यदि आप मुझे आततताई और अन्यायी ही समझते है तो जाइये मुझे सन्धि की कोई बात स्वीकार नही। रण क्षेत्र मे ही हमारा और पाण्डवो का फैसला होगा।"

श्री कृष्ण ने शांति पूर्वक कहा—"दुर्योधन, आप जानते है मैं आप दोनों का रिश्तेदार हू। यदि आप मे युद्ध हुआ तो ससार कहेगा कि पाण्डव तथा कौरव यदि युद्ध के मतवाले हो गए थे तो कृष्ण तो धर्म मार्ग को समझते थे, वे तो उन दोनो मे शाति करा सकते थे। उन्होने उन दोनो को क्यो नही समझाया। इस लिये मै फिर से कहता हू कि यदि आप आधा राज्य वापिस नही करना चाहते तो उन्हे पाँच गाव ही दे दो, वे पांच भाई उसी से अपनी गुजर कर लेगे।

पांच गांव की भी आप ने खूब कही। क्या उनका मुझ पर कोई ऋण है जो मैं अदा करता फिरू ?"— दुर्योधन बोला।

क्या यह सम्भव नहीं कि आप अपने राज्य के कोई से निकृष्ट पाँच गाव देकर सन्धि करलें। —"श्री कृष्ण ने कहा।

"आप अपने हाथ की निकृष्ट सी उगली काट कर किसी को दे सकते हैं ! नही। मेरे राज्य का प्रत्येक ग्राम, चाहे वह निकृष्ट ही हो, मेरे लिए उतना ही मूल्यवान है, जितनी कि मेरी राजधानी। और राज्य कभी भीख मागने से नही मिला करता। राज्य भिक्षा मे नही दिए जाया करते। यदि पाण्डवो में शक्ति है तो वे रणभूमि मे लडकर राज्य ले सकते है।" दुर्योधन ने आवेश मे आकर कहा।

उस समय दुर्योधन की बाते सुनकर भीष्म पितामह, विदुर और धृतराष्ट्र तिलमिला उठे। परन्तु कर्ण बहुत प्रसन्न हो रहा था। श्री कृष्ण बोले 'राजन ! तुम शक्ति तथा सैन्य बल के मद मे अहकार के शिकार हो गए हो। पाच गाव देने पर भी यदि तुम्हे आपत्ति है तो फिर बताओ कि युद्ध को टालने के लिए पाण्डवों को कुछ देने के लिए भी रजामन्द हो सकते हो अथवा नही ?"

दुर्योधन आवेश मे आकर बोला—"श्री कृष्ण इस समय आप मेरे दरबार मे राजदूत के रूप मे आये है। मेरे रिश्तेदार के रूप मे नही। इस लिए मैं आप से यह बात स्पष्टतया कहने पर विवश हू कि पाण्डव पाच गाव की बात करते है, आप उन से जाकर कह दे

कि मैं उन्हें सूई की नोक जितनी भूमि घेरती है, उतनी भूमि भी देने को तैयार नहीं। यदि आप को पाण्डवो के जीवनयापन की इतनी ही चिन्ता है तो आप अपने राज्य मे से ही दो चार ग्राम क्यों नहीं दे देते।"

श्री कृष्ण इस अवसर पर दुर्योधन के अहंकार को सहन नहीं कर पाये। बोले—"दुर्योधन! तुम्हे अपनी शक्ति का बड़ा घमण्ड है। पर यह मत भूलो कि तुम्हारा वास्ता रण मे उसी अर्जुन से पड़ेगा जिसका मुकाबला तुम तो क्या देवता तक भी नहीं कर सकते। उसके गाण्डीव के पराक्रम को तुम मत्स्य राज पर की चढ़ाई के अवसर पर देख चुके हो। स्मरण रखो कि तुम्हारी हठ, सारे परिवार के नाश का कारण बनेगी। मैं तुम्हारे हितचिन्तक के नाते समझाता हू कि मान जाओ। वरना फिर पश्चाताप करोगे। गंधारी जैसी सत्यवती को निपूती मत बनाओ।"

इस चेतावनी को सुन कर दुर्योधन के तन में आग सी लग गई और वह उबल पड़ा—"राजदूत! मैंने भी पृथ्वी को पाण्डव विहीन करने की शपथ खा ली है। यदि पाण्डवो की ओर से देव राज इन्द्र भी युद्ध करने आया तो वह भी बच कर न जायेगा। उन भिख मगो पाण्डवो को जा कर कह देना कि दुर्योधन खैरात बाटने के लिए नहीं राज्य करने के लिए उत्पन्न हुआ है।"

इतना कह कर वह राज सभा से बाहर चला गया। उस के साथ कर्ण, दुशासन आदि भी चले गए। सभा मे गड़बड़ मच गई। भीष्म, धृतराष्ट्र तथा विदुर सन्न रह गए सभी विवेकशील व्यक्ति दुर्योधन के व्यवहार की आलोचना करने लगे।

इधर दुर्योधन ने अपने मित्रो के साथ मिल कर श्री कृष्ण को गिरफ्तार कर लेने का षडयन्त्र रचा। और राज सभा चारो ओर से घेर ली गई श्री कृष्ण पहले ही सावधान थे। उन्होंने उसी समय अपना विराट रूप प्रदर्शित किया अर्थात छुपे हुए अस्त्र सम्भाल लिए चक्र अस्त्र को विशेषतया उन्होंने सम्भाला। उनका

मुख लाल अंगारे की भांति हो गया। उन के इस रूप को देख कर सैनिक घबरा गए और जब श्री कृष्ण द्वार से निकलने लगे, किसी का साहस न पड़ा कि उन्हे रोक सके। वे निकले हुए चले गए और सीधे विदुर जी के निवास स्थान पर गए। जहाँ कुन्ती ने उन से राज सभा मे हुए वार्तालाप के परिणाम को पूछा और जब श्री कृष्ण ने बताया कि सन्धि वार्ता असफल रही तो वीर क्षत्राणि कुन्ती का रोम रोम जल उठा उस ने श्री कृष्ण से कहा —"हो मधु सूदन! आप मेरे पांचो सिंह समान पुत्रो से जा कर कह दे कि वे युद्ध के लिए तैयार हो जाय। न्याय के लिए वे अपने प्राणों का भी मोह छोड कर युद्ध करे और विजयी हो कर आये। वे मेरी कोख को न लजाए और आततायियो को दिखला दें कि कुन्ती की सन्तान कायर नही है।"

* अठाईसवां परिच्छेद *

कुन्ती को कर्ण का वचन

कुन्ती को जब ज्ञात हुआ कि शांति प्रयत्न असफल हो गए है और कुल नाशी युद्ध की आग भड़कने वाली है, तो वह व्याकुल हो उठी। एक बार तो उसे भी क्रोध आया था कि दुर्योधन ने उस के बेटो को सूई की नोक बराबर भी भूमि देने से इकार कर दिया। परन्तु जब उस ने उस भयकर युद्ध पर विचार किया जो छिडने वाला था, तो उसका रोम रोम सिहर उठा। वह सोचने लगी—"राज्य और सम्पत्ति का मोह भी कितना भयानक होता है कि उस के लिए एक ही कुल के परम प्रतापी वीर एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो गए है। कुल-वृद्ध भी नाश लीला को अपनी आखो उभरते देख रहे है। तमाम भरत खण्ड के वीर समर भूमि की ओर उमड़ रहे हैं। गगा नन्दन भीष्म और नीतिज्ञ विदुर तक सन्धि कराने मे असफल रहे और शीघ्र ही वह आग कुरुक्षेत्र मे धधकने वाली है, जो कुल के तेजस्वी सपूतो को भस्म कर डालेगी।"

यह बात सोचते ही वह कांप उठी। जी चाहता था कि वह इसे रोकने के लिए अपने पाचो पुत्रो को आदेश दे कि वे युद्ध से बाज आयें। पर वह अपने पुत्रो को कैसे कहे कि अपमान का कड़वा घूट पी कर वे रह जायें और युद्ध न होने दे? यदि वह ऐसा कहे भी तो क्या उस के महाबली व स्वाभिमानी पुत्र मानने

को तैयार हो जायेंगे ? एक ओर क्षत्रियो का राष्ट्र धर्म है तो दूसरी ओर युद्ध की विभीषिका है। एक ओर दुर्योधन को हठ के कारण क्रोध है तो दूसरी ओर कुल के नष्ट हो जाने का भय। जब वंश का ही नाश हो जायेगा तो फिर इस राज्य का क्या लाभ ? तबाही के परिणाम स्वरूप कही लाभ होता है ? कुन्ती सोच मे पड गई—"हा देव ! यह भी कैसी दुविधा है ? इस से बचू तो कैसे ?"

माता कुन्ती के मन में ममता एवं वीरता के बीच खेचातानी हो रही थी। मन मे एक हूक सी उठती। वह अपने पुत्रो के भविष्य के सम्बन्ध मे सोचने लगी—"भीष्म द्रोण और कर्ण जैसे अजेय महारथियों को मेरे पुत्र कैसे परास्त कर पायेंगे ? इन तीनो महावलियो का विचार करते ही मन सिहर उठता है। यह तीन ही दुर्योधन के पक्ष मे ऐसे महारथी हैं जो पाण्डवों के प्राण हारी बन सकते है। हां, द्रोण अर्जुन को अपने पुत्र अश्वस्थामा मे भी अधिक चाहते है। सम्भव है रणांगण में अर्जुन के प्रति उनका स्नेह अर्जुन को मारने से रोक दे। भीष्म के सम्बन्ध मे भी यही बात है। वे भी युधिष्ठिर और अर्जुन आदि को चाहते हैं। सम्भव है उनके बाणो की धार स्नेह के कारण कुण्ठित हो जाये। पर कर्ण तो रण में पहुच कर पाण्डवों के प्राण लेने से भी कभी न चूकेगा। वह दुर्योधन के मोह के कारण और अर्जुन द्वारा भरी सभा में अपमानित हो चुकने की वजह से, अर्जुन और उस के भाइयो पर बुरी तरह खार खाये बैठा है। पाण्डव उसे फूटी आखों नही भाते। साथ ही वह दानवीर है। उस में उस के संचित पुण्य कर्मों के कारण महान शक्ति है। वह अपनी दानवीरता के कारण अजेय है। इस लिए वह पाण्डवो के लिए प्राण हारी सिद्ध होगा। मेरा ज्येष्ठ पुत्र ही मेरे पुत्रों के प्राणो का प्यासा बना है, पर मेरे ही पाप का तो फल है। यदि मे उस के जन्म की बात को छिपा कर न रखती तो क्यो आज कर्ण अपने ही भाइयों का बैरी बनता ? ओह ! अब क्या हो ? क्या कर्ण अपने भाइयो का वध किए बिना न छोडेगा ?"

यह विचार मन में आते ही वह बहुत परेशान हुई। सोचन

लगी ऐसे उपाय को जिस से वह कर्ण के मन में पाण्डवों के प्रति करुणा जागृत कर सके। उस ने सोचा कि यदि कर्ण यह जान जाय कि जिन्हें वह शत्रु समझ बैठा है, वे उस के सगे भाई हैं तो अवश्य ही वह अपने मन से वैर भाव को निकाल देगा। पर यह हो तो कैसे? कौन बताये उसे यह रहस्य। तभी उस ने निश्चय किया कि वह अपनी भूल को सुधार कर पाण्डवों के प्राणों की रक्षा करेगी।

× × × ×

कर्ण ने देखा कि सामने माता कुन्ती खड़ी है। उस ने उन का अभिनन्दन करते हुए कहा—"राधा पुत्र कर्ण आप को करबद्ध होकर प्रणाम करता है। कहिए माता जी आप ने कैसे कष्ट किया।"

कुन्ती के मन में ममता जाग गई। करुणा की खान कुन्ती की पलकें भीग गई। उन का निचला होठ कांप गया। बोली—"बेटा! अपने को राधा पुत्र कह कर मुझे लज्जित क्यों करते हो? मैं अपनी भूल को सुधारने आई हूं।"

आश्चर्य चकित रह गया कर्ण। उसने कहा—"आज आप कैसी बातें कर रही हो? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आया।"

"बेटा! मैं तुम्हें अपने हृदय से लगा कर एक बार मातृत्व की बलवती इच्छा को पूर्ण करना चाहती हूं। पर आज तक अपनी ही एक भूल के कारण अपनी कामना को पूर्ण न कर सकी। मैं अपने ही पुत्र को अपना न बता सकी। बेटा! मैं आज तुम से अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करने आयी हूं।"—कुन्ती ने कहा।

"मैं अब भी नहीं समझा। कि आप........."

"बेटा! तुम मेरे पुत्र हो। मैं तुम्हारी मां हूं। एक लम्बे अर्से से जिस रहस्य पर परदा पड़ा रहा, मैं उसी को बताने आई हूं।"—कुन्ती गदगद स्वर में बोली।

तो क्या मैं राधापुत्र नहीं हूं ?" कर्ण ने आश्चर्य विमूढ़ हो कर पूछा।

"नही बेटा, तुमने मेरी कोख से जन्म लिया है। तुम पाण्डवो के ज्येष्ठ भ्राता हो। उन के जिन के प्राणो के तुम शत्रु बन गए हो। मैं ही तुम्हारी वह अभागिन मां हू, जो तुम्हे जन्म देने के पश्चात भी तुम्हे कभी अपना पुत्र न कह सकी। क्योंकि महाराज पाण्डू के साथ विधिवत विवाह होने से पूर्व ही तुमने जन्म लिया। मैंने तुम्हारे परम प्रतापी पिता की निशानी के स्वरूप कुण्डल पहनाकर नदी मे बहा दिया था। पर शोक कि हमारी योजना पूर्ण नही हुई और तुम्हारे पिता के बजाये तुम्हे रथवान ने पकड़ लिया और ससार ने तुम्हें उसी की सन्तान जाना।"—सारा रहस्य बताते हुए कुन्ती ने गदगद स्वर से कहा।

परन्तु कर्ण में कुन्ती की आशा के अनुसार उत्साह जागृत नहीं हुआ। उस ने कुछ सोच कर कहा—"तो तुम्हीं हो वह अन्यायी मां जिसने मुझे जन्म देकर नदी की लहरो में फेक दिया था। तुम ही हो वह पापिन जिसने अपने पाप को छुपाने के लिए मुझे मौत के मुह में फेंक दिया था। तुम ही वह हो जिस के कारण मैंने अर्जुन द्वारा अपमान के कड़वे घूट पिये। यदि यही है तो फिर अब क्यो मेरे पास अपने अन्याय का बखान करने आई हो ?"

कर्ण के इन तीक्ष्ण शब्दो से कुन्ती का हृदय बिंध गया। उस ने कहा— बेटा! मुझे क्षमा कर दो। हां मैं ही वह पापिन हूं जिसने कि निर्दोष होते हुए भी लोक निन्दा के डर से तुम्हे तुम्हारे पिता जी की आज्ञानुसार नदी मे इस लिए बहा दिया था, ताकि वे तुम्हें नदी से निकाल कर पुत्रवत तुम्हारा पालन-पोषण करें। तुम्हारे नाना जी उनके साथ मेरा विवाह नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन के प्रति भ्रम था कि वे पाण्डु रोग मे पीड़ित है। परन्तु मैंने उन्हे अपना सिर-ताज मान लिया था। वास्तव मे, मैंने कोई पाप नहीं किया था।

"तो आज तक तुम ने अपने बेटे पर इस रहस्य को क्यों नहीं खोला ? जब भरी सभा मे अर्जुन मेरा अपमान कर रहा था तब

तुम ने क्यो नही बताया कि मैं रथवान का पुत्र नही बल्कि पान्डु नरेश की सन्तान हू ? तुम ने लोक निन्दा के भय से मुझे सदा अपमानित होते देखा। तुम ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए मेरी प्रतिष्ठा की बलि दी। तुम कैसी मा हो ? मैने आप ही तुम्हारा मातृवत् आदर किया है। पर आज तुम से मुझे घृणा हो गई है। माँ के उच्चादर्श को तुम ने कलंकित कर डाला है।" कर्ण ने आवेश मे आकर कहा। उस समय वास्तव मे उस के हृदय मे घृणा ठाठे मार रही थी।

कुन्ती तिलमिला उठी। उस के नेत्रो से अश्रु आ रहे थे। वह घुटनों के बल बैठ गई और बडी करुणापूर्ण मुद्रा मे बोली—"बेटा ! मैं जो भी हू तुम्हारे सामने हू। मैं तुम्हारी दशा को देखकर सदा मन ही मन अपने को धिक्कारती रही। परीक्षा के समय जब अर्जुन ने तुम्हारा अपमान किया था, तो मेरा हृदय चीत्कार कर उठा था। जब तुम दोनो मे ठन गई थी तो मैं मूर्छित होकर गिर पडी थी। मैं तुम्हे सदा ही अपनी गोद मे लेने के लिए तडफती रही। मैं मन ही मन आंसू पीती रही। मैंने सारा जीवन तुम पर हुए अन्याय के प्रायश्चित स्वरूप हार्दिक दुःख, पीड़ा और शोक मे व्यतीत किया है। सोचो तो उस मा के मन मे क्या गुजरती होगी, जिस का लाल अपने बाहुबल और आत्मबल से सारे ससार पर छा रहा हो, जिसकी दानवीरता के कारण देवता भी उसके आगे नतमस्तक हो, पर मा उसे अपना पुत्र कहने का भी अधिकार न रखती हो। बल्कि वह एक परम प्रतापी महाराज की सन्तान होने के पश्चात भी अपने भाइयो के द्वारा ही पग पग पर धिक्कारा जाता है। अपमानित किया जाता हो। यह भी सोचो कि उस समय मेरे हृदय मे कितनी हूक उठती होगी जब मैं अपने सामने ही अपने पुत्रो को अज्ञानवश एक दूसरे का शत्रु, एक दूसरे के प्राणो का प्यासा देखती हू। बेटा ! यह सभी कुछ मुझे अपने पाप का दण्ड मिला है। तुम्हारी मां, अब तुम्हे अपना प्यार समर्पित करने आई है। तुम से अपनी भूल की क्षमा याचना करने आई है। मेरे लाल ! थूक दो अब अपना क्रोध और मेरी भूल से हो रही अपनी भूल को सुधारने का प्रयत्न करो।"

कर्ण के मन मे भी करुणा जागृत हो गई। पर एक और भी दुःख उसके मन मे उठ खडा हुआ था, वह था यह कि परम पराक्रमी पाण्डु की सन्तान होने पर भी वह ससार मे रथी की सन्तान कहलाया गया और राजाओ ने उसे नीच समझ कर सदा ही उस का अपमान किया। अपने माता पिता के कारण उसे सदा ही अपमान व निरादर के कडवे घूँट पीने पडे। उसने कहा—"मा! तुम ने कोई पाप नही किया। मेरे साथ जो कुछ हुआ, कौन जाने वह मेरे ही कर्मो का फल हो। क्षमा की बात कह कर मुझे लज्जित क्यो करती है। मुझे तो आज अपने पर गर्व होना चाहिए कि मैं उस सन्नारी सती की कोख से जन्मा हू जिसकी रग-रग को कोर छू भी नही पाता। फिर भी मैं एक स्वाभिमानी व्यक्ति हू। मुझे खेद है तो इस बात का कि आज से पूर्व तुमने कभी मुझे सच्चाई मे अवगत न होने दिया। यही बात रह-रह कर मेरे हृदय मे शूल की भाति चुभ रही है।"

"बेटा! जैसे तैसे मैं अपने हृदय पर पाषाण शिला रखते हुए सब कुछ सहती रही। मै लोक निन्दा के भय मे मौन रही। पर जब पानी फिर से ऊपर पहुच चुका तो तुम्हे यह रहस्य बताने आई हू। मैं तुम्हे बताना चाहती हू कि तुम जिन्हे अपना शत्रु समझ रहे हो, जिनके प्राणो के तुम प्यासे हो, वह तुम्हारे ही भाई है।"—कुन्ती ने कहा।

उस समय कर्ण के हृदय मे पाण्डवो के प्रति विद्वेष की भावना धूधू कर के ज्वाला की भाँति जल उठी। उसने आवेश मे आकर कहा—"तो मा मैं यह समझने पर विवश हू कि तुम मुझे इस रहस्य को बताने के लिए नही आयी कि तुम ममता और पुत्र स्नेह को रोक नही पाई। या तुम्हारे हृदय मे अपने परित्यक्त पुत्र के प्रति सहानुभूति का ऐसा तूफान आया जिसे तुम्हारे हृदय पर छाया लोक निन्दा का भूत भी रोक न पाया। बल्कि तुम्हारे मन मे पाण्डवो के प्रति भरे हुए असीम स्नेह ने जोर मारा है। तुम मेरे बल से भयभीत हो गई हो और जबकि सिर पर आ गया है तुम अपने प्रिय पुत्रो के प्रति मेरे हृदय मे भ्रातृत्व उत्पन्न कर के उनकी रक्षा करना चाहती हो। अवश्य ही यह बात तुम्हारे पाण्डवो मे

लिए घोर पक्षपात पूर्ण है। आज भी तुम्हारे हृदय मे कर्ण के प्रति न ममता है न सहानुभूति बल्कि उसके आक्रोश से अपने प्रिय पुत्रो को बचाने की भावना है।"

बेटा! पाण्डव तुम्हारे ही भ्राता है। तुम उन के ज्येष्ठ भ्राता हो। मैं यह कैसे सहन कर सकती हू कि तुम भाई भाई ही आपस मे एक दूसरे का नाश करने के लिए लडो। मैं यह कैसे देख सकती हू कि मेरे प्रिय पुत्र ही आपस मे शत्रुओ के रूप मे रणागन मे जाये। तुम चारो के शरीर मे मेरा ही रक्त है। मुझे तुम से भी उतना ही प्रेम है जितना युधिष्ठिर से अथवा अर्जुन या भीमसेन से।"—कुन्ती ने आर्त्त स्वर मे कहा।

कर्ण ठहाका मार कर हस पडा। पर वह ठहाका बडा ही व्यग्य पूर्ण था। कहने लगा—"मा तम आज भी उन तीन पुत्रो के लिए उतना ही प्रेम रखती हो, जितना तुम ने उन के प्रति पहले से रक्खा है। आज भी तुम्हे मुझ से कोई प्रेम नही है। तुम्हे प्रेम है तो उन तीनो से और तुम्हे भय है कि कही मैं उन के प्राण न ले लू। मा! तुम्हारी रगो मे कितना पक्षपात है? तुम ने मुझे जन्म दिया, फिर भी क्यो मेरे प्रति मातृत्व नही दर्शा पाती? क्या रथवान की गोद मे पलने के कारण मुझ से तुम्हे तनिक भी सहानुभूति नही? नही, नही मा! तुम ने मुझे कभी भी प्रेम पूर्ण दृष्टि से नही देखा। आज भी तुम्हारी आखो पर युधिष्ठिर, अर्जुन और भीमसेन के मोह की पट्टी बधी है। अभी अभी तुम अपनी भूल का प्रायश्चित करने को तैयार नही हो।"

कुन्ती के नेत्रो से पुनः अश्रुधार फूट पडी। उस ने रोकर कहा—"बेटा! यह बात कह कर मेरे हृदय पर कुठारा घात न करो। मैं अपना हृदय चीर कर कैसे दिखाऊ? आज जब रण की तैयारियां हो रही है। मैं इस रहस्य को बताने केवल इसी लिये आई कि मुझे उन तीनो के प्रति अधिक प्रेम है। बल्कि आई हू इस लिए कि मैं तुम मे से किसी को भी अपने किसी भ्राता का वध करते नही देख सकती। मैं नही चाहती कि अर्जुन जो अभी तक वास्तविकता को न जानने के कारण तुम्हारा भ्रम वश अपमान

करता रहा, रण मे तुम्हें मारने के लिए अपना अस्त्र प्रयोग करे अथवा तुम उसको मार डालो। मेरे लिए तुम सभी समान हो। तुम मेरे पुत्र ही नही, बल्कि मुझे तो माद्री की सन्तान भी अपनी ही सन्तान लगती है। मैं तुम छः से समान ही स्नेह रखती हू।"

"नही, नही तुम नहीं जानती हो कि कर्ण को मार सकना अर्जुन के वस की बात नही। इस लिए तुम मेरे लिए भयभीत नही हो। यदि होती तो अवश्य ही पहले अपने लाडले अर्जुन से जाकर इस रहस्य को बताती। तुम मुझे बताने आई हो तो इस लिए कि तुम पाण्डवो के भविष्य के प्रति सशकित हो।"—कर्ण ने कहा।

"बेटा कर्ण! यदि ऐसा भी है तो मुझे तुम से तुम्हारे भाइयो के प्राणो की रक्षा, उन के लिए अभयदान लेने का अधिकार है। मैं तुम से विनती कर सकती हू कि तम दुष्ट दुर्योधन के लिए अपने भाइयो के प्राण न लो। तुम उसी महा पराक्रमी स्वर्गवासी पान्डु की सन्तान हो, जिसकी सन्तान को दुर्योधन ने राज्य च्युत करके दर दर की ठोकरे खाने को वाध्य किया। तुम उसी पाण्डु की सन्तान हो जिस के उत्तराधिकारी अपना अधिकार मांग रहे है। तुम उन के भाई हो, और हो तुम न्याय प्रिय। तुम्हारा कर्तव्य है कि जिस स्थान पर तुम्हारे छोटे भाईयों का पसीना गिरे वहा तुम अपना रक्त बहाने को तैयार रहो। तुम्हारे लिए यह शोभा नहीं देता कि तुम यह जानकर भी पाण्डव तुम्हारे भाई है, दूसरे के कारण उनके शत्रु के रूप में युद्ध में जाओ। मैं तुम भाईयों को एक ही शिविर में देखना चाहती हू।"—कुन्ती ने अपने मन की बात कह दी।

"मां! तुम ने और तुम्हारे पुत्रो ने मेरे साथ जो भी व्यवहार किया हो, पर मैं तुम्हारे आदेश के आगे अवश्य ही सिर झुका देता। मैं तुम्हारे चरणो मे सिर रख कर कहता कि बोलो मां, तुम क्या चाहती हो? पर अब बहुत देर हो चुकी है। तुम बहुत देर मे जागी, मैं दुर्योधन के पक्ष मे हू और उसी की ओर से लड़ने का वचन दे चुका है। दुर्योधन ने मेरी उस समय सहायता की थी जब

मुझे अपमानित किया गया था। उसने बिना किसी प्रकार का सौदा किए ही मुझे अपने राज्य का एक भाग दे दिया था। उसने सदा मेरा आदर किया। तुम जिसे नदी मे फैंक आई थी, उसे दुर्योधन ने कूडे के ढेर से उठा कर सिहासन पर बैठाया। मैं उसका उपकार कभी नही भूल सकता। मैं भ्रातृ प्रेम के कारण जिन के साथ विश्वासघात नही कर सकता। मै क्षत्रिय हू और हू महा पराक्रमी राजा की सन्तान। मै अपने वचन को नही तोड सकता। मुझे क्षत्रिय रीति को तोडने के लिए न कहो।"—कर्ण ने उत्तर देते हुए कहा।

"दुर्योधन की मित्रता का कारण तुम्हारे प्रति उसका स्नेह नही। वरन वह तुम्हे अर्जुन को मारने के लिये अस्त्र बनाना चाहता है। बेटा! तुम्हे शत्रु की चाल समझना चाहिए।"—कुन्ती ने कहा।

"नही मा, मैं यह नही मान सकता। रण तो आज हो रहा है, पर मेरे प्रति स्नेह का प्रदर्शन उसने उस दिन किया था जब किसी को यह भी पता नही था कि कौरव और पाण्डव एक साथ न रह सकेंगे। उसने उन दिनो मेरा आदर किया था जिन दिनो मेरे भाई पाण्डव मुझे सूत पुत्र कहकर मुझ से घृणा किया करते थे। मै इस अवसर पर अपने परम प्रिय का साथ नही छोड सकता मैं क्षत्रिय धर्म को कलकित नही करूगा।"—कर्ण ने जोर देकर कहा।

माता कुन्ती ने बहुत समझाया पर कर्ण ने साफ कह दिया कि वह जिसे वचन दे चुका उसी के साथ रहेगा। उसके निश्चय को कोई भी नही बदल सकता। विवश होकर कुन्ती ने कहा—"बेटा! यदि तुम पाण्डवो के पक्ष मे भी नही आ सकते तो यह वचन तो मुझे दे ही सकते हो कि पाण्डवों मे से किसी का वध भी तुम्हारे हाथो नही होगा।"

"हां, ऐसा वचन दे सकता था परन्तु ....।"

"परन्तु क्या?"

परन्तु मैं अर्जुन का वध करने का निश्चय कर चुका हू। हा, तुम मेरी मा हो, आज पहली बार तुम मुझ से कुछ मना रही हो। तुम्हे मै निराश नही करूंगा। वचन देता हू कि अर्जुन के अतिरिक्त अन्य किसी अपने भाई को मैं न मारूगा।"

"तो क्या अर्जुन के प्राणो को तुम न बख्शोगे ?"

"नही।"

"यदि मैं इस का दान मांगू तो........?"

"तुम याचक बनकर नही मा बनकर आई हो।"

"तुम मा की आज्ञा का उल्लघन करोगे ?"

"क्षत्रिय धर्म को कलकित करने वाला आदेश कोई भी हो, किसी का भी हो मैं नही मानूंगा।"

इस प्रकार कितनी ही बार घुमा फिरा कर कुन्ती ने चाहा कि कर्ण अर्जुन को भी न मारने का वचन दे दे पर कर्ण न माना।

कर्ण ने अन्त मे कहा—"मा मुझ क्षमा करना कि मैं पाण्डवों के विरुद्ध लड़ने और अर्जुन के प्राण लेने के अपने व्रत को तुम्हारी इच्छा के बाद भी नही तोड पा रहा। क्योकि मैने तुम्हारी कोख मे जन्म लिया है। हम क्षत्रिय अपने धर्म को किसी दशा मे नही छोडते। मुझे आशीर्वाद दो कि मैं धर्म पर अडिग रहू।"

कुन्ती ने कर्ण को अपने गले से लगा लिया। उस से कुछ न बोला गया, गला रुक गया और आंखो से आंसुओ की धारा बह चली। उस ने कुछ देर बाद सम्भल कर कहा—बेटा तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे यश मे वृद्धि हो।"

कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देकर कुन्ती वापिस चली आई। कर्ण अपने जीवन और परिस्थितियों की विडम्बना पर सोचता रह गया।

※ उन्नतीसवां परिच्छेद ※

सेनापतियों की नियुक्ति

श्री कृष्ण निराश होकर उप्लव्य नगर लौट आये। सभी पाण्डवो के समक्ष उन्होने हस्तिनापुर की चर्चा का हाल सुनाया। अन्त मे वे बोले :—

"जो भी कह सका। सभी कुछ कहा। सत्य और हित के अनुकूल सारी बातें बताई। किन्तु सब व्यर्थ हुआ। दुर्योधन ने न मेरी सुनी और न अपने वृद्ध जनो की ही बात मानी।"

"अब क्या किया जाये?" युधिष्ठर ने प्रश्न उठाया।

"अब बस दण्ड से ही काम चलेगा।"—श्री कृष्ण बोले।

"एक ही रास्ता है कि हम इस धूर्त को अपने बाहुबल से समझाए। लातो के भूत बातो से नही माना करते।"—भीमसेन ने आवेश मे आकर कहा।

युधिष्ठर भी बोले—"हा अब शांति की आशा नही रही। सेना सुसज्जित करो और रण भूमि मे जा डटो।"

श्री कृष्ण ने कहा—"बस यही एकमात्र उपाय है। आप लोग अपनी सेनाए तैयार कीजिए।"

पाण्डवो की विशाल सेना को सात भागो मे विभाजित किया

गया। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि चेकितान, भीम सेन, सात महारथी. इन सात सैन्य-दलो के नायक बने। अब प्रश्न उठा कि सेनापति किसे बनाया जाये ? सभी की राय ली गई।

युधिष्ठिर ने सब से पहले सहदेव की राय मागी, बोले--सहदेव ! इन सात महारथियो मे से किसी एक सुयोग्य वीर को सेनापति बनाना होगा। हमारा सेनापति रण-कुशल हो। शत्रु-सैन्य को दग्ध करने वाला हो। किसी भी विकट स्थिति मे साहस न त्यागे, जो व्यूह रचना मे निपुण हो और भीष्म जैसे महान तेजस्वो का सामना कर सके। तुम बताओ कौन है इन सातो मे शूरवीर, सुयोग्य महारथी ?"

सहदेव सब से छोटा था, इस लिए पहले उससे राय ली गई। क्योकि बडो का आदर करने के कारण छोटे अपने बडो की राय का अनुमोदन कर दिया करते हैं, इससे उनकी अपनी राय का ठीक ठीक पता नही चलता और न उन में आत्मविश्वास ही सचार होता है। सहदेव ने कहा—"अज्ञातवास के समय हम ने जिन का आश्रय लिया था और जिनकी सहायता से हम यह सारा सैन्य-दल एकत्रित कर सके। जो अनुभवी और वृद्ध हैं। जिनकी अनगिनत कृपाए हम पर रही है. उन्ही राजा विराट को हमे सेनापति बनाना चाहिए। फिर नकुल से पूछा गया। उसने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा—"मुझे तो यही उचित लगता है कि पाचाल राज द्रुपद जो आयु मे, बल में, बुद्धिमत्ता और अनुभव आदि मे सब से बडे है उन्हे सेनापति बनाया जाय। क्योकि उन्होने द्रोणाचार्य के साथ साथ अस्त्र विद्या ग्रहण की है। द्रोणाचार्य को परास्त करने की कामना उनके मन मे बरसों से समायी हुई है। वे द्रौपदी के पिता भी है उनके मन पर द्रौपदी के अपमान मे जो ठेस पहुंची है उससे उनकी रगो में कौरवों के प्रति क्रोध भर गया है। वे भीष्म और द्रोण का मुकाबला भी कर सकते हैं।"

इस के बाद अर्जुन से पूछा गया। वह बोला "जो जितेन्द्रिय हैं, द्रोण का वध ही जिन के जीवन का उद्देश्य है वीर धृष्टद्युम्न हमारे सेनापति बनें तो ठीक होगा।

भीम से जब पूछा गया तो उस ने कहा—भैया अर्जुन की बात ठीक है. पर हमारे लिए द्रोणाचार्य से भी अधिक समस्या भीष्म जी की है हमे अपना सेनापति ऐसा बनाना चाहिए जो उन्हे मार सके। शिखण्डी का जन्म ही भीष्म जी के वध के लिए हुआ है। अतः शिखण्डी को ही सेनापति क्यो न बनाया जाय ?"

अन्त मे युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण से पूछा। वे बोले—"इन सब ने जिन जिन महारथियों के नाम लिए, सभी सुयोग्य हैं और सेनापति बनने योग्य हैं। पर अर्जुन की राय मुझे ठीक जंचती है। धृष्टद्युम्न को ही सेनापति बनाया जाये।

जिस वीर ने स्वय द्रौपदी से अर्जुन का परिणग्रहण कराया था, जो राज्य सभा मे हुए द्रौपदी के घोर अपमान और उस पर किए गए घोर अत्याचार की कल्पना मात्र से ही भडक उठता था, अपनी बहन के अपमान का कौरवो से बदला लेने की प्रतीक्षा मे जिस ने तेरह वर्ष बडी बेचैनी से व्यतीत किए थे, जो महान रण योद्धा था, उसी पांचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न को सेनापति बनाना सभी ने स्वीकार कर लिया और फिर उसका विधिवत अभिषेक कर दिया गया। उस समय वीरों की सिंह गर्जना, भेरियो के भेरी नाद, शखों की तुमुल ध्वनि, दुंदुभी के गर्जन आदि से आकाश गूज उठा। अपने कोलाहल से पृथ्वी को कपाती और दिशाओ को गुजाती हुई पाण्डव सेना कुरुक्षेत्र के मैदान मे जा पहुंची।

दूसरी ओर कौरवों की ओर से युद्ध की घोषणा हो चुकने के बाद कौरव सेना को ग्यारह भागों मे विभाजित किया गया। उस के बाद प्रश्न आया कि सेनापति कौन बने। दुर्योधन ने अपने सभी उद्दण्ड परामर्श दाताओ को अपने पास बुला कर विचार विमर्श किया। शकुनि ने कहा—"मेरे विचार से भीष्म पितामह को ही सेनापति रखा जाय। सेनापति होने के कारण उन्हें पाण्डवो के विरुद्ध डटकर युद्धकरना पडेगा। उनका सामना कर सकने वाला पाण्डवो मे कोई भी नही। भीष्म जो पाण्डवो से स्नेह रखते है। बस पाण्डवो और भीष्म जी को टकरा देने का एक यही उपाय है।"

शकुनि की बात सभी ने स्वीकार कर ली और दुर्योधन पितामह के पास जाकर बोला -"पितामह ! आपकी कृपा ने सभी तैयारियां पूर्ण हो गई हैं। अब आप ही हमारे सरक्षक हैं। सभी महारथी चाहते है कि आप हमारी सेना के सेना नायक बनें। आप के नायकत्व मे हमारी विजय अवश्य होगी।"

पितामह कहने लगे -"तुम ने युद्ध की घोषणा करते समय हम से कोई परामर्श नही लिया फिर तुम्हारे मित्र कर्ण को हमारे ऊपर सन्देह है कि हम पाण्डवों के पक्षपाती है। ऐसी दशा मे यही अच्छा है कि तुम कर्ण को ही अपना सेनापति बनाओ। मैं तुम्हारी ओर से लडूगा अवश्य पर कर्ण जैसे उद्दण्ड और अभिमानी के रहते मैं सेनापतित्व स्वीकार नही कर सकता। मुझे सन्देह है कि मेरे सेनापति होने पर वह मेरी आज्ञाओ का पालन भी करेगा।"

"पितामह ! आपके सहारे पर तो हम ने युद्ध ठाना है। आप ही ऐसी बात करेंगे तो कैसे काम चलेगा। आप कर्ण को भूल जाइये और सेनापतित्व स्वीकार कीजिए।"—दुर्योधन ने विनती की।

"तुम पहले कर्ण से बात करो। मैं जानता हूं कि तुम मेरे परामर्श से अधिक कर्ण की बात मानते हो। उसके रहते मैं कोई उत्तर नही दे सकता।"—भीष्म पितामह ने दो टूक उत्तर दिया।

दुर्योधन चुपचाप वहा से वापिस चला गया और कर्ण से सारी बात आकर कही। उसे क्रोध हो आया, बोला—"पितामह सदा ही मेरा अनादर करते रहते है। मै भी व्रत लेता हूं कि जब तक पितामह जीवित है तब तक मै रण मे भाग नही लूंगा और जब रण मे उतरूगा तो अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव का वध नही करूगा।"

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन बड़ा चिन्तित हुआ। पर तीर हाथ से छूट चुका था अब कर्ण का निश्चय बदलवाना सम्भव नहीं था। वह विवश होकर पुनः पितामह के पास गया और कर्ण के व्रत की बात कह सुनाई। पितामह बोले—"बेटा ! उस अभिमानी

के व्रत से तुम चिन्तित क्यो होते हो। यदि वह मेरे रहते रण मे भाग नही लेगा तो मै सेनापतित्व स्वीकार करता हू। पर यह साफ बताए देता हू कि पाण्डु पुत्रो का बध करने की इच्छा से मे आगे वढकर युद्ध न करूगा। मै जानबूझ कर उनका वध नही करूगा। पर लड़ूगा पूर्ण शक्ति से।"

बेचारे दुर्योधन के पास अब क्या चारा था? कोई दूसरा उपाय भी तो नही था। उसने पितामह की बात मन से स्वीकार कर ली और विधिवत उनका अभिषेक कर दिया गया। पितामह के नायकत्व मे कौरव सेना सागर की भाति लहरे मारती हुई कुरुक्षेत्र की ओर प्रवाहित हुई।

✻ तीसवां परिच्छेद ✻
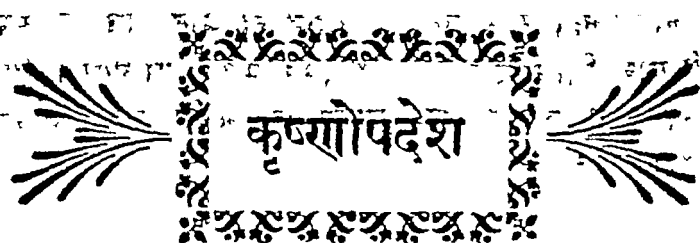
भारत के दुर्भाग्य ने अगडाई ली। शाति और समझौते की वार्ताएं असफल हो चुकी थी और अब दोनो ओर की सेनाए रण स्थल में जा पहुची थी। दोनो ओर से व्यूह रचना हो चुकी थी। कौरवो की छाती अभिमान के मारे फूल रही थी। उन्हे कुरुक्षेत्र में सजी खड़ी सेना को देख देख कर अपने पर गर्व हो रहा था और बाट देख रहे थे उस समय की जब कि दोनो सेनाओ की भिड़न्त होगी और वे अपनी विशाल सेना के बल पर पाण्डवो को परास्त कर के अपनी विजय पताका फहरा देंगे और "न रहेगा वास न बजेगी वासुरी" की लोकोक्ति अनुसार राज्य के लिये झगडने वालो को समाप्त कर सदैव के लिए निश्चित होकर राज्य करने का अवसर प्राप्त कर लेंगे। पर कौरवो का यह स्वप्न कोरी कल्पना पर आधारित है, अथवा इस में कोई सच्चाई भी है इस का पता तो युद्ध की समाप्ति पर चलेगा। हा! दुर्योधन की आंखे चमक रही हैं। दु.शासन के मुख पर उल्लास है, और अन्य भ्राताओ की भुजाए फडक रही हैं। इस समय कोई उनकी दशा देखे तो कदाचित उसे यह विश्वास करने देर न लगे कि कौरवो को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास है।

—परन्तु वह समय आयेगा या नहीं, जिसकी कल्पना उन्होने की है, यह बात भविष्य के गर्भ में छुपी है। अभी तो कौरवों की

आत्म परीक्षा का समय कुछ दूर है।

क्योंकि युद्ध आरम्भ होने से पूर्व, अभी एक बात और भी होनी है। वह है युद्ध के नियमो की रचना। ऐसे नियमो की जिन पर युद्ध की रीति नीति आधारित होगी। उन दिनो की रीति के अनुसार दोनो ओर के सेना नायक मिले और समझ बूझकर सर्व सम्मति से कुछ नियम निश्चित किए। वे थे :—

प्रतिदिन सूर्यास्त के उपरान्त युद्ध बन्द हो जायेगा। युद्ध की समाप्ति के उपरान्त दोनो पक्ष के लोग आपस मे मिलें। समान बल वालों मे ही टक्कर हो। अनुचित और अन्याय पूर्ण ढंग से कोई लड नही सकता।

सेना से दूर हट जाने वालों पर बाणो या अस्त्रों का प्रहार न हो। रथी, रथी से हाथी-सवार हाथी सवार से, घुड-सवार घुड सवार से, और पैदल पैदल से, विमान-सवार विमान सवार से तथा विकट-गाडी विकट गाडी से ही लडे। शत्रु पर विश्वास करके जो लडना बन्द कर दे उस पर या डर कर हार मानने या सिर झुकाने वाले पर शस्त्र का प्रयोग नही होना चाहिए। दो योद्धा आपस मे युद्ध कर रहे हो तो, उन को सूचना दिए बिना, या सावधान किए बिना, तीसरे को उन पर या किसी एक पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए। नि शस्त्र, असावधान, पीठ दिखा कर भागने वाले या कवच से रहित को शस्त्र चला कर नही मारना चाहिए। शस्त्र पहुचाने या ढोने वालो, अनुचरो, भेरी बजाने वालो और शख फूकने वालो पर भी हथियार नहीं चलाया जायेगा।

उपरोक्त नियमो को देख क्या कोई कह सकता है कि इन नियमो को मान कर लडने वाले कोई असभ्य या अनुचित कार्य करने वाले लोग थे? इन नियमो को बनाते समय वृद्ध आचार्यों और धर्म राज युधिष्टर ने विशेष तौर पर अपने धर्म अपनी मर्यादा और अपने कर्तव्य को खण्डित न होने देने का प्रयत्न किया था। क्या आज के युग मे कोई भी युद्ध इतनी मानवीय शर्तों को मान कर किया जाता है? वास्तव मे यह नियम चीख चीख कर कह

रहे है कि चाहे युद्ध का कारण कुछ रहा हो और चाहे कोई भी अन्यायी या न्यायी हो पर दोनो ही पक्षो का नेतृत्व सुलझे हुए धर्म ध्यानी और कर्तव्य निष्ठ लोगो के हाथ में थे।

—तो युद्ध के नियमो को दोनो पक्षो के महारथियो ने प्रतिज्ञा पूर्वक स्वीकार किया।

दुर्योधन ने व्यूहरचना युक्त पान्डवो की सेना को देख कर और द्रोणाचार्य के पास जाकर प्रणाम करते हुए कहा—"आप के बुद्धिमान शिष्य द्रुपद पुत्र धृष्ट द्युम्न द्वारा व्यूहाकार खडी की हुई पाण्डु पुत्रो की इस बडी भारी सेना को देखिये। इस सेना मे बड़े बड़े धनुषो वाले तथा युद्ध मे भीम और अर्जुन के समान शूरवीर, सात्यकि, और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्ट केतु और चेकितान तथा बलवान काशीराज, पुरुजित. कुन्ती भोज और मनुष्यो में श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एव द्रौपदी के पाचो पुत्र यह सभी महारथी हैं।"

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन की बात सुन कर गम्भीरता पूर्वक कहा—"सामने खडी सेना की शक्ति को मैं समझता हू। रण क्षेत्र मे आकर यह मत देखो कि कौन बडा योद्धा है, बल्कि यह सोचो कि कौन किस की टक्कर का है। दुर्योधन! ओखली मे सिर देकर मूसलो से डरने की बात मत करो।"

दुर्योधन गरज उठा—'आचार्य जी! आप के आशीर्वाद से हमारी ओर इतनी शक्ति है कि पाण्डव सारे ससार को ला कर भी विजयी नही हो सकते। मुझे तो गर्व है अपनी शक्ति पर। ओखली मे सिर तो पाडवो ने दिया है। आप मुझे गलत न समझिए।"

उसी समय दुर्योधन के हृदय मे हर्ष, उल्लास और विचित्र उत्साह भर देने के लिए वृद्ध परम प्रतापी भीष्म ने उच्च स्वर से सिंह गर्जना कर के शख बजाया। और उसी समय शख नगारे, ढोल मृदग तथा नरसिंगे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। बड़ा भयकर शब्द हुआ वह।

दूसरी ओर से भी इस भयंकर ध्वनि का उत्तर उतनी ही भयकरता से दिया गया। सफेद घोडो से युक्त उत्तम रथ मे बैठे हुए श्री कृष्ण तथा अर्जुन ने भी अपने अपने अलौकिक शख बजाए। श्री कृष्ण के पाच जन्य, अर्जुन के देवदत्त, कर्मवीर भीमसेन के पौण्ड्र नामक शखों की ध्वनि ने सारे वातावरण को कम्पित कर दिया। और उन शख ध्वनिओं के साथ ही कुन्ती पुत्र धर्म राज युधिष्ठिर ने अनन्त विजय नामक, नकुल तथा सहदेव ने सुघोष तथा मणि पुष्पक नामक शंखों से भयकर ध्वनि की। इतनी भयकर थी वह ध्वनि की एक बार दु.शासन तथा शकुनि आदि का हृदय कांप उठा। जैसे यह ध्वनि न होकर यमलोक से आ रही मृत्यु की ध्वनि हो। वज्रपात होने का सन्देश हो।

युद्ध आरम्भ होने वाला था, महानाश का ववडर उठने वाला था भारत के अनगिनत वीर पुरुषों के सिर पर मृत्यु मण्डराने वाली थी कि धनुर्धारी अर्जुन ने श्री कृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहा—"तनिक इन सब योद्धाओं को जो दोनों ओर से रण स्थल मे अपने अपने हाथ दिखाने आये हैं, देख तो लूं। कृपा कर मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच मे ले चलिए। मैं उन के मुखो को देख कर जानना चाहता हू कि इस समय उन के हृदय मे कैसे कैसे भाव उठ रहे है। क्या सेनाओ के सजने के बाद भी भयकर युद्ध की अशका से दुर्योधन और उस के सहयोगियो के हठवादी हृदय पर कोई चोट नही पहुची?"

श्री कृष्ण तो उस समय द्वारिका नरेश न होकर सारथी मात्र थे, अर्जुन की आज्ञा पाकर उन्हों ने रथ दोनो सेनाओ के बीच मे लें जाकर खडा कर दिया। और बोले—"पार्थ! युद्ध के लिए जुटे हुए इन कौरवों को देखो। यह सब तुम्हारे शौर्य को देखने और पराजित होने के लिए खड हैं। इन्हे अपनी विशाल सेना पर गर्व है; पर इन मे से कितने ही सद्बुद्धि वृद्ध हैं जो मन ही मन युद्ध के परिणाम के प्रति सन्दिग्ध हैं। उन्हे तुम्हारे धनुष का जौहर मालूम हैं। वे तुम्हारे भ्राताओं और तुम्हारे अन्य सहयोगियों के असीस वल से परिचित हैं। और स्वय समझते है कि सिह के सामने असख्य भेडों की भीड भी कुछ नही कर पाती।"

श्री कृष्ण ने अर्जुन को उत्साहित करने के लिए ही उक्त शब्द कहे थे। अर्जुन ने श्री कृष्ण की बात तो सुनी पर उस की दृष्टि थी कौरवो की सेना की ओर। जिस मे उस के गुरु, आदरणीय वृद्ध, परिवार के अन्य सदस्य, तथा कितने ही रिश्तेदार मौजूद थे। अर्जुन ने दोनो सेनाओं पर दृष्टि पात किया। इस की जिधर दृष्टि गई उधर ही स्वजन दिखाई दिए। सेनाओं मे स्थित, ताऊ चाचो को, दादों परदादों, गुरुओ को, मामाओं को, भाईयो को, पुत्रों को, मित्रों को, ससुरो और सुहृदों को भी देखा उस ने देखा कि दोनो ओर उस का पूरा परिवार कौरव कुल ही खड़ा है। महाराज शान्तनु के वशज, दोनों ओर एक दूसरे के शत्रु रूप मे, एक दूसरे का काल बनने के लिए खडे हैं। उस नें अनुभव किया कि करोड़ों वीर रण बाकुरे अपने प्राणो का मोह त्याग कर हाथो में शस्त्र-अस्त्र लिए भयंकर सग्राम करने खडे है। अर्जुन के मन में उसी समय एक भाव उत्पन्न हुआ, वह था करुणा का भाव। भरत खण्ड के चुने हुए योद्धा इस युद्ध में आगए है। अभी ही कुछ देरी में युद्ध आरम्भ हो जायेगा और रक्त की नदिया वह जायेंगी सारी पृथ्वी का गौरव रक्त रजित हो जाये गा। यह वीर, जिनके भाल पर तेज विद्यमान है, यह विद्वान जिनकी संसार को आवश्यकता है ताकि मुझ जैसे कितने ही अन्य अर्जुन उत्पन्न हो सकें यह क्षत्रिय कुल गौरव, यह नरेश और यह सौम्य मूर्तियां, सभी तो इस रण भूमि मे एक दूसरे के लिए यमदूत का काम करेगे और न जाने इस युद्ध के कारण इस धरती पर कौन जीवित रहे, कौन न रहे ?

अर्जुन का मन काप उठा, यह सोच कर कि रण भूमि मे उसके गुरु और भीष्म पितामह तक उपस्थित हैं; क्या मुझे अपने गुरुदेव पर ही बाण उठाना होगा ? मैं तो सदा भीष्म पितामह के चरणो को पूजता रहा हूं, क्या उन पूजनीय भीष्म जी को मुझे ही अपने शस्त्रों से मार डालना होगा ?—ओह क्या इन गुरुओं और वृद्ध जनों को उनकी कृपाओं का यही बदला दे सकता हूं ? नही नही यह पूर्णतया कृतघ्नता है। मैं जिनकी गोद मे पला हूं, जिनके प्रताप से मैं धनुर्धारी हुआ हू, जिनकी कृपा मे मुझे विद्या

दान मिला है, मैं उन के प्राण भला कैसे हर सकता हूँ? वीर होकर कृतघ्न कैसे हो सकता हूं।

उसी समय उसके मन मे यह बात भी आई कि यदि मैं अपने पूजनीय लोगों से भी युद्ध करने से बच जाऊ तो भी मुझे व्यर्थ का रक्तपात तो करना ही होगा। यह जो असंख्य वीर पुरुष खड़े हैं, जो जीवन यापन करने के लिए सेना मे भरती हुए है, जो अपने स्वजनो का पेट भरने के लिए दुर्योधन की सेना मे सम्मिलित हो गए हैं, इन बेचारों ने मेरा क्या बिगाडा है। मेरे बाणो से हा, कितनी ही बहनो का सुहाग लुट जायेगा, कितने बालक अनाथ हो जायेंगे, कितनी ही माताओ की गोद खाली हो जायेगी। मेरे द्वारा कितने ही निरपराधी बालको, बहनों और माताओ की आशाए, कल्पनाए और सुखद स्वप्न धूल धूसरित हो जायेंगे। इन के जीवन की ज्योतियां बुझ जायेगी और मेरे कारण रण भूमि मे रक्त और घरो मे आंसुओ की धाराए फूट पड़ेंगी। मैं भी पृथ्वी के वीर रहित कर दिए जाने का दोषी हो जाऊंगा। यह सोचकर अर्जुन का शरीर शिथिल हो गया। उस का मन शोक सन्तप्त हो गया।

अर्जुन की यह दशा देखकर श्री कृष्ण समझ गए कि पार्थ युद्ध के प्रति उदासीन हो रहा है। पूछ बैठे—पार्थ! क्या सोच रहे हो?"

अर्जुन ने श्री कृष्ण का प्रश्न सुना पर बोला कुछ नही। उस के मस्तिष्क मे जिन भाषित धर्म की शिक्षाए जागृत हो गईं। वह सोचने लगा कि हिंसा तो भयंकर पाप है। ऋषभ देव जी ने तो फरमाया है कि किसी प्राणी को दुःख देना या उसका वध करना महापाप है। भगवान ने तो कहा है —

समे जीवैपिणो जीवा न मृत्यु कश्चिदहिते।
इतिज्ञात्वा बुधा. सर्वे न कुर्युजवि हिंसनम्॥
(श्री मद् गी० गी० ४६)

सम्पूर्ण प्राणी जीना चाहते है। मरना कोई भी नही चाहता, इस लिए किसी भी बुद्धिमान को जीव हिंसा नही करनी चाहिए।

जिन भाषित धर्म की शिक्षाओ का ध्यान आना था कि

भगवान के उपदेश एक के बाद एक उसके मन मे उठने लगे। उसे ध्यान आया—

> निस्पृहः साधको नित्यं जागृति प्राणिनोऽखिलान्।
> आत्मवत्सर्व मालोच्य नहि वैरायते क्वचित्॥

निस्पृह साधक संसार मे सब प्राणियो को आत्मवत् समझ कर किसी भी प्राणी के साथ कभी भी वैर नही करता।

यह धर्म शिक्षा स्मरण होते ही अर्जुन को ऐसा लगा मानो उससे कोई बड़ा पाप हुआ हो। उसका मन उसे धिक्कारने लगा।—धनुष बाण की पकड ढीली हो गई और खडा न रह सका बैठ गया। श्री कृष्ण ने यह दशा देखी तो उन के मन में एक विचित्र आशका उठी। उन्होने फिर वही प्रश्न उठाया 'पार्थ! तुम क्या सोच रहे हो? तुम तो रण भूमि मे आकर सदा शत्रुओ पर बिजली की भांति टूट पडने के आदी थे। तुम्हारे धनुष की टकार से ही शत्रुओ के दिल दहल जाते हैं। पर आज जब कि कौरव सेनाओ का सामना हुआ और तुम ने इतनी विशाल सेना को देखा तो तुम्हारे चेहरे का रग क्यो उड़ गया? गाण्डीव तुम्हारे हाथो से क्यो छूट गया और रण भूमि मे आकर कायरो की भाति कैसे बैठ गए?"

अर्जुन ने कहा—"मैं कायर नहीं। श्री कृष्ण जी मैं पथभ्रष्ट हो गया था, इस रण भूमि में आकर मेरी आंखे खुल गई।"

अर्जुन के उत्तर से श्री कृष्ण को बडा आश्चर्य हुआ। पूछा—"पथ भ्रष्ट कैसे? आंखें खुलने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है?"

"स्वामिन्! आप देख रहे है कि सामने शत्रु रूप मे शस्त्र लिए कौन कौन खड़े हैं?" अर्जुन ने कहा "कौरव और उनकी सेना"

"इन मे मेरे आदरणीय व पूजनीय गुरुदेव तथा पितामह भी हैं।"

"हां, हैं तो हुआ क्या?"

"और यह भी आप देख ही रहे है कि भरत खण्ड के कितने ही वीर रण बाकुरे, जिन्हो ने हमे कभी कोई हानि जान बूझ कर अपनी इच्छा से नही पहुचाई, हमारे विरोधी बनकर रण मे उतरे है ?"

"पूरी बात तो बताओ। देखने को तो मैं सब कुछ देख रहा हू।"

"तो महाराज ! आप ही बताइये कि क्या इन आदरणीय जनो और निरापराधो का रक्त भला क्यो बहाऊ ? मैं जिस धर्म का अनुयायी हूं उस ने तो मुझे आज्ञा दी है कि मैं किसी निर्दोष प्राणी का वध न करू। फिर मैं यह रक्तपात करके अपने लिए नरक क्यो मोल लूं ?—नही मुझ से यह पाप न हो सकेगा ?"

अर्जुन का उत्तर सुनकर श्री कृष्ण को कुछ हसी आई उन्होने गम्भीरता पूर्वक कहा—"पार्थ ! ऐसे समय भी तुम्हे धर्म शिक्षा का ध्यान आया, अहोभाग्य ! तुम प्रशसा के पात्र हो। तुम धन्य हो। पर जिन भाषित धर्म की आड़ लेकर अपनी कायरता को मत छिपाओ।"

"कायरता—कैसी कायरता ? मैं ससार की किसी भी शक्ति के सामने घुटने नही टेक सकता। पर वीरता का तो यह अर्थ नही कि अपने बाहुबल को पापयुक्त कर्मो में लगाता फिरू।"—अर्जुन ने उत्तर दिया।

"पार्थ ! तुम ने जिन भाषित धर्म का तो उल्लेख किया पर पता भी है कि भगवान ने कहा क्या है ?"

"हां, मुझे ज्ञात है कि उन्होने जीव वध को पाप बताया है। मनुष्य को अहिंसक होने का उपदेश दिया है। हिंसा को भयकर पाप कहा है।" अर्जुन ने उत्तर दिया।

"पार्थ ! तभी तो कहा है कि अधूरा ज्ञान व्यक्ति को ले डूबता है।

'नीम हकीम खतरे मे जान'

तुम ने तीर्थङ्कारो की शिक्षा तो याद रक्खी पर उसका मर्म नही समझे ?"

श्री कृष्ण की बात से अर्जुन तिलमिला उठा। कहने लगा— "क्या मै कही भ्राति का शिकार हो गया हू ?"

"हा, ऐसा ही है।"

"कैसे ?"

"अर्जुन ! तुम भूलते हो। भगवान ने अहिंसा के सम्बन्ध में जो उपदेश दिया है वह इस प्रकार है :—

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणिवह घोर, निग्गथा वज्जयति ण ॥

अर्थात्—सभी जीना चाहते हैं मरना कोई भी नही चाहता। इस लिए निर्ग्रन्थ मुनि महाभयावह प्राणिवध का सर्वथा त्याग करते हैं।

इसका अर्थ स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ (जैन) मुनि ही भगवान की इस आज्ञा का कि किसी जीव का वध न करो। पालन करते हैं। गृहस्थी से यह आशा नहीं की जा सकती ग्रथो में साफ़ साफ़ माना गया है कि :—

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे।
पाणाइवाय विरई, जावज्जीय वाय दुक्कर ॥

जीवन पर्यन्त ससार के सभी प्राणियो पर, फिर भले ही वह शत्रु हो अथवा मित्र, समभाव रखना तथा सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना वड़ा ही दुष्कर है।

ता सव्व जीव हिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहि ॥

इसी लिए आत्मार्थी महापुरुषो ने (ही) सर्वथा हिंसा का परित्याग किया है।

सो; अर्जुन ! तुम जो कि एक सद्‌गृहस्थी हो उन नियमो का पालन नही कर सकते जो महाव्रती मुनिगण के लिए बताए गए हैं। तुम्हे गृहस्थ मे रहना है तो भगवान के कथनानुसार केवल स्थूल हिंसा से ही बच सकते हो।"

श्री कृष्ण के उपदेश को सुनकर अर्जुन ने कहा—"पर आखो देखे, पाप को करना तो भूल है। जब कि मैं जानता हू कि मैं जो कुछ करने जा रहा हू उससे भयकर हिंसा होनी है तो फिर जानबूझ कर पाप के गड्ढे मे क्यो गिरू ?

श्री कृष्ण बोले—"पार्थ ! अभी तक तुम्हारे मस्तिष्क पर भ्रान्ति का परदा पड़ा है। भगवान के द्वारा बताये गए श्रावक धर्म के नियमो का स्मरण करो। यदि तुम जानबूझ कर हिंसा करना पाप समझते हो तो फिर मुनिव्रत धारण क्यो नही करते ?—अर्जुन हिंसा चार प्रकार की होती है।

(१) सकल्पी हिंसा—अर्थात् निरापराधी को जानबूझ कर मारना सताना।

(२) आरम्भी हिंसा—खाने पीने आदि में जो जीव हत्या होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते है।

(३) उद्योगी हिंसा—देश की उन्नति के लिए कृषि करने, उद्योग धन्धो आदि मे जो हिंसा होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं।

(४) विरोधी हिंसा—देश, सतीत्व, मान, मर्यादा, निपराधी की रक्षा, न्याय, धर्म आदि की रक्षा करने के लिए आक्रमणकारी को अपराध करने से रोकने मे जो हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

इन चार प्रकार की हिंसाओ मे से गृहस्थी से संकल्पी हिंसा का ही त्याग हो सकता है। तीर्थङ्करो ने श्रावक को उपदेश दिया है कि वह किसी निरापराधी जीव को जानबूझ कर, वध करने के उद्देश्य मात्र से ही न मारे। और शेष तीन प्रकार की हिंसाए मर्यादा बाध कर करने पर गृहस्थी विवश है। आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा और विरोधी हिंसा की मर्यादा के भीतर रह कर करते रहने वाले गृहस्थी के गृहस्थ नियम सुरक्षित रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति पागल हो जाये। तो उसे काबू मे रखने और कोई अनुचित कार्य करने से रोके रखने के लिए उसे बाधकर रखना तथा अन्य कड़े नियन्त्रणो की आवश्यकता होती है। तो क्या कोई यह कह सकता है कि पागल को इस लिए नियंत्रण मे न रक्खो कि तुम्हारे कठोर व्यवहारो से हिंसा होगी। नही? ऐसा तो करना ही होगा और करना पडता है स्वय पागल के हित के लिए। राम और रावण का युद्ध ही लो। क्या राम ने रावण के विरुद्ध खड्ग उठाकर कोई ऐसा पाप किया था जो किसी गृहस्थी के लिए अनुपयुक्त है। नही? उस समय रावण के विरुद्ध युद्ध करना आवश्यक था। रावण के अन्याय के विरुद्ध राम चन्द्र का युद्ध विरोधी हिंसा थो। इसी प्रकार तुम्हारा युद्ध विरोधी हिंसा होगी। इस लिए तुम्हे भ्राति नही होना चाहिए। उठो और जिस उत्साह के साथ रण स्थल मे आये थे उसी उत्साह पूर्वक शत्रुओ का मान मर्दन करो।"

श्री कृष्ण की युक्ति पूर्वक बात का अर्जुन पर काफी प्रभाव पडा। पर अभी वह शका रहित न हुए थे। कहने लगे—"महाभाग! आप की यह बात मान लू तो भी मैं सोचता हू कि राम और रावण का युद्ध तो दो विरोधी नरेशो का युद्ध था। जिनमे रक्त का कोई सम्बन्ध नही था। परन्तु मैं जिनके विरुद्ध लडने आया हू वे तो मेरे अपने है। स्वजनो के विरुद्ध लडना भला कैसे उचित हो सकता है!"

और हे केशव! मैं रण क्षेत्र मे स्वजनो का बध करने मे अपना कल्याण नही देखता। मैं न तो ऐसी विजय चाहता हू और न राज्य तथा वैभव को ही, जिसके लिए मुझे अपने प्रिय बन्धुओ

और माननीय वृद्धजनो पर तलवार उठानी पडे। हमे नही चाहिए ऐसा राज्य जिसके लिए मेरा अपना परिवार ही नष्ट हो जाय। ऐसे राज्य मे भला क्या लाभ ? हमे जिनके लिए राज्य भोग और सुखादि अभीष्ट हैं वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध मे खड़े हैं। गुरुजन, ताऊ चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर नाती, तथा और भी सम्बन्धी लोग है। मधुसूदन ! चाहे यह सब लोग मुझे मिल कर मौत के घाट उतार दें परन्तु मैं तीनो लोको के राज्य के लिए भी इन सब को मारना नही चाहता। फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या ? जनार्दन धृतराष्ट्र के पुत्रो को मार कर भला हमे क्या प्रसन्नता होगी। इन आततताइयो को मार कर भी हमे पाप ही लगेगा। और अपने परिवार को मारकर भला हम कैसे यश प्राप्त कर सकते है।"

रण भूमि मे शोक से उद्विग्न मन वाला अर्जुन इस प्रकार कह कर धनुष वाण एक ओर रख कर नीचा सिर कर के बैठ गया। श्री कृष्ण समझ गए कि जब तक अर्जुन शंका रहित नही होगा, तब तक रण के लिए उद्यत नही हो सकता। उसे परिवार का मोह सता रहा है। वह मोह जाल मे फस कर विजय को भावी पराजितो के चरणो मे सौप देना चाहता है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि अर्जुन को ऐसा पाठ पढाया जाय कि वह परिवार के मोह को त्याग कर के उत्साह पूर्वक गाण्डीव उठाले। इस लिए श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा—"जिन भाषित धर्म की दुहाई तो तुम देते हो पर इतना भूल गए कि मोह असख्य प्रकार दुष्कर्मों तथा पापो को जन्म देता है। मोह ही जग वैतरणी से पार नही उतरने देता। तुम क्षत्रिय हो। तुम्हे इस प्रकार की बातें शोभा नही देतीं। अर्जुन यह सामने जितने जीव खडे हैं उन्हें किसी न किसी दिन मरना अवश्य है। जिस प्रकार पतझड आने पर पत्ते स्वयमेव ही टूट कर भूमि पर गिर पडते है, इसी प्रकार का सन्देश मिलने पर जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अतएव जिन्हे तुम आज मृत्यु से बचाना चाहते हो, वह किसी न किसी दिन अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगे और तुम उनकी कोई सहायता न कर सकोगे। आत्मा तो नित्य है। किसी की मृत्यु

से घबराकर यदि तुम अपने कर्तव्य से गिर जाते हो तो वह भी एक महा पाप हो जाता है। तुम यहा न्याय प्रतीक हो कर अन्याय की रोक थाम के लिए आए हो और तुम्हारा सामना करने आये लोग चाहे वह तुम्हारे कोई भी हो, इस समय अन्याय और अधर्म के पक्ष पाती है। धर्म कहता है कि तुम अन्याय को सहन न करो। अन्याय को सहन कर लेना भी अन्यायियो को सहयोग देने के समान ही है। क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह अपने देश, न्याय, धर्म, मान मर्यादा आदि की रक्षा के लिए अन्यायी का सामना करे और या तो वीर गति को प्राप्त हो अथवा विजय पताका फहरा कर न्याय का बोल बाला करे। यदि आज तुम ने अन्यायियो को अपने परिवार के कारण अन्याय करते रहने को छोड दिया तो सोचो कि यह मोह, यह पक्षपात, अन्याय की वृद्धि मे सहयोगी नही होगा? क्या तुम भी उसी पाप के भागीदार नही होगे जो आज कौरव कर रहे है?"

अर्जुन ने कहा—"आप की बात ठीक भी हो तो भी मैं कैसे रण भूमि मे अपने बाणो से भीष्म पितामह और गुरुदेव द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूगा?"

"पार्थ! तुम भूलते हो,—श्री कृष्ण बोले—जो लोग यह जानते हुए भी कि तुम उनके अपने हो। उन के साथ तुम उचित व्यवहार करते हो। तुम ने कभी शिष्टाचार अथवा धर्म के प्रतिकूल कार्य नही किया, यह जानते हुए भी तुम्हारे गुरुदेव तथा पितामह तुम्हारे विरुद्ध अन्यायी के पक्षपाती होकर आये है, तो स्वजन के प्रति चलने वाले शिष्टाचार तथा कर्तव्य को तो उन्हो ने ही भग कर दिया। इन लोगो का यहा तुम्हारे विरुद्ध आना इनकी अशुभ प्रकृति का द्योतक है। अब तुम्हे उन के विरुद्ध धनुष उठाने मे कोई आपत्ति होनी ही नही चाहिए। यदि पितामह और गुरुदेव तुम्हारे विरुद्ध शस्त्र प्रयोग कर सकते हैं तो फिर तुम्हे शस्त्र प्रयोग करने मे कोई हिचक नही होनी चाहिए। जैसी किसी की प्रकृति होती है उस के सामने वैसी ही प्रकृति आ जाती है।

"हे गिरधारी! मैं उसी पाप को करने को क्यो तैयार हो

जाऊ जो उन्हो ने किया है ? अर्जुन ने कहा—पाप यदि बडो द्वारा किया जाता हो तो भी वह धर्म तो नही हो जाता।"

'ठीक है, परन्तु क्षत्रिय देश धर्म की रक्षा करता हुआ लडता है। क्षत्रियो के लिए धर्म युक्त युद्ध से बढ कर तो दूसरा कोई कल्याण कारी कर्तव्य नही है। यदि तुम इस अवसर पर कायरता और मोह के पचडे मे फस जाओ तो विश्वास रक्खो कि आने वाली सन्ताने तुम पर थूकेगी। और स्वधर्म को खोकर अपकीर्ति प्राप्त करोगे।"—श्री कृष्ण बोले।

अर्जुन ने पुन. प्रश्न किया—"तो क्या अधर्म से ही कीर्ति मिलती है।"

"नही, कदापि नही,—श्री कृष्ण ने शका समाधान करते हुए कहा—तुम जिसे अधर्म समझ बैठे हो वह अधर्म तो है ही नही, वरन तुम्हारा कर्तव्य है जिस से तुम विमुख होना चाहते हो। धर्म क्या है पहले उसे समझो। धर्म तो आत्मा के स्वभाव को कहते हैं। कर्तव्य का दूसरा नाम धर्म है।

माणिणिहिज्जवीरिय

अपनी वीरता को मत छुपाओ अन्याय करना तो पाप है किन्तु अन्याय सहन करना दूसरों पर अन्याय होता हो तो उसे चुप चाप देखते रहना दोनो परिस्थितियो मे वलवीर्य अतराये कर्म का वधन होता है अतः शक्ति हो तो अन्याय का प्रतिकार करो यदि शक्ति न हो तो अन्यत्र प्रस्थान करो किन्तु खड़े खड़े अन्याय का अवलोकन मत करो तथा शनै शनैः शक्ति प्राप्त कर अन्याय को नष्ट करने का पूर्णत' सफल प्रयत्न करो। यदि तुम ने इस समय गाण्डीव न सम्भाला तो नीच दु.शासन जैसो का दाव चल जायेगा और संसार मे आततइयों की वन आयेगी। फिर तो न्याय पर अन्याय की विजय के लिए रास्ता खुल जाएगा। यह युद्ध जो तुम करने वाले हो, केवल तुम्हारे अपने हित मे ही नही है वरन इसका प्रभाव सारे संसार पर पडने वाला है। और तुम जो वार वार स्वजन की वात उठाते हो तो अपने शास्त्रो को उठा

कर देखो कि वे क्या कहते हैं। कहा है कि.—

नाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा
तुमपि ते सि नाल ताणाए वा सरणाए वा

स्वजन सम्बन्धी लोग पाप के फल भोगने के समय तुम्हारी रक्षा नही कर सकते, न तुम्हे शरण दे सकते है, तुम भी उन के त्राण एव शरण के लिए समर्थ नही हो।

'जव तुम्हारी आत्मा पर कोई आपत्ति आयेगी तो तुम्हारी रक्षा न तुम्हारे गुरुदेव कर सकते हैं और नांही पितामह, कौरवो की तो वात ही क्या है ? न तुम्हारे पाप मे भाग वटा सकते हैं। तुम्हारी अपनी आत्मा स्वतन्त्र है, तुम्हारे वन्धु तथा अन्य स्वजन तो तुम्हारी मोह वृति से ही तुम्हारे है, वरना प्रत्येक अपने अपने कर्मो का फल भोगता है मोह को छोड़ कर तुम्हें अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिए।"

"हे गोविन्द ! आप यह तो वताइये कि यदि मैं इस रण मे भाग न लूं तो मेरी आत्मा पर क्या प्रभाव होगा ? मैं पुण्य कमाऊं गा या पाप ?"—अर्जुन ने पूछा।

"हे पार्थ ! जो अपने कर्तव्य से पीछे हट जाता है उस का कभी कल्याण नही होता। तुम्हारी आत्मा पर तुम्हारे भावो और कार्यों का अवश्य ही प्रभाव पडना है। 'जो कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा, अर्थात जो कर्म मे शूर होता है वह धर्म मे भी शूर होता हैं। तुम रण स्थल से चले जाओगे तो मोह के कारण और महाराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा को अधूरा छोड कर। इस लिए तुम स्वय सोच लो कि इस कर्तव्य विमुखता और विश्वास घात का तुम पर क्या प्रभाव होने वाला हैं।"—श्री कृष्ण ने उत्तर दिया।

कृष्ण के उत्तर को सुन कर अर्जुन सोच मे पड़ गया। कुछ देर विचार करने के उपरान्त वह फिर बोला—"परन्तु एक परिवार ही केवल एक राज्य के लिए लड़े या रक्त पात करे यह कहा तक उचित है ?"

"केवल राज्य की ही वात होती तो मैं तुम्हे कभी युद्ध के

लिए प्रेरित नही करता।—श्री कृष्ण कहने लगे—परन्तु यह तो प्रश्न है न्याय तथा अन्याय का। इस युद्ध मे यह निश्चय होना है कि न्याय की विजय होती है अथवा अन्याय की। तुम्हे न्याय का सिर नीचा कराना है तो तुम युद्ध से भाग सकते हो"

"फिर भी मुझे बार बार अपने स्वजनो का ध्यान आता है" —अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन! तुम उनके शरीर का आदर करते हो या आत्मा का?"

" ....."

"शास्त्र कहता है:—

जह नाम असी कोसा, अन्नो कोसो असीवि खलु अन्नो।
इह मे अणनो जीवो अन्नो देहुति मन्निज्जा॥

जैसे म्यान से तलवार और तलवार से म्यान भिन्न होती है, इसी प्रकार मेरा यह जीव शरीर से भिन्न और शरीर जीव से भिन्न है। ऐसा सोचकर शरीरक ममत्व दूर करे।

धीरे णवि मरियव्व, काउरिसेणवि अवस्स मरियव्व
तम्हा अवस्स मरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउ॥

वीर पुरुष को भी मरना पडता है और कायर पुरुष के लिए भी मरना आवश्यक है। जब अवश्य ही मरना है तब धीर की प्रशस्त मौत से मरना ही श्रेष्ठ है।

इस लिए हे पार्थ! शकाए छोड कर वीरगति या विजय इन दोनो मे एक प्राप्त करने को तैयार होजा। उठ! तेरे बाण से कोई आत्मा समाप्त होने वाली नही। शरीर नश्वर है, वह मिटना ही है। तुम उसकी चिन्ता क्यो करते हो। मेरा विश्वास है कि विजय तुम्हारी ही होगी।"

श्री कृष्ण के इतना समझाने पर भी जब अर्जुन को रण का उत्साह नही हुआ तब श्री कृष्ण ने गरज कर कहा—"पार्थ! यदि रण भूमि मे जा कर कौरवो की भारी सेना को देख कर तुम अपने साहस को जीवित नही रख सकते थे तो फिर हमे जो केवल तुम लोगों के कारण ही बैठे बिठाए युद्ध मे चले आए है क्यो मूर्ख बनाना

था ? तुम दोनो पक्ष वाले तो आपस मे स्वजन होने की बात लेकर आज एक दूसरे के हुए जाते हो, पर हम लोगो को बीच मे डाल कर क्यो व्यर्थ ही दुर्योधन का विरोधी बनवाया, क्यों व्यर्थ ही दुर्योधन को हमारा शत्रु बनवाया ? हम ने आखिर तुम्हारा क्या बिगाडा था ?

नही, नही, हे गोबिन्द ! ऐसी कोई बात नही, आप गलत समझे मेरा मतलब........."

अर्जुन की बात को बीच मे ही काट कर श्री कृष्ण बोल उठे—"नही पार्थ ! बात बनाने का प्रयत्न न करो ! मैं अब तुम्हारी वास्तविकता को समझा। तुम उतने वीर नहीं हो जितना मैं समझता हू। तुम कौरवो की सेना देख कर घबरा गए हो और स्वजन का बहाना बना कर युद्ध टालना चाहते हो। वरना यदि स्वजन का ही सवाल था तो राजकुमार उत्तर को साथ लेकर तुम अपने स्वजनो के साथ क्यो लडे थे। तुम्हे उस समय कौरव अपने भाई क्यो नही लगे ? क्यो न तुम ने यह कह कर उत्तर के साथ युद्ध मे जाने से इंकार कर दिया था कि गौए चुरा कर ले जाने वाले मेरे भाई हैं, मैं उन के विरुद्ध वाण न उठाऊ गा। और यदि यह तुम्हारे स्वजन ही थे तो क्यो न तुम ने उनकी दासता स्वीकार कर के राज्य के झगडे को समाप्त कर लिया ? क्यो हम सभी को युद्ध मे घसीट लाये ?"

"महाराज ! आप मेरी बात का गलत अर्थ न निकालिए मेरे सामने तो सवाल है रक्त पात से बचने का।"—अर्जुन ने कहा।

"तो क्या तुम कह सकते हो कि तुम ने कभी भी रक्त पात नही किया ?—श्री कृष्ण ने उबलते हुए प्रश्न किया। तुम ने कितने ही युद्ध लडे। क्या उन मे वीर सैनिको का वध नही हुआ तुम्हारा सारा जीवन युद्धो से भरा पडा है। तुम्हारे अपने हाथो से कितने ही योद्धा धाराशायी हुए हैं। तुम्हारे वाणो से कितनों की ही हत्याए हुई हैं। यदि वास्तव मे तुम विरोधी हिंसा तक से बचना चाहते थे तो उस समय जब तुम पुन युद्ध मे उतरा करते थे, तुम्हारा ध्यान इस ओर क्यो नही गया ? नही, नही. मैं समझ गया कि तुम अभी तक अपने को नपुसक की दशा

मे रखने को उत्सुक हो। हाँ, मुझे याद आया कि तुम एक वर्ष तक विराट नरेश के रनिवास मे स्त्रियो को नाच गाना सिखा चुके हो। अब तुम्हारे हाथो मे गाण्डीव उठाने की क्षमता कहा, तुम्हे तो चूडिया चाहिए। तुम द्रौपदी के खुले हुए केशो को भूल गए। तुम दु:शासन द्वारा भरी सभा मे द्रौपदी को वस्त्र हीन करने के नीचता पूर्ण प्रयास को भूल गए। तुम्हे भीम को विष देकर मार डालने का षड्यन्त्र याद नही रहा। और तुम्हे यह भी याद नही रहा कि तुम्हारे इन स्वजनो ने ही तुम्हें, और तुम्हारी माता व भाईयो को लाख के महल में जला डालने का षडयन्त्र रचा था। तुम्हें यह भी याद नही रहा कि इसी तुम्हारे अन्यायी भाई दुर्योधन ने जिसका तुम्हें मोह सता रहा है, महाराज युधिष्ठिर को फसा कर जुए मे हराया था और तुम्हे बन बन भटकने को निकाल बाहर किया था। तुम कदाचित यह भी भूल गए कि जब मैं तुम्हारा दूत बन कर गया था, इन्ही तुम्हारे स्वजनों ने मुझे मार डालने की योजना बनाई थी। तुम कदाचित यह भी भूल गए हो कि तुम्हारे बाहुबल के आसरे पर सती द्रौपदी ने दुष्टो से बदला लेने की प्रतीज्ञा की थी। हा, तुम्हे यह सारी बाते क्यों याद रहने वाली है तुम तो रण क्षेत्र से भाग जाने के लिए उपयुक्त बहाने खोज रहे हो। पार्थ ! यदि यह बात नही तो बताओ कि जो बाते तुम्हे इस समय सूझ रही है, रण भूमि मे आने से पहले तुम्हे क्यों न सूझी। जहा तक तुम्हारे गुरुदेव तथा भीष्म जी से युद्ध का प्रश्न है, यदि इनकी दृष्टि मे भी तुम्हारा इतना ही मान होता जितना होना चाहिए था: तो फिर बताओ वे दुष्ट दुर्योधन के साथ क्यों जाते ? नही, नही। तुम कायरता दिखा रहे हो। तुम पाण्डु नरेश के नाम को कलकित कर रहे हो तुम कुन्ती माता की कोख को बट्टा लगा रहे हो।"

श्री कृष्ण के शब्दो के प्रभाव से क्रुद्ध सिंह की नाई अर्जुन अगडाई लेकर उठा। उसने गाण्डीव सम्भाला और कड़क कर बोला—"श्री कृष्ण जी ! आप मुझे कायर कहकर क्रुद्ध न कीजिए। मुझे अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। कौरव चाहे कितनी ही विशाल सेना क्यो न ले आयें, मैं अपने गाण्डीव के द्वारा उन्हे रक्त

चटा दूंगा। मैं उनके समस्त अन्यायो का बदला लेने की क्षमता रखता हूं। मैं द्रोपदी के आसुओ की लाज रखूगा। मैं दुष्टों की सेना में विद्युत की भाति टूटूगा। मैं जिधर से निकलूगा, गाजर मूलियो की भाति उनके वीरो का सफाया करता हुआ निकल जाऊंगा। मैं अपने को कायर कहलाने के लिए कदापि तैयार नही हू। पर हा, इतना अवश्य कहूगा कि इस ससार से मुझे घृणा होती जाती है। इस युद्ध के समाप्त होने पर मैं तीर्थङ्कारो द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करके प्रायश्चित करूगा और अपनी आत्मा के कल्याण के लिए तपस्या करूगा।"

अर्जुन ने पुनः गाण्डीव सम्भाल लिया। यह देखकर श्री कृष्ण ने उल्लासातिरेक मे पाच जन्य की ध्वनि की और उनकी ध्वनि का अनुसरण करते हुए पाण्डवो की सेना के सभी मुख्य सेना नायको ने शख ध्वनि की। जिस से सारा वातावरण गूंज उठा।

अभी अभी जिस वीर ने राज्य के प्रति विरक्ति प्रगट करके स्वजनो पर बाण न चलाने की वात सोची थी, उसकी धमनियी मे गरम गरम लोहू ठाठें मारने लगा और वह एक विजयी सिंह की भाति छाती ताने गर्व से दोनो ओर की सेना पर दृष्टि डालने लगा। अवकी वार उसने चारो ओर देखकर अपने मन ही मन मे कहा—"विजय हमारी होगी। अन्यायियो का पक्ष दुर्वल है।"

दूसरी ओर से शख ध्वनियो के उत्तर मे तीव्र शख ध्वनिया की गई। भीष्म पितामह ने कौरवो की सेना को उत्साहित करने के लिए कहा—वीरो! तुम सव क्षत्रिय कुलो की सन्तान हो। क्षत्रियो का कर्त्तव्य है रण स्थल में जाकर अपनी वीरता दिखाना। विजय पाना अथवा वीर गति को प्राप्त होना। तुम ने यदि वीर गति पाई तो स्वर्ग के द्वार तुम्हारे लिए खुल जायेगे और विजय पाई तो धरा पर ही स्वर्ग के सुख तुम्हे प्राप्त होगे। इस लिए पूरी शक्ति से मुकाबला करना। स्मरण रक्खो तुम यशस्वी क्षत्रिय हो। रण भूमि तुम्हारे जौहर के प्रदर्शन का मैदान है। साहस तुम्हारा अनन्य सहयोगी है।"

* इक्कतीसवां परिच्छेद *

आशीर्वाद प्राप्ति

यह महाभारत की कथाओ मे एक महत्व पूर्ण घटना है। जो हमे यह समझने पर विवश कर देती है कि महाभारत युग मे भारत वासियों का चरित्र कितना उच्च था। क्या इस घटना की पुनरावृत्ति आज के युग मे सम्भव है?

कदाचित आप का उत्तर होगा कि—"नही।"

हा वास्तव मे महाभारत की इस घटना की पुनरावृत्ति फिर कभी नही हुई।—और न कदाचित होगी ही।

—तो जिस घटना का हम उल्लेख करने जा रहे हैं वह उस समर भूमि मे घटी जिस मे कौरवो और पाण्डवो की सेनाएं ससार को प्रमुख विश्व युद्ध लड़ने को आमने सामने तैयार खड़ी थी। भयकर सहारक अस्त्र दोनो दलो के पास थे और पृथ्वी पर उन दिनो विद्यमान समस्त योद्धा और शूरवीर किसी न किसी ओर अपना स्थान ग्रहण किए हुए थे। उन दिनो वर्तमान युग की भाति धोखे का युद्ध नही होता था, उन दिनो वल तथा बुद्धि, बाहुवल तथा आत्मवल दोनो का मुकावला होता था। विज्ञान का अपना एक स्थान था, कितने ही वैज्ञानिक अस्त्र महाभारत मे प्रयोग हुए थे।

अर्जुन आवेश मे आकर युद्ध के लिए तैयार होगया था और श्री कृष्ण महाभारत मे इसे अपनी पहली विजय समझ कर प्रफुल्लित थे, वास्तव में मानना ही पडेगा कि उस समय जव कि महाभारत का मुख्य योद्धा, अर्जुन ही उदासीन था और उस युद्ध को 'पाप' समझ बैठा था, श्री कृष्ण न होते तो कदाचित सेनाए सजी ही रह जाती, अथवा युद्ध का परिणाम ही दूसरा होता। जो भी हो, श्री कृष्ण का उस समय का उपदेश काम कर गया। अव जव कि अर्जुन युद्ध के लिए तैयार था। अनायास ही युधिष्ठिर ने कवच उतार दिया, शस्त्र रथ मे रक्खे और हाथ जोड कर तेजी से पूर्व की ओर, जहा शत्रु सेना खडी थी, पैदल ही चल पडे। महाराज युधिष्ठिर के इस प्रकार अनायास ही शत्रु सेना की ओर विना अस्त्र शस्त्र के रण वाणो के विना पैदल चल देने पर पाण्डुओं की सेना में खलवली मच गई। सभी हत प्रभ होकर उस विचित्र वात को देखने लगे।

महाराज युधिष्ठिर को इस प्रकार जाते देख कर अर्जुन भी रथ से कूद पड़े और उन के साथ ही भीम, नकुल और सहदेव भी रथ से नीचे आ गए। श्री कृष्ण तथा अन्य प्रमुख नरेश भी अपनी अपनी सवारियो से नीचे उतर आये और यह सारे लोग महाराज युधिष्ठिर के पीछे पीछे चल पडे। किसी की समझ मे ही न आता था कि यह हो क्या रहा है।

अर्जुन ने पूछा—"महाराज! आप का क्या विचार है। आप अचानक रण वाणा उतार कर नि शस्त्र हो शत्रु सेना की ओर क्यो जा रहे हैं?"

"...........''महाराज युधिष्ठिर कुछ न वोले। वे चलते रहे।

भीमसेन से न रहा गया, पूछ वैठा—"राजन्! शत्रु पक्ष की सेना कवच धारण किए, शस्त्रो से लैस युद्ध के लिए तैयार खड़ी है और आप इस प्रकार हाथ जोडे उधर जा रहे हैं। आखिर आपके दिल मे क्या आगई? कही आप. ......"

नकुल बीच ही मे बोल उठा— 'महाराज ! आप हमारे बडे भाई है, आप की आज्ञा से ही हम रण भूमि मे आये हैं आपके ही आदेश पर इतनी विशाल सेना सगठित की गई है। आप हमे छोड कर बिना बताए शत्रुओ की ओर इस प्रकार क्यो जा रहे है ?"

सहदेव भी चुप न रह सका—"राजन् ! क्षमा कीजिये। हमे यह तो बतलाते जाईये कि आखिर आप ने निश्चय क्या किया है ?"

भीमसेन फिर बोला—"आप शत्रुओ की ओर अपने भाईओं को बिना कुछ बताये चले जाये यह अच्छी बात नही है।"

तभी श्री कृष्ण के अधरो पर मुस्कान खेल गई। क्यो कि उन्होने देख लिया कि महाराज युधिष्ठिर के पग किस ओर उठ रहे हैं उन्होंने चारो को सम्बोधित करते हुए कहा—आप घबरायें नही। मुझ से पूछे कि महाराज कहां जा रहे है ?

चारो पाण्डवो के नेत्रो मे प्रश्नवाचक चिन्ह झूल गया। श्री कृष्ण बोले—"महाराज युधिष्ठिर धर्मराज है ना। वे गुरुदेव द्रोणाचार्य कृपाचार्य तथा भीष्म पितामह आदि से आज्ञा लिए बिना युद्ध आरम्भ नही करेगे। उन्हीं से आज्ञा लेने जा रहे है आप लोग सन्तुष्ट रहें। आप यह भी विश्वास रक्खे कि जो अपने गुरुओं तथा वृद्धजनो की आज्ञा तथा अनुमति से, उनका अभिवादन करने के उपरान्त युद्ध करता है उसकी विजय असदिग्ध हो जाती है शास्त्र यही कहते है।"

इधर श्री कृष्ण तो उन को समझा रहे थे उधर महाराज युधिष्ठिर को इस दशा मे देख कर कौरवो की सेना मे बडा कोलाहल होने लगा। कुछ लोग दग रह कर चुप चाप खडे रह गए। दुर्योधन के कुछ सैनिको ने महाराज युधिष्ठिर को इस प्रकार आते देख कर आपस मे कहना आरम्भ कर दिया—"ओ हो ! यही कुलकलङ्क युधिष्ठिर है। देखो, अब इसे कौरवो की शक्ति का

पता चला। भय के मारे कैसे अपने भाईयो सहित भीगी बिल्ली बना हुआ भीष्म पितामह की शरण मे आ रहा है।"

कोई बोला -"अरे! जिसकी पीठ पर अर्जुन भीम, नकुल, सहदेव, श्री कृष्ण आदि रण बाकुरे हो उसे इतना भय! बिना लड ही पीठ दिखाना आरम्भ कर दिया"

एक बोल उठा—"तुम लोग अपनी अपनी हांक रहे हो, तनिक देखो तो सही क्या होता है भई, यह ठहरे राजनीतिज्ञ, इन का क्या पता किस समय क्या पैतरा बदले। वह देखो महाराज युधिष्ठर भीष्म जी के पास जा रहे हैं। देखना है क्या कहते हैं।"

सक्षेप मे यह कि जितने मुह उतनी ही बातें पर कौरवो के सैनिक युधिष्ठिर की इस दशा से बहुत प्रसन्न थे। और बिना लडे ही पान्डवो की पराजय की कल्पना कर रहे थे।

महाराज युधिष्ठिर शत्रुओ की सेना के बीच में होकर भीष्म जी के पास पहुचे और उनके चरण स्पर्श करके कहने लगे—"अजेय पितामह! मैं आपको शत शत प्रणाम करता हू। मुझे खेद है कि आज हमे आपके विरुद्ध युद्ध करने आना पड़ा। हा, शोक कि आप जैसे कृपालु पितामह के विरोध मे हमे आना पड़ रहा है। पर जो कुछ होना है वह तो होगा ही। आप से प्रार्थना है कि हमे युद्ध की आज्ञा दे और साथ ही अपना बहुमूल्य शुभ आशीर्वाद भी।"

भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर के हृदय की विशालता देखकर प्रसन्न हो गए। गदगद कण्ठ से कहा - 'युधिष्ठिर! यदि तुम इस प्रकार मेरे पास न आते तो मुझे आश्चर्य होता। परन्तु अब तुम ने अपने गुणो के अनुरूप, पर ससार के लिए विचित्र जा दृष्टात प्रस्तुत किया है, इस से मुझे अपने कुल पर गर्व होता है। आज मुझे यह अनुभव हो रहा है कि तुम मुझ से भी अधिक महान हो। तुम जैसे उच्चादर्श के पालन कर्त्ता को युद्ध मे कोई पराजित नही कर सकता। विजय तुम्हारी ही होगी।"

युधिष्ठिर को इस आशीर्वाद से कितनी प्रसन्नता हुई होगी

यह सहज मे ही अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होने अपने उल्लास को प्रगट करते हुए प्रश्न किया—"यदि आप मुझ से वास्तव मे प्रसन्न हैं और हृदय से मेरी विजय की आशा व कामना करते है तो आप मेरे विरोध मे क्यो है ? यद्यपि मैं आप से यह प्रार्थना करने कदापि नही आया कि आप पक्ष बदल ले तो भी, अपनी धृष्टता की क्षमा चाहता हुआ आप से अपनी शका के समाधान के लिए पूछता हू "

युधिष्ठिर के प्रश्न का उत्तर उन्होने गम्भीरता पूर्वक दिया। कुछ क्षण तक मौन रहे और बोले—"धर्म राज ! तुम अपनी धर्म वुद्धि से कभी कभी मुझे परेश नी मे डाल देते हो यह प्रश्न तुम ने मुझ से ऐसे समय किया जव मैं यह नही चाहता कि मैं अपने को स्वय ही दोषी मान बैठू जब कभी मनुष्य को यह विश्वास हो जाता है कि उसका निर्णय अथवा निश्चय गलत है तो वह पूर्ण उत्साह तथा आत्म विश्वास के साथ उस पर अमल कर ही नही पाता। फिर भी जब तुम ने पूछा ही है तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि कभी कभी मनुष्य को जीवन में कुछ कडवी बातें भी करनी होती है, ऐसे कार्य भी करने पड जाते है, जिन्हे करते हुए मनुष्य को स्वय लज्जा आती है। जब पूज्य पिता जी ने अपना दूसरा विवाह, रचाया था तो मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी नई मा की सन्तानो और उनके वशजो का साथ दूगा। दूसरे यह पुरुष अर्थ का दास है, अर्थ किसी का भी दास नही, यही सत्य है और इसी अर्थ मे ही कौरवो ने मुझे बाध रक्खा है। इसी से मैं तुम से नपुसको जैसी वाते कर रहा हूं।"

युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरण पकड लिए और करुण शैली से वोले -"पूज्य पितामह ! आप ने अपने लिए यह शब्द प्रयोग करके मुझे क्यो पाप मे धकेल दिया मेरा तात्पर्य आप को लज्जित करना नही था। आप चाहे जिस ओर रहे हमारे लिए आदरणीय है। मैं तो आप से केवल युद्ध की आज्ञा लेने आया था।"

पितामह की आखो मे स्नेह तथा दया के भाव उमड आये। उन्होने स्नेहपूर्ण शब्दो मे कहा—"राजन ! तुम्हारी जितनी प्रशसा

की जाये कम ही है । तुम आज्ञा चाहते हो, उससे जो स्वय तुम्हारे विरुद्ध सेना लेकर आया है । रण भेरी मेरी ओर से बजे तो तुम्हारे लिए आज्ञा ही है । इस अवसर पर तुम जो चाहे वरदान मागो। कदाचित तुम्हे कोई वरदान देकर ही मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो सकती है । कदाचित वही मेरा प्रायश्चित भी हो हा, बस मेरे सिवाय तुम कोई भी वर माग सकते हो ।"

"आप से अब भला मैं क्या मागूं । मुझे जिस बहुमूल्य वस्तु की आवश्यकता हो सकती थी वही मेरे लिए निषिद्ध हो गई ।"— युधिष्ठिर बोले ।

"नही, मुझे सन्तुष्ट करने के लिए ही सही कुछ न कुछ अवश्य मागो "— भीष्म पितामह ने हठ करते हुए कहा

' आप हमारे दादा हैं. जिन्हे आप जैसे दादा मिले हो, उस सन्तान को क्यो न अपने पुरखो पर गर्व होगा—युधिष्ठिर कहने लगे ।—आप ने अपनी ओर से जो प्रस्ताव किया है उसके बोझ से मेरी गरदन झुकी जा रही है आप कुछ देना ही चाहते है तो मैं कहता हूं । आप अजेय हैं, और आप है विपक्ष मे फिर जब आप को कोई जीत ही नहीं सकता. तो फिर हमारी विजय कैसे होगी, हम कैसे जीत सकेगे ? आप का आशीर्वाद कैसे पूर्ण होगा ? बस इतना बता दीजिए ।"

भीष्म बोले कुन्ती नन्दन ! दुखती रगे पकडते हो । तीर निशाने पर मारते हो .. ठीक है सग्राम भूमि मे जो मुझे ऐसा कोई दिखाई नही पडता अन्य पुरुष तो क्या स्वय इन्द्र मे भी ऐसी शक्ति नही है इस के अतिरिक्त मेरी मृत्यु का भी कोई निश्चत समय नही है । इस लिए किसी दूसरे समय तुम मुझ से मिलना ।"

भीष्म पितामह की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के पश्चात युधिष्ठिर उन्हे प्रणाम कर के आचार्य द्रोण की ओर चले । उन्हे प्रणाम कर के बोले—"गुरुदेव ! सर्व प्रथम मैं आप से क्षमा याचना करता हू क्यो कि आप के विरुध मैं युद्ध करने आया

हू। तदुपरान्त मैं हार्दिक खेद के साथ निवेदन करता हूं कि मुझे विवश होकर आप से युद्ध करने आना पडा है। परन्तु धर्म नीति के अनुसार मैं बिना आपकी आज्ञा के आप से नही लड सकता, अतएव कृपया आज्ञा दीजिए कि मैं आप के विरुद्ध युद्ध करू। जिस से कि मैं अपने गुरुदेव से लडने के पाप से बच जाऊं। आप यह भी बताने की कृपा करे कि मैं शत्रुओ को किस प्रकार जीत सकूगा।"

ओह! कितना गम्भीर प्रश्न था यह। प्रश्न कर्ता के साहस को देखिये और अब आचार्य द्रोण के उत्तर को सुनिए। कहते है—'राजन्! तुम्हारे इस व्यवहार ने कुछ हद तक मुझे युद्ध से पूर्व ही जीत लिया। तुम ने यहा पधार कर अपने चरित्र मे चार चाद लगा लिए। मैं बहुत प्रसन्न हू। मुझे तुम जैसे शिष्य पर गर्व है। और तुम जैसे स्थिर स्वभाव वाले व्यक्ति की विजयकामना किए बिना नही रह सकता। तुम युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करू गा, बताओ तुम्हारी क्या इच्छा है? इस स्थिति में अपनी ओर से युद्ध करने के सिवा तुम्हारी जो भी इच्छा हो कहो। मैं क्यो इधर हू इसका उत्तर यह है कि अर्थ किसी का गुलाम नही होता, परन्तु मनुष्य ही अर्थ का दास होता है। और इस अर्थ से कौरवों ने मुझे बाध लिया है। मैं इस स्थिति मे युद्ध तो कौरवो की ही ओर से करू गा और किसी की रिआयत भी नही कर सकता, फिर भी विजय तुम्हारी ही चाहता हू।"

गुरुदेव का उत्तर सुन कर युधिष्ठिर ने कोई वादविवाद नही किया। न खिन्न ही हुए, न किसी प्रकार का आवेश ही आया, न उलझन मे ही पडे। सुशिष्य की भाँति नम्र स्वभाव से कहा— "गुरुदेव! आप कौरवो की ओर से युद्ध करे, किन्तु आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो बस इतना ही दें कि विजय मेरी ही चाहे और मुझे समय समय पर उचित परामर्श देते रहे।"

द्रोणाचार्य को युधिष्ठिर के इन शब्दो से अपार प्रसन्नता हुई, उन्होने अपनी मनोदशा को छुपाते हुए कहा, मनोदशा इस

लिए छुपाई कि जी चाहता था युधिष्ठिर को छाती से लगा लें, पर रण स्थल मे उन्होने इसे उस समय उचित न समझा× "तुम्हारे परामर्शदाता तो श्री कृष्ण जैसे विज्ञान राज नीतिज्ञ है। उन के रहते मेरे परामर्श की तुम्हे आवश्यकता नही है। श्री कृष्ण जैसे चतुर राज नीतिज्ञ जिधर हैं उधर ही विजय है। और जहा विजय है वही श्री कृष्ण है। तुम निश्चित रहो। कुन्ती नन्दन! अब तुम जाओ और युद्ध करो हा, यदि और कुछ पूछना चाहो तो पूछ सकते हो।"

युधिष्ठिर ने साहस पूर्वक कहा—"विद्वान आचार्य जी! आप को प्रणाम कर के मैं यही पूछना चाहता हू कि आप को अपने रास्ते से हटाने का क्या उपाय है?"

युधिष्ठिर ने कैसा चुभता हुआ प्रश्न किया था, कितना कटु और कितना मार्मिक, क्या उसे सुन कर कोई व्यक्ति उद्विग्न हुए विना रह सकता था? हां, द्रोणाचार्य के मुख पर इस प्रश्न के उपरान्त भी कोई चिन्ता, रोष तथा आवेश के चिन्ह नही दिखाई दिए। उन्होने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया—"राजन्! सग्राम मे रथ पर आरूढ होकर जब मैं क्रोध मे भर कर वाण वर्षा करूंगा, उस समय मुझे मार सके, ऐसा तो कोई शत्रु दिखाई नही देता।"

"तो फिर?"

"हा, जब मैं शस्त्र छोड़ कर अचेत सा खड़ा रहू उस समय कोई योद्धा मुझे मार सकता है, यह सत्य है। एक और सच्ची वात तुम्हे वताता हू कि जब किसी विश्वास पात्र व्यक्ति के मुख से मुझे अत्यन्त अप्रिय वात सुनाई देती है तो मैं संग्राम भूमि मे अस्त्र त्याग देता हूं।"

द्रोणाचार्य ने इतने से ही अपनी मृत्यु का उपाय वता डाला था। पर इस प्रकार से जैसे उन्होने कोई साधारण वात कही हो युधिष्ठिर ने वारम्वार उन्हे प्रणाम किया और फिर आगे कृपाचार्य के पास गये। उन्हे प्रणाम कर के वही वात जो उन्हों से भीष्म

तथा द्रोणाचार्य से कही थी। अर्थात युद्ध की आज्ञा मागी और आशीर्वाद चाहा।

उत्तर मे कृपाचार्य ने प्रसन्न होकर कहा—राजन् ! तुम्हारे सम्बन्ध मे जो सुना था, तुम्हे वैसा ही पाया। शत्रु सेना मे खड़े अपने सम्मानित वृद्धजनो से तुम्हारा रण भूमि मे भी वही व्यवहार रहेगा जो साधारणतया रहता है, ऐसी तो केवल तुम से ही आशा की जा सकती है। मैं बहुत प्रसन्न हू। युद्ध की आज्ञा देता हू और प्रसन्न होकर तुम्हे कोई भी बात पूछ लेने या इच्छा प्रगट करने का वर देता हू।"

युधिष्ठिर बोले—"गुरुदेव ! आप प्रति दिन प्रातःकाल उठ कर मेरी विजय की कामना किया करे बस मुझे यही चाहिए।"

"इसका तो तुम विश्वास रक्खो।—कृपाचार्य बोले—"और कुछ मागना चाहो तो माग सकते हो बस मुझे अपने पक्ष के लिए मत मागना क्योकि मे दुर्योधन को वचन दे चुका हूं।"

'यदि आप मुझ पर इतने प्रसन्न हैं। तो कृपया अपने परास्त होने का उपाय बता दीजिए।" युधिष्ठिर ने पूछा।

कृपाचार्य बोले—"धर्मराज ! मैं तुम्हारी विजय की कामना किया करूगा, इतना ही तुम्हारी विजय के लिए पर्याप्त है। तुम मेरी चिन्ता न करो। विश्वास रक्खो कि तुम्हारी विजय के रास्ते मे आने वाली रुकावटें किसी न किसी प्रकार दूर हो जावेगी। अन्त मे विजय पताका तुम्हारे ही हाथ मे होगी।"

कृपाचार्य की बातो से सन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर ने उन्हे प्रणाम किया और महाराज शल्य के पास गए। उन्हे प्रणाम करके कहा—"राजन् ! आप मेरे मामा लगते है। आप से बिना आज्ञा लिए मैं आप के विरुद्ध भला कैसे लड़ सकता हूं। अतएव आप आज्ञा दें ताकि मैं इस पाप से बच जाऊ।"

शल्य बोले—"राजन् ! जब मैं स्वयं ही तुम्हारे विरुद्ध

मैदान मे आ गया तो तुम्हे युद्ध से भला कैसे रोक सकता हू। जाओ प्रसन्नता पूर्वक युद्ध करो। हा, तुम ने जो इस समय इस दशा मे मेरे सामने आकर अपनी महानता दर्शाई है उस से मैं बहुत प्रसन्न हूं। चाहे जैसे भी हो मैं हूं दुर्योधन के साथ ईमानदारी से उसकी ओर से लड़ूंगा। पर तुम मेरे भानजे हो, और हो ऐसे कि मुझे तुम्हारा मामा कहलाते अपने पर गर्व होगा, अत तुम्हे वचन देता हूं कि तुम जो चाहो मांग सकते हो, हा मुझे अपनी सहायता के लिए मत मागना। बोलो, तुम्हे क्या चाहिए ?"

"मामा जी ! मै सैन्य सग्रह के समय भी आप से एक बार प्रार्थना कर चुका हू, बस वही प्रार्थना है, वही मेरा वर है। कर्ण से युद्ध होते समय आप उसके तेज का नाश करते रहे। आप अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप ऐसा कर सकते हैं। "युधिष्ठिर ने अपना मनवाछित वर मागते हुए कहा।

शल्य बोले—"अपने वचन के अनुसार मैं तुम्हारी यह मनोकामना पूर्ण करूगा। जाओ निश्चिन्त रहो।"

इस प्रकार अपने गुरुओ तथा आदरणीय वृद्धों तथा सम्माननीय बुजुर्गो से आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त करके महाराज युधिष्ठिर अपने भाईयो सहित उस विशाल वाहिनी के बाहर आ गए। इस प्रकार उन्होने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही अपने शिष्टाचार द्वारा कौरवो की सेना के वृद्ध अनुभवी तथा अजेय सेनानियो को सहज मे ही जीत लिया। मन जीत लिया तो तन जीतने में क्या रक्खा है। वह भी जीत ही लिया जायेगा। इस दृश्य को देख कर कौरवो की सेना के उन सैनिको की कल्पनाए धूलि मे मिल गई जो युधिष्ठिर के इस प्रकार शत्रु सेना नायको के पास जाने मे उनकी पराजय समझ रहे थे। जिस ने उन की वार्ता सुनी, वही युधिष्ठिर का प्रशसक बन गया। दोनो ओर असख्य सैनिक जीवन की आशा छोड प्रथम विश्व युद्ध के लिए सजे हुए खडे थे। रण की भेरी बज चुकी थी पर युधिष्ठर अपनी बुद्धि तथा धर्म नीति द्वारा महानतम शिष्टाचार के सहारे युद्ध मे अपनी विजय का प्रथम परिच्छेद पूर्ण कर रहे थे।

इसी बीच श्री कृष्ण दानवीर कर्ण के पास गए। नम्र भाव से बोले—' मैंने सुना है भीष्म जी मे द्वेष होने के कारण तुम युद्ध नही करोगे। यदि ऐसा है तो जब तक भीष्म जी नही मारे जाते तुम पाण्डवो की ओर आ जाओ। जब भीष्म जी न रहे गे और तुम्हे दुर्योधन की ही सहायता करना उचित जान पडे तो पाण्डवो का साथ छोड कर कौरवो की ओर आ जाना। उस दशा मे हमे कोई आपत्ति न होगी ."

कर्ण इस प्रस्ताव को सुन कर चकित रह गए। बोले—केशव! क्या पाण्डव इतनी छूट देने के लिए तैयार हो सकते है? और क्या कोई व्यक्ति दो ओर भी लड सकता है?"

'हा, अवश्य! दुर्योधन और युधिष्ठिर मे बडा अन्तर है। युधिष्ठिर आप को, थोडे समय के लिए ही सही मित्र बनाने मे बडे प्रसन्न होगे। रही दो ओर से लडने की बात सो इस के लिए तुम्हें कौन रोक सकता है?" श्री कृष्ण ने उत्तर दिया।

श्री कृष्ण का उत्तर सुन कर कर्ण ने अपने दृढ निश्चय को दोहराते हुए कहा 'मैं युधिष्ठिर की इस नीति का आदर करता हूँ परन्तु मैं दुर्योधन का अप्रिय किसी दशा मे नही कर सकता। आप मुझे प्राण पण से दुर्योधय का हितैषी समझे।"

उत्तर सुन कर श्री कृष्ण निरुत्तर होगए।

महाराज युधिष्ठिर के वापिस आते ही पाण्डवो की सेना में रण के बाजे बज उठे।

महाराज युधिष्ठिर ने सेनाओ के बीच मे खडे होकर उच्च स्वर मे कहा— "शत्रुओ की सेना मे सम्मिलित जो वीर हमारा साथ देना चाहे, अपनी सहायता के लिए मैं उसका इस समय भी हार्दिक स्वागत करने को तैयार हूं। जो वीर शत्रु की ओर ही रहना चाहे वह शत्रु सेना मे होते हुए भी हमारा मित्र ही है ."

युधिष्ठिर की इस घोषणा से कौरवो के सैनिको पर महाराज युधिष्ठिर का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा। युयत्सु ने जब घोषणा सुनी, वह बहुत प्रसन्न हुआ। उस से न रहा गया, पाण्डवो की की ओर देख कर उस ने धर्मराज से कहा—"महाराज ! यदि आप मेरी सेवा स्वीकार करे तो मैं इस महायुद्ध में आप की ओर से अपने भ्राताओं से लड़ूंगा।"

यह एक ऐसा प्रभाव था जिसे सुन कर साधारण व्यक्ति कभी विश्वास न करता कि युयुत्सु की प्रार्थना सत्य हृदय से की गई है। वह उसे सन्देह की दृष्टि से देखता परन्तु विशाल हृदय धारी धर्मराज युधिष्ठिर के मुखमण्डल पर हर्ष की रेखा उभर आई उन्होने अपनी दोनो भुजाए आगे बढ़ा कर उल्लास पूर्वक कहा— "युयुत्सु ! आओ ! आओ तुम्हारा स्वागत करता हू। हम सब मिल कर तुम्हारे पथ भ्रष्ट भाईयो से युद्ध करेंगे, तुम हमारी ओर से सग्राम करो। मालूम होता है कि धृतराष्ट्र की सन्तान मे तुम ही एक सद्बुद्धि न्याय प्रिय तथा धर्म बुद्धि वीर हो, तुम ही से उनका वश चलेगा।"

युयुत्सु इस प्रकार के उत्साह वर्धक स्वागत से प्रसन्न होकर कोरवो का साथ छोड़ कर पाण्डवो की ओर चला आया महाराज युधिष्ठिर ने उसे छाती से लगा लिया और अपनी ओर से कवच दिया, अस्त्र शस्त्र देकर उस को उचित स्थान पर नियुक्त कर दिया।

परन्तु दुर्योधन का हृदय जल उठा। मारे क्रोध के उस की आँखें लाल हो गई। वह आक्रोश मैं न जाने क्या क्या बडबडाने लगा।

सभी अपने अपने रथों पर आरूढ हुए। सैंकडो दुन्दुभियो का घोष होने लगा तथा योद्धा अनेक प्रकार से सिंह नाद करने लगे।

* बत्तीसवां परिच्छेद *

युद्ध होने लगा

दोनो ओर के योद्धा अस्त्र-शस्त्रो से लैस थे, सेना नायक अपनी अपनी सेनाओ को अन्तिम आवश्यक आदेश तथा उपदेश दे चुके। दोनो ओर के सेनापतियो ने अपनी अपनी सेनाओ को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास दिलाया, स्वर्ग के सुख भोगने का लोभ दर्शाया और क्षत्रियोचिय वीरता दिखलाने के लिए आव्हान किया।

इस के पश्चात् दुर्योधन जो अपनी विशाल सेना के बल पर म्भ मे चूर था भीष्म जी के पास जाकर कहने लगा—"पितामह! व देरी काहे की है। आक्रमण कीजिए।"

भीष्म जी बोले—"दुर्योधन! तुम चाहते हो इस लिए मैं युद्ध तो आरम्भ किए देता हू पर मुझे ऐसा लगता है कि विजयश्री पाण्डवो को ही प्राप्त होगी।"

"पितामह! आप सेना नायक होकर ऐसी बात कहते है? पाण्डवों के मोह मे युद्ध के आरम्भ होते समय ऐसी बात मुह से न निकालिए। इस समय पाण्डवों को परास्त करना हमारा कर्त्तव्य है। वे हमारे शत्रु है और हमारी अपार शक्ति के सामने उन के लिए टिकना भी असम्भव है।" दुर्योधन ने कहा।

पितामह ने उत्तर दिया—'बेटा! शत्रु की शक्ति को कम मानने वाले कभी विजयी नही हुआ करते।"

"आप सेना को आगे तो बढाईये। हाथ कागन को आरसी क्या। अभी ही पता चल जाता है।"—दुर्योधन ने कहा।

भीष्म पितामह के नेतृत्व मे दुर्योधन, अपने भाईयो और सैनिको सहित आगे बढा। दुन्दुभिया का विपुल नाद हुआ। तो दूसरी ओर से पाण्डवो की सेना भी भीमसेन के नेतृत्व मे रण भेरी वजाती हुई आगे बढ़ी। पान्डवो मे उत्साह था, कुछ कर गुज़रने की अकाक्षा थी।

फिर दोनो सेनाओ मे भयकर युद्ध होने लगा। द्वन्द्व युद्ध तथा "साकल युद्ध" दोनो ही होने लगे। सांकल युद्ध से अभिप्राय उस युद्ध से है जो हजारो सैनिको के एक साथ दूसरे पक्ष के हजारों सैनिको पर टूट पडने से होता है। दोनो ओर से ऐसा भीषण शब्द हो रहा था कि सुनकर रोगटे खडे हो जाते थे। उस समय महाबाहु भीमसेन सांड की भाति गरज रहा था। उसकी गर्जना से कौरव सेना का हृदय दहल जाता था। जैसे सिंह की दहाड सुन कर जगल के कुछ जानवरो का मलमूत्र निकल पड़ता है, इसी प्रकार की गर्जना से कौरव सेना के कुछ सैनिको का मूत्र ही निकल गया और भीमसेन की भयानक चिघाड को सुनकर कभी हाथी घोडा तक काप उठते। भीमसेन विकट रूप धारण करके वज्र की भांति कौरव सेना पर टूट पडा। जिसमे कौरवो की सेना मे खलबली मच गई। दुर्योधन ने जब यह देखा तो अपनी सेना का साहस बढाने के लिए अपने भाईयो को सकेत किया और भीमसेन पर मेघ वर्षा की भाँति वाण वर्षा होने लगी यहा तक कि वाणो की वर्षा मे भीमसेन उसी प्रकार छप गया जैसे मेघ खण्डो मे रवि छुप जाता है उस समय दुर्योधन, दुर्मुख, दु सह, शल्य, दुःशासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण पुरुमित्र जय, भोज और सोमदत्त का आत्मज भूरि श्रवा, यह सभी अपने वडे वडे धनुषो पर तेज वाण चढाकर विषधर सर्पो के समान वाण चला रहे थे। और दूसरी ओर से सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न अपने वाणो से कौरवो की वाण वर्षा का उसी वीरता से उत्तर दे रहे थे। उस समय प्रत्यन्चाओ की भीषण टकार आकाश मे तडपती

तडित का सा भयकर शब्द कर रही थी। दोनो ओर के सैनिक एक दूसरे को अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर पछाडने का असफल प्रयत्न कर रहे थे।

उधर शान्तनु नन्दन भीष्म अपना काल डण्ड समान धनुष लेकर अर्जुन की ओर झपटे। उस समय श्री कृष्ण ने भीष्म पितामह के रथ की ओर अर्जुन का रथ हाकते हुए अर्जुन को सम्बोधित करके कहा—"पार्थ! देखो पितामह सबसे पहले तुम पर ही वल प्रदर्शन करना चाहते हैं। इस समय दादा और पौत्र नही, दो शत्रु सेनाओ के मुख्य योद्धाओ का सग्राम होना है। लो अपना रण कौशल अब दिखाओ।"

वीर अर्जुन ने सम्भल कर अपना गाण्डीव उठाया और ज्यो ही भीष्म की ओर से उनके धनुष की पहली टकार हुई तेजस्वी अर्जुन ने अपने जगत विख्यात गाण्डीव की हृदय भेदी टकार की और भीष्म जी पर टूट पडे। वे दोनो कुरुवीर एक दूसरे का वीरता से उत्तर देने लगे। भीष्म ने अर्जुन को वीध डाला। उनके वाण ठीक निशाने पर जाते, वीर अर्जुन प्रहार से बचने का प्रयत्न करते और अपने वाण से भीष्म जी भी अपने बचाव की चिन्ता मे डाल देते। परन्तु न तो भीष्म और न अर्जुन ही सग्राम में एक दूसरे को विचलित कर सके।

दूसरी ओर का हाल भी देखिये सात्यकि ने कृतवर्मा पर आक्रमण कर दिया है वे दो सिंह आपस मे जूझ रहे है। उन्हे किसी की चिन्ता नही, रण भूमि मे क्या हो रहा है। भीषण और रोमाचकारी युद्ध मे वे एक दूसरे को परास्त करने के लिए पूरी शक्ति लगा रहे हैं।

और इधर महान धनुर्धर कोसल राज वृहद्वल से छोटा, सभी योद्धाओ मे कम आयु का, एक प्रकार से वालक, चचल्न वाल योद्धा अभिमन्यु भिडा हुआ है। उन दोनो के भीषण युद्ध मे एक वार कोसल राज का दाव चल गया तो उसने अभिमन्यु के रथ की ध्वजा को काट गिराया और उस के सारथी को भी मार गिराया। फिर क्या था अभिमन्यु सिंह की भाति विफर उठा। उस ने क्रुद्ध होकर

अपने धनुष से एक के पश्चात एक विद्युत गति से बाण छोड़ने आरम्भ किए और अपने नौ बाणों से ही बृहद्वल को बींध दिया तथा दो तीखे बाण छोड कर उसकी ध्वजा धाराशायी कर दी और सारथी व चक्ररक्षक को मार गिराया। कोसल राज को भी क्रोध आ गया और वह भी तुरन्त क्रुद्ध हो कर अभिमन्यु पर टूट पड़ा।

कुछ दूरि पर ही भीमसेन से दुर्योधन भिड रहा था। दोनो ही वीर रणाङ्गण मे एक दूसरे पर बाणो की वर्षा कर रहे थे। उन दोनों वीरों के भीषण युद्ध को देख कर सभी को विस्मय हो रहा था। उसी समय दु शासन महाबली नकुल से सग्राम रत था और दुर्मुख ने सहदेव पर आक्रमण कर रक्खा था। दुर्मुख अपने वाणो के प्रहार से सहदेव को प्रहार करने का होश ही नही लेने देता था। बहुत देरि तक यही गति रही। अन्त मे सहदेव को जोश आया और एक बार दुर्मख के प्रहार को काट कर एक ऐसा तीखा बाण मारा कि दुर्मुख का सारथी तडप कर गिर पडा। दुर्मुख सहदेव से वदला लेने के विचार से अधिक तीव्रता से लड़ने लगा।

स्वय महाराज युधिष्ठिर शल्य के सामने आये। मामा भानजे का युद्ध दर्शनीय था। मद्रराज शल्य व युधिष्ठिर कितनी ही देरि तक एक दूसरे को प्रहारो को काटते रहे। परन्तु एक बार अनुभवी शल्य ने अपने तीक्ष्ण वाण से महाराज युधिष्ठिर के धनुष ही टुकडे टुकडे कर डाले। धर्मराज ने तुरन्त ही दूसरा धनुष लेकर मद्रराज को वाणो से आच्छादित कर दिया। इस गति को देख कर एक वार तो शल्य के रोगटे खडे हो गए। यह विचित्र वल देख कर उन्हो ने समझ लिया कि धर्मराज को यूंही परास्त नही किया जा सकता। फिर दो योद्धा आपस मे वराबर की टक्कर वाले पहलवानो की भाति भिड गए।

आईये, द्रोणाचार्य के युद्ध पर भी एक दृष्टि डाले। धृष्ट द्युमन द्रोणाचार्य के सामने अडा हुआ है। कितनी ही देरि तक आचार्य द्रोण तथा वीर धृष्ट द्युमन के मध्य वाणों की वोछार हे ती रही। आचार्य जी के सधे हुए अनुभवी हाथों से कितने ही वाण वरसे पर एक भी धृष्ट द्युमन का कुछ न विगाड़ पाया। इस पर धृष्ट

द्युमन ने कहा—"गुरुदेव ! कोई चमत्कार तो दिखाईये।"

इस चुनौती को आचार्य द्रोण ने अपना परिहास समझ कर कुपित हो ऐसा वाण मारा कि धृष्ट द्युमन के धनुष के तीन टुकडे हो गए। ज्यों ही धृष्ट द्युमन ने शीघ्रता से दूसरा धनुष सम्भाला द्रोणाचार्य ने ऐसा काल दण्ड समान बडा भीषण बाण मारा कि वह धृष्ट द्युमन के शरीर मे जा घुसा परन्तु योद्धा धृष्ट द्युमन को तो जैसे कुछ हुआ ही नही, यदि कुछ हुआ तो इतना कि उसकी रगो वहते रक्त मे तूफान सा आ गया और उसने विद्युत गति से तडातड़ वाण वर्षा आरम्भ करदी अपने चौदह बाणो से द्रोणाचार्य को बींध डाला। इस पर द्रोणाचार्य को भी क्रोध आना स्वाभाविक था, उन्होंने भी बिफर कर तुमुल युद्ध आरम्भ कर दिया। पर वीर धृष्ट द्युमन तनिक सा भी विचलित न हुआ। वह उसी प्रकार वीरता से लडता रहा।

वीर शङ्ख भी दूसरी ओर युद्ध रत है। उस ने सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा पर धावा किया। भूरिश्रवा भी कुछ कम न था, उस ने शख के धावे का उत्तर तीक्ष्म वाणो से दिया। क्रुद्ध होकर शख ने भूरिश्रवा को ललकार कर कहा—"खडा रह ! तुझे अभी बताता हूं। शख तेरी मृत्यु बन कर आया है।"

उधर भूरिश्रवा ने भी चेतावनी दी—"मैं मृत्यु से टकराना हसी खेल समझता हू। शंख का काम ही ध्वनि करना, चीखना है, शख वेचारा करता क्या है। कही स्वय अपनी ही मृत्यु का सन्देश तो नही ले आया ?"

इतनी बात पर शख का खून खोलने लगा। तिल मिलाकर उस ने वड़ा भयकर युद्ध आरम्भ कर दिया और एक अवसर पाकर उसकी भुजा घायल कर दी। तब भूरिश्रवा प्रति शोध की भावना से ओत प्रोत हो गया, उस ने शख के गले तथा कंधे के बीच की हड्डी को लक्ष्य बना कर वाण वर्षा की। और शख घायल हो गया। पर दोनो ही उन्मत्त योद्धाओं मे भयकर युद्ध होता रहा।

अन्य योद्धाओं की भांति राजा बाह्लीक भी अपना धनुष ले कर युद्ध में उतर पडा। चेदिराज धृष्ट केतु उस के सामने आ डटा।

फिर क्या था ? दोनो वीर भयकर गर्जना करते हुए एक दूसरे से युद्ध करने लगे। सिंह समान गर्जना करते हुए चेदिराज धृष्टकेतु ने नौ बाण छोड कर राजा बाह्लीक को बीध डाला। इस पर बाह्लीक से न रहा गया। क्रुद्ध रणोन्मत्त हाथी की तरह बुरी तरह धृष्टकेतु पर पिल पडा और दोनो मे भीषण सग्राम होने लगा।

राक्षसराज अलम्बुष के साथ क्रूरकर्मा घटोत्कच भिड गया था। दोनो एक दूसरे की टक्कर के दिखाई देते थे। कुछ देर दोनो एक दूसरे को अपने अपने हाथ दिखाते रहे। फिर जब इस प्रकार हाथ दिखाने का कोई परिणाम न दिखाई दिया तो घटोत्कच ने धड घड बाण वर्षा आरम्भ की, जिस से अलम्बुष को अवकाश ही न मिला और वह उन बाणो से छिद गया। पर भला अलम्बुष यह कैसे सहन कर सकता था कि शत्रु उसको छेद कर बिना कुछ घाव खाये रह जाये। उसने भी कुपित होकर तीव्र बाण वर्षा आरम्भ की। और झुकी नोक वाले बाण विशेषतया चलाए जिस से घटोत्कच के शरीर मे कई स्थानो पर रक्त चूने लगा।

उधर शिखण्डी ने जो था तो नपुसक, परन्तु वीरता मे दूसरे वीरो से कम न था, द्रोण पुत्र अश्वस्थामा पर आक्रमण कर दिया। अश्वस्थामा तो उसे नपुसक जान कर अपने बाये हाथ से मार गिराने का दम भरता था, पर जब सामना हुआ तो भ्रम टूट गया और कुछ ही देर के युद्ध से यह बात खुल गई कि शिखण्डी की टक्कर झेलना बच्चो का खेल नही है। परन्तु अश्वस्थामा सोचने लगा कि यदि नपुंसक भी उसे परास्त करदे तो फिर वह मुह दिखाने योग्य भी न रहेगा, इस लिए अश्वस्थामा क्रुद्ध होकर अपने पूर्ण रण कौशल को दिखलाने लगा और उस ने देखते ही देखते अपने तीरो से बीध कर शिखण्डी को अधीर कर दिया। इस से शिखण्डी की भुजाओ का बल भी अगडाई लेकर जाग उठा और उसने भी बडी तीखी चोटें करनी आरम्भ कर दी। इस प्रकार यह दोनो वीर सग्राम भूमि मे भिन्न भिन्न बाणो का प्रयोग कर भीषण युद्ध करते रहे।

सेनानायक विराट महावीर भगदत्त के मुकाबले पर थे उन

दोनो के मध्य भी घोर युद्ध हो रहा था। जिस प्रकार मेघ पर्वत पर जल वरसाता है, इसी प्रकार विराट ने भगदत्त पर वाण वर्षा की परन्तु भगदत्त ने भी ईट का जवाव पत्थर से दिया, उस ने उस ने भी अपने वाणो से विराट को ऐसे ही ढक दिया जैसे मेघ सूर्य को आच्छादित कर देते है। इस प्रकार दोनो ओर से ही डट कर युद्ध होता रहा।

आचार्य कृप (कृपाचार्य) ने केकयराज वृहत्क्षत्र पर आक्रमण किया। वृहत्क्षत्र भी ताल ठोक कर मुकावले पर आगया। और दोनो एक दूसरे से जूझने लगे। कृपाचार्य ने इतने वाण चलाये कि एक वार तो केकयराज वाणो की छाव मे खो से गए। तव केकय राज ने अपना शौर्य दर्शाया और उन्हो ने कृपाचार्य को वाण वर्षा मे विलीन कर दिया। दोनो योद्धा एक दूसरे का मान मर्दन करने के लिए जीवन का मोह त्याग कर वडे वेग से युद्ध करने लगे और कुछ ही देरि मे दोनो ने एक दूसरे के सारथो तथा अश्वो को मार डाला। तव विवश होकर दोनो, रथहीन ही, आमने सामने के युद्ध के लिए खडग लेकर आ गए। दोनो मे वडा ही कठोर तथा भीपण युद्ध होने लगा।

राजा द्रुपद ने जयद्रथ को घेर रक्खा था। दोनो वीरो मे भीपण युद्ध हो रहा था। जयद्रथ के तीन वाण द्रुपद को घायल करने मे सफल हो गए तव तिल मिला कर द्रुपद ने ऐसे तीक्षण वाण चलाये कि जयद्रथ भी विंध गया। और फिर दोनो एक दूसरे से वदला लेने के लिए युद्ध करने लगे। विकर्ण ने सुतसोम पर आक्रमण कर दिया दोनो मे युद्ध ठन गया। तव विकर्ण वोला—"सुतसोम! क्या तुम्हारी मृत्यु मेरे ही हाथो होनी है? पहले दिन ही मरने का इरादा है?"

सुतसोम ने गरज कर उत्तर दिया—"मुझे मार डालने की क्षमता तुम जैसे आततार्इयो मे नही है। हा, यदि तुम्हे मृत्यु इतनी ही प्रिय है तो लो मैं तुम्हारा काल वन कर सामने आगया।"

फिर क्या था, दोनो एक दूसरे पर पिल पडे। अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर एक दूसरे को मार डालने के लिए तुल गए। न कोई कम हो तो दाव भी चले। अस्त्र शस्त्र सारे जो उनके पास

चेदिराज ने उलूक पर धावा बोला और बाणो की सावन भादो जैसी झड़ी लगा कर उसे पीडित करने लगा। इस के जवाब मे उलूक ने भी अपनी वीरता दर्शाई। गरज कर बोला – "उलूक का सामना करना लोहे के चने चबाना है, तनिक होश सम्भल कर लडो।"

चेदिराज ने सिंह गर्जना करते हुए कहा—"उलूक ! यह दिन है दिन। अभी रात्रि का अधकार नही हुआ। तुम्हे रात्रि मे ही चहकना शोभा देता है।"

"बस समझ लो कि तुम्हारे सिर पर उल्लू ही बोल गया।"

"ऐसी बात है तो आ जाओ।"

खडगों की कट कट व खट खट की ध्वनि, धनुषो की टकारों, अश्वो तथा हाथियो की चिंघाडे सब मिल कर इतना शोर बन गई थी कि दूर से कोई नही समझ सकता था कि क्या हो रहा है। वीर आपस मे इस तरह से लड रहे थे कि उन्हे अपने अतिरिक्त अन्य किसी का पता ही नही था। दूसरी ओर विकट गाडियो, तथा वायुयानो के द्वारा एक दूसरे की सेना को भस्म कर डालने की चेष्टाए हो रही थीं। शतघ्नी (तोपे) लगी हुई विकट गाडिया शत्रुओ के वायुयानो को गिरा रही थी। गज सवार से गज सवार, अश्व सवार से अश्व सवार, पैदल से पैदल सैनिक लड रहे थे। इस प्रकार दोनो सेनाओ का बडा दुर्धर्ष तथा घमासान युद्ध हो रहा था। इस प्रथम महायुद्ध को देखने के लिए देवता भी दौड आये थे और ऐसा विचित्र भयकर तथा अभूत पूर्व युद्ध देख कर रोमाचित हो रहे थे। सग्राम भूमि मे लाखो पदाति मर्यादा छोड कर सघर्ष कर रहे थे। वहा कोई अपना पराया न देखता था कोई एक दूसरे को पहचानता तक न था। शत्रु चाहे भाई ही क्यो न हो, पर उस के प्राण हरने की ही कोशिश की जा रही थी। पिता पुत्र की ओर और पुत्र पिता की ओर न देखता था। इसी प्रकार भाई भाई की, भानजा मामा की, मामा भानजे की और मित्र मित्र तक की परवाह न करता था। ऐसा जान पडता था मानो वे पूर्व जन्म से ही एक दूसरे के शत्रु रहे होगे जिन्हे आज दिल के वलवले निकालने का अवसर मिला है।

जब युद्ध यौवन पर आया और मर्यादा हीन तथा अत्यन्त भयानक होगया तो भीष्म के सामने पडते ही पाण्डवो की सेना थर्रा उठी। महाराज युधिष्ठिर ने गरज कर कहा—"हम क्षत्रिय हैं। न्याय के लिए लड रहे हैं एक वार अवश्य ही मरना है। तो फिर मृत्यु से क्यो घबराना। हमे क्या तो प्राण देकर वीर गति को प्राप्त होना या विजय प्राप्त करनी है वीरो आगे बढो। विजय हमारी ही होगी। आज रण भूमि में दिखा दो कि पाण्डव और उन के सहयोगी किसी आततताई के आगे घुटने टेकना नहीं जानते। वह देखो विजय श्री वर माला लिए तुम्हारी प्रतीक्षा मे खडी है"

युधिष्ठिर की इस उत्साह वर्धक घोषणा से पाण्डवों की सेना का आत्म बल बढ गया और उन्होने धैर्य से भीष्म जी के नेतृत्व मे लडने वाले योद्धाओ का सामना करना आरम्भ कर दिया। और इस महायुद्ध के प्रथम दारुण दिवस ही अनेको रणबाकुरे वीरो का भीषण सहार हो गया, अनेक बहनो का सुहाग कौरवो की हठ की वेदी पर बलि चढ़ गया। अनेक शिशु अनाथ हो गए। अनेक माताए निपूती हो गई। फिर भी पाण्डवो की सेना के पैर न उखडें पाण्डव बिना इस वात की चिन्ता किए कि कितने उन के सैनिक मौत के घाट उतर गए घमासान युद्ध कर रहे थे तव दुर्योधन की प्रेरणा से दुर्मुख कृतवर्मा, कृपाचार्य, बिविशति पितामह भीष्म के पास चले गए। और इन पांच वीर अतिरथियो से सुरक्षित होकर वे पाण्डवो की सेना मे घुसने लगे। यह देख कर क्रोधातुर अभिमन्यु अपने रथ पर चढा हुआ इन पाचो से रक्षित अपने परम आदरणीय दादा भीष्म जी के सामने आ डटा। और आते ही अपने एक ही पैने वाण से उन के रथ पर फहराती ताड़ के चिन्ह वाली ध्वजा काट कर गिरा दी और फिर इन सभी के साथ युद्ध छेड दिया।

ओह! कितना रोमांचकारी दृश्य था वह। एक ओर अजेय भीष्म पितामह और उन के रक्षक पाच छटे हुए सिद्ध हस्त अनुभवी वीर, और दूसरी ओर एक सोलह वर्षीय कुमार। वच्चा सा वीर विजली की तरह छओ योद्धाओ पर टूट पडा। वह जानता था क किन से टक्कर ले रहा है, पर उसे किसी प्रकार की चिन्ता न

थी। वह अपनी पूरी शक्ति लगा कर प्रहार कर रहा था। और थोडी सी ही देरि मे कृतवर्मा को एक वाण से, शल्य को पाच वाणो से, और पितामह को नौ बाणो से बीध दिया। जिस समय भीष्म पितामह के शरीर मे आकर अभिमन्य के तीर चुभे। कृपाचार्य को और शल्य को बडा क्रोध आया। शल्य ने कहा—'देखते ही पितामह! यह कितना नटखट है, दम्भ मे अन्धा हो गया है। हम वालक समझ कर युद्ध कर रहे है तो यह सिर पर ही चढा आता है मालूम होता है चींटो अपने पख निकाल रही है।"

परन्तु भीष्म पितामह को अभिमन्यु के बाणों से कदाचित कोई पीडा न हुई थी, उन्होने मुस्करा कर कहा—"तुम बालक की शरारत पर क्रुद्ध हो गए?—अरे! मेरे हृदय से पूछो, मुझे कितनी प्रसन्नता हा रही है। आज मेरा नन्हा पौत्र हम छ योद्धाओ का इस वीरता से सामना कर रहा है, है ससार मे किसी और कुल के पास ऐसा बाल वीर रण बाकुरा? मैं चाहता हू अभिमन्यु का साहस इसी प्रकार वढे, यह अद्वितीय बलवान हो। चिरजीवि हो।"

दुर्मुख बोला—'पितामह! आप युद्ध करने आये है बालको का साहस वढाने नही। देखिये इस संपोलिए का मुह न कुचला गया तो यह अनर्थ कर देगा। हम सब को मार गिरायेगा"

गम्भीरता पूर्वक भीष्म बोले—"दुर्मुख! विश्वास रक्खो मे रण भूमि मे कभो किसी को रियायत नही किया करता। पर किसी वीर की शक्ति का गलत मूल्याकन भी नही करता। मैं और तुम सभी तो अभिमन्यु के विरुद्ध पूर्ण शक्ति से लड़ रहे है, पर क्या करे इस वीर में अलौकिक शक्ति है।"

उसी समय अभिमन्यु ने एक वाण भीष्म पितामह के चरणो मे गिराकर दूसरा झुकी नोक वाला इस युक्ति से मारा कि दुर्मुख के सारथी का सिर घड़ से अलग करता हुआ निकल गया। कृपाचार्य ने कुपित होकर अपने विशाल धनुष पर तीक्ष्ण वाण चढाया, पर अभी धनुष की डोरी खीच ही रहे थे कि अभिमन्यु ने एक ऐसा वाण मारा कि कृप के धनुष को दो टूक करता हुआ उनके पैरों मे गिर गया। सहसा भीष्म पितामह हस पडे और फिर

तुरन्त ही गम्भीर होकर आवेश मे आये और कई प्रकार के बाण चलाने आरम्भ कर दिए। पर रणागण मे नृत्य सा करते हुए वीर अभिमन्यु ने सभी मुख्य वीरो पर वार किए और सभी के पैने बाणो से अपनी रक्षा की। कई बार तो स्वय भीष्म जी तथा कृपाचार्य को अपने पर लज्जा आने लगी।

वीर अभिमन्यु का ऐसा हस्तलाघव देखकर देवता लोग भी दातों तले उगली दबा कर रह गए। वे आखे फाड़ फाड़ कर इस अद्भुत युद्ध को देख रहे थे और उनकी सहानुभूति स्वयमेव ही अभिमन्यु के प्रति हो गई थी। स्वय भीष्म जी अनुभव कर रहे थे कि वीर अभिमन्यु अपने धनुर्धारी पिता अर्जुन से किसी भी प्रकार कम नही है।

इतने मे कृपाचार्य, शल्य तथा कृतवर्मा ने एक साथ मिलकर अभिमन्यु पर तीरो की अबाध गति से भयकर वर्षा की। जिससे अभिमन्यु का शरीर कई जगह छिप गया परन्तु वह वीर मैनाक पर्वत के समान रण भूमि मे तनिक भी विचलित नही हुआ तथा कौरव वीरो से घिरु होने पर भी उस वीर ने उन पाचो अति रथियो पर बाणो की झडी लगा दी और उनके असख्य बाणो से अपनी रक्षा करते हुए उसने भीष्म जी पर बाण मारते हुए भीषण सिंह नाद किया। जिसे सुनकर शल्य के रथ के अश्व विचलित हो गए और भीष्म जी के अश्व काप उठे।

यह देख भीष्म पितामह चिन्तित हो गए और वीर अभिमन्यु को परास्त करने की इच्छा से उन्होने उस समय कितने ही अद्भुत और भयानक दिव्यास्त्र सम्भाले और एक के पश्चात एक का प्रयोग करने लगे। कभी अग्नि की लपटे निकलती तो कभी सर्वत्र धुए का बादल छा जाता और कभी पानी सा बिखरने लगता। यह उनका बडा ही भयानक प्रहार था। परन्तु फिर भी वीर अभिमन्यु के मुख पर चिन्ता अथवा भय का भी चिन्ह सग्राम भूमि से दूर ले गया। श्वेत कुमार ने छ बाण चढ़ाकर महारथियो की ध्वजाए तोड डाली और फिर उनके घोडो व सारथियो को भी बीध डाला। फिर नम्बर आया उन महारथियो का। एक भीषण सिंह नाद करके श्वेत कुमार ने उन पर आक्रमण किया। तडातड बाण बरसा के

उन्हे भी घायल कर दिया और फिर तेजी से शल्य की ओर बढा। इसे देखकर कौरवों की सेना मे बडा कोलाहल मच गया। तब श्वेत को इस प्रकार बढते देख दुर्योधन सेनापति भीष्म जी को आगे करके सारी सेना सहित श्वेत के रथ के सामने आ गया और मृत्यु के मुह मे पडे शल्य को भययुक्त किया और तव क्या हुआ, बस वर्णन से बाहर की बात है। बडा ही भयकर युद्ध होने लगा तथा भीष्म पितामह, अभिमन्यु भीमसेन, सात्यकि, केकय राज कुमार, धृष्ट द्युम्न, द्रुपद और भेदि तथा मत्स्य देश के राजाओ पर बाणो की भयकर वर्षा होने लगी। चारो ओर से मारो मारो' की ध्वनि आने लगी। धनुष की टकारों, चीत्कारो, चिघाडों आदि की ध्वनि से भीषण वातावरण उपस्थित हो गया।

तब लाखो क्षत्रिय वीर राजकुमार श्वेत की रक्षा में लग गए। उन्होने भीष्म जी के रथ को चारो ओर से घेर लिया। बडा ही घनघोर युद्ध होने लगा। भीष्म जी का मुख मण्डल लाल अगारे की नाई हो गया और उन्होने मारकाट मचाकर अनेक रथ सूने कर डाले। उस समय उनका पराक्रम वडा ही अद्भुत था। इधर राजकुमार श्वेत ने भी हजारो रथियो को गाजर मूली की भाति काट डाला। और अपने पैने बाणो से हजारो के सिर काट दिए। इस भयकर युद्ध को देखकर और श्वेत द्वारा मारकाट के वीभत्स दृश्य से घवराकर सजय अपना रथ छोडकर रण भूमि से चले गए और उन्होने सारा वृतात धृतराष्ट्र से जा सुनाया। इस भीषण करा-करी और मारकाट मे भीष्म पितामह ही निश्चल मेरु पर्वत समान खड़े थे। वे अपने दुस्त्यज प्राणो का मोह त्याग कर निर्भीक भाव से पाण्डवों की सेना का सहार कर रहे थे। जब उन्होने देखा कि श्वेत कुमार वडी तीव्रता व मुस्तैदी से कौरव सेना का सफाया कर रहा था, तो वे स्वय ही उस के सामने आ पहुचे। परन्तु श्वेत कुमार ने अपने बाणों की वर्षा से एक बार तो भीष्म जी को पूर्ण-तया ढक लिया। इस के उत्तर मे भीष्म जी ने भी भीषण बाण वर्षा की। उस समय यदि भीष्म जी ने रक्षा न की होती तो श्वेत कुमार कौरवों की सारी सेना को नष्ट कर देता और यदि श्वेत न होता तो ऐसा लगता था मानो भीष्म जी एक दिन मे ही सारी सेना

को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते। जव पाण्डवो ने देखा कि श्वेत ने भीष्म जी का मुह फेर दिया है तो वे बडे प्रसन्न हुए।

परन्तु दुर्योधन चिन्तित हो गया। अत्यन्त क्रोध मे भर कर अनेको राजाओ सहित सारी सेना ले कर वह पाण्डवो पर टूट पडा और अपने वीरो को ललकारा—"क्या हो गया है तुम्हे गौरव शाली क्षत्रिय वीरो। पाण्डवो को गाजर मूलियो की भाति सफाया करदो। यह तुम्हारे सामने है ही क्या!"

दुर्योधन की इस ललकार मे प्रेरित होकर कौरव वीर पाण्डवो पर भूखे सिहो की भाति टूट पडे। उस की प्ररणा से कृपाचार्य, दुर्मुख, कृतवर्मा और शल्य आदि भीष्म जी की रक्षा करने लगे। परन्तु कुपित श्वेत कुमार ने भयकर युद्ध किया, उस के साथ अन्य पाण्डव पक्षीय वीर भी जी जान तोड कर युद्ध कर रहे थे। इस भयानक युद्ध मे देखते ही देखते हजारो वीर सो गए। असख्य रथों के धुर्रे उड गए। हजारो की संख्या मे हाथी और घोडे ढेर हो कर गिर पडे। श्वेत कुमार ने दुर्योधन की सेना की धज्जिया उडा दी और उसे तितर बितर कर के भीष्म जी पर ही वार कर दिया। इस से दोनो मे घमासान युद्ध होने लगा।

राजकुमार श्वेत ने फिर भीष्म जी के रथ की ध्वजा काट कर गिरा दी। भीष्म जी ने कुपित हो श्वेत के रथ के घोडो और सारथी को मार गिराया। तव श्वेत ने अपना शक्ति नामक अस्त्र भीष्म जी पर चलाया परन्तु भीष्म जी ने अपने वाणो से उस का अस्त्र वीच ही मे रोक दिया।

इस पर तश्वे ने भारी गदा उठा कर जोरो से घुमाई और भीष्म जी के रथ पर जोरो से दे मारी। देखते ही देखते भीष्म जी ने रथ से कूद कर अपने प्राणो की रक्षा की श्वेत की गदा के प्रहार से भीष्म जी का रथ चकनाचूर होगया। भीष्म जी क्रोध के मारे आपे से वाहर हो गए और एक दिव्य वाण खीच कर श्वेत को जोरों से मारा। उस वाण के लगते ही विराट कुमार धाराशायी होगया, उस के वाण पखेरु उड गए। यह देख दु:शासन ने वाजे वजवा दिए और हर्ष के मारे नाच उठा। परन्तु भीष्म जी का हाथ रुका नही उन्हो ने श्वेत की मृत्यु के वाद पाण्डवों की सेना

में प्रलय मचा दी।

पहले रोज की लड़ाई मे पाण्डव सेना बहुत तग आ गई। धर्मराज युधिष्ठिर के मन मे भय छा गया। दुर्योधन आनन्द के मारे झूम रहा था।

सूर्य की यात्रा पूर्ण हुई। पश्चिम के सूर्य के अन्तिम चरण लाल बादलो के रूप मे प्रगट हुए और युद्ध बन्द होने के बाजे बज गए। दोनो सेनाए अपने अपने डेरो मे चली गईं। पाण्डव घबराहट के साथ श्री कृष्ण के डेरे मे गए और युद्ध की चिन्ता जनक स्थिति से पार उतरने का उपाय सोचने लगे।

श्री कृष्ण ने धैर्य बन्धाते हुए कहा—"आप व्यर्थ ही चिन्ता करते है, आप पांचो के रहते, पाचाल तथा मत्स्य देश की विशाल सेना के होते हुए आप की पराजय हो जाये, यह असम्भव है। आप विश्वास रखिये कि विजय आप की ही होगी। युद्ध मे तो ऐसा होता ही है कि कभी शत्रु आगे बढता है, कभी पीछे हटता है। आप चिन्तित न हों।"

"परन्तु भीष्म जी के रहते हमारी विजय कैसे हो? वे तो अकेले ही हमारी समस्त सेना का मुकाबला कर रहे है।"—धर्म राज ने कहा!

श्री कृष्ण ने अपनी बात पर जोर देते हुए कहा—"भीष्म जी भी सदा नहीं रहेगे। आप लोग यह क्यो भूलते है कि शिखण्डी भीष्म जी को मारने के लिए ही पैदा हुआ है।"

बात चीत के उपरान्त दूसरे दिन के युद्ध की योजना बनी।

❋ तेतीसवां परिच्छेद ❋

पहले दिन जो पाण्डव सेना की दुर्गति हुई थी, उससे सवक लेकर पाण्डव सेना के नायक धृष्ट द्युमन ने दूसरे दिन बड़ी सतर्कता से व्यूह रचना की और सैनिको का साहस बधाया।

युद्ध आरम्भ होते ही कौरव सेना ने भीष्म पितामह के सेना पतित्व मे पुनः पाण्डव सेना पर आक्रमण किया। भीषण युद्ध होने लगा। एक बार के भयकर आक्रमण से पाण्डवो की सेना तितर बितर हो गई। बडा हाहाकार मच गया। असख्य वीर मौत के घाट उतारे जाने लगे।

यह देख अर्जुन ने श्री कृष्ण को अपना रथ भीष्म जी की ओर ले चलने की आज्ञा दी। अर्जुन का रथ ज्यो ही भीष्म जी के रथ के सामने पहुचा, दुर्योधन की आज्ञा से कौरव सेना के प्रमुख वीरो ने भीष्म जी की रक्षा के लिए उन के रथ को चारो ओर से घेर लिया। भीष्म जी ने अर्जुन के ऊपर भयकर बाण वर्षा की। परन्तु अर्जुन को तनिक भी चिन्ता न हुई। उस ने वड़े वेग से आक्रमण किया और कुछ ही देर में भीष्म जी के चारो ओर की रक्षा पंक्ति को तोडता हुआ भीष्म जी के सन्मुख पहुच गया। यह देख कर दुर्योधन का भीष्म जी पर से एक बारगी विश्वास उठ गया। भय विह्वल होकर वह बोला—"प्रतीत होता है कि आपके और द्रोणाचार्य के जीते जी अर्जुन सारी कौरव सेना को मौत के

घाट उतार देगा। महारथी कर्ण ने, जो मुझ से स्नेह रखता है, आप ही के कारण हथियार न उठाने का प्रण कर रक्खा है। जान पडता है उस की अनुपस्थिति में मुझे निराशा का ही सामना करना होगा। आप की शक्ति कहा गई। कोई उपाय बताइये, कुछ कीजिए। किसी भांति अर्जुन को मौत के घाट उतारिये।"

इन कटु वचनो से भीष्म को बडा क्रोध आया और जोश में आकर उन्होने अर्जुन पर भयकर आक्रमण कर दिया। उस समय भीष्म तथा अर्जुन मे ऐसा भयकर युद्ध हुआ कि आकाश मे स्वयं देवता उसे देखने के लिए एकत्रित हो गए।

दोनो वीरो में तुमुल युद्ध हो रहा था। सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र चल रहे थे। दोनो के रथ इस प्रकार आपस मे युद्ध रत थे कि केवल ध्वजा को पहचान कर ही जाना जा सकता था कि कौन कहा है। भीष्म जी के कुछ बाण श्री कृष्ण के लगे और उन के श्याम बदन से रक्त वह निकला। इस से अर्जुन कुपित हो गया और भीष्म जी पर बुरी तरह टूट गया।

इधर द्रोणाचार्य से धृष्ट द्युमन लड रहा था। दोनो मे भयकर सग्राम हो रहा था। द्रोणाचार्य के वारो से धृष्ट द्युमन तनिक न घबराया तब झूझला कर द्रोणाचार्य ने उस के सारथी को मार डाला। इस से धृष्ट द्युमन को वहुत क्रोध आया और भारी गदा लेकर द्रोणाचार्य के रथ पर टूट पडा। परन्तु द्रोण ने अपने वाणो के प्रहार से धृष्ट द्युमन का गदा का वार ही न ठीक वैठने दिया। तब धृष्ट द्युमन ने तलवार सम्भाली और द्रोण पर झपटा। द्रोण ने इतने वाण मारे कि धृष्ट द्युमन के शरीर मे अनेक घाव लगे और वह चलने योग्य भी न रहा। यह देख भीमसेन उसी समय वहा पहुचा और धृष्ट द्युमन को अपने रथ मे विठा लिया और तुरन्त वडे वेग से द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के कारण द्रोणाचार्य थोड़ी देर के लिये अपने स्थान पर रुक गए। भीम अपने रथ को लेकर रण भूमि से वाहर चलने लगा। दुर्योधन ने उसे देख लिया. तो कलिंग देश की सेना को उस ने भीमसेन पर आक्रमण का आदेश दिया। जब कलिंग सेना ने आक्रमण किया तो भीमसेन ने उस के उत्तर मे ऐसा आक्रमण किया कि थोडी ही

देर मे कलिंग सेना में हाहाकार मच गया और सैनिक यह कहने लगे कि कही यमराज ही तो भीम सेन के रूप मे नही आगए एक बार सेना मे निराशा छा जाने से सारी सेना भाग खडी हुई। यह देख भीष्म जी अर्जुन के मुकावले से हट कर भीम सेन की ओर बढ़े। सात्यकि, अभिमन्यु आदि पाण्डव वीर उस समय भीमसेन की रक्षा को दोड़ पड़े और भयकर युद्ध हाने लगा। जिस के कारण कौरव सेना का साहस टूट गया और सैनिक पश्चिम की दिशा मे देखने लगे और सूर्य के अस्त होने की कामना करने लगे।

निर्दय सूर्य अस्त हुआ। सन्ध्या हुई। तो भीष्म द्रोणाचार्य से बोले—"आचार्य ! अब युद्ध रोकना ही होगा। आज हमारी सेना का साहस टूट गया है।"

युद्ध बन्द होगया और अर्जुन आदि पाण्डव वीर विजय के बाजे बजाते हुए अपने डेरो में चले गए। कल पाण्डव सेना मे जो आतक छाया था वह आज कौरव सेना मे छा गया।

※ चौंतीसवां परिच्छेद ※

युद्ध का समय होने पर भीष्म जी ने अपनी सेना की गरुड के आकार मे व्यूह रचना की और उसके अगले सिरे का बचाव दूर्योधन के जिम्मे किया। कल हुई क्षति को ध्यान मे रखकर आज की व्यूह रचना सतर्कता से की गई थी। शत्रु सेना की व्यूह रचना देखकर धृष्ट द्युम्न ने अपनी सेना की व्यूह रचना अर्ध चन्द्र के आकार पर की। एक सिर पर अर्जुन तथा दूसरे पर भीमसेन रक्षा के लिए खडे हो गए।

व्यूह रचना के उपरान्त युद्ध आरम्भ होने का वाजा वजा और फिर दोनो सेनाए एक दूसरे पर आक्रमण करने लगी। आज दोनों ओर की सैनिक टुकड़िया इस प्रकार एक दूसरे से गुथ गई और उनमे इस प्रकार भीषण सग्राम होने लगा कि रथो, घोडो और हाथियों के तेज़ चलने के कारण इतनी धूल उड़ी कि गर्द के मारे आकाश मे दीप्तिमान सूर्य भी न दिखाई देता था। अर्जुन ने शत्रु सेना पर भयकर आक्रमण किया फिर भी वह शत्रु सेना का घेरा न तोड सका। दूसरी ओर से कौरवो ने भी एक साथ मिलकर अर्जुन पर आक्रमण किया। टिड्डी दल की भाति अपनी ओर आती कौरव सेनाओं का देखकर अर्जुन ने वड़े वेग से वाण वरसाये और चारो ओर वाण वरसा कर अपने चारो ओर वाणो ही वाणो का एक घेरा सा वांध दिया जिससे कौरव सेनाओ के द्वारा चलाए गए

भीषण शस्त्र अस्त्रो का प्रहार वीच ही मे कट गया।

उधर दूसरी ओर शकुनि को भारी सेना सहित पाण्डवो की ओर बढते देखकर अभिमन्यु और सात्यकि उसके मुकाबले पर जा डटे। शकुनि ने बडी रण कुशलता दिखाई और सात्यकि का रथ तहस नहस कर दिया तव सात्यकि बडे जोश मे आ गया और अभिमन्यु के रथ पर चढकर शकुनि की सेना पर भयकर आक्रमण करके उसकी सेना को नष्ट कर डाला।

युधिष्ठिर जिस सेना का संचालन कर रहे थे उस पर भीष्म और द्रोणाचार्य एक साथ टूट पडे। यह देख नकुल तथा सहदेव दोनो युधिष्ठिर की सहायता के लिये दौड पडे और बाणो का भयकर प्रहार कर दिया। भीम तथा घटोत्कच ने एक साथ दुर्योधन पर आक्रमण किया। घटोत्कच के रण कौशल के सामने भीमसेन की चतुराई तथा रण कौशल भी फीके पड गए भीमसेन के एक बाण से दुर्योधन धक्का खाकर बेहोश हो गया। यह देख सारथी ने सोचा कि यदि कही कौरव सेना को दुर्योधन के मूच्छित होने का पता चल गया तो सेना मे खलबली मच जायेगी, इस लिए वह शीघ्र ही दुर्योधन के रथ को रण क्षेत्र से दूर ले गया। परन्तु जव कौरव सेना ने दुर्योधन का रथ न पाया तो सेना समझी कि दुर्योधन रण से भाग गया, इस लिए सारी सेना मे हाहाकार मच गया और सेना तितर-बितर हो गई।

भय विह्वल होकर रण से भागते कौरव सैनिको का भीमसेन ने पीछा किया और उन्हे वाण मार कर बहुत ही परेशान किया।

भागती सेना को भीष्म तथा द्रोणाचार्य ने वडी कठिनाई से रोका और उसे एकत्रित करके पुन व्यूह रचना की। इतने मे दुर्योधन की मूर्छा भग हो गई और उसने पुन रण स्थल पर आकर परिस्थिति को सम्भालने मे सहयोग दिया। जब जरा शाति हुई और सेना व्यवस्थित हो गई तो दुर्योधन पितामह भीष्म के पास गया और इन्हे जली कटी सुनाने लगा। वोला—

"आप और आचार्य जी करते क्या है आप लोग अपनी सेना को भी व्यवस्थित नही रख पाते। जव भयकर आक्रमण होता है

तो आप की सेना की व्यवस्था भग हो जाती है और आप से कुछ करते नही बनता ? आप के अन्दर इतनी शक्ति है कि आप चाहें तो पाण्डवो को एक दिन मे भगा सकते हैं, परन्तु आप से कुछ होता ही नही। इस का मतलब है कि आप पाण्डवो से स्नेह रखते है और वह स्नेह ही आपको हृदय से लडने नही देता। यदि यही बात थी तो आप ने पहले ही क्यो न कह दिया कि मैं पाण्डवो से नही लड सकता। एक तो आप के कारण कर्ण युद्ध मे नही उतर रहा। दूसरे आप और द्रोणाचार्य, जब कि चाहे तो पाण्डवो को मार भगा सकते है पाण्डव हमारी सेना को मारे डाल रहे हैं। आप को जी लगा कर युद्ध करना चाहिए।"

दुर्योधन की बात सुनकर भीष्म जी को बडा क्रोध आया और वे बोले—"मैंने अपनी बात छिपाई ही कहा है ? मैंने तो पहले ही कहा था कि तुम पाण्डवो से नही जीत सकते। पर तुम नें मेरी सुनी भी हो। मैं बूढा हो गया हू फिर भी तुम्हारी ओर से जी जान तोडकर लड रहा हू। पर पाण्डवो की शक्ति के सामने कुछ दन नही पा रहा इसमे मेरे पाण्डवो के प्रतिस्नेह को बिल्कुल दखल नही।'

इतना कहकर भीष्म ने पुनः युद्ध आरम्भ कर दिया।

इधर दिन के पहले भाग मे कौरव सेना तितर बितर हो जाने से पाण्डवो मे हर्ष छाया था। सारी सेना आनन्दित थी। पाण्डवों का विचार था कि आज भीष्म पुनः कौरव सेना को एकत्रित करके भयंकर रूप मे न लड पायेंगे। परन्तु जब भीष्म जी ने कौरव सेना व्यवस्थित करके पुनः आक्रमण किया और क्रोध मे आकर भयकर रूप मे लडे तो पाण्डवो को अपने भ्रम का ध्यान आया। जो वीर भीष्म जी के सामने आया, वही ढेर हो गया। भीष्म जी जिधर से निकलते मारकाट करते चले जाते। पाण्डव सेना की व्यवस्था भग हो गई और श्री कृष्ण, अर्जुन तथा शिखण्डी भी अपने प्रयत्नों के बावजूद सेना मे अनुशासन तथा व्यवस्था न रख सके।

यह देख श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा —"पार्थ ! अब तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया। तुम ने शपथ ली थी न कि भीष्म द्रोण आदि गुरु जनों, मित्रों और सम्बन्धियो का सहार करूंगा। अब

समय आ गया है कि अपनी शपथ को पूरा कर दिखाओ। हमारी सेना इस समय भय विचलित हो रही है। उन के पांव उखड रहे है। यही समय है कि भीष्म पर जोर का आक्रमण कर के अपनी सेना का साहस बधाओ और उसे नष्ट होने से बचाओ।"

अर्जुन ने यह सब देखा और श्री कृष्ण की बात सुन कर बोला—"माधव! आप रथ को भीष्म जी की ओर कर लीजिये।"

अर्जुन को अपनी ओर आता देख भीष्म जी ने भयकर वेग से बाण वर्षा आरम्भ करदी। परन्तु अर्जुन ने अपने बाणों के द्वारा ही उन बाणो से अपनी रक्षा की और अन्त में तीन बाण ऐसे मारे कि भीष्म जी का धनुष टूट गया उन्होने ज्यो ही दूसरा धनुष लेकर उसकी डोरी चढानी चाही कि अर्जुन ने पुनः दो बाणों से उन के हाथ के धनुष को तोड डाला। तब भीष्म जी ने शीघ्रता से तीसरा धनुष लेकर अर्जुन पर तडातड़ तीन बाण चलाये परन्तु अर्जुन ने उन्हे बीच ही मे काट दिया। फिर भीष्म जी की ओर से बाणो की वर्षा होने लगी अर्जुन अपनी रक्षा तो करता रहा, परन्तु उसकी ओर से कोई आक्रमण कारी बाण न छूटने के कारण श्री कृष्ण को सन्देह हुआ कि अर्जुन के हृदय मे भीष्म जी के प्रति जो असीम श्रद्धा है, उसी के वशी भूत हो कर वह अपनी पूरी शक्ति से नही लड पा रहा। उधर भीष्म जी के कई ऐसे तीखे बाण आये जो श्री कृष्ण को चोट पहुचा गए यह देख श्री कृष्ण ने इस प्रकार रथ को घुमा फिरा कर हाका कि भीष्म जी का कोई भी तीर अर्जुन अथवा उन्हे न लगे। कितनी ही देरि तक यह चलता रहा पर अर्जुन अपने बाणो का प्रयोग आत्म रक्षा मे ही कर पाया। यह देख क्रुद्ध होकर श्री कृष्ण सुदर्शन चक्र लेकर रथ से कूद पडे और शीघ्रता से भीष्म जी की ओर दौडे! भीष्म ने जब श्री कृष्ण को आक्रमण करने आते देखा, वे तनिक भी विचलित न हुए। परन्तु जब अर्जुन ने उन्हे देखा तो वह रथ से कूद पडा और दौड कर उन्हे रोक लिया। कहा—"मधु सूदन! आह अपनी प्रतीज्ञा क्यो भग करते है आप अस्त्र क्यो उठाते है?"

श्री कृष्ण ने कहा—"हटो अर्जुन! तुम युद्ध मे अपने बडो का आदर करते हुए लड नही पा रहे तो क्या मैं भी पाण्डव सेना को

अर्जुन ने विनीत भाव से कहा—"मधुसूदन ! मुझे क्षमा कीजिए, मैं अपनी सुस्ती पर बहुत लज्जित हू। आप रथ पर चलिए, अब आपको कोई शिकायत नही रहेगी।

अर्जुन के बार बार आश्वासन देने पर श्री कृष्ण लौटकर रथ पर आ बैठे और सतर्कता से रथ हाकने लगे। अर्जुन पूरे वेग से युद्ध करने लगा। उसने ऐसा आक्रमण किया कि कौरवो की सेना तितर बितर हो गई। सूर्यास्त होते होते कौरव सेना थक कर चूर हो चुकी थी और अर्जुन ने कुछ ही देरि मे हजारो शूरवीरो को मार गिराया था।

* पैंतीसवां परिच्छेद *

चौथा दिन

पौ फटी और भीष्म ने कौरव सेना का पुनः व्यूह रचा। द्रोण, दुर्योधन आदि भी उन्हे घेरकर खड़े हो गए। जब सेना की व्यवस्था ठीक हो गई तो भीष्म जी ने सेना को आगे बढने का आदेश दिया। उधर अर्जुन कपि की ध्वजा वाले रथ से भीष्म जी की समस्त गतिविधियो को देख रहा था, उसने भी अपनी सेना को ठीक किया और आगे बढा। युद्ध आरम्भ हो गया।

अश्वस्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, शल-पुत्र आदि पाच वीरो ने अभिमन्यु को एक साथ घेर लिया और भीषण वार करने लगे। परन्तु अर्जुन पुत्र बालक वीर अभिमन्यु तनिक भी विचलित न हुआ और आक्रमण का वीरता पूर्ण दृढता के साथ मुकाबला करने लगा। मानो एक सिंह शावक हाथियों के झुण्ड का मुकाबला कर रहा हो। अर्जुन ने जब यह देखा तो उसे बडा क्रोध आया और तुरन्त ही अभिमन्यु की रक्षा के लिए पहुंच गया। अर्जुन के पहुंचते ही युद्ध मे गम्भीरता आ गई। इतने मे धृष्ट द्युम्न भी भारी सेना लिए वहां आ पहुंचा।

शल का पुत्र मारा गया, यह सूचना पाते ही शल और शल्य उस स्थान पर जा पहुंचे और धृष्ट द्युम्न पर बाणों की वर्षा करने लगे और उन्होने उसका धनुष काट डाला। यह देखकर अभिमन्यु धृष्ट द्युम्न की सहायता के लिए पहुंच गया और उसने जाते ही शल्य पर तीक्ष्ण बाणो की वर्षा कर दी। फिर क्या था शल्य भी

उबल पडा। वह बड़े ही भयंकर रूप मे युद्ध करने लगा, इस से अभिमन्यु को क्रोध आ गया और उसने जो तीक्ष्ण बाण वर्षा करके भयानक युद्ध छेडा तो शल्य के प्राणो पर आ बनी। यह देख कौरव वीरो को चिन्ता हुई। दुर्योधन और उसके भाई शल्य की रक्षा के लिए आये और शल्य को चारो ओर से घेर कर पाण्डव वीरो से लड़ने लगे। तभी भीमसेन आ निकला और उसने भीषण संग्राम आरम्भ कर दिया। दुर्योधन को भीमसेन पर बड़ा क्रोध आया और उसने हाथियो की भारी सेना लेकर उन्मत गज समान भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन उसी समय एक लोहे की भारी गदा लेकर रथ से कूद पड़ा और भीमसेन की गदाओ की मार से हाथी बिगड खड़े हुए और आपस मे ही लड़ने लगे। वह दृश्य बड़ा ही वीभत्स हो गया। हाथियो की यह दयनीय दशा देखकर पाण्डवो ने उन पर वाण वर्षा कर दी जिससे हाथी और भी भयभीत हो गए।

और लोग हाथियों की इस दशा को देखकर ही काप जाते, परन्तु भीमसेन गदा लिए हुए उन हाथियों के बीच ही युद्ध कर रहा था। अनेक हाथी भीमसेन के हाथो मारे गए और पहाड़ों की भाति रण भूमि मे गिर पडे। बचे खुचे हाथी अपने प्राण लेकर भागने लगे और इस प्रकार कौरवो की सेना का ही नाश करने लगे।

अपनी इस दुर्गति का कारण भीमसेन को समझ कर दुर्योधन ने अपनी सेना को ललकार कर आदेश दिया कि सभी मिलकर एक साथ भीमसेन पर आक्रमण कर दो। सेना ने आज्ञा का पालन किया, परन्तु भीमसेन मेरु पर्वत के समान डटा खडा रहा। सेना उसका कुछ न बिगाड सकी, उल्टे कितने ही कौरव वीर भीमसेन के हाथों मारे गए।

इधर दुर्योधन ने कुछ बाण ऐसे मारे कि भीमसेन के ऊपर आ लगे। इस से भीमसेन कुपित हुआ और दुर्योधन तथा उसके भाईयो पर आक्रमण करने हेतु पुन: रथ पर आ चढा और आक्रमण कर दिया। फिर इतना भयकर युद्ध किया कि दुर्योधन के आठ भाई मारे गए।

उधर घटोत्कच ने जब देखा कि कौरव वीर इकट्ठ होकर

भीमसेन को घेर लेना चाहते हैं, उन मे भीष्म जी भी है, तो वह क्रुद्ध होकर अपने दिव्यास्त्र चलाता हुआ उनके सामने जा अड़ा। भीष्म जी ने कितना ही भयकर युद्ध किया पर वे घटोत्कच से छुटकारा न पा सके। बल्कि भीष्म जी के साथ साथ रहने वाले कुछ कौरव भ्राता मारे गए।

सारे दिन कौरव वीर पिटते ही रहे और भीमसेन तथा घटोत्कच दोनो ही प्रमुख पाण्डव वीर थे जिन्होने कौरवो को होश न लेने दिया।

जब सूर्यास्त हुआ, तो दुर्योधन ने सुख की सास ली। थका माँदा अपनी सेना लेकर अपने कैम्प की ओर चला गया। रात्रि को वह अकेले ही भीष्म पितामह के पास चला गया और बडी नम्रता के साथ उन से जाकर कहा—"पितामह! यह तो सारा ससार जानता है कि आप, द्रोण, कृप, अश्वस्थामा, कृत बर्मा, भूरिश्रवा, विकर्ण, भगदत्त आदि साहसी वीर मृत्यु से भी नही डरते। इस मे भी कोई सन्देह नही कि आप लोगो की शक्ति और पराक्रम के सम्मुख पाण्डवो की सेना भी कुछ नही है। आप में से एक एक के विरूद्ध पाचो पाण्डव भी इकट्ठे होकर जुट जाए, फिर भी जीत उनकी नही हो सकेगी। इतना होने पर भी क्या कारण है कि कुन्ती पुत्र प्रतिदिन हमें हराते ही जाते हैं। जरूर इसमें कोई रहस्य है, क्या है? कृपया उसे मुझे बताईये।"

भीष्म जी ने शात भाव से कहा—"बेटा दुर्योधन! मैंने तुम्हे कई बार समझाया, पर तुम ने मेरी एक न मानी। मैं फिर कहता हू पाण्डवो से सन्धि कर लो। पाण्डवो के मुकाबले पर एक बार यदि देवतागण भी आ जाए तो भी वे परास्त नही हो सकते। क्योंकि वे अपनी शुभ प्रकृति और धर्म नीति के कारण अजेय हैं। वे न्याय की ओर है और तुम्हारा पक्ष अन्याय का है। श्री कृष्ण वासुदेव उनके साथ है। धर्मराज युधिष्ठिर के शुभ कर्मो का फल उन्हें अवश्य ही मिलेगा। तुम सन्धि करके थोडा सा उनका राज्य लौटा दो तो वे तुम्हारे भाई हो रहेगे, तुम फिर भी राजा ही रहोगे और सर्वनाश से बच जाओगे। एक कुल के लोग होकर क्यो लड़ते हो। धर्मराज तथा श्री कृष्ण के मुकाबले हम जीत ही नही सकते। उनकी रक्षा उनका धर्म कर रहा है। बस यही रहस्य है।"

उस दिन दुर्योधन को क्रोध नही आया। शांत होकर अपने शिविर मे चला गया। पलग पर लेटा हुआ बडी देर तक अपने विचारो मे डूबा रहा। उसे नीद नही आई।

* छत्तीसवां परिच्छेद *

पांचवां दिन

अगले दिन प्रात होने पर ही फिर दोनो सेनाए युद्ध के लिए सज्जित हो गई। भीष्म जी ने आज और भी अच्छी तरह अपनी सेना की व्यूह रचना की। इधर युधिष्ठिर ने पाण्डव सेना की कुशलता पूर्वक व्यूह रचना की। सदा की भाति आज पुन. भीम सेन को आगे रक्खा गया। शिखडी, धृष्ट-द्युमन और सात्यकि भीमसेन के पीछे सेना लेकर खड़े हुए। सब से पिछली पक्ति मे युधिष्ठिर नकुल और सहदेव थे।

शंख ध्वनि के साथ लडाई हुई। भीष्म ने धनुष उठा कर पहली टकार की और वाण वर्षा कर के पाण्डव सेना का नाकों दम कर दिया। सेना में हाहाकार मच गया यह देख कर धनजय ने कई बाण भीष्म जी पर मारे और उन्हे बहुत तग कर डाला। आज भी अपनी सेना को भीम तथा अर्जुन के बाणो के हत प्रभ होते देख दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को बहुत बुरा भला कहा। रुष्ट होकर द्रोण बोले—

"तुम पाण्डवो के पराक्रम से परिचित ही नही हो और व्यर्थ ही मे बक झक किया करते हो। मैं अपनी ओर से युद्ध मे कोई कसर नही रखता तुम निश्चय जानो।"

यह कह कर द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना पर टूट पडे। यह देख सात्यकि ने भी शक्ति पूर्वक उस आक्रमण का जवाब दिया।

भयानक युद्ध छिड गया। सात्यकि भला द्रोणाचार्य के सामने कब तक टिकता। सात्यकि की बुरी गत होते देख भीमसेन उस की सहायता को दौड़ आया और द्रोणाचार्य पर आते ही भयङ्कर बाण वर्षा आरम्भ करदी।

इस पर युद्ध और जोर पकड़ गया। द्रोण, भीष्म और शल्य तीनों भीमसेन के मुकाबले पर आगए। यह देख शिखंडी ने भीष्म तथा द्रोण दोनो पर तीक्ष्ण बाणो की वर्षा आरम्भ कर दी शिखंडी के मैदान मे आते ही भीष्म रण भूमि छोड़ कर चले गए। क्योकि उनका कहना था कि शिखण्डी जन्म से ही पुरुष न होकर स्त्री है इस लिए उसके साथ लडना क्षात्र-धर्म के विरुद्ध है।

जब भीष्म भी मैदान छोड गए तो द्रोणाचार्य ने शिखंडी पर आक्रमण कर दिया। महारथी होते हुए भी शिखंडी द्रोणाचार्य के सामने अधिक देर न टिक सका।

दोपहर तक भीषण सकुल युद्ध होता रहा। दोनों ओर के सैनिक आपस मे गुत्थम-गुत्था होकर लड़ने लगे। दोनों ओर से असख्य वीर इस युद्ध की बलि चढ़ गए।

तीसरे पहर दुर्योधन ने सात्यकि के विरुद्ध एक भारी सेना भेज दी। पर सात्यकि ने उस सेना का सर्वनाश कर दिया और भूरिश्रवा को खोज कर जा कर उस से भिड गया। परन्तु भूरिश्रवा भी कोई कम वीर न था. वह भी डटा रहा और अन्त मे सात्यकि के सभी साथी थक कर अलग हो गए। अकेला सात्यकि डटा रहा। यह देख कर सात्यकि के दसों पुत्र भूरिश्रवा पर टूट पड़े।

परन्तु भूरिश्रवा तनिक भी विचलित नही हुआ। उन की एक साथ की गई बाण वर्षा से वह अपनी रक्षा करता रहा और अन्त मे अपने बाणों से उन सभी के धनुष तोड़ डाले और अचानक ही एक ऐसा भयकर अस्त्र प्रहार किया कि दसो कुमार मारे गए। वे दसों भूमि पर ऐसे गिरे जैसे वज्र गिरने पर पेड़ धाराशायी हो जाते हैं। अपने दसो पुत्रो को इस प्रकार मृत देख सात्यकि मारे शोक व क्रोध के आपे से बाहर हो गया और भूरिश्रवा पर टूट पडा, दोनों के रथ आपस मे टकराकर चूर हो गए। तब दोनो ढाल तलवार लेकर भूमि पर लडने लगे। इतने मे भीमसेन तेज़ी से रथ लेकर आया और सात्यकि को बलपूर्वक रथ मे बैठाकर रण भूमि

से बाहर ले गया। भूरिश्रवा तलवार का धनी था, उसके सामने खडग युद्ध मे किसी का टिक पाना दुर्लभ ही था, भीमसेन को यह बात ज्ञात थी, इसीलिए वह सात्यकि को रणक्षेत्र से बाहर ले गया।

सन्ध्या होते होते अर्जुन ने हजारो कौरव सैनिको का जीवन समाप्त कर दिया, जितने वीर दुर्योधन ने अर्जुन से लड़ने भेजे वे बेचारे सभी बेबस होकर मरे जैसे आग मे कीड़े। यह देखकर पाण्डव सेना ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया और जोर का जय जयकार कर उठे। उधर सूरज डूब गया और भीष्म ने युद्ध बन्द कर देने की आज्ञा दे दी।

* सैंतीसवां परिच्छेद *

महाभारत के युग मे सैन्य व्यूहो के नाम पशु अथवा पक्षी के नाम पर होते थे। आप जानते ही होगे कि व्यायाम के जो आसन प्रचलित है उनके नाम भी पशु पक्षियो के नाम पर ही होते है, जैसे मत्स्यासन, गरुडासन आदि। ऐसा प्रतीत होता ह कि आसनो के उक्त नाम भी उसी युग की यादगार है। हा सैन्य शक्ति की व्यूह रचना आजकल उस युग के समान नही होती, युग बदल गया है और विज्ञान के नवीन चमत्कारो के साथ साथ युद्ध प्रणाली और सैन्य व्यवस्था मे भी बहुत परिवर्तन आ गया है।

उन दिनो किसी व्यूह विशेष की रचना करते हुए यह ध्यान रखा जाता था कि सेना का फैलाव कैसा हो? विभिन्न सेना विभागो का विभाजन किस प्रकार हो? किस स्थान पर कौनसा भाग किस के नेतृत्व मे रक्खा जाये? कौन कौन से सेना-नायक किन-किन मुख्य स्थानो पर सन्य सचालन को? किस की सहायता के लिए अवसर आने पर कौन जा सकता है? इत्यादि। इन सब वातो को खूब सोच विचार कर और शत्रु सेना के योद्धाओ तथा उनके आक्रमण आदि का विचार करके आक्रमण तथा बचाव दोनो प्रकार की कार्रवाइयो की कुशल व्यवस्था करना ही व्यूह रचना कहलाती थी। जिस व्यूह का आकार गरुड के आकार का होता वह गरुड व्यूह कहलाता और जो मगरमच्छ के आकार का होता उसे मकर-व्यूह कहते थे। युद्ध के सचालक जिस दिन जो उद्देश्य

लेकर युद्ध करते. उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक प्रवन्ध करते और पहले ही योजना बनाकर व्यूह रचना करते थे।

—तो उस दिन ज्यो ही रात्रि का घूघट उठा और सूर्य की रूपहली किरणो का मुखडा दिखलाई दिया, दुर्योधन अपने शिविर से निकल कर भीष्म जी के शिविर की ओर बढा। उसके मुख पर चिन्ता की रेखाए स्पष्ट थी, वह कुछ सोच रहा था और उसके भारी नेत्रों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता था कि वह रात्रि को सो नही पाया है। विचारो मे डूबा हुआ वह चला जा रहा था, कभी उसके चेहरे पर शोक एव दु:ख के भाव झलक आते तो कभी क्रोध तथा आवेश उसके वदन पर प्रतीत होता। विभिन्न भावनाओं के ज्वार भाटे मे डूबता उछलता दुर्योधन भीष्म जी के पास पहुचा। पितामह दैनिक कार्यो से निवृत होकर अपनी सैन्य पोशाक पहन रहे थे। ज्यो ही मुह लटकाए दुर्योधन को अपने सामने पाया बोले—"आज प्रात ही दुखित मुद्रा लिए आ रहे हो क्या बात है?"

"दादा जी! आप मुझ से ऐसा प्रश्न कर रहे है, मानो आपको कुछ पता ही नही है। आप मेरे मन की व्यथा को जानते हुए भी ऐसा युद्ध कर रहे हैं। इतना कटु परिहास न कीजिए।"—दुखित होते हुए दुर्योधन ने कहा।

भीष्म जी ने दुर्योधन की वात सुनी तो वे स्वय आश्चर्य चकित रह गए। आश्चर्य चकित इस लिए कि गत दिनो हुई कौरवों की हार से दुर्योधन का मन इतना कथित हो जायेगा, धीरज बिलकुल छोड देगा, वह इसकी उन्हे आशा ही न थी। फिर उनके विचार से विगत ५ दिनो मे ऐसी तो कोई वात नही हुई थी जिससे यह प्रगट होता है कि पाण्डव विजय के पथ पर अग्रसर हो रहे है और कौरव बिल्कुल ही डूब रहे हैं। अत: वे बोले—"बेटा! अभी तो युद्ध होते पाच ही दिन हुए है। इन पाच दिनो मे तुम्हे कोई ऐसी तो क्षति नही पहुंची जिसके कारण तुम इतने दुखित हो। हा हमारे जो वीर मारे गए, उनका शोक किया जा सकता है। परन्तु इतने भयकर और महा युद्ध मे वीरों की वलि न हो, यह तो असम्भव है। हमे तो न जाने कितने महान योद्धाओ का विछोह भी सहन करना होगा। इस युद्ध मे विजय यूही तो नही मिलने वाली। फिर तुम जैसा साहसी अभी से दिल तोड बैठे, धीरज क्या देगा तो

फिर कैसे काम चलेगा।"

दुर्योधन ने दीर्घ विश्वास छोडा और बोला –"पिता यह, मुझे अपने प्यारे वीरो के विछोह का इतना गम नही जितना शोक इस बात का है कि, जबकि आप के पास इतनी विशाल एव भयानक सेना है, और उसकी व्यूह रचना भी वडी सावधानी से की जाती है, फिर भी पाण्डव महारथी उसे तोडकर हमारे वीरो को मार डालते हैं। हमारे दुर्गम मकर व्यूह तक को उन्होने तोड डाला और जबकि व्यूह मे मेरा ऐसा सुरक्षित स्थान होता है कि शत्रु का वहा तक पहुचना असम्भव होना चाहिए, फिर भी भीमसेन ने अपने मृत्यु दण्ड के समान प्रचण्ड वाणो से मुझे तक घायल कर डाला। दादा जी ! कल तो भीमसेन की रोष पूर्ण मूर्ति को देखकर मेरा कलेजा काप गया। पाण्डव जब जयघोष करते युद्ध से लौटते हैं उस समय मेरे मन पर क्या बीतती है, बस कुछ न पूछिये। हमारे पास उन से सेना अधिक, आप जैसे महारथी हमारे पास, और फिर भी राज्य विहीन पाण्डव हमारे सामने से अकडते व फुफकारते तथा विजय घोष करते निकलें, यह मुझ से नही देखा जाता। मैं तो आप की कृपा से पाण्डवो का काम तमाम करने के स्वप्न देखा करता था।"

दुर्योधन की वात भीष्म पितामह ने धीरज से सुनी और वे मुस्करा दिए। जैसे उनके मन मे यह भाव जमा हो कि—"मूर्ख ! वस इतनी सी वात पर घवरा गए।" – किन्तु भीष्म जी ने कदाचित अपने भावो को छुपाते हुए कहा—"दुर्योधन ! मैं तो अधिक से अधिक प्रयत्न करके पाण्डवो मे घुसता हूं और जो सामने पड जाता है उसे ही यमलोक पहुचाने मे अपने प्राणो तक की वाज़ी लगा देता हूं। भविष्य मे भी मैं अपने प्राणों का मोह त्याग कर पाण्डवो को परास्त करने के लिए जी जान तोडकर लडूंगा। तुम विश्वास रक्खो कि मैं तुम्हारी ओर हूं तो शत्रु की ओर से देवता भी क्यो न आ जाये, उन्हे भी मारने मे न चूकूगा। परन्तु जव शत्रु की शक्ति पर मैं पार नही पा सकूं तो मैं क्या करूं ?"

"दादा जी ! आप कुछ ऐसा कीजिए कि मेरे हृदय पर रक्खा यह भारी वोझ किसी प्रकार हटे। मैं वड़ा चिन्तित हू।"— दुर्योधन वोला।

राजन् ! दुःख त्याग कर साहस से काम लो। जाओ अपनी सेना को तैयार होने का आदेश दो। मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकता हू। इस से अधिक और क्या कर सकता हूं।"

भीष्म जी की बात सुनकर दुर्योधन को कुछ सान्त्वना मिली। क्योंकि उसके मन मे यही खटका रहता था कि कही भीष्म पितामह पाण्डवों के आगे ढीले न पड जाय, और जब वह भीष्म जी से यह सुनता कि वे पूर्ण शक्ति से युद्ध कर रहे है तो उसे बहुत प्रसन्नता होती और यह आशा हो जाती कि फिर तो उसकी विजय निश्चित है।

× × × ×

सेना को तैयार करने के लिए बिगुल बजा दिया गया। कुछ ही देरि बाद सैनिको के झुण्ड के झुण्ड अपने अपने शिवरो से निकल कर मैदान मे आ गए। उस दिन भीष्म जी स्वय सेना के आगे गए और उचित हिदायते करके स्वय व्यूह रचना मैं लग गए। उन्होने भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रो से लैस कौरव सेना को मण्डल व्यूह की विधि से खडा किया। उस मे प्रधान प्रधान वीर गजारोही, अश्वरोही, पदाति और रथियो को बहुत ही सोच समझ कर उपयुक्त स्थानो पर खडा किया। और स्वय ने ऐसा स्थान लिया कि देखने से प्रगट होता, मानो सारी कौरव सेना भीष्म जी की रक्षा के लिए हो और भीष्म जी अकेले समस्त सेना की रक्षा के लिए तैनात हो। उस दिन व्यूह के सभी जोड़ों और प्रथकन् पक्ति मे विकट गाडियो, तोप व गोला बारुद से भरी जहाज़ रूपी गाडियो को खडा किया। पश्चिम की ओर को इस दुर्भेद्य व्यूह का मुख रक्खा गया।

दूसरी ओर युधिष्ठर ने जब भीष्म जी द्वारा रचित मण्डल व्यूह की व्यवस्था देखकर अपनी सेना को वज्रव्यूह के रूप मे खडा किया और उसके द्वार पर भयकर विकट गाडिया लगा दी। पाण्डव वीरो ने मुख्य मुख्य स्थानो पर अपने अपने रथ रक्खे और जब सारी व्यवस्था हो चुकी तो महाराज युधिष्ठर ने अपने समस्त वीरो को पुकार कहा—"वीरो ! पाच दिन से आप सभी का पराक्रम शुभ के सीने पर वज्राघातो का काम कर रहा है। हम सख्या मे कम है, पर साहस, उत्साह, बल और शौर्य हमारे पास

शत्रुओ से सहस्त्र गुना अधिक है। हमारे साथ वासुदेव श्री कृष्ण जैसे महान् योद्धा और सर्व शक्तिमान कुशल कूट नीतिज्ञ है उनका प्रताप और आप वीरो का साहस हमारी विजय की गारंटी है। इस लिए आज पुन दिखा दो कि न्याय तथा धर्म के सामने दैत्यो की शक्ति नही ठहर सकती।"

धर्मराज के आव्हान को सुनकर मदोन्मत वीरो ने सिंह गर्जना की। प्रमुख वीरो ने उत्साह पूर्वक शख ध्वनि की और पदाति वीर धर्मराज युधिष्ठर के जयनाद करने लगे कौरव वीरो ने भी उत्तर मे भयकर सिंह नाद किए और युद्ध के लिए उतावले होकर पाण्डवों के व्यूह को तोडने के लिए आगे वढे।

भीष्म जी की शख ध्वनि सुनकर सर्वप्रथम विकट गाडियो द्वारा गोले वरसाये जाने लगे। कौरवो की ओर से हो रही गोलो की वर्पा से भयानक ध्वनि होने लगी। जिसे सुन कर सेना के हाथी और घोडे विचलित हो गए और हाथियो की चिंघाड तथा घोडो की हिनहिनाट ने भीषण वातावरण बना दिया, कान पडी आवाज भी उस शोर में सुनाई न देती। पाण्डवो की ओर से भी विकट गाडियों ने आग उगलनी आरम्भ कर दी। और जब कौरवो की विकट गाडियो से सैनिको की ओर मुह करके गोले वरसाये जाने लगे तव पाण्डवो की ओर से कुछ ऐसे गोले दागे गए जिन के फटते ही चारो ओर धुआ फैल गया। कौरव सेना सारी की सारी धुए के वादलो मे घिर गई और कौरवो के विकट गाडियो पर तैनात सैनिको को कुछ देरि के लिए यह भी पता न चला कि पाण्डव वीर क्या कर रहे है और वे हैं किधर। उनके गोलो की वर्पा रुक गई।

उचित अवसर देख पाण्डव वीर कौरवो के व्यूह को तोडने के लिए तीव्र गति से आगे वढे और ज्योही धुएं के वादल साफ हुए तो द्रोणाचार्य सामने राजा विराट, अश्वस्थामा के आगे शिखण्डी, दुर्योधन के सम्मुख धृष्टद्युम्न और शल्य के सामने उनके भानजे नकुल तथा सहदेव युद्ध के लिए आ डटे दिखाई दिए। अवन्ति नरेश विन्द और अनुन्दि ने इरापना को और भीम सेन ने कृतवर्मा तथा कर्ण विकर्ण आदि को घेर लिया। अर्जुन ने शेष समस्त राजाओं को और उसके पुत्र अभिमन्यु ने दुर्योधन के दूसरे

भाईयो को घेर कर युद्ध आरम्भ कर दिया। घटोत्कच ने परम ज्योतिष नरेश भगदत्त पर आक्रमण कर दिया। अलम्बुष रणोन्मत्त सात्यकि और उसकी सेना के साथ युद्ध रत होने पर विवश हुआ। धृष्ट केतु भूरिश्रमा पर टूट पडा और धर्मराज युधिष्ठिर श्रुतायु ने, चेकितान कृपाचार्य से और अन्य सब भीष्म जी से युद्ध करने लगे।

अर्जुन को अनेक राजाओ से पाला पडा। वे विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर अर्जुन को घेर रहे थे। अर्जुन के वाणो के उत्तर मे समस्त कौरव पक्षी राजा चारो ओर वाण वर्षा करने लगे और जब अर्जुन का वेग उन से दूर न हुआ तो वे विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। उस समय अर्जुन वुरी तरह घिरा हुआ था। परन्तु श्री कृष्ण इस प्रकार से रथ को हांक रहे थे कि रथ का इधर उधर घूमना ही शत्रुओ के तीरो के लिए अर्जुन की ढाल वना हुआ था। चारो ओर से घिरे अर्जुन को देखकर देवताओ को भी आश्चर्य हो रहा था और गन्धर्व जिनकी अर्जुन से सहानुभूति थी, वे तो विस्मित होकर युद्ध को देख रहे थे। अर्जुन को एक बार वडा क्रोध आया और उसने आव देखा न ताव एचास्त्र का वार किया जिससे शत्रुओ के सभी वाण व्यर्थ हो गए, फिर क्या था अर्जुन के सामने जो भी आया वह घायल हुए विना न रहा। यहा तक कि हाथी घोडे आदि भी वुरी तरह घायल होने लगे। अर्जुन ने एक वाण ऐसा मारा कि आग की लपटें सी निकली और हाथी घवराकर गरजने लगे। यहा तक कि सारथियों के हज़ार सम्भालने पर भी घोडे वेकावू हो गए। तब शत्रु राजाओ ने अपने का असफल जानकर भागकर भीष्म जी की शरण ली। जैसे डूवता हुआ व्यक्ति तिनके का सहारा लेने के लिए हाथ पाव मारता है, ठीक उसी प्रकार अपनी नाव अर्जुन के रण कौशल और दिव्यास्त्रो रूपी सागर मे डूवते देख शत्रु राजाओ ने भीष्म जी रूपी महान जहाज़ की शरण मे भाग कर जाने का प्रयत्न किया। शरणागत राजाओ की रक्षा करने और अर्जुन के प्रचण्ड आक्रमणो से कौरव सैनिको तथा योद्धाओं को वचाने के लिए भीष्म जी ने दूसरे विरोधी को छोड़ कर अर्जुन की ओर अपना रथ हकवाया और वड़ी फुर्ती से आकर अर्जुन से युद्ध करने लगे।

इधर द्रोणाचार्य ने वाण मारकर मत्स्यराज विराट को घायल

कर दिया। परन्तु शरीर से रक्त की धारा फूट निकलने के उपरान्त भी विराट युद्ध भूमि मे डटे रहे। उन्होने द्रोणाचार्य पर कुपित होकर ऐसे तीक्ष्ण दिव्य बाण मारे कि वे तिलमिला उठे और आत्म रक्षा करना उनके लिए एक समस्या बन गई। उस समय विराट ने चेतावनी देते हुए कहा।—"आचार्य जी! यहाँ आपकी विद्वता के प्रति श्रद्धा हमारे आडे नही आ सकती। आपके कौशल को दुर्योधन के अन्याय का ग्रहण लग गया है।"

द्रोणाचार्य इन शब्दो से चिढ गए और उन्होने कुछ ऐसे वाण प्रयोग किए, जिनको रोक सकने मे विराट सफल न हो सके और देखते ही देखते बाणो से विराट के रथ की ध्वजा गिर गई। जो अभी तक हवा मे वडी शान से लहरा रही थी, अब धूल मे रुलने लगी। और फिर विराट का सारथि घायल होकर लुढक गया। अश्व भी घायल हो गए। तब विवश होकर विराट अपने पुत्र शख कुमार के रथ पर जा चढ़े और पिता पुत्र दोनो द्रोणाचार्य के ऊपर वार करने लगे। दोनो ओर से वाणो की झड़ी लगी थी। एक वार तो वाणो की एक ऐसी रेखा सी वन गई जो कही टूटती ही प्रतीत नही होती थी। शख कुमार ने कुछ देरि बाद ऐसे बाण चलाए जोकि द्रोणाचार्य के धनुष पर चढते वाणो को छूटने से पहले ही गिरा देते। तब द्रोणाचार्य पर यह स्पष्ट हो गया कि जब तक शख है, उनका एक भी वार विराट का कुछ न बिगाड़ सकेगा। इस लिए उन्होने अपना एक विशेष बाण निकाला और विद्युत गति से उसे धनुष पर चढाकर मारा। वाण एक विषैले सर्प की भाति शख की ओर वढा उसकी नोक से चिनगानिया सी छूट रही थी और एक विशेष प्रकार की गध आ रही थी। इस विचित्र वाण को देखकर विराट काप उठे और जब वह वाण आकर शख कुमार की छाती पर लगा, तो क्रोध के मारे विराट पागल से हो गए, उन्होने क्षण भर मे ही अनेको वाण द्रोणाचार्य पर मारे जिनसे वे घायल हो गए। पर ज्यो ही शख कुमार लोहू लुहान हुआ चीखता हुआ रथ से पृथ्वी पर गिरा तो विराट का रोम रोम सिहर उठा। उन्होने अपने प्रिय पुत्र के शव को विह्वल होकर वे रथ से कूद पडे और पुत्र के शरीर को उठाकर रथ मे रख रण भूमि से वाहर चल पड़े।

उधर विकट गाडिया आपस मे टकरा रही थी इधर विदुरे नरेश के युद्ध भूमि से जाते ही द्रोणाचार्य पाण्डवो की सेना पर टूट पड़े और अनेक स्थानो पर से पाण्डव सेना की पंक्तिया उन्होने भग कर दी। इस प्रकार पाण्डवो की विशाल वाहिनी अकेले द्रोणाचार्य के ही कारण सैंकडों हज़ारो भागो मे विभक्त हो गई।

शिखण्डी अश्वस्थामा के सामने डटा हुआ था। दोनो ही बड़े वीर थे, एक दूसरे की टक्टर के भी थे। कितनी ही देरि तक जव दोनो ओर से वार होते रहे और फिर भी कोई न गिरा, या किसी को कोई क्षति भी नही पहूची तो शिखण्डी ने ललकार कर कहा—"वढे वीर वनते थे! अपने शौर्य का कुछ चमत्कार भी दिखाओगे या यूही।"

अश्वस्थामा गरज कर बोला— "चमत्कार देखकर ठहर नही सकोगे।"

इतना सुन कुपित होकर शिखण्डी ने एक ऐसा बाण मारा कि अश्वस्थामा की भृकुटी के बीच मे चोट लगी। रक्त वह निकला। इस वात से अश्वस्थामा को बडा क्रोध आया और उसने कुछ दिव्यास्त्र प्रयोग करके शिखण्डी के रथ की ध्वजा तोड डाली, और फिर सारथी तथा घोडों को भी मार गिराया। तव शिखण्डी ढाल तलवार लेकर मैदान मे आ डटा। परन्तु अश्वस्थामा तो रथ पर सवार था उसने अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए तीक्ष्ण वाणो के द्वारा महावली शिखण्डी को अपने रथ की ओर वढने से रोक दिया और फिर कुछ ऐसे वाण प्रयोग किए जिनसे उसके खड्ग और ढाल को तोड डाला। वाज़ की भाति वडे वेग से झपटते शिखण्डी के हाथो के शस्त्र नष्ट हो जाने के कारण अव उसके पास एक ही चारा था कि वह पुनः रथ पर सवार होकर युद्ध करे। वरना अश्वस्थामा को वाण वर्षा से वह स्वय भी ढेर हो सकता था। शिखण्डी ने ऐसा ही किया और वह दौड़ कर सात्यकि के रथ पर चढ गया।

वीरवर सात्यकि राक्षस वशी अलम्बुष के सामने डटा हुआ था। सात्यकि के सहस्त्रों वाणो की मार से अलम्बुष घायल हो गया। जिस कारण वह क्रोध के मारे जलने लगा और एक वार अर्ध चन्द्राकार वाण मारकर उसने सात्यकि का धनुष ही तोड़ डाला और

कर दिया तब तक कि सात्यकि दूसरा धनुष उठाए, अलम्बुष ने अनेक भीर्ण मार कर उसे भी घायल कर दिया। उस अवसर पर, जब कि सात्यकि के शरीर से अनेक स्थानों पर रक्त धारा वह रही थी, उसका बडा ही विचित्र पराक्रम देखने को मिला। तीखे तीखे बाणों की चोट खाने पर भी सात्यकि के मुख पर घबराहट का कोई चिन्ह न था, इसके विपरीत उसने शीघ्र ही एक दूसरा धनुष सम्भाला। अलम्बुष ने उस समय राक्षसी माया प्रयोग करके तीक्ष्ण तथा अतिसहारक बाणों की झडी लगा दी थी परन्तु बाणो से चोट पर चोट खाते हुए भी सात्यकि ने अर्जुन से मिला ऐन्द्रास्त्र चढाया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उसे मारा। फिर क्या था अस्त्र के प्रभाव से समस्त राक्षसी माया भस्म हो गई। और तत्काल ही बाणों की वर्षा इतने वेग से की कि अलम्बुष का साहस टूट गया और उसे ऐसा हुआ कि कुछ देरि इसी प्रकार महा पराक्रमी सात्यकि बाण बरसाता रहा तो वह मारा जायेगा। यह सोचकर उसने रण भूमि से भाग जाने में ही अपना कल्याण समझा और देखते ही देखते सात्यकि का सामना करना छोडकर बड़े वेग से रण भूमि से भाग खडा हुआ। अलम्बुष के हटते ही सात्यकि ने दुर्योधन के भाईयों पर आक्रमण किया और एक अस्त्र प्रयोग करके उनके धनुष तोड डाले, बेचारे कौरव भ्राता कुछ भी न कर पाये और रण भूमि से भाग जाना ही उन्होने श्रेयस्कर समझा।

विकट गाडिया एक दूसरे पर गोले बरसा रही थी, बडी भयकर आवाज हो रही थी कि दिल दहल जाता था और इधर द्रुपद के पुत्र महाबली धृष्ट द्युम्न ने अपने तीक्ष्ण बाणो से दुर्योधन को ढक दिया था। बाणो की छाया मे रहकर भी दुर्योधन भयभीत न हुआ और किसी प्रकार रथ को इधर उधर घुमा फिराकर कुछ ऐसा अवसर प्राप्त कर लिया कि वह स्वय भी बाण चला सके। तडातड़ ९० बाण क्षण भर मे ही मारे जिनसे धृष्ट द्युम्न का कवच कई स्थानों पर कट गया फिर क्या था धृष्ट द्युम्न ने कुपित होकर दुर्योधन के सारथि और घोडो तक को मार डाला। कदाचित फिर दुर्योधन के मरने का ही नम्बर आता, परन्तु वह दौडकर शकुनि के रथ पर जा चढा और इस प्रकार धृष्ट द्युम्न के हाथो से बच नकला।

दुर्योधन को परास्त करके धृष्ट द्युम्न कौरव सेना के दूसरे वीरो पर टूट पडा और वडी फुर्ती से सहार करने लगा। उसी समय महारथी कृतवर्मा का दाव लगा और उसने भीमसेन को वाणो से आच्छादित कर डाला। भीमसेन कृतवर्मा के इस वेग पूण प्रहार को देखकर हसा और मुस्कराते हुए ही उसने अपने वाणो की झडी लगा दी। देखते ही देखते कृतवर्मा के सारथि और घोडो को धाराशायी कर दिया और कृतवर्मा स्वय भी बुरी तरह घायल हुआ। वचने का और कोई उपाय न देख वह दौडकर धृतराष्ट्र के साले वृषक के रथ पर चढ गया और भीमसेन के सामने जो भी पडा वही वाणो से घायल होकर या तो मर गया अथवा भाग खडा हुआ।

दूसरी ओर अवन्ति नरेश विन्द और अनुविन्द इरावान से टक्कर ले रहे थे। उनमे बडा ही रोमाचकारी युद्ध छिडा हुआ था। दोनो ओर से तीक्ष्ण वाण चल रहे थे। परन्तु अकेला इरावान दोनो भ्राताओ को होश न लेने दे रहा था। एक वार दोनो भ्राताओ ने इरावान के ऊपर भीषण प्रहार किया। कुपित होकर इरावान ने दिव्य बाणो का प्रयोग किया और अनुविन्द के सारथि तथा उसके रथ के चारो घोडो को मार गिराया। अनुविन्द तव अपने भाई विन्द के रथ पर चढ गया और उसी रथ पर से दोनो भाई वाण वर्षा करने लगे। क्रुध इरावान ने देखते ही देखते उनके सारथि को मार गिराया। वाणों की भीषण वर्षा के मारे रथ के घोडे चौंक कर रथ को इधर-उधर लेकर भागने लगे और वेचारे अनुविन्द व विन्द को अपने रथ घोडो को काबू मे करने की एक समस्या उत्पन्न हो गई। परन्तु ऐसी जटिल समस्या मे फसे विन्द तथा अनुविन्द को इरावान ने छोडकर और दूसरे कौरव सैनिको से भिड गया।

अब आप अपनी दृष्टि उधर भी उठाईये, जिधर भीम पुत्र घटोत्कच भगदत्त के साथ भयकर युद्ध कर रहा है। दोनो ओर से वाणों की वर्षा हो रही है और तेजी से इधर से उधर भागते व घूमते रथो के कारण धूल के वादल से उठ रहे है। वह देखिये धीवर घटोत्कच ने एक वार विद्युत गति से वाणो की झडी लगा दी और भगदत्त उस वाणो की छाया मे विल्कुल छुप रहा है।

दिया और कुछ अन्य राजाओं के साथ उसे चारो ओर से घेर लिया
तथा बाण वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन ने एक क्षण में ही उनके
धनुष तोड डाले और उसके बाणो की मार से उनके कवच तार तार
हो गए। कुछ ही देरि में उनके तडपते शव धूल में लुढकने लगे।
अपने साथियो के मारे जाने पर सुशर्मा दूसरे राजाओं तथा सैनिको
को लेकर पार्थ से युद्ध करने लगा। अर्जुन पर चारो ओर से
राजाओं के आक्रमण को देखकर शिखण्डी सहायता के लिए दौड
पडा और विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर वह राजाओ पर टूट
पड़ा तथा दुर्योधन भी आकर अर्जुन से भिड़ा। उस समय सूर्यास्त के
नाम पर युद्धबन्दी की बाट जोह रहा था पाचाल राजकुमार धृष्ट
द्युम्न और महारथी सात्यकि शक्ति तथा तोमार आदि की वर्षा
करके कौरवो पर मृत्यु मण्डराने लगे। कौरव सेना मे हाहाकार
मच गया। उधर शिखण्डी अनेक योद्धाओ को मार कर अर्जुन के
निकट गया। अर्जुन नें कितने ही वीरो को मार गिराया था कितने
ही रणागण से विदा ले रहे थे। वे दोनो ही फिर भीष्म जी के
सामने जा डटे।

उसी समय सूर्य देव अस्ताचल के शिखर पर पहुच कर प्रभा-
हीन हो रहे थे और ज्योति समाप्त होकर अन्धकार का आगमन
होने लगा था। युद्धबन्दी का बिगुल बज उठा, बिगुल सुनकर पाण्डव
वीरो ने भयकर सिंह नाद किया और महाराज युधिष्ठिर के नेतृत्व
मे अपने शिवरो के लिए प्रस्थान कर दिया। भीष्म जी की आज्ञा
से कौरव सेना भी अपनी छावनी में चली गई। घायल हुए व्यक्तियो
ने अपनी अपनी छावनियो मे पहुंच कर औषधियो का सेवन किया
और फिर दोनो पक्ष के लोग भोजन आदि से निवृत होकर आपस
मे मिलकर एक दूसरे की वीरता की प्रशसा करने लगे।

* अठत्तीसवां परिच्छेद *

रात्रि भर दोनो पक्ष के वीरों ने विश्राम किया और पौ फटते ही दोनो ओर चहल पहल आरम्भ हो गई। रण की पोशाकें पहन ली गई और विगुल बजते ही पाण्डव पक्ष की सेना छावनी से निकल कर तैयार हो गई। दूसरी ओर कौरव सेना भी अपने अपने डेरो को छोडकर बाहर आ गई और सूर्य की किरणों का स्वर्णिम स्वय सफेदी मे बदलते ही दोनों ओर की सेनाए युद्ध भूमि की ओर चल पडी। उस समय महासागर की गम्भीर गर्जना की भाति महान कोलाहल होने लगा। चारो ओर विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र चमक रहे थे।

दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, भीष्म और द्रोणाचार्य ने अपनी समस्त सेना को एकत्रित करके सागर समान व्यूह का निर्माण किया। सागर व्यूह की तरग मालाएं हाथी, घोड़े आदि वाहन थे। समस्त सेना के आगे भीष्म जी थे उनके साथ मालवा, दक्षिण भारत तथा उज्जैन के योद्धा थे। इनके पीछे कुलिन्द, पारद, क्षुद्रक तथा द्रोणाचार्य थे। द्रोण के पीछे मगध और कलिग आदि देशों के योद्धा थे जिनका नेतृत्व राजा भगदत्त के हाथ मे था। इनके बाद राजा वृहद्वल था जिसके साथ मेकल तथा कुरुविन्द आदि देशो के योद्धा थे। वृहद्वल के पीछे था त्रिगर्त्तराज सुशर्मा, और उसके पीछे अश्वत्थामा और सबसे पीछे दुर्योधन अपने भाईयो सहित था। चारों ओर अग रक्षक की भाति सैनिक थे। और सैनिकों तथा

योद्धाओ के महासागर में तूफ़ान सा आया प्रतीत होता था। हज़ारो पदाति, गजरोहो और अश्वरोही वीरो के हाथो मे खड्ग, भाले, गदाए और धनुष बाण चमक रहे थे।

कौरवों के सागर समान व्यूह की रचना को देखकर धृष्टद्युम्न ने ३ पाण्डवों की सेना को श्रृंगाठक व्यूह के रूप मे व्यवस्थित किया। उस व्यूह की रचना होने पर वह बहुत ही भयानक प्रतीत होने लगा। और कौरवों के व्यूह को तोड डालने मे समर्थ दिखाई देता था, उसके दोनों अङ्गों के स्थान पर भीमसेन तथा सात्यकि स्थित थे उनके साथ कई हजार रथ, घोडो और हाथियों पर सवार व पदाति सेना थी। उन दोनों के मध्य मे अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। इनके पीछे दूसरे राजागण थे, जो अपनी विशाल सेनाओ के साथ व्यूह को पूर्णत: भेट कर रहे थे। उन सबके पीछे अभिमन्यु, महारथी बिराट, द्रौपदी के पुत्र और घटोत्कच आदि थे। इस प्रकार व्यूह रचना समाप्त करके युधिष्टिर ने अपने सैनिकों का आह्वान किया—"वीर योद्धाओ! तुम्हारे रण कौशल से बडे बडे दिग्गज धनुर्धारी, अनुभवी और जगत विख्यात शूरवीर भी थर्रा रहे हैं। तुम्हारी वीरता के सामने शत्रुओ की विशाल सेना का नाको दम है। आज फिर उन्ही से टक्कर है जो पिछले दिनो मे परास्त होते चले आये हैं। वढो और अपना जोहर दिखा कर वता दो कि न्याय का सिर कभी नीचा नही होता।"

उधर दुर्योधन अपने वीरो को ललकार रहा था—"रण वांकुरो! शत्रुओ की सेना हम से बहुत कम है। हमारे पास भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे अनुभवी महान सेनानायक हैं, देवता भी जिनका लोहा मानते है। विजय हमारी ही होगी। और विजय के साथ साथ यश कीर्ति और ऐश्वर्य के द्वार तुम्हारे लिए खुल जाये गे। वढो और शत्रुओ को दिखा दो कि कौरवो के पास विजयी शूरवीरो की कमी नहीं, हम सारे जगत से टक्कर ले सकते है।"

रणभेरी वज उठी। शखनाद होने लगे। ललकारने और ताल ठोकने और ज़ोर ज़ोर से पुकारने की आवाजें आने लगी। दोनो ओर से चुनौतियाँ दी जाने लगी और इस तुमुल नाद से दशो दिशाओ गूज उठी। सेनाए वढी और कौरव तथा पाण्डवो के पक्ष

के वीर भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रों को लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े। तलवारो से तलवारें टकराने लगी, धनुषों की टकारे बिजली टूटने की ध्वनि की भाति सुनाई देने लगी। भाले भालो से टकरा गए। गज सवार गजसवारो पर, अश्वारोही अश्व सवारो पर, पदाति पदातियों पर और रथ सवार रथ सवारो पर टूट पड़े। रथों की घर घराहट से दिशाए गूजने लगी। वीर क्षत्राणियों के सपूत वीरांगनाओ का सुहाग लूटने लगे और कितनी ही जवानियों वाणों से निकलती लपटो मे ध्वस्त होने लगे। रात्रि भर जो भाईयो की भांति रहे अब वे एक दूसरे के प्राणो के ग्राहक बन गए।

सामने से भीष्म जी अपने धनुष की टकार करते, योद्धाओ को मौत की नींद सुलाते पाण्डव सेना की ओर बढ़े। यह देख धृष्ट द्युम्न, आदि महारथी भी शंख नाद करते हुए भीष्म जी से टक्कर लेने दौड़े। जो हाथ प्रणाम के लिए उठा करते थे, वे वाणों के द्वारा भीष्म जी के प्राण हरने के लिए बड़े वेग से चलने लगे। फिर तो दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध छिड गया।

भीष्म जी का मुख मण्डल क्रोध तथा तेज के मारे तप रहा था और जैसे पूर्ण यौवन पर आये तपते सूर्य की ओर देख सकना कठिन हो जाता है उसी प्रकार भीष्म जी की ओर देख सकना कठिन हो रहा था। भीष्म जी के वाणो के प्रहार से सोमक, सृञ्जय, पांचाल राजाओं को मार गिराने लगे, पर वे भी प्राणो का मोह त्याग कर भीष्म जी पर टूट पड़े। उन के अंग रक्षक, सहयोगी और साथी योद्धा भी भीष्म जी पर प्रहार करने लगे। परन्तु भीष्म जी के वाणों की मार से कितने ही अश्वारोहियो के सिर कट कट कर धरा पर लुढ़कने लगे, कितने ही पहाड़ो के समान उन्नत हाथी धाराशायी हो गए। कितने ही रथ योद्धा हीन होकर रह गए। उस समय यदि कोई था जो निर्भय होकर भीष्म जी के सामने टिका हुआ था तो वह था भीमसेन जो पूरे वेग से भीष्म जी से टक्कर ले रहा था, वह उन के प्रहार को रोकता और स्वयं प्रहार भी कर रहा था।

भीमसेन के प्रहारों से अन्त में भीष्म जी भी तंग आ गए यह देख दुर्योधन अपने भाईयो सहित उन की रक्षा के लिए आ गया।

उसी समय भीमसेन ने एक ऐसा तीक्ष्ण बाण मारा कि भीष्म जी का सारथो पृथ्वी पर लुढक गया और वाणो को वर्षा से तग आकर घोडे भीस्म जी के रथ को लेकर रणभूमि में इधर उधर भागने लगे। घोडे बिगड गए थे, इस लिए भीष्म जी को युद्ध जारी रखना असम्भव हो गया। और इस से पहले कि वे अपने घोडो को नियत्रित करे घोड़े रथ लेकर भाग गए। तब तो भीमसेन चारों ओर मार करता हुआ घूमने लगा, जो भी सामने आया उसे ही मार गिराया। अनायास ही धृतराष्ट्र पुत्र सुनाय भीमसेन के सामने आ गया और वह तत्काल ही मारा भी गया, तब तो धृतराष्ट्र के सात बेटे अमर्ष से भर गए और आपे से बाहर होकर वे भीमसेन पर टूट पडे। और एक रण कुशल धृतराष्ट्र पुत्र ने अपनी रण कुशलता से भीमसेन की एक भुजा को घायल कर दिया। परन्तु मदोन्मत्त गज समान युद्ध रत भीमसेन के रण कौशल मे कोई कमी न आई। उस ने बाणो की वर्षा जारी रक्खी और उस घायल करने वाले कौरव का सिर एक ही वाण से उडा दिया, दूसरे की छाती तोड दी, तीसरे का मस्तक धूल की तरह उडा दिया, चौथे को कई वाणो से लुढका दिया और अन्त मे उन सभी को मार डाला।

आठ भ्राताओं को मृत देख कर अन्य कौरव भ्राताओ का हृदय काप उठा। वे सोचने लगे कि भीमसेन ने भरी सभा मे कौरवो को मार डालने की जो प्रतिज्ञा की थी, आज वह उसे पूर्ण कर देगा। यह सोच कर वे अपने प्राण लेकर भाग पडे। भाईयो के मरने से दुर्योधन भी शोक विह्वल हो गया, उस ने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि—"भीमसेन को चारो ओर से घेर लो और मार डालो।"

सैनिक तो पहले से ही यमराज का रूप धारण किए हुए भीमसेन के भय से कांप रहे थे, इस लिए आज्ञा पाते ही कुछ के तो प्राण सूख गए, किसी के हाथो से शस्त्र ही छूट गए और कुछ रण भूमि से भागने लगे। यह स्थिति देख कर दुर्योधन को विदुर जी की बातें याद आ गईं। वह सोचने लगा—'वास्तव मे विदुर जी बड़े बुद्धिमान और दूरदर्शी है, उन्होने ठीक ही कहा था कि भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूर्ण करेगा, इस लिए उस के कोप से बचने का एक मात्र उपाय यह है कि रण का संकट मोल न लो।—पर अब

क्या हो ? अब तो मृत्यु सिर पर मण्डरा रही है।"

दौड़ा दौड़ा दुर्योधन भीष्म जी के पास गया और बड़े दुख के साथ फूट फूट कर रोने लगा दुर्योधन की यह दशा देख कर भीष्म जी भी बड़े दुखित हुए। उन्होने पूछा—"बेटा! अश्रुपात का क्या कारण। रणभूमि मे होकर तुम्हारी आखो मे आसू??"

"पितामह! भीमसेन ने मेरे आठ भ्राताओ का वध कर डाला और अब वह हमारे अन्य शूरवीरो का सहार कर रहा है। हा शोक मेरे परिवार का नाश हो रहा है और आप तो जैसे मध्यस्थ से हो गए है आप कुछ करते ही नही। मैं मिट रहा हू। और आप हमारी उपेक्षा कर रहे है। मेरे भाई मरते रहे और आप की यह उपेक्षा नीति चलती रहे तो मेरी आखो मे आँसू न आयेगे क्या?" दुर्योधन ने दुखित होकर कहा।

बात कटु थी, पर उस के शोक विह्वल होने के कारण भीष्म जी का गला भर आया। बोले—'बेटा! मैंने, द्रोणाचार्य और विदुर जी ने तुम से बहुत कहा, गान्धारी ने तुम्हे कितना ही समझाया पर तुम ने हमारी एक न सुनी। हम ने चाहा कि तुम हमे युद्ध मे न डालो, पर तुम हठ पर अड गए। अब उसी का यह परिणाम है कि तुम्हारे नेत्रो मे आँसू हैं। यह हमारी उपेक्षा के कारण नही, तुम्हारे प्रारब्ध के कारण हैं। अब तो तुम्हे परलोक मे ही सुख पाने की इच्छा से युद्ध करना चाहिए। हम जहा तक हो गा, तुम्हारे लिए लड़ेगे।"

फिर भीष्म जी दुर्योधन को सन्तोष बन्धाते हुए भीषण युद्ध करने लगे यह देख युधिष्टर की आज्ञा से उनकी सारी सेना क्रोध मे भरकर भीष्म जी के ऊपर टूट पड़ी। धृष्ट द्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, समस्त सोमक योद्धाओ के साथ राजा द्रोपद और विराट, केकय कुमार धृष्टकेतु और कुन्ती भोज सभी ने भीष्म जी पर आक्रमण किया। अर्जुन, द्रौपदी के पुत्र और चेकितान आदि दुर्योधन के भेजे राजाओ से युद्ध करने लगे। तथा अभिमन्यु, घटोत्कच और भीम सेन ने युद्ध से अपने प्राण बचाने की चेष्टा करते कौरवो पर धावा किया। इस प्रकार पाण्डव और उन की सेना तीन भागों मे विभक्त हो कर कौरवों का संहार करने लगी और कौरव पाण्डवों के

सहार के लिए जी जान तोड कर लडनेलगे।

द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर सोमक और सृज्जयो पर आक्रमण किया और उन्हे यमलोक भेजने पर उतारू हो गए। उस समय सृज्जयो मे हाहाकार मच गया। दूसरी ओर महावली भीमसेन कौरवो पर मृत्यु देव की भाति टूट रहा था। दोनो ओर के सैनिक एक दूसरे को मारने लगे। रक्त की नदी बह निकली। उस घोर संग्राम मे कितने ही सुन्दर वीरवर धूल मे लुढकने लगे। बडे वडे योद्धाओ के शरीर धोडो तथा हाथियो के पैरो से रौंदे जा रहे थे। भीष्म जी घोर सग्राम कर रहे थे उनके वाणो से कितने ही घोडे और हाथी पृथ्वी पर लुढक रहे थे। उधर नकुल और सहदेव कौरवो के अश्वारोहियो और उनके घोडो को बुरी तरह मार रहे थे भीमसेन अपनी गदा लेकर कौरवो के हाथियो पर टूट पडा था, भेरु समान हाथी क्षण भर मे गदाओ की मार से पृथ्वी पर ढह जाते थे। अर्जुन ने कितने ही राजाओ का सिर धड से अलग कर डाला था, जो सिर किसी के सामने नही झुकते थे अर्जुन के कारण घोडो की ठोकरो मे पडे थे। उस समय का युद्ध सागर मे आते जवारभाटे की भाति चल रहा था जब भीष्म द्रोण, कृप और अश्वस्थामा एक साथ मिल कर क्रुद्ध हो युद्ध करते तो पाण्डवो की सेना का सहार होने लगता और जब अर्जुन, भीम, विराट, अभिमन्यु आदि कुपित होकर टूटते तो कौरव सेना का संहार होने लगता। इस प्रकार दोनो ओर की सेना का रक्त मिट्टी मे मिल रहा था। फिर भी वेचारे दुर्योधन को वडी चिन्ता थी।

भास्कर का रथ अपने निश्चित पथ पर अग्रसर हो रहा था। धूप काफी तेज हो गई थी। और युद्ध की गरमी भी वढती जा रही थी। वीरो का विनाश करने वाला भीषण युद्ध अधिकाधिक भीषण रूप धारण करता जाता था कि शकुनि ने पाण्डवो पर धावा किया। आक्रमणकर्ताओ मे कृत दर्मा भी एक वडी सेना सहित था। जब पाण्डवो का व्यूह तोड कर शकुनितथा गाधार देश के अन्यान्य वीर अन्दर घस गए और पाण्डव वीरो का संहार करने लगे तो इरावान से न रहा गया। इरावान अर्जुन का पुत्र था। उसने अपने साथी वीरो को ललकार कर कहा—"वीरो! देखते क्या हो इन दुष्टो को चारो ओर से घेर कर मार डालो। देखो, कोई वच कर

न जाने पाये"। इरावन की ललकार सुन कर सैनिको ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया और भीषण युद्ध करने लगे। जब कौरव पक्षी योद्धा पाण्डव पक्षी वीरो के द्वारा मारे जाने लगे तो सुवल के पुत्रों से न रहा गया और वे दौड कर उनकी सहायता के लिए पहुच गये। उन्हो ने जाते ही इरावान को चारो ओर से घेर लिया अकेला इरावान उन सभी का डटकर मुकाबला करने लगा, फिर क्या था कुपित तो दूर सुवल पुत्र इरावान पर टूट पडे और आगे पीछे, और दायें वायें से इरावान पर वाणो की वर्षा होने लगी। परन्तु वह फिर भी किंचित मात्र न घवराया। उसके शरीर पर अनेक जगह घाव आ गए। लाल लाल लहू की धाराए वह निकली, किन्तु वह उसी प्रकार युद्ध कर रहा था, जसे कि स्वस्थ अवस्था मे करता था। वल्कि इस से उस को क्रोध चढ गया और उसने अपने तीखे वाणो से सभी को वीध डाला घायल हो कर वे मुर्छित हो गए। तव उसने चमकती तलवार हाथ मे सम्भाली और सुवल पुत्रो की हत्या करने के उद्देश्य से आगे वढा। परन्तु जव तक वह उनके पास पहुचता, उनकी मुर्च्छा भग हो गई। और कोध मे भर कर इरावान पर टूट पडे। साथ ही उसे वन्दी वनाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु ज्यो ही वे निकट आये. इरावान ने तलवार के ऐसे हाथ दिखाये कि उनकी भुजाए कट गई और वे भुजाहीन हो कर पृथ्वी पर गिर पडे। उन मे से केवल वृषभ नामक राजकुमार ही जीवित वचा।

इरावान का यह पराक्रम देख घवराया हुआ दुर्योधन विद्याधर (राक्षस) अलम्वुष के पास गया और वोला—"महावली अर्जुन का पुत्र इरावान हमारी सेना का सहार कर रहा है, उसने सुवल पुत्रो को मार डाला है और यदि उसका वेग न रुका तो न जाने वह क्या कर गुजरे। तुम जानते ही हो कि भीमसेन ने तुम्हारे साथी विद्याधर वकासुर का वध किया था, उसका वदला लेने का उचित अवसर है। तुम तो वड़े वलवान और मायावी हो, चाहो तो इरावान का सहज ही मे वध कर सकते हो। कुछ ऐसा करो कि इरावान धाराशायी हो जाये, ताकि सुवल पुत्रो के वध का वदला मिल जाये और हमारी सेना का सहार रुक जाये।"

विनय भाव से की गई प्रार्थना को स्वीकार करके अलम्वुष

सिह के समान गर्जना करता हुआ इरावान के पास गया और वडी ही भयायक दहाड के साथ चेतावनी दी —इरावान ! ठहर अभी तुझे यम लोक पहुचाता हूं । " इतना कह कर वह भयानक विद्याधर इरावान पर टूट पड़ा। किन्तु इरावान साहस पूर्वक उसका मुकाबला करने लगा। जव इरावान इस प्रकार वस मे न आया तो अलम्वुष ने मायावी वाण मारे परन्तु इरावान उनके वस मे भी न आया। उसने भी ऐसे बाण मारे जिस से विद्याधर की मायाकी काट हो जाती। इसी प्रकार वहुत देरि तक युद्ध होता रहा। एक बार अलम्वुष ने मोहिनी अस्त्र मारा जिस से इरावान मूच्छित हो सकता था, पर इरावान के पास भी अर्जुन के दिए हुए अस्त्र थे उसने मोहिनी अस्त्र का खण्डन कर डाला तव विद्याधर एक भीषण अस्त्र छोडकर दौडा। इरावान ने उस माया को काट डाला और अलम्वुप के पीछे दौड़ा। अलम्वुष के पास एक आकाशगामी वायुदान था, वह उस में सवार होकर अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ आकाश की ओर उड चला। इरावान ने उस का पीछा जारी रक्खा। और अपने माया अस्त्रों से अन्तरिक्ष मे उडते अलम्वुष मोहित करके वाणो द्वारा उसे वीधता जाता। परन्तु विद्याधर के पास कुछ ऐसी वूटि-यां थी जिनके स्पर्श मात्र से रक्त वहना वन्द हो जाता था और घाव अच्छे होने लगते थे। वह अपने अस्त्रो का प्रयोग कर के इरावान का परेशान करता और उसके आक्रमणों से अपनी रक्षा करता हुआ अन्तरिक्ष मे जला जा रहा था। विद्याधर ने अपनी विद्याओ का बार वार प्रयोग किया, पर इरावान भी कोई कम न था। उसने अर्जुन के साथी गाँधर्वों और विद्याधरो से वहुत कुछ सीख रखा था अत प्रत्येक विद्या का वह काट जानता था।

किन्तु एक वार विद्याधर अलम्वुष ने एक ऐसा माया मयी माण मारा कि उसके छूटते ही इरावान की आखो के सामने अधकार छा गया और वहुत प्रयत्न करने पर भी वह आगे न देख सका। तव अवसर पाकर अलम्वुप ने एक ऐसा वाण मारा कि इरावाप की खोपडी को काटता हुआ निकल गया। खोपडी कट कर भूमि पर गिर गई और फिर इरावान का शरीर भी अन्तरिक्ष से नीचे गिर गया। इरावान का शरीर रण भूमि मे आकर गिरा और उसे देख कर कौरव सैनिक उल्लास के मारे उछल पडे। जय नाद होने

लगे, शखनादो से सारा रण स्थल गूज उठा।

इरावान मारा गया, यह देखकर भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने बडी भीषण गर्जना की। उसकी आवाज से सारा रण स्थल गूज उठा इस भयानक गर्जना को सुनकर कुछ कौरव सैनिको को काठ मार गया और वे भय के मारे डर कर कांपने लगे। उनके अगों से पसीना छूटने लगा। सभी सैनिको की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई। घटोत्कच क्रोध के मारे प्रलयकालीन यमराज की भाँति हो गया, उसकी आकृति वहुत हो भयानक वन गई। उसके साथ विद्याधरो की एक विशाल सेना थी, जो भयानक अस्त्र शस्त्र लेकर चल रहे थे। स्वय घटोत्कच के हाथ में एक जलता हुआ त्रिशूल था। वह वार वार गर्जना करता चल रहा था—"वीरो! दुष्ट कौरवो का सहार कर डालो। देखो, तुम्हारे भय से शत्रु हवा के वेग के कारण कापते पीपल पतो की भाति थर-थर कम्पित हो रहे हैं।"

घटोत्कच का ऐसा सिंह नाद सुन कर और अपने सैनिकों मुखो पर हवाईयो उडता देख, दुर्योधन गजारोही सैनिको की भारी भीड को लेकर घटोत्कच के मुकावले के लिए चला। जब घटोत्कच की दृष्टि एक भारी सेना सहित आते देख दुर्योधन पर पडी तो वह कुपित होकर गजारोही सेना की ओर वढा और जाते ही रोमाचकारी आक्रमण कर दिया। दुर्योधन अपने प्राणो का मोह त्याग कर वडी फुर्ती से विद्याधरो से लडने लगा। उसने कुपित होकर कितने ही विद्याधरो को मार डाला यह देख घटोत्कच क्रोध के मारे जलने लगा और लपक कर दुर्योधन के पास पहुच गया। जाते ही गरज कर वोला—"अरे नीच! जिन्हे तुम ने दीर्घ काल तक वनोमे भटकाया और अपनी नीचता से दारुण दुख दिए, उन्ही माता पिताके ऋण से उऋण होने के लिए आज तुम्हे मौत के घाट उतार दूगा।"

इतनी चेतावनी देकर त्रिशूल छोड घटोत्कच ने अपने हाथ मे एक विशाल धनुष सम्भाला और भीषण वाण वर्षा कर के दुर्योधन को वाणो के आवरण से ढक दिया। तब अपने प्राणो पर सकट देख दुर्योधन पूरी शक्ति बटोर कर उस पर आक्रमण करने लगा। उस के तीक्ष्ण वाणो से घटोत्कच घायल हो गया और कोई चारा न देख उस ने एक महाशक्ति अस्त्र को दुर्योधन पर फेका, वह शक्ति पर्वत को भी विदीर्ण कर सकती। ज्यो ही शक्ति का प्रहार हुआ, बंगाल

के राजा ने दुर्योधन के प्राणो की रक्षा के लिए तुरन्त ही अपने हाथी हकवा दिए और दुर्योधन का रथ हाथियो की ओट मे आ गया। जिस से शक्ति का प्रहार हाथियो पर ही हुआ और वे धाराशायी हो गए ।

हाथियौ के चिंघाड मारकर धाराशायी होते ही दुर्योधन की साथी सेना मे बडा कोलाहल मचा । हाथी तक भयभीत होकर बिगड उठे और पीछे की ओर भागने लगे । सैनिक सिर पर पर रख कर भागे । यह दशा देख दुर्योधन को बडा धक्का लगा, पर वह क्षमियोचित धर्म अनुसार वही स्थिर भाव से खडा रहा और कालाग्नि समान बाणो की बर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु रण कौशल मे प्रवीण घटोत्कच ने सभी वार काट दिए और एक ऐसा भैरव नाद किया कि बचे खुचे कौरव सैनिक भी थर्रा उठे। यह देख कर भीष्म पितामह ने अन्य महारथियो को दुर्योधन की सहायता के लिए तत्काल ही भेज दिया । द्रोणा, सोमदत्त, बाहीक जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरि श्रवा, शल्य, उज्जैन के राजकुमार, वृहद्वल, अश्वस्थामा विकर्ण, चित्रसेन, विविशांत और उनके पीछे चलने वाले कई सहस्त्र रथी, दुर्योधन की सहायता के लिए पहुंच गए। इतनी विशाल सेना के आने पर भी मैनाक पर्वत के समान स्थिर भाव से घटोत्कच खडा रहा । उसके साथ उसके सगी साथी विद्याधर थे । फिर तो दोनो पक्षो मे भीषण सग्राम होने लगा ।

* उन्तालीसवां परिच्छेद *

सभी जानते है कि रण क्षेत्र में उतरने पर किसी को कुशलता अनिवार्य नही है। वल्कि रण मे उतरने वाले अपने सिर पर कफन वाध कर जाते है। ऐसा समझा जाता है। और क्षत्रिय वीर के रण मे काम आने पर वीरगति को प्राप्त हुआ माना जाता है। महाभारत मे तो भरत खण्ड के सभी शूरवीर किसी न किसी ओर से लड रहे थे। एक ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी तो दूसरी ओर सात। परन्तु सात अक्षौहिणी सेना वालो पाण्डवो की स्वय की शक्ति इतनी अधिक थी कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना वाले कौरव भी उनका सामना करते समय अपनी विजय के प्रति आश्वस्त थे, ऐसा नही माना जा सकता। इतनी भयानक टक्कर में कोई वीर काम आ जाये तो न आश्चर्य की ही वात हो सकती हैं और न रण वीरो को वीरगति को प्राप्त हुए वीर पर अश्रुपात करना हो शोभा देता है। फिर भी मोह ही तो ससार चक्र और आवागमन के चक्र को चलाते रहने का कारण है। गृहस्थ्य व्यक्ति मे मोह न हो तो गृहस्थ्य ही क्यो रहे, उसे तो विरक्त हो जाना चाहिए। इस लिए अर्जुन को धर्म का मर्म ज्ञात होने और आत्मा के विभिन्न जन्म धारण करते रहने का रहस्य मालूम होने पर भी और रण मे काम आये वीर पर आसू बहाना व्यर्थ समझते हुए भी, इरावान की मृत्यु का समाचार सुन कर बहुत दुःख हुआ। कुछ देरि के लिए वह मन्न सा रह गया। उस के हृदय पर बड़ा आघात लगा। उस का मन चीत्कार कर उठा। श्री कृष्ण से कहने लगा—मधु सूदन! मैंने

पहले ही कहा था कि इस युद्ध से हमे कोई लाभ नही होने वाला। सुना आप ने मेरा लाडला बेटा इरावान ससार से चला गया।"

कृष्ण बोले—पार्थ ! बेटे की मृत्यु पर इतना दुःख क्यो प्रगट करते हो। उसे तो एक न एक दिन जाना ही था। ससार मे अमर कौन है ? इरावान वीरगति को प्राप्त हुआ है। यह दुख की तो बात नही। कई कौरव भी तो तुम्हारे हाथों मारे गए।"

श्री कृष्ण कौरवो की बात कह कर अर्जुन को सान्त्वना देना चाहते थे। पर अर्जुन के मन पर गहरा घाव हुआ था। कहने लगा —"गोविन्द ! कौरव भी मारे गए और इधर कुछ हमारे वीर काम आये। यह सब कुकर्म धन के लिए ही तो हो रहा है। धिक्कार है ऐसी सम्पति को जिसके लिए इस प्रकार बन्धु-बान्धवो का विनाश हो। भला यहा एकत्रित हुए अपने भाईयो और अपने पुत्रो का वध करके या कराके हमे क्या मिलेगा ?"

अर्जुन के शब्दो मे युद्ध के प्रति उदासीनता थी। ऐसी बात देख कर श्री कृष्ण को शका हुई कि कही अर्जुन पुन' युद्ध से हाथ न खीच ले। बोले—"पार्थ ! यह जो कुछ हो रहा है पापी दुर्योधन शकुनि और कर्ण के कुमन्त्र से ही तो। उन के षडयन्त्र से हो रहा है विध्वश रोकना उदासीनता से तो सम्भव नही। क्या द्रौपदी के अपमान की बात भूल गए। तुम्ही ने तो प्रतिज्ञा की थी कि उस सती के साथ अन्याय करने वालो को तुम अपने गाण्डीव से दण्ड दोगे ? वीर पुरुष मोह वश युद्ध से पैर पीछे नही हटाया करते।"

अर्जुन बहुत देरि तक इरावान को याद कर के दुःख प्रगट करता रहा और अन्त मे जब श्री कृष्ण ने कहा- 'धनजय ! इरावान से तुम्हे कितना प्रेम है, तुम्हारे हृदय पर उनकी हत्या से कितनी चोट पहुंची है, इसका पता कल युद्ध में चलेगा। तुम्हारे गाण्डीव से छूटे बाण कल को इरावान के हत्यारो के लिए यमदूत बन जाने चाहिएं। वीरो से स्नेह प्रगट करने का यही सर्वोत्तम उपाय है।"

अर्जुन के रक्त मे क्रोध तथा उत्साह सचार हुआ और उसकी मुठ्ठियां बध गई। मुख मण्डल दृढ हो गया और आखो मे अरुणाई दौड गई। आवेश मे आकर कहा—"गोविन्द ! कल को मैं इरावान के हत्यारो पर बिजली बन कर टूट पड़ुगा। विश्वास रखिये। मैं अपने बेटे की हत्या का बदला अवश्य लूगा।"

श्री कृष्ण मन ही मन मुस्कराये। उन्होने अर्जुन के जोश को और हवा दी।

इधर अर्जुन को श्री कृष्ण प्रोत्साहित कर रहे थे उधर दुर्योधन भीष्म पितामह के पास अपना रोना रो रहा था। वह कह रहा था—"पितामह! पाण्डवो को जैसे श्री कृष्ण का सहारा है, वैसे ही आप का आश्रय लेकर हमने पाण्डवो से युद्ध ठाना है। मेरे साथ ग्यारह अक्षौहिणी सेना है। आप जैसे कुशल सेनापति है। ससार के सर्व श्रेष्ठ योद्धा मेरे पक्ष मे है। फिर भी पाण्डवो की सात अक्षौहिणी सेना ही हमारा नाक मे दम किए हुए है। कुछ तो भीम पुत्र घटोत्कच के मुकाबले पर मेरी जो पराजय हुई उसे देख कर मैं आत्म ग्लानि के मारे मरा जा रहा हूं। पितामह! जो कुछ हो रहा है उसे देखते हुए मैं विक्षुब्ध हो उठा हू। आप कल को कुछ ऐसा कीजिए कि उस चचल कुमार घटोत्कच से मैं अपना वदला ले सकू। यदि वह जीवित रहा तो न जाने हमे कितनी क्षति उठानी पडे। मेरे भाईयो का वध हो जाना, इतनी शक्ति के होते हुए, मेरे लिए डूब मरने की वात है। पितामह! आप कदाचित न समझ पाये कि उस समय मेरे दिल पर क्या वीत रही है।" पितामह! गम्भीरता पूर्वक सारी वातें सुनते रहे और दुर्योधन ने जव अपनी वात समाप्त कर ली तो वोले—"वेटा! पाण्डव स्वय इतने वलवान हैं। कि तुम्हारे पास दो तीन अक्षौहिणी सेना और भी होती तो भी सहज मे हम जीत न पाते। उनके सामने हम सव ठहर पा रहे हैं यही वहुत है।"

पितामह की वाते सुन कर दुर्योधन जल उठा। आवेश मे आकर वोला—"पितामह! आप की वातो से मुझे पाण्डवो की प्रशसा की गन्ध आ रही है। आप इस तरह की वाते करते हैं मानो मैं कुछ भी नहीं हू। आप के मन मे ऐसा ही था तो आपने युद्ध आरम्भ होने से पहले ही क्यो नही कह दिया, मैं युद्ध हो न छेड़ता। अव जव कि हम रणागण मे आ डटे आप ऐसी वाते कह कर मुझे हतोत्साह कर रहे हैं।"

"आवेश में आकर कुछ नही हो सकता—पितामह शान्ति पूर्वक वोले—तुम्हें सत्य कटु नही लगना चाहिये। शत्रु की शक्ति को एक कम आकना भारी भूल होगी। मेरे कहने का तो अर्थ यह

है कि तुम्हे अपनी क्षति की चिन्ता न करके उत्साह पूर्वक युद्ध करना चाहिए। यदि घटोत्कच से तुम पराजित हो भी गए तो ऐसी क्या बात है कि तुम आत्म ग्लानि के मारे खिन्न हो।"

"पितामह! मेरे मन को तो शाति तभी मिलेगी, जब कल को उस धूर्त का सिर काट लूगा। आप मेरी सहायता कीजिए।" दुर्योधन ने कहा।

"बेटा! घटोत्कच को जाकर तुम ललकारो यह तुम्हे शोभा नहीं देता—भीष्म पितामह ने कहा—तुम राजा हो। तुम्हे युधिष्ठर भीम, अर्जुन और नकुल सहदेव से युद्ध करना ही उचित है। घटोत्कच जैसो के लिए मैं, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वस्थामा, कृतवर्मा, भूरिश्रवा और दुशासन आदि है। और कोई नही तो राजा भगदत्त ही उस से युद्ध करने जाये।"

दुर्योधन को यह सुन कर बडा सन्तोष मिला। वह बोला—"आप की ऐसी ही राय है तो फिर भगदत्त को ही घटोत्कच को ललकारना चाहिए। मेरे विचार से घटोत्कच उन के सामने नही ठहर सकता।"

"हा! मेरी भी यही राय है।"

बस बात निश्चित हो गई और दुर्योधन अपने शिविर मे लौट आया।

× × × ×

रणागण मे दोनो ओर की सेनाए जा खडी हुई। दोनो ओर के सेनापतियों ने अपनी अपनी सेनाओ की व्यूह रचना की और अन्तिम, आवश्यक हिदायते देकर रण की तैयारी के बिगुल बजाये। तमाम रणक्षेत्र शख ध्वनिया और सिहनादो से गूज उठा।

सेनापति की आज्ञा पाकर शूर भगदत्त सिहनाद करता हुआ बडे वेग से शत्रुओ की ओर चला। उसे अपनी ओर आते देख पाण्डवो के महारथी भीमसेन, अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदी के पुत्र सहदेव, चेदिराज, वसुदान, और दशर्णराज क्रोध मे भर कर उसके सामने जा डटे। भगदत्त ने भी सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर इन महारथियों पर धावा बोल दिया। तदनन्तर पाण्डवो का भगदत्त से भीषण सग्राम छिड गया। दोनो ओर से रण-कौशल के विचित्र

विचित्र पराक्रम प्रदर्शित किए जाने लगे। बाणों की वर्षा से सावन-भादो मे लगी मेघ वर्षा का दृश्य उपस्थित हो गया। शूर भगदत्त ने पहले भीमसेन को अपने बाणो का लक्ष्य बनाया। परन्तु भीमसेन अपने ऊपर हो रही बाण वर्षा से तनिक भी विचलित नही हुआ। उस ने बार बार सिंहनाद किए, जिन्हे सुनकर भगदत्त के लडाकू हाथी के परो की रक्षा करने वाली सेना के वीरो का हृदय काप उठता" भीमसेन कुपित होकर पहले उन्ही पर टूट पडा। एक ओर भगदत्त के बाणो से अपनी रक्षा करना दूसरी ओर हाथी के रक्षको को मारना, यह क्रम उस ने इस प्रकार बांधा कि देखते ही देखते सौ से अधिक गज रक्षक यमलोक सिधार गए और भीमसेन का बाल भी बीका न हुआ।

यह देख भगदत्त कुपित हो गया। उसने अपने हाथी को भीमसेन के रथ की ओर बढाया। निकट था कि भगदत्त का खूनी हाथी भीमसेन के रथ को अपनी सूण्ड से तोड देता, पाण्डव वीरो ने झट से उसे चारो ओर से घेर लिया। और गजराज व भगदत्त पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी। चारो ओर से घिरे होने पर भी वह किंचित मात्र भी भयभीत न हुआ। अर्मष पूर्वक अपने हाथी को पुनः आगे की ओर चलाया।

भगदत्त के अङ्कुश और पैर के अगूठे का सकेत पाकर गजराज उस समय प्रयल कालीन अग्नि के समान भयानक हो उठा और सामने पढने वाले रथो व पदाति सैनिको को रोदना आरम्भ कर दिया। पाण्डव वीरो के बाणो को परवाह किए बिना हिंसक मदोमन्त हाथी छोटे हाथियो को सवारो सहित घोडो को उन पर आरूढ सैनिको सहित और पदाति सनिको को उसके शस्त्र-अस्त्रो सहित कुचलता व रौंदता चला जा रहा था। एक दिन गजराज के इस भीषण प्रहार से कोलाहल मच गया। कही हाथियो के चीत्कार कही घोडो के आर्तनाद और कही सैनिको की हा हाकार सुनाई देती थी चारो ओर प्रलय का सा दृश्य प्रस्तुत हो गया। पाण्डवों की सेना मे आतंक छा गया सया। यह देख घटोत्कच से न रहा गया। उस ने उस खूनी हाथी का वध करने के लिए कुपित होकर एक चम चमाता हुआ त्रिशूल चलाया। भगदत्त ने घटोत्कच के हाथ के त्रिशूल को देख कर समझ लिया कि उस की मार खा कर

गजराज मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इस लिये उसने तुरन्त ही एक अर्ध चन्द्राकार बाण चला कर घटोत्कच के त्रिशूल को काट डाला। और शिखा के सामन प्रज्जवलित एक शक्ति घटोत्कच के ऊपर फेंकी।

अभी वह शक्ति आकाश मे ही थी कि घटोत्कच ने उछल कर उसे पकड लिया और दोनो घुटनो के बीच मे दबा कर तोड डाला,। यह अद्भुत बात थी। भगदत्त आखें फ़ाड फाड कर इस अद्भुत घटना को देखता रह गया। आकाश मे देख रहे देवता, गन्धर्व, और विद्याधरो को भी घटोत्कच के विचित्र पराक्रम पर आश्चर्य हुआ पाण्डवो ने इस विचित्र व आश्चर्य जनक पराक्रम को देख कर बडा ही हर्ष प्रगट किया और घटोत्कच की जय जय कार करने लगे। पाण्डव-सेना मे पुन स्फूर्ति आ गई और भीषम सग्राम छिड गया।

भगदत्त पहले तो आश्चर्य से देखता रहा, परन्तु जब उस ने घटोत्कच के जय कार और पाण्डव वीरो के सिंह नाद सुने तो उससे सहा नही गया। खीन्न हो कर उसने पाण्डव महारथियों पर वाण बरसाना आरम्भ कर दिया। वह कभी भीमसेन को अपने वाणो का लक्ष्य बताता, तो कभी अभिमन्यु को, और कभी केकय राज कुमारो को भीमसेन को उस के एक बाण ने घायल कर दिया, अभिमन्यु पर तीन वाण लगे। केकय राजकुमारो को पाच वाणो से उस ने बीध दिया। एक प्राण से क्षुत्रदेव की दाहिनी भुजा काट डाली। पांच वाणो मे द्रौपदी के पांचो पुत्रो को घायल किया। यह देख कर भीमसेन आग बबूला हो कर भगदत्त पर टूट पडा। परन्तु कुपित शूर भगदत्ता ने उसके घोडो को मार गिराया, सारथि भी काम आया। और अन्त मे भीमसेन को अपनी रक्षा करनी मुश्किल हो गई।

परन्तु भीमसेन शत्रु के वाणो को खाकर शांत होने वाला नही था। तुरन्त गदा लेकर रथ मे कूद पडा और भगदत्त के हाथी की ओर क्रुद्ध होकर बढा। भीमसेन के कन्धे पर रखी गदा और उसकी लाल लाल आखे देखकर कौरव सैनिक मे कुहराम मच गया। मानो यमराज ही उनके सामने आ रहे हो।

दूसरी ओर हवा से बाते करते हुए घोडो को श्री कृष्ण ने उस ओर वढाया। अर्जुन के गाण्डीव की टकार ने सभी का ध्यान अपनी ओर खीच लिया। अर्जुन को कौरव सैनिको की ओर वढते देखकर कौरव-महारथियो मे खलवली मच गई। और तुरन्त भीष्म, कृप, सुशर्मा आदि अर्जुन के वेग को रोकने के लिये आ गए। भगदत्त भी वीर अर्जुन की ओर वढा। राजा अम्वष्ठ ने अभिमन्यु को ललकारा, कृतवर्मा और वाल्हीक ने सात्यकि को घेर लिया। अन्य वीर अर्जुन से भिड गए और भीमसेन ने जब धृतराष्ट्र के पुत्रो को अर्जुन की ओर वढते देखा तो भगदत्त का पीछा छोडकर वह उन्ही की ओर बढ गया। अपने एक रथ को पास वुलाकर रथारूढ़ हुआ और वाणो की वर्षा आरम्भ कर दी। धृतराष्ट्र के पुत्रो ने भीमसेन को चारो ओर से घेर लिया और अपने अपने रण कौशल का परिचय देने लगे। पर भीमसेन के वारो को रोक पाने की क्षमता किसी मे नही थी। देखते ही देखते कई कौरव लुढक गए। अपने कई भाईयो को इस प्रकार मारे जाते देखकर अन्य कौरव भयभीत हो गए और उस यमराज रूपी भीमसेन से अपने प्राण वचाने के लिए भाग खडे हुए। भीमसेन ने एक भयकर अट्टहास किया। आश्चर्यजनक वात यह थी कि जिस समय भीमसेन धृतराष्ट्र पुत्रो को यमलोक पहुचा रहा था, उस समय द्रोणाचार्य कौरवो की रक्षा के लिए उस पर वाण वर्षा कर रहे थे। किन्तु भीमसेन एक ओर द्रोणाचार्य के वाणो को निष्फल कर रहा था, दूसरी ओर कौरवो को मार रहा था। अन्त मे कौरवो को भागते देखकर भीमसेन ने द्रोणाचार्य को लक्ष्य करके कहा—"आचार्य! इन कायरो की रक्षा कर रहे थे आप, पीठ दिखाकर भाग जाना जिनका स्वभाव है।" द्रोणाचार्य मन ही मन लज्जित हुए।

दूसरी ओर भीष्म, भगदत्त और कृपाचार्य ने अर्जुन को ललकारा और वे दोनो महावली उसका रास्ता रोक कर खडे हो गए। अति रथी अर्जुन ने पहले पितामह के चरणो की वन्दना वाणो द्वारा की और एक वार सिह गर्जना करके तीनो पर टूट पडा। वाण-युद्ध आरम्भ हो गया। और उसके वाद विचित्र विचित्र अस्त्रो के प्रहार होने लगे। परन्तु अति रथी अर्जुन ने सभी अस्त्रो को अपने अस्त्रो से व्यर्थ कर दिया और शत्रुओ से अपनी रक्षा

करते करते ही कौरव महाबलियों के अगरक्षको में से कितने ही प्रमुख वीरो को यमलोक पहुचा दिया ।

अभिमन्यु ने राजा अम्वष्ठ के रथ के घोडो को मार डाला उसके सारथि को यमलोक पहुचा दिया। क्रुध होकर राजा अपने हाथ मे तलवार लेकर अभिमन्यु की ओर चला परन्तु बाणो की मार से तंग होकर राजा को कृत वर्मा के रथ में शरण लेनी पडी। तव कही उसके प्राण बचे ।

धृष्ट द्युम्न आदि अन्य वीर दूसरे कौरव वीरो से भिड़े थे। पदाति पदाति सैनिको से; अश्वारोही अश्वारोहियो से, गजारोही गजारोहियो से और रथी रथियो से लड रहे थे। गदाओं के वार हो रहे थे। कही तलवारे लटक रही थी। कही भाले चल रहे थे। रुधिर की धारा बह रही थी। वीरो, घोडो और हाथियो के शवों से रास्ते रुक गए थे। कही चीत्कार सूनाई देते तो कहीं सिंह नाद। मरने पर अश्रुपात करने वाला कोई नही होता था और भागते पर वार करने वाला न होता। कोई अपने पराये की चिन्ता नही करता। सभी शत्रु रूप में आये वीर को मार डालने के लिए प्रयत्नशील होते ।

कौरवो की सेना मे सर्वत्र भय छा गया था। अर्जुन ने भीष्म तक के मुकावले पर हार नही मानी थी। वह वहादुरी से लडता रहा था। कौरवो के कितने ही प्रमुख वीर मारे जा चुके थे। इस लिए वार वार पश्चिम दिशा की ओर देखते थे। इतने मे ही सूर्य अस्त हो गया और थके हुए कौरव सैनिको की इच्छा पर भीष्म जी ने युद्ध वन्द करने के लिए शखनाद किया। तलवारे रुक गई। भाले हाथो मे रह गए और धनुषो की डोरियां उतार दी गई। दोनो सेनाए अपने अपने शिविर मे चली गई।

* चालीसवां परिच्छेद *

आठवे दिन का युद्ध समाप्त करके दुर्योधन ने अपने दैनिक धर्मों से निवृत होकर दु:शासन, शकुनि और कर्ण को अपने शिविर मे बुलाया। वह चिन्तित था। उदास भी। सभी उसकी चिन्ता का रहस्य समझते थे। फिर भी साहस बढाना अपना कर्तव्य समझ कर शकुनि ने कहा--"युद्ध की दशा देखकर चिन्तित होने से क्या लाभ ? हमे विश्वास है कि रण मे विजय हमारी ही होगी। परन्तु दीपक गुल होने के समय एक बार बडे जोरो से भडकता है, मृत्यु के पंजे मे आया प्राणी पूरी शक्ति से छटपटाता है, बस यही दशा हो रही है पाण्डवो की। वरना हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सामने उनकी शक्ति ही क्या है। तुम व्यर्थ ही चिन्तित हो रहे हो।"

"नहीं मेरी चिन्ता व्यर्थ नही है। आठ दिन के युद्ध का विश्लेषण करो तो यही परिणाम निकलेगा कि इन दिनो मे ही हमे बहुत क्षति हुई है। स्वय मेरे अपने भ्राताओ की भी बलि हुई है। शूर भगदत्त आज घटोत्कच को मारने मे असफल रहे। भीष्म, कृत-वर्मा आदि मिलकर, भी अर्जुन को न रोक पाये, बल्कि उल्टे उसने हमारे ही योद्धाओ को मार गिराया। ऐसी दशा मे मै चिन्तित न हूं तो क्या खुशी मनाऊ ?"—दुर्योधन ने कहा।

दु:शासन कहने लगा—"पाण्डव युद्ध आरम्भ होने से पूर्व तो कुछ भयभीत भी थे, पर अब तो उनका हौसला ही बढ गया है। अकेला अर्जुन पितामह और द्रोणाचार्य को खदेड़ देता है।"

दुर्योधन ने उसका समर्थन करते हुए कहा—'आश्चर्य की बात तो यह है कि पितामह और द्रोणाचार्य भी मिलकर एक अर्जुन का वध नही कर पाते।"

कर्ण ने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—"दुर्योधन ! तुम्हें अच्छी लगे या बुरी मुझे तो ऐसा लगता है कि पितामह दिल से लड ही नही रहे। वरना कहा पितामह और कहां अर्जुन। वह तो पितामह के एक प्रहार का शिकार है। मेरा विचार तो यह कि पितामह पहले से ही पाण्डवो से स्नेह रखते हैं। वे है तो तुम्हारे पक्ष मे पर दिल उनका पाण्डवो के पक्ष मे है। तब तुम्हारी विजय हो तो कैसे ?"

"लेकिन, पितामह के लडने के तरीके से तो ऐसा नही लगता।"—शकुनि ने शका प्रकट की।

कर्ण दृढतापूर्वक बोला—"मामा जी ! आप भी कैसी बच्चो जैसी बाते करते है। भला भीष्म अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध करें और पाण्डव जीवित बच जायें ? वे तो महाबली हैं। महान तेजस्वी और बाल ब्रह्मचारी हैं। उनकी शक्ति का डका तो सारे ससार मे बज रहा है। पर यदि वे हथियार रख दे तो मैं ही पाण्डवो के लिए काफी हू। अकेला ही उन दुष्टो को यमलोक न पहुचा दू तो तब कहना।"

दुर्योधन के मन मे आशा का संचार हुआ, उसे कुछ हिम्मत बन्धी। पर पश्चाताप सा करता हुआ बोला—"कर्ण ! तुम्हारे ही शौर्य के बल पर तो मैने युद्ध ठाना है। मुझे विश्वास है कि अन्त समय मे तुम ही काम आओगे। पर पितामह के रहते तुम रण मे उतरोगे नही और पितामह ऐसे पीछा छोडेंगे नही। करू तो क्या ?"

शकुनि बोला—"यही बात है तो तुम पितामह से साफ साफ क्यो नही कहते ?"

"हां, हां आप को पितामह से साफ साफ बात करनी चाहिए। कर्ण ने शीघ्रता से कहा—उन से कह दो ना कि वे लडते हैं तो मन लगा कर लडें, वरना यदि उन्हे पाण्डवो से स्नेह है और अपने स्नेह के कारण वे लड नही पाते तो शस्त्र रख दें। क्यों व्यर्थ मे हमारे

वीरो को मरवा रहे है। यह युद्ध है युद्ध, लज्जा की तो मारे जाओगे।"

कर्ण की बात दुर्योधन की समझ मे आगई और वह आवेश मे आकर पितामह के शिविर की ओर चला।

× × × ×

पितामह दूसरे दिन के युद्ध की योजना पर विचार कर रहे थे तभी दुर्योधन पहुचा। पितामह ने उसे आव भगत से बैठाते हुए कहा—"कैसे आना हुआ ? क्या कोई विशेष बात है ?"

अपना रोष प्रगट करते हुए दुर्योधन ने कहा—"पितामह ! रोज रोज की पराजय और अपने भ्राताओ व वीरो की हत्या से मैं तग आगया हूं। आप को न जाने क्या हो गया है। आप है तो हमारी ओर। चढ जा बेटा सूली पर भला करेंगे भगवान कह कर आप ने हमे सूली पर टांग दिया और स्वय पाण्डवो के स्नेह मे दुबले हुए जा रहे है। कुन्ती नन्दनो से इतना ही मोह है तो लोक दिखावे के लिए हमारी ओर से लडने की ही क्या आवश्यकता है ?"

आवेश मे कहे गए दुर्योधन के वचन पितामह को तीरो की भाति चुभे। पर शात भाव से बोले—बेटा ! बडे आवेश मे हो। क्रोध मे यह भी ज्ञान नही रहा कि कह क्या रहे हो ? तभी तो भगवान ने कहा है कि क्रोध अनर्थो का मूल है।"

"पितामह ! आप मेरी बातो को टालने की चेष्टा न करे—दुर्योधन ने जली कटी सुनाते हुए कहा—मैं जो कह रहा हू सच है। यह बात न होती तो क्या पाण्डव आप के होते हुए ठहर सकते थे ? आज तक तो उन का पता भी न चलता। उस दिन घटोत्कच से मैं पराजित हुआ पर आप पर उसका कोई प्रभाव ही न हुआ आज अर्जुन को ही आप नही रोक पाये। इस बात पर विश्वास करने के लिए भला कौन तैयार हो सकता है कि अर्जुन को रोकना आप के बस की बात नही। आप तो अकेले ही सारे पाण्डवो को काफी हैं। मैंने आप पर गर्व किया और आप के कारण ही मेरा प्रिय वीर कर्ण युद्ध से अलग है। वह अकेला ही पाण्डवो को मार सकता है। मैंने आप को अपनी सेना का सेनापति बनाया तो इस लिए नही कि आप पाण्डवो के मोह मे मुझ परास्त कराते रहे। अब मैं

सन्तोष करू तो कैसे ?''

दुर्योधन के वाग्बाणो से पितामह बहुत ही व्यथित हुए, किन्तु उन्होने कोई कडवी बात नही कही। क्योकि वे तो इस सिद्धान्त को मानने वाले थे कि —

त्रिकाल मिठे वचन ते सुख उपजे चहुं ओर।
बसीकरण एक मत्र है, तिज दे वचन कठोर ॥

वे बहुत देरि तक दीर्घश्वास लेते रहे। उसके बाद अपने को नियन्त्रित करते हुए उन्होने कहा—"बेटा ! अपने वाग्बाणो से मेरे मन को क्यो वेधते हो ? मैं तो अपनी पूरी शक्ति लगा कर युद्ध कर रहा हू और तुम्हारा हित करना चाहता हू। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करने के लिए मैं अपने प्राण तक होमने को तयार हू। पर पाण्डव मिट्टी के ढेले तो नही। वे भी तो शूरवीर है। याद करो उन के पराक्रम केदृष्टातो को। गन्धर्व जब तुम्हे पकडे लिए जा रहे थे और कर्ण आदि सभी पीठ दिखा कर भाग गए थे, यही अर्जुन था जिस ने अकेले ही गधर्वों से तुम्हे मुक्त कराया था। विराट नगर की चढाई के समय अकेले अर्जुन ने ही तो हम सब को परास्त कर दिया था। और अपनी वीरता की डीग हाँकने वाले कर्ण आदि के वस्त्र उतार कर उसने उत्तरा को भेंट स्वरूप दिए थे। यह भी तो पाण्डवो की वीरता का ही प्रमाण है। भला जिसके रक्षक त्रिखड पति वासुदेव श्री कृष्ण हो, जो कि अर्जुन के सारथी है, उसे रण मे परास्त करना खिलवाड नही है। मैं कितना ही चाहू उसे परास्त करना मेरे लिए असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। फिर भी तुम विश्वास रक्खो कि मैं हर सम्भव उपाय अपना कर तुम्हे विजयी वनाने की चेष्टा करूगा। सिवाय शिखन्डी के मैं सब पाण्डवो और उन के सहयोगियो से टक्कर लूगा। शिखण्डी को मैं स्त्री मानता हू उस पर शस्त्र नही चलाऊगा यदि तुम्हे मेरे युद्ध सचालन से कोई शिकायत हो तो सेनापतित्व तुम सम्भाल लो और शिखण्डी के अतिरिक्त अन्य किसीके भी मुकाबले पर मुझे डटा दिया करो मे अन्त समय तक लडता रहूंगा। तुम निश्चिन्त रहो। मैं कल और भी भीषण संग्राम करके तुम्हे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूगा। पर इतना अवश्य ही ध्यान रखना कि अब मैं बूढ़ा हो गया हू। अब वह शक्ति मुझ मे नही है जो जवानी मे थी और यह भी कि तुम्हारे वाग्बाण

अर्जुन के गान्डीव से छूटे बाणो से अधिक घातक है।"

दुर्योधन पितामह को उतेजित ही करना चाहता था। जब उस ने देखा कि वे दूसरे दिन भीषण युद्ध करने का वचन दे चुके तो वह कुछ शात हो गया और बोला—"पितामह! आप को मेरी बातें कटु लगी होगी पर जब मैं पाण्डवो की तनिक सी भी विजय देखता हू तो मेरी छाती पर सांप लोट जाता है। आप यदि भीषण सग्राम करेंगे तो कल ही पाण्डवो के छक्के छूट जायेगे।"

पितामह ने उसे सन्तुष्ट करने के लिए अपने वचन को दोहराया और अन्त मे बोले—"बेटा! अपने पक्ष वाले लोगो पर विश्वास रक्खो। अब समय अधिक हो गया। जाओ निश्चिंत होकर विश्राम करो।"

× × × ×

नवें दिन पितामह ने सर्वतो भद्र व्यूह की रचना की। कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैव्य, शकुनि, जयद्रथ सुदक्षिण और धृतराष्ट्र के पुत्र पितामह के साथ अग्रिम पक्ति मे खडे हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त व्यूह की दाहिनी ओर नियुक्त किए गए। अश्वस्थामा, सोमदत्त और अवन्ति राजकुमार अपनी विशाल सेनाओ सहित बायी ओर खडे हुए। त्रिगर्त्तराज के वीरो और उसकी सेना से रक्षित दुर्योधन व्यूह के बीच मे था। महारथी अलम्बुष और श्रुतायु सारी व्यूह बद्ध सेना के पीछे थे। इस प्रकार सेनापति की आज्ञानुसार सभी ने अपने अपने स्थान ग्रहण किए और कौरव सेना युद्ध के लिए तैयार हो गई।

दूसरी ओर पाण्डवो की सेना भी व्यूह मे खड़ी हुई। युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव व्यूह के मुहाने पर थे। तथा धृष्ट द्युम्न विराट, सात्यकि, शिखण्डी, अर्जुन, घटोत्कच, चेकितान, कुन्ती भोज, अभिमन्यु, द्रुपद, युधामन्यु और केकय राजकुमार—यह सभी वीर कौरवो के मुकाबले पर अपना व्यूह बनाकर खड़े हुए। सेनापति ने इन सब के स्थान निश्चित कर दिए थे। जब पाण्डवो की सेना का व्यूह तैयार हो गया तो युद्ध के लिए तैयार होने की सूचना के रूप मे शंखनाद किए गए। पाण्डवो के शखनादो को सुनकर कौरवो का रण का बाजा बजने लगा और भीष्म पितामह

के नेतृत्व मे कौरव-वीर आक्रमण हेतु आगे वढे ।

दोनो ओर से युद्ध आरम्भ हो गया । दोनो ओर के वीर ए
दूसरे की ओर दौडकर युद्ध करने लगे । उस समय दोनो ओर
वीरो के आगे वढने, धनुपो की टकारों और हाथियो व घोडो
शोर की ध्वनि से पृथ्वी डगमगाने लगी । चमचमाते अस्त्र नि
आये । गदाए टकराने लगी । हाथियो की चिघाडो का शो
गया । तभी दूसरी ओर से जगल मे से गीदडो की आवा
दिन मे गीदडों की आवाजे कुछ विचित्र सी लग रही थी
कुत्तो ने एक साथ मिलकर आर्त्तनाद किया । आकाश
उल्काए पृथ्वी की ओर गिरने लगी । इन कुशुभ ल
दोनो सेनाओ के हाथियो और घोडो की आवाजे
और सिहनाद, गदाओ के टकराने से निकलने
धनुपो की टकारे वडी ही भयानक प्रतीत होने

अभिमन्यु कौरव सेना के बीच मे
वहुत चाहा कि उसे मार्ग न मिले पर वह
और वह सैन्य समुद्र मे घुसते हुए अपने वाणो
सैनिको के प्राण हरने लगा । अपने वाणो से
हाथियो का सिर और कितने ही घोडो का शरीर
डाला । जयद्रथ, द्रोणाचार्य, अश्वस्थामा और कृपाचार्य जै
रथियो को चक्कर देता हुआ वह वडी ही चतुरता और सफ
रणागण मे चक्कर लगा रहा था । अपने प्रताप से शत्रुओ को सन्त
करते देख कर राजाओ को ऐसा प्रतीत होता था मानो रण मे दो
अर्जुन उतर आये है । अपने पैने वाणो से उस ने कितने ही अश्वा-
रोही, कितने ही गजारोही और कितने ही रथी व पदादि यम
लोक पहुचा दिए और कुछ ही देर मे उस के सामने आई हुई कौरव
सेना के पैर उखड गए ।

कौरव सैनिक अभिमन्यु से आतकित होकर घोर आर्त्त नाद
कर रहे थे, जिसे सुन कर दुर्योधन ने अलम्बुप से कहा—"महावाहो!
अभिमन्यु अपने पिता के समान ही पराक्रम दिखा रहा है इस समय
तुम ही एक ऐसे वीर हो जो उस मूर्ख का सर कुचल सको । क्योकि
तुम सभी विद्याओ मे पारगत हो । शीघ्र जाओ और उसे यमलोक

पहुचा दो। हम सब भीष्म पितामह शीघ्र ही सात्यकि के समीप
को घेरते हैं।' कि उसे घायल कर पृथ्वी

दुर्योधन की आज्ञा पाकर अलम्बुष वर्ष सात्यकि की ध्वजा काट
घोर गर्जना करता हुआ अभिमन्यु की ओर भी आच्छादित कर
सुन कर पाण्डवो की सेना मे खलबली मच गई। कर द्रोणाचार्य
अपने को सम्भाल ही न पाये। अपनी गर्जना से पाण्ड सात्यकी को
मन्यु के साथ वाली सेना को कापते देख अलम्बुष पहले उस डाला।
पडा। उस के भीषण आक्रमण को पाण्डव सेना सहन न कर र्ग पर
सैनिक तितर बितर हो गए। पर ज्यो ही वह द्रौपदी पुत्रो के सामने
पहुंचा, उसे जबरदस्त सग्राम का सामना करना पडा। पाचो द्रौपदी
पुत्र उस पर टूट पडे और उन के बाणो से उसका कवच कट गया।
वह घायल होगया और उसे एक बार ऐसा बाण लगा कि वह अचेत
हो गया। पर कुछ ही देरि मे चेतना लौट आई और अमर्षपूर्वक
उसने उन पाँचो पर भीषण आक्रमण कर दिया। अब की बार
आक्रमण का मुकाबला द्रौपदी पुत्र न कर पाये। उन के घोडे
और सारथी मारे गए। निकट था कि वे भी मारे जाते, कि तत्काल
अभिमन्यु वहाँ पहुच गया! फिर तो दोनों ही एक दूसरे के लिए
प्रलयाग्नि की भाति हो गए। भयकर टक्कर हुई।

अभिमन्यु के मारे बाणो ने उस के नाको दम कर दिया।
उसके मर्मस्थलो पर बाण घुस गए। जिस के उत्तर मे उस राक्षस
ने भी भयकर बाण वर्षा की जब इस से भी कुछ न हुआ तो उस
ने माया अस्त्र प्रयोग किए। एक ऐसा अस्त्र चलाया कि चारो ओर
अधकार ही अधकार फैल गया। पाण्डव सनिको को न तो अभि-
मन्यु ही दिखाई देता था और न अपने अथवा शत्रु पक्ष के सैनिक
ही सुझाई देते थे। उस भीषण अधकार को देख कर अभिमन्यु ने
भास्कर नामक अस्त्र का प्रयोग किया। जिस के छूटते ही अधकार
विदीर्ण हो गया। चारो ओर उजाला ही उजाला फैल गया। तब
कुपित होकर अलम्बुष ने एक ऐसा अस्त्र चलाया कि सैनिको को
चारों ओर ऊपर से पहाड टूटते दिखाई दिए, तभी अभिमन्यु ने
एक ऐसा अस्त्र चलाया कि हवा का तूफान सा चलने लगा और
आखो के आगे से लुप्त हो गए। अलम्बुष ने अभिमन्यु के अस्त्र के
जवाब मे एक ऐसा अस्त्र प्रयोग कियाकि चारो ओर अगारे से बरसने

के नेनृत्व मे कौरव-वीर आक्रमणभास्त्र सें वरफ गिरानी आरम्भ करदी
र माया अस्त्र व्यर्थ हो गए। तव घवरा
दोनो ओर से युद्ध अ ग स्थल से छोड कर भाग पडा। अभिमन्यु
दूसरे की ओर दौडकर रहा, पर उस ने पीछे घूम कर भी न देखा।
वीरो के आगे वढने, य घोष करने लगी। और अभिमन्यु उस की साथी
ओर की ध्वनि पडा। अलम्बुष के भागने से कौरव सेना मे भय छा
आये। गदा इस लिए वह अभिमन्यु के प्रहार को क्या सहन करती।
गया। सैनिक भागने लगे। चारो ओर—"भागो-भागो।" का
दिन होने लगा।

अपनी सेना को भागते देख कर भीष्म जी अपने साथी महारथियो सहित वालक अभिमन्यु से जा भिडे। परन्तु वीर वालक ने भीष्म जी का वीरोचित स्वागत किया और हस कर बोला—"आईये दादा जी! आप का रण कौशल सर्व विख्यात है। मैं भी तो आप के पराक्रम को देखू।"—और उस ने उस पर वाण वर्षा आरम्भ कर दी कुछ ही देरि मे अपने पिता व मामा सदृश पराक्रम दिखा दिया। भीष्म जी ने उस के पराक्रम का समुचित उत्तर तो दिया। पर अभिमन्यु का वे कुछ न विगाड सके। तभी अर्जुन अपने पुत्र की रक्षा के लिए कौरवो का सहार करता हुआ उधर आ निकला। भीष्म जी की रक्षा के लिए कौरव महारथी जुट गए और अर्जुन को सहायता के लिए पाण्डव पक्षीय महारथी आगए।

कृपाचार्य ने अर्जुन पर वाण वर्षा को, जव कि अर्जुन भीष्म जी के वाणो को वीच ही मे तोड रहा था और कृपाचार्य के वाणो से भी अपनी रक्षा कर रहा था। सात्यकि तुरन्त ही कृपाचार्य पर टूट पडा। और अपने कई बाणो से उस ने कृपाचार्य को घायल कर दिया। ज्यो ही घायल होकर कृपाचार्य रथ के पिछले भाग को ओर झुके सात्यकि अश्वस्थामा से जा भिड गया। पर अश्वस्थामा ने अपनी चतुरता से उस के धनुप के दो टुकडे कर दिये। परन्तु सात्यकि ने तुरन्त ही दूसरा धनुप सम्भाला और साठ बाण अश्वस्थामा पर चलाये। जिन्होने उसकी छाती और भुजाओ पर चोट की। इस से घायल होकर अश्वस्थामा को मूर्छा आ गई और अपनी ध्वजा के डण्डे का सहारा लेकर अपने रथ के पिछले भाग मे बैठ गया।

जब अश्वस्थामा सचेत हुआ, शीघ्र ही सात्यकि के समीप पहुचा और जाते ही नाराच छोडा। जो कि उसे घायल कर पृथ्वी मे जा घुसा। एक दूसरे बाण से उस ने सात्यकि की ध्वजा काट डाली। पर सात्यकि ने बाण वर्षा करके उसे भी आच्छादित कर दिया। अश्वस्थामा को वाणो से आच्छादित देख कर द्रोणाचार्य पुत्र रक्षा के लिये दौड पड़े और अपने पैने बाणों से सात्यकी को बीध डाला। उस ने भी बीस बाणो से आचार्य को बीध डाला। उसी समय परम प्रतापी वीर अर्जुन ने क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य पर आंक्रमण कर दिया। तीन ही बाणो से उसने आचार्य को घायल कर दिया और बड़े वेग से बाण वर्षा कर के उन्हे ढक दिया। इस से आचार्य की क्रोधाग्नि एक दम भडक उठी और उन्होने ऐसी तीव्र गति से बाण चलाए कि एक बार तो अर्जुन भी बाणो के परदे मे छुप गया।

दुर्योधन ने तभी सुशर्मा को द्रोणाचार्य की सहायता के लिए भेजा। अपने पिता को अर्जुन के मुकाबले पर जाते देखकर सुशर्मा के पुत्र की भुजाए भी फडक उठी और उसने शखनाद करके अपने पिता का अनुकरण किया। त्रिगर्त्त राज ने और उसके पुत्र ने जाते ही अपने लोह-बाणो का भयकर प्रहार किया, परन्तु वीर अर्जुन ने उन दोनो के वाणों को अपने वाणों से व्यर्थ बना दिया और अपनी ओर से इस प्रकार की बाण वर्षा की कि त्रिगर्त्त राज व उसका पुत्र आये थे प्रहार करने, स्वय उन्हे आत्म रक्षा की चिन्ता पड गई। यह देखकर पाण्डव पक्षीय सैनिक ठहाका मारकर हसने लगे। त्रिगर्त्त राज के रक्त ने उबाल खाया और वह प्राणो का मोह त्याग कर अर्जुन पर वाण वर्षा करने लगा। परन्तु वीर अर्जुन ने उस अवसर पर ऐसे रण कौशल का परिचय दिया कि देखने वाले, चाहे वे पाण्डव पक्षीय थे अथवा कौरव पक्षीय, उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा करने लगे। आकाश मे युद्ध देख रहे देवता भो अर्जुन का हस्तालाघव देखकर "धन्य धन्य कहने लगे। त्रिगर्त्त राज और उसके पुत्र ने आवेश मे आकर पुनः एक भयकर आक्रमण किया, जिनसे कुपित होकर अर्जुन ने कौरव सेना के अग्र भाग मे खडे त्रिगर्त्त वीरो पर वायव्यास्त्र छोड़ा। जिससे आकाश मे खलबली मच गई और ऐसा प्रचण्ड पवन प्रगट हुआ कि कौरव वीरों को अपने रथो पर जमे

रहना दूभर हो गया। पताकाओ की धज्जियां उडने लगीं। सैनिक हाथियो पर से नीचे लुढक गए और किसी का तरकश उड गया तो किसी का मुकुट। कोई रथ ही भूमि पर लुढ़कने लगा। यह दशा देखकर द्रोणाचार्य ने शैलास्त्र छोडा। जिससे वायु रुक गई और सब दिशाए स्वच्छ हो गई। परन्तु पाण्डु पुत्र अर्जुन के सामने टिके रहने का साहस त्रिगर्त्त राज व उसके पुत्र मे न रहा। उनसे भागते ही बना।

उधर सूर्य अपनी मजिल के अर्ध भाग को पूरा करके सर पर पहुंच गया। मध्याह्न हो गया। दुर्योधन और उसके पक्ष के वीरो ने गगानन्दन भीष्म जी को पुकारा।—"पितामह ! अर्जुन के प्राणहारी वाणो से रक्षा करो वरना कौरव सेना उसके पैने वाणो से नष्ट हो जायेगी।"

पितामह ने अपने तीक्ष्ण वाण सम्भाले और टूट पडे पाण्डव-सेना पर। जैसे दावानल सूखे वन को नष्ट करता है, उसी प्रकार गगानन्दन के वाण पाण्डव-सेना का सहार करने लगे। सैकडो सैनिक मौत के घाट उतर गए। तब धृष्ट द्युम्न, शिखण्डी, विराट और द्रुपद भीष्म जी के सामने आये और वाण वर्षा करने लगे। परन्तु पितामह ने धृष्ट द्युम्न, विराट और द्रुपद आदि सभी महारथियों को घायल कर दिया। वाण खाकर उनका पौरुष भयकर रूप से प्रगट हुआ और शिखण्डी जिस पर कि पितामह ने वाण नही चलाए थे, कुपित होकर उन पर टूट पड़ा। साथ दे रहे थे अन्य द्रुपद व विराट आदि महारथी। पितामह भी घायल हो गए। परन्तु वे अपने वाणो से शिखण्डी के अतिरिक्त अन्य सभी को पीडित करते रहे। उस समय भीमसेन, सात्यकि आदि भी मुकावले पर आगए। यह देख कौरव महारथी भी जा भिडे। फिर तो वड़ा ही घमासान युद्ध होने लगा। पदाति से पदाति, गजारोही से गजारोही ही और रथी से रथी भिड़ गया था। भालो, तलवारों, कटारों, गदाओं और धनुषो से वार हो रहे थे। रक्त की धाराए वह निकली थीं। वीरों के शवो पर रथ दौड रहे थे। गदाओ के टकराने से विजली टूटने सा शब्द होता था।

दूसरी ओर अर्जुन के मुकावले पर त्रिगर्त्त राज के महारथी

आ डटे थे। द्रोणाचार्य तो अपनी पूर्ण शक्ति से युद्ध कर ही रहे थे। परन्तु त्रिगर्त्त राज के महारथियो के एक साथ टूट पडने से युद्ध मे और गरमी आ गयी। अर्जुन ने उस समय कुछ दिव्यास्त्र प्रयोग किए जिनके सामने रुक सकना त्रिगर्त्त महारथियो क बस की बात नही थी। यदि उनकी रक्षा के लिये द्रोणाचार्य न होते तो कदाचित वे सभी यमलोक सिधार जाते। पर आचार्य की कृपा से कुछ की जान बच गई और वे रण छोडकर भाग निकले। कितने योद्धा तो अपने हाथियों, घोडो और रथो पर से कुद कर भाग गए और हाथी, घोडे और रथ इधर उधर भागने लगे। कौरव-सैनिको मे चिल्लयो मच गई। यह देखकर दुर्योधन तत्काल भीष्म जी के पास पहुचा और घबरा कर बोला—"पितामह ! अर्जुन हमारी सेना को डस रहा है। महारथी भाग रहे हैं।"

पितामह तुरन्त उस ओर चले। दुर्योधन ने अपनी सेना को उनके पीछे लगा दिया। परन्तु सात्यकि, द्रुपद, विराट आदि भी अर्जुन की रक्षा मे लग गए। गगा नन्दन ने अपने बाणो से पाण्डवो की सेना को आच्छादित करना आरम्भ कर दिया। सात्यकि कृतवर्मा से भिड गया और अपने कुछ ही बाणो से उसे बीध डाला फिर कौरव सेना के बीच जाकर युद्ध करने लगा। राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य को घेर लिया और स्वय उन्हे तथा उनके सारथि को बुरी तरह घायल कर दिया। भीम सेन बाल्हीक को घेरा हुआ था। उसने कुछ ही देर मे उनको बीध डाला और विजय की सूचना के रूप मे बडा ही उत्साहपूर्ण सिह नाद किया। चित्रसेन ने यद्यपि अभिमन्यु को घायल कर दिया तथापि वह रण मे डटा रहा और उन्हे चित्रसेन को उसने घायल कर दिया और नौ बाणो से उसके चारों घोडो को मार गिराया।

आचार्य द्रोण, द्रुपद के बाणो से हार्दिक रूप से भी घायल हुए थे, अत उनका क्रोध उबल पडा और वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध करने लगे। द्रुपद का सारथि और उसके घोडे उन की कोपाग्नि मे भस्म हो गये। और अत्यन्त व्याथित होकर द्रुपद को रण भूमि छोडनी पडी। दूसरी ओर भीमसेन ने राजा बाल्हीक के घोडों और सारथि को मारकर उसके रथ को भी नष्ट कर डाला। इस लिये वे तुरन्त ही लक्ष्मण के रथ पर चढ गए। सात्यकि

ने कृतवर्मा को बडा परेशान किया और जब वह पीडित होकर निष्क्रय सा हो गया तो सात्यकि सीधा पितामह भीष्म के सामने जा डटा। दोनो ओर से वाण वर्षा होने लगी। पर कुछ देरि तक दोनो ही डटे रहे। किसी को कुछ हानि न पहुची तव परेशान होकर पितामह ने एक शक्ति अस्त्र चलाया। लोहे की वह शक्ति वडी भयकर थी। सात्यकि उसकी भीषणता समझता था, उसने वडी हा चतुराई से पैंतरा वदला और शक्ति का वार खाली गया वह भूमि मे जा घुसी। सात्यकि ने तुरन्त ही अपनी ओर से एक शक्ति-अस्त्र प्रयोग किया परन्तु पितामह ने उसे अपने पैने बाणो से बीच हो मे काट डाला और सात्यकि की छाती को अपने बाणो का लक्ष्य वनाया। पाण्डव पक्षीय महारथी तब सात्यकि की रक्षा के लिए पहुंच गए। और उन्होने पितामह का रथ चारो ओर से घेर लिया। वस, फिर क्या था, वडा ही घमासान युद्ध होने लगा।

राजा दुर्योधन ने तव दु:शासन को बुला कर कहा—"देख रहे हो दु शासन! पितामह घिर गए है। वे सकट मे है। जल्दी दौडो उनकी सहायता करो।"

आदेश मिलना था कि दु शासन अपनी विशाल वाहिनी से भीष्म जी को घेर कर खडा होगया। शकुनि एक लाख सुशिक्षित घुड सवारो को लेकर नकुल और सहदेव की सेना के सामने आ डटा था और दुर्योधन ने दस हजार सैनिक युधिष्ठिर की सेना के मोर्चे पर भेज दिए। परन्तु पराक्रमी पाण्डवो ने रक्त की होली खेलनी आरम्भ कर दी। कौरव-सनिको के सिर कट कट कर भूमि मे ऐसे गिर रहे थे मानो वृक्षो से पके फल गिर रहे हो। घोडो के शवों का ढेर लग गया था और चारो ओर रक्त व मास के मारे की-? सी हो गई थी। रेत लाल कीचड मे परिर्वतिन हो गया था।

अपनी सेना को पराजित देख कर दुर्योधन को वडा दु ख हुआ उसने मद्रराज से कहा –"राजन्! वह देखिये नकुल और सहदेव हमारी विशाल सेना को नप्ट किए डाल रहे हैं। आप चाहे तो यह सेना नप्ट होने से वच सकती है। आप शीघ्र ही उस की रक्षा करे।"

मद्रराज शल्य रथ सवार सेना लेकर युधिष्ठिर के मुकाबले

पर जा डटे। उनकी सारी सेना एक साथ युधिष्ठिर पर टूट पडी। परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने वाणो के प्रवल वेग से शल्य की सेना को रोक दिया और उनकी छाती पर दस वाण मारे यदि मजबूत कवच न होता तो शल्य यमलोक सिधार गए होते। पर वे वच गए और दानो ओर से भीषण युद्ध होने लगा नकुल और सहदेव भी उन के मुकावले पर आगए।

अब दिन अपने अन्तिम अध्याय मे प्रवेश करने लगा। और गगानन्दन भीष्म जी ने वडे वेग से पाण्डवो पर आक्रमण किया। ताकि वे अपने वचनानुसार पाण्डवो की सेना को नष्ट करके दुर्योधन को सन्तुष्ट कर सके। उन्हो ने वारह वाण भीम पर, नौ सात्यकि पर, तीन नकुल पर, सात सहदेव पर और वारह युधिष्ठिर पर वरसाये। और वडा ही भयकर सिहनाद किया। पाण्डव वीर वडे ही पीडित हुए और कुपित होकर उन्होन पितामह पर वाण वर्षा करदी। नकुल ने वारह, सात्यकि ने तीन, धृष्टद्युम्न ने सत्तर, भीमसेन ने सात और युधिष्ठिर ने वारह वाणो से पितामह को घायल कर दिया। पितामह को सकट में मे आया देख द्रोणाचार्य ने इन वीरो को अपने वाणो का निशाना वनाया। और सात्यकि व भीमसेन को पांच पांच वाण लगे। तभी उन के तीन तीन वाण द्रोणाचार्य को चोट पहुंचाने मे सफल हो गए।

इस के वाद पाण्डवो के महारथियो ने पुन. चारो ओर से पितामह को घेर लिया। परन्तु गगानन्दन ने उस समय वडे ही अद्भुत पराक्रम से काम लिया। उनकी प्रत्यचा की विजली की कडक के समान टङ्कार सुन कर सव प्राणी काप उठे। वे वाणो का तूफान लाते हुए पाण्डव सेना को विध्वस करने लगे। सहस्त्रो सैनिक यम लोक सिधार गए। उन के वाण जिसे लगते, उसी के कवच को चीरते हुए शरीर मे प्रवेश कर जाते और एक चीत्कार निकलती, और सैनिक के प्राण पखेरू उड जाते। सैकडो रथ, हाथी और घोडे मनुष्यहीन हो गए। उन के अमोघ वाणो की वर्षा से पाण्डव सेना में हाहाकार मच गया और उस समय तो सर्वत्र घबराहट फैल गई [illegible] चेदि, काशी, और करुद देश के चौदह हजार महारथी जो रण मे प्राण देने को तैयार रहते थे, परन्तु पीछे पग रखना उन के स्वभाव के ही प्रतिकूल था, भीष्म जी के वाणो से अपने रथ, घोडो और

हाथियो सहित नष्ट हो गए।

पाण्डवो की सेना इस भीषण सहार से आर्तनाद करती हुई भागने लगी। यह देख कर श्री कृष्ण ने अपना रथ रोक कर कहा— "कुन्ती नन्दन! तुम जिसकी प्रतिक्षा मे थे, वह अब सयय आ गया है। इस समय तुम यदि माह ग्रस्त नही तो भीष्म जी पर भीष्ण वार करो। तुम ने विराट नगर मे सजय के सामने कहा था ना कि मैं भीष्म द्रोणादि कौरव महारथियो को उन क अनुयायियो सहित मार डालूंगा, लो अब अपना वह कथन पूर्ण कर दिखाओ। तुम क्षात्र धर्म का पालन कर के अब युद्ध मे अपना अपूर्व कौशल दिख-लाओ। वरना तुम्हारी सेना परास्त हो जायेगी।

श्री कृष्ण की वात सुन कर अर्जुन ने कहा—"मधु सूदन! जैसी आपकी आज्ञा। अच्छा आप मेरे रथ को पितामह की ओर ले चलिए। मैं अजेय भीष्म जो को अभी ही पृथ्वी पर गिरा दूगा!"

अर्जुन ने यह शब्द कहे तो पर उसके शब्दो में उत्साह नहीं था उसने वेमन से कहा था। जैसे विवश होकर कह रहा है। सफेद घोडो वाले रथ को श्री कृष्ण ने भीष्म जी की ओर हाक दिया। अर्जुन को उस ओर जाते देख युधिष्ठिर की विशाल वाहिनी पुनः लौट आई। पर ज्यो ही अर्जुन सामने पहुंचा, भीष्म जी ने वाणों की तीव्र गति से वर्षा की और अर्जुन को सारथि तथा घोडो सहित वाणों से ढक दिया। इतने वाण चलाये कि अर्जुन रथ सहित इसी प्रकार छुप गया, जैसे वादलो मे भास्कर छुप जाता है। परन्तु श्री कृष्ण तनिक भी नहीं घबराये वे वाण वर्षा मे ही अपने रथ को हांकते रहे। और अर्जुन को डाटते हुए वोले—"क्या कर रहे हो पार्थ ?"

अर्जुन ने अपना दिव्य धनुप उठा कर पैने वाण चला कर भीष्म जी का धनुष काट कर गिरा दिया तव उन्होने तत्काल दूसरा धनुप उठाया, पर अर्जुन ने उसे भी काट डाला। इस कौशल को देख कर भीष्म जी कहने लगे—"वाह महा बाहु, अर्जुन! शाबाश कुन्ती नन्दन शाबाश।"—और दूसरा धनुप सम्भाल कर अर्जुन पर वाणों की। झडी लगादी पर उस समय श्री कृष्ण ने कुछ

इस प्रकार घुमा फिरा कर घोड़े हांके, कि भीष्म जी के बाण व्यर्थ हो गए, वास्तव मे श्री कृष्ण ने उस समय घोडे हाकने की अद्‌भुत कला का प्रदर्शन किया।

परन्तु अर्जुन की ओर से वैसा ही रण कौशल न दिखाया जाता देख श्री कृष्ण क्षुब्ध होगए। भीष्म जी इधर अर्जुन को पीड़ित कर रहे थे तो दूसरी ओर युधिष्ठर की विशाल वाहिनी के महारथियो को मार रहे थे। अर्जुन की गति मे कोई ऐसी बात नही थी कि श्रीकृष्ण को सन्तोष हो सकता। पितामह प्रलय सी मचाते जा रहे थे और अर्जुन मन्द गति से बाण चला रहा था। श्री कृष्ण से यह न देखा गया। बार बार अर्जुन को ललकारा—"क्या कर रहे हो धनजय? तुम्हारा यह रण-कौशल क्या हुआ?"—पर अर्जुन को गरमी न आयी वह उसी प्रकार लडता रहा। तब रोष पूर्वक कृष्ण बोले—"पार्थ! भीष्म जी को रोको। तुम्हे क्या होगया है?"

अर्जुन की ओर से फिर भी ऐसा कुछ नही हुआ, जिस से भीष्म जी की गति रुक सकती। तब आवेश मे आकर श्री कृष्ण घोडों की रास छोड कर रथ से कूद पडे और सिंह के समान गरजते हुए चाबुक होकर भीष्म जी की ओर दौडे। उनके पैरों की धमक से मानो पृथ्वी फटने सी लगी उनकी आखे क्रोध के मारे लाल हो रही थी। उस समय कौरव सेना मे कोलाहाल मच गया—"अरे कृष्ण आये, कृष्ण आये। बचाओ भीष्म जी को।"—की आवाज उठने लगी।

श्री कृष्ण रेशमी पिताम्बर धारण किये हुए थे। उस से उन का नील मणि के समान श्याम सुन्दर शरीर विद्युल्लता से सुशोभित श्याम मेघ के समान प्रतीत होता था। जिस प्रकार सिंह हाथी पर टूट पड़ता है, इसी प्रकार श्री कृष्ण गर्जना करते हुए भीष्म जी की ओर लपके। कमल नयन श्री कृष्ण को अपनी ओर आते देख पितामह ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा—"गोविन्द! आईये आईये, आपका स्वागत है। आज आप रण मे उतर रहे हैं अहोभाग्य।"

तभी अर्जुन ने पीछे से आकर श्री कृष्ण को अपनी भुजाओ मे भर लिया और पीछे की ओर खीचने लगा। परन्तु श्री कृष्ण आगे ही बढते रहे, वे अर्जुन को भी घसीट ले गए। कहते जाते थे—

"धनजय ! तुम पितामह का मोह करते हो। तुम अवश्य ही उनके हाथो पाण्डव-सेना का नाश करादोगे। छोड दो मुझे। मैं अपने चाबुक से गंगानन्दन को यमलोक पहुंचा दूंगा। तुम कुछ नही कर सकोगे।"

तब अर्जुन दौड़ कर उनके सामने जा खड़े हुए और बोले— "आप ने तो युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की है। अपनी प्रतिज्ञा को क्यों भग करते हैं लोक आपको मिथ्यावादी कहेगे।"

"तुम भी तो अपनी प्रतीज्ञा भंग कर रहे हो ? तुम ने भी तो पितामह का बध करने की प्रतिज्ञा की थी। पर तुम तो पितामह का आदर करते हो उन पर तुम से वाण चलाये ही नही जाते। तो क्या मैं पाण्डव-मेना जा सहार देखता रहूं। क्यो रोकते हो मुझे। तुम जैसे व्यक्ति का सारथि बन कर मुझे मिथ्यावादी बनना न पडेगा तो क्या बनना पडेगा। तुम सभी की नाक कटादोगे।"—श्री कृष्ण ने गरज कर कहा।

"गोविन्द ! मेरी भूल क्षमा करदे। मैं विश्वास दिलाता हूं कि पितामह का वध करूगा। मैं वही करूगा जो आप चाहेगे। लौट चलिए।"—अर्जुन ने आग्रह करते हुए कहा।

श्री कृष्ण तो चाहते ही यह थे कि अर्जुन को आवेश आये। वे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ना नही चाहते थे अर्जुन को प्रोत्साहित करके वे शान्त होगए।

जब अर्जुन ने वार वार कहा तो श्री कृष्ण लौट गए और रथ पर अपना स्थान ग्रहण करते हुए बोले—"भीष्म इस समय तुम्हारे पितामह नही वरन शत्रु हैं। वे तुम्हारा नाश कर रहे हैं। चलाओ वाण।"

पितामह ने आवेश मे आकर दोनो पर ही वाण वर्षा आरम्भ कर दी। और साथ ही दूसरे पाण्डव पक्षीय महारथियों और वीरों पर भी वाण चलाते रहे। सैकड़ो वीर पृथ्वी पर लुढ़क गए। अर्जुन ने अपनी गी वहुत की। सम्पूर्ण शक्ति लगा कर वह वाण चलाता रहा। परन्तु भीष्म जो मध्यान्ह के समय चमकते सूर्य की भांति हो रहे थे उनकी ओर पाण्डव सेना देख भी नही पाती थी सैकड़ो वीर मारे गए। चीटी की भांति पाण्डव सैनिकों को भीष्म जी

मसलते रहे। पाण्डव-सेना में हाहाकार मचता रहा श्री कृष्ण रह रह कर अर्जुन को जोश दिलाते रहे। अर्जुन तीक्ष्ण बाण चलाता रहा। पर जैसे भयकर बाढ के आगे छोटे छोटे बाध ठहर नही पाते इसी प्रकार प्रलय मचाते भीष्म जी के प्राणहारी बाणो की बाढ के आगे अर्जुन के तीक्ष्ण बाण कुछ न कर पाते । पाण्डव-सेना में हाहाकार मच गया और सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे। अर्जुन के साथ भीमसेन भी आ गया और उसने भी अपने रण-कौशल के सहारे भीष्म जी के तूफान को रोकने की चेष्टा की। पर सब व्यर्थ। ऐसा लगता था मानो आज भीष्म जी पाण्डवों का विध्वस करके रहेगे। कौरवो की सेना में सिहनाद और शखनाद होने लगे और युधिष्ठिर के मुंह पर हवाईया उडने लगी। श्री कृष्ण बार बार अर्जुन को ललकारते रहे। सात्यकि, धृष्टद्युम्न, विराट और द्रुपद, नकुल व सहदेव के साथ अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भीष्म जी के साथी महारथियो पर वार करते रहे पर पाण्डव सेना का साहस टूट रहा। धडो म सर कट कट कर गिर रहे थे। कही हाथियो की चिघाडें सुनाई देती तो कही सैनिकों के चीत्कार। रणस्थल मे घोडो, हाथियो और मनुष्यो के शवो का ढेर लग गया। योद्धाओ के रथ शवो पर होकर निकल रहे थे।

तभी पश्चिम दिशा मे भास्कर डूब गया और अधकार ने अपना डेरा डालना आरम्भ कर दिया। पाण्डवो की ओर से युद्ध बन्द होने का शख बज गया और भीष्म जी को प्रलय का परिच्छेद बन्द करना पड़ा। कौरवों की सेना ने विजय घोष किए। पाण्डवो के सर लटक गए। दोनो सेनाएं अपने अपने शिविरो की ओर चल पड़ीं।

* इक्कतालीसवां परिच्छेद *

मृत्यु का रहस्य

घोर तिमिर की अवनिका वसुन्धुरा पर निश्चेष्ट पड़ी थी। कुरुक्षेत्र में निस्तब्धता व्याप्त थी, रण भूमि मे. कौरवो की हठ की वेदी पर बलि चढे रण योद्धाओ के शवो के अग प्रतिअंगो को गीदड तथा अन्य जगली पशु लिपट रहे थे। और कभी कभी मानव शरीरों के मांस से क्षुधा पूर्ति कर के तथा मानव रचित नाश की लीला पर मुग्ध होकर गीदड मिलकर अपना हर्ष नाद करते, हुआऊ, हुआऊ मे क्षेत्र की निस्तब्धता भग हो जाती। दूसरी ओर रण क्षेत्र के किनारे अंधकार को भेदती कुछ दीप ज्योतिया व मशालों अधकारपूर्ण आकाश मे टिम टिमाते सितारो की बारात का रूपक प्रतीत हो रही थीं। जिनके मन्द प्रकाश मे कुछ डेरे खड़े दिखाई दे रहे थे। परन्तु हज़ारों की संख्या मे खडे इन डेरों के निकट चल कर देखा जाता तो यह स्पष्ट हो जाता उन डेरो मे जिनमे भरत खण्ड के परम प्रतापी, यशस्वी शूरवीर विश्राम कर रहे थे, अभी तक आपस मे उन वीरो के रण कौशल की प्रशसाए कर रहे थे जिनके विरुद्ध वें सारे दिन पूरी शक्ति से लडते रहे है। अतएव वे डेरे सजीव थे। अपने अंक मे सहस्त्रों जीवन ज्योतियों को श्रम दिए हुए थे।

कुछ डेरों मे दिन मे घायल हुए रण वीरो की चिकित्सा की जा रही थी। ऐसी औपधियो के लेप किए जा रहे थे. जिनके सेवन से रात्रि भर मे वे योद्धा दूसरे दिन युद्ध करने योग्य हो जायेंगे,

जो दिन मे घावो के कारण अर्ध मृत तक के समान हो चुके थे। कोई कोई घायल ऐसा है कि जिसका समस्त शरीर बाणो से छलनी हुआ है, पर ज्यो ही गहरे घावो पर औषधियो का लेप हुआ, तत्काल ही उसकी पीडा लुप्त हो गई और निद्रा का आलिगन कर वह सुखद स्वप्नो मे खो गया, कुछ घण्टो बाद जब प्राची लाल हो उठेगी, वह घायल पुणतया स्वस्थ होकर उठ बैठेगा और फिर शत्रुओ के सम्मुख उनके लिए एक समस्या बन कर खडा हो जायेगा।

थके मान्दे योद्धाओ के शरीरो पर भी औषधि मिश्रित जल व तेलो का लेप कर दिया गया है, जिसपे उन्हे विशेष रूप से सुख प्राप्त हो रहा है और अब वे आपस मे हस बोल रहे है। इस समय उनकी बातें यह प्रगट करनी है कि दिन भर वे जिनसे जूझते रहें, वास्तव मे वे उनके श्रद्धालु भक्त अथवा प्रशमक और अपने हैं। उनके प्रति इनके हृदय मे असीम स्नेह व आदर है। यदि कोई नही जानता कि यह युद्ध के क्षेत्र मे क्यो आये है तो यह जानकर कि जिनकी वे प्रशसा कर रहे है दिन भर उन्ही क प्राणो के वे भूखे रहे, उसे असीम आश्चर्य से, बल्कि इस बात पर उसे विश्वास ही न हो।

सेना शिविर के पास ही अश्व, हाथि आदि पशुओ के लिए विश्रामालय बने है, जिनमे सेवक लोग उनकी उत्साह तथा जिम्मेदारी से सेवा कर रहे है उन्हे पौष्टिक पदार्थ खिलाए जा रहे है और अभी २ उन्हे मालिश करके थकान से युक्त किया गया है।

एक पहर रात्रि जा चुका है और कौरव तथा पाण्डव वीर अपनी अपना शय्या पर पहुच गए है कुछ जो बहुत थके थे, खर्राटे भरने लगे और कुछ सोने का प्रयास कर रहे है परन्तु एक शिविर है, पाण्डव सनिक छावनी मे जिस मे से अभी भी वातचीत की ध्वनि आ रही है। कोई कह रहा है :

"केशव ! नौ दिन हो गए, पर पूर्ण शक्ति से लडने पर भी हम कौरव सेना को पछाड नही पाये। उलटे, हमे अपने कितने ही वीरो से हाथ धोने पडे स्वय मै अपने पुत्र इरावान को भी खो चुका। जिस समय मुझे उस वीर की याद आती है, तो आखें बरबस बरस पडने को उतावली हो जाता है हृदय घटने लगता है मधु सूदन ! कभी कभी तो घोर निराशा के बादल मेरे मानस नभ पर छा जाते

है। कुछ सुझाई ही नहीं देता।"

स्पष्ट है कि बोलने वाला वीर अर्जुन है, जिसकी आवाज कुछ थकी सी है, ऐसी कि प्रतीत होता है मानो कोई थका मांदा पथिक कह रहा हो।

मधु सूदन बोले—"पार्थ! युद्ध मे जहां शौर्य, रण कौशल भुज बल और सैन्य बल की आवश्यकता होती है, वहीं आत्म विश्वास और साहस भी नितान्त परमावश्यक है। यह युद्ध जो तुम कर रहे हो ससार के सभी युद्धो मे भयानक और महान है। भरत क्षेत्र के समस्त योद्धा एक दूसरे के विरोध मे आ डटे है विश्व के प्रसिद्ध रण कौशल प्रवीण, धुरधर धनुर्धारी, रण विद्या के आचार्य, महान वीरवर और परम-प्रतापी, अनुभवी, दिग्गज योद्धा लड रहे है। असख्य वीरो के इस युद्ध मे विजय प्राप्त करना आसान नही है फिर भी विश्वास रक्खो कि विजय तुम्हारी ही होगी क्योकि न्याय कभी परास्त नही हुआ। अन्यायी शुभ प्रकृतिवान विद्यावानो के प्रताप से अभी तक टिके हुए हैं। परन्तु जैसे मेघ खडो से ज्योतिवान सूर्य भी छुप जाता है, इसी प्रकार अशुभ प्रकृति मे कौरवो के अण्यायो के कारण उन शुभ कर्म वाले योद्धाओ का भी ह्रास हो जायगा, जो शुद्ध विचारों के लिए प्रसिद्ध हैं। धैर्य से काम लो। त्याग मे ही सदा किसी महान वस्तु की प्राप्ति होती है। न्याय के लिए एक पुत्र तो क्या सहस्त्र पुत्रो की भी बलि दी जा सकती है।"

श्री कृष्ण की बात सुन कर अर्जुन के टूटते साहस को कुछ बल मिला, फिर भी उसे निराशा से पूर्णतया मुक्ति न मिली। पूछा "परन्तु केशव! मुझे ऐसा लगता है कि पितामह जैसे धुराय वान और परम प्रतापी शूरवीर के रहते हमारा विजय असम्भव है। नौ दिन से अकेले वही कौरवो की नौका को डूबने से बचाते रहते है। जब जब हमारे भयकर प्रहार से कौरव सेना का साहस टूटा, तब तब भीष्म जी ने आकर उन्हे पुनजीवित कर डाला और उनके पने बाणो से हमारे सैनिको का सहार हुआ इस लिए कोई युक्ति ऐसी बताईये जिस से हमार रास्ते मे खडा यह मेरू पर्वत हट जाये।"

प्रश्न बडा जटिल था, कुछ देर के लिए पूर्णनिस्तब्धता छा

गई। अन्त मे श्री कृष्ण बोले—"पार्थ ! ससार में कोई ऐमी समस्या नही जिसको सुलझाने का उपाय न हो। उपाय है।"

"तो फिर आप बताते क्यों नहीं ?"

केशव के अधरो पल्लवो पर मुस्कान उभर आई।

"हा, हाँ मधु सूदन ! भीष्म पितामह को रास्ते से हटाने का उपाय बताना ही होगा।"

अर्जुन के जोर देने पर श्री कृष्ण बोले-"देखता हूं भीष्म जी की उपस्थिति अब तुम्हे बुरी तरह खलने लगी है। मैं यह जानते हुए भी कि उनको रास्ते से केवल तुम्हारे ही पैने बाणो से हटाया जा सकता है और उस सहारे तक तुम्हारी दृष्टि नही जा रही, जो तुम्हे उपलब्ध है, चाहता हू कि ऐसे अवसर पर तुम अपने पितामह की महानता के दर्शन करो। तुम जाओ और पितामह मे ही यह प्रश्न उठाओ।"

अर्जुन सोच मे पड गया। उसे यह बात अच्छी न लगी। धर्मराज युधिष्ठिर जो अभी तक मौन धारण किए बेठे थे और स्वय उस प्रश्न पर विचार कर रहे थे उत्सुकता वश इस विषय मे परामर्श लेने लगे और कुछ देरि बाद वे भीष्म पितामह के शिविर की ओर चल पड।

× × × ×

अभी अभी दुर्योधन परामर्श करके भीष्म पितामह के शिविर से निकला था कि धर्मराज पहुच गए। पितामह का मुख कमल खिल उठा। अभिवादन स्वीकार कर के तुरन्त पूछ बैठे—'राजन् ! आप अपने भ्राताओ सहित सकुशल तो हैं ?"

"पितामह ! आपकी कृपा से अभी तक तो जीवित है........"

"तो क्या भविष्य के प्रति सशक हो ?"

"हाँ, पितामह ! लगता है कि आप के वे बाण जो माता कुन्ती और माद्री की सन्तानो के लिए मृत्यु का सन्देश लेकर पहुंचने वाले हैं अभी समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

धर्मराज ने स्वाभाविक मुद्रा मे कहा। उस समय न तो उनके

मुख पर चिन्ता के लक्षण थे और न हास्य के ही। परन्तु इन पंने शब्दों ने वह काम किया जो कदाचित धर्मराज के बाण भी न कर पाते। बोले:—

'राजन्! ऐसी बात मुह से निकालते समय यह सोच लेते तो अच्छा था कि मैं आपको सफलता की कामना कर चुका हू और आप जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति को परास्त करने की शक्ति स्वय देवराज इन्द्र में भी नही हैं।"

"पितामह! जब तक आप है तब तक हम विजय का स्वप्न भी नही देख सकते। फिर मैं आप की कामना को क्रियात्मक रूप मे परिणत होने की आशा करू तो क्यो कर?" धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा।

"यह बात मैं स्वीकार करता हू पर मैं अजय तो नही, न अमर ही हू।"—पितामह बोले।

"तो फिर पितामह! आप हमे यह तो बताने की कृपा करे कि आप जो हमारे रास्ते मे मेरू पर्वत के समान आ खडे हुए है, किस प्रकार रास्ते मे हटाए जा सकते है? आप को याद होगा कि आप ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व मुझे इस प्रश्न को समय आने पर पूछने की आज्ञा दी थी।"

युधिष्ठिर की बात सुनकर भी पितामह के मुख पर कोई चिन्ता या विषाद के भाव न आये। वे उसी प्रकार बोले—"हा, मैने कहा था।...... तो क्या वह समय आगया?"

"हा, पितामह! अब और नही सहा जाता।"

पितामह चुप हो गए। इस चुप्पी से युधिष्ठिर के नेत्र चंचल हो उठे। उनके मुह पर चिन्ता पुत गई। पितामह कुछ क्षण मौन रहे और फिर बोले—"बेटा! मेरी मृत्यु तुम्हारे पक्ष में विद्यमान है। द्रुपद की प्रतिज्ञा याद है ना! शिखण्डी तो है ही। मैं उस के ऊपर कभी अस्त्र शस्त्र प्रयोग नही कर सकता। बस उसी की आड लेकर धनजय मुझे जीवन मुक्त कर सकता है। इस उपाय के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नही है कि मुझे रण क्षेत्र से हटा सको। कोई शक्ति ऐसी नही कि मेरे हाथो के चलते रहने पर मुझे परास्त कर सके।"

धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरणो मे सिर रख दिया, स्वार्थ पूर्ति कर देने के कारण आभार प्रदर्शन के लिए नही, वरन इतने उच्च आदर्श के कारण ही।

इस के उपरान्त ही कुछ और बाते हुई। पितामह ने अर्जुन के रण कौशल की प्रशसा की और इरावान के मारे जाने पर दुख प्रकट किया। धर्मराज ने उनके कौशल की प्रशसा की और अन्त मे प्रणाम करके वापिस चले आये।

मुख पर चिन्ता के लक्षण थे और न हास्य के ही। परन्तु इन पैने शब्दों ने वह काम किया जो कदाचित धर्मराज के बाण भी न कर पाते। बोले:—

'राजन्! ऐसी बात मुह से निकालते समय यह सोच लेते तो अच्छा था कि मैं आपको सफलता की कामना कर चुका हू और आप जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति को परास्त करने की शक्ति स्वय देवराज इन्द्र मे भी नही हैं।"

"पितामह! जब तक आप है तब तक हम दिजय का स्वप्न भी नही देख सकते। फिर मैं आप की कामना को क्रियात्मक रूप मे परिणत होने की आशा करू तो क्यों कर?" धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा।

"यह बात मैं स्वीकार करता हू पर मैं अजय तो नही, न अमर ही हू।"—पितामह बोले।

"तो फिर पितामह! आप हमे यह तो बताने की कृपा करें कि आप जो हमारे रास्ते मे मेरू पर्वत के समान आ खडे हुए हैं, किस प्रकार रास्ते मे हटाए जा सकते हैं? आप को याद होगा कि आप ने युद्ध आरम्भ होने से पूर्व मुझे इस प्रश्न को समय आने पर पूछने की आज्ञा दी थी।"

युधिष्ठिर की बात सुनकर भी पितामह के मुख पर कोई चिन्ता या विषाद के भाव न आये। वे उसी प्रकार बोले—"हा, मैंने कहा था। ..... तो क्या वह समय आगया?"

"हा, पितामह! अब और नही सहा जाता।"

पितामह चुप हो गए। इस चुप्पी से युधिष्ठिर के नेत्र चचल हो उठे। उनके मुह पर चिन्ता पुत गई। पितामह कुछ क्षण मौन रहे और फिर बोले—"बेटा! मेरी मृत्यु तुम्हारे पक्ष मे विद्यमान है। द्रुपद की प्रतिज्ञा याद है ना! शिखण्डी तो हैं ही। मैं उस के ऊपर कभी अस्त्र शस्त्र प्रयोग नही कर सकता। बस उसी की आड़ लेकर धनजय मुझे जीवन मुक्त कर सकता है। इस उपाय के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नही है कि मुझे रण क्षेत्र से हटा सको। कोई शक्ति ऐसी नही कि मेरे हाथों के चलते रहने पर मुझे परास्त कर सके।"

धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरन्त पितामह के चरणो मे सिर रख दिया, स्वार्थ पूर्ति कर देने के कारण आभार प्रदर्शन के लिए नही, वरन इतने उच्च आदर्श के कारण ही।

इस के उपरान्त ही कुछ और बाते हुई। पितामह ने अर्जुन के रण कौशल की प्रशसा की और इरावान के मारे जाने पर दुख प्रकट किया। धर्मराज ने उनके कौशल की प्रशसा की और अन्त मे प्रणाम करके वापिस चले आये।

* बैतालीसवां परिच्छेद *

ज्यो ही पृथ्वी पर से अधकार का घूघट उठा और सूर्य मुख दृष्टिगोचर हुआ कुरुक्षेत्र के एक सिरे पर पडी छावनियो मे सोये सिह जागृत हुए। बिगुल बज उठे। वीरो ने कमरकसी। रण की पोशाकें पहन ली गईं। रथ तैयार हो गए और हाथियो पर होदे रख दिए गए। दोनो ओर की सेनाओ मे कोलाहल होने लगा। घोडे हिनहिनाए और हाथियो ने चिघाड मारनी आरम्भ कर दी। ...... और कुछ ही देरि मे दोनो ओर की सेनाए दूसरा बिगुल बजते ही छावनियों से निकल कर अस्त्र शस्त्रो से लैस होकर मैदान मे आ डटी। अश्वारोही सेना अश्वो पर, गजारोही हाथियो पर और पदाति भाले, बर्छी, खडग और गदाए लिए आ डटी। भीष्म पितामह ने कौरव सेना को खड़ा किया और एक अभूत पूर्व गर्जना के साथ आहवाहन किया—'कौरव राज के बहादुर साथियो! नौ दिन तक युद्ध मे डटे रह कर तुमने अपनी वीरता की धाक जमा दी। नो दिन तक जिस साहस और रण कौशल का तुमने परिचय दिया, उसके लिए तुम बधाई के पात्र हो परन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि प्रत्येक २४ घण्टे बाद युद्ध उत्तरोतर भयकर होता जा रहा है। इस लिए प्रत्येक क्षण तुम मे उत्साह और वीरता की वृद्धि की आवश्यकता है। किसी एक वीर के सहारे पर ही युद्ध की हार जीत निर्भर रहना ठीक नही है किसी एक के रण कौशल को युद्ध का निर्णायक समझ बैठना भी भूल है और किसी विशेष व्यक्ति के

सहारे पर बैठे रहना भी उचित नही हैं। यह युद्ध है, कभी भी कोई भी हम से छिन सकता है। हम यहाँ प्राणो का मोह त्याग कर आये हैं, इस लिए किसी व्यक्ति के प्रति मोह भी ठीक नही। मैं तुम मे से प्रत्येक मे अपूर्व शौर्य के साथ अपना पराक्रम दिखाकर अपने हाथ से विजय पताका फहराने की आकाक्षा देखना चाहता हू। मुझे अनुभव हो रहा है कि आज का युद्ध बडा विकट होगा। इस लिए आज पूरी शक्ति से शत्रु का मुकावला करने की शपथ लो।"

पितामह की इस चेतावनी के बाद ही कौरव राज की सेना का राष्ट्र गीत रण के वाजे बजाने लगे। सैनिको ने दुर्योधन और भीष्म पितामह की जय जयकार की। सभी कौरव पक्षी महारथियो ने शख नाद किए और फिर पितामह के आदेशानुसार व्यूह रचना की जाने लगी। भीष्म पितामह ने उस दिन बडी कुशलता से सेना को खडा किया और व्यूह की रक्षा के लिए चारो ओर विकट गाडिया लगा दी गईं। मुख्य द्वारो पर विकट गाडियो के पीछे महारथी खडे किए गए जिनकी रक्षा के लिये सहस्त्रो सैनिको को, जिन मे गजारोही, अश्वारोही पदाति और रथी सभी प्रकार के सैनिक थे, नियुक्त किया गया। स्वय भीष्म पितामह बीच मे थे और उनकी रक्षा के लिए चुने हुए वीर अपनी अपनी सैनिक टुकडियों के साथ थे। यह व्यूह बिल्कुल उसी प्रकार था मानो किसी कलाकार ने एक उलझी हुई पहेली की रचना की हो, जिसमे प्रवेश करके उसके केन्द्र तक पहुचना असम्भव प्रतीत होता हो।

सेना की अपूर्व व्यवस्था देख कर दुर्योधन जो सब से पीछे था, पितामह के पास पहुंचा और गदगद स्वर मे बोला—"पितामह! आज आप ने जो कौशल दर्शाया है, उस से मुझे आशा हो गई कि अब आप के पराक्रम से शत्रु सेना की पराजय निकट आ गई है। मुझे अब अपने उन शब्दो पर लज्जा आ रही है, जो मैंने आप को उदासीन समझ कर प्रयोग किए थे। आप मुझे क्षमा करदे।"

पितामह मुस्करा उठे, बोले—"आज तुम सन्तुष्ट हो, यह जान कर मुझे अपार हर्ष होरहा है। परन्तु तुम यह मत भूलो कि मैंने जब से रणभूमि मे पग रक्खा है अपनी शक्ति भर रण कौशल दर्शाया है। मैंने अपनी बुद्धि से सर्वोत्तम व्यूह रचनाएं की हैं परन्तु जब

दुर्भाग्य का तूफान आता है तो बड़े बड़े विशेषज्ञो द्वारा निर्मित शक्ति शाली बांध भी रेत के महल की भांति ठह जाते है।"

'बस पितामह ! मेरे कान यह बाते सुनना नही चाहते। आप कभी तो मेरी मन चाही बात भी कह दिया करे।"—दुर्योधन ने कहा।

पितामह ने हसते हुए कहा—"बेटा ! विजय कौन नही चाहता पराजय की आशंका से किसका हृदय नही कापता, फिर भी होता वही है जो होना होता है। पराजय किसी की विराट शक्ति से नही, बल्कि उसके विराट शक्ति शाली शुभ कर्मों से होती है।"

दुर्योधन पितामह की बात सुन कर तिलमिला उठा, उसने बात झुटलाने का साहस न कर टालने का प्रयत्न किया, बोला—"पितामह ! आप से अधिक शुभ प्रकृति व्यक्ति कौन होगा। आप युद्ध का संचालन करें, फिर आप देखे कि शत्रु सेनाए कितने पानी मे है ?"

पितामह ने एक अट्टाहास किया और तदूपरान्त अपनी सेना को सावधान करने के लिए भयकर सिंह नाद किया। घोडे विचलित होगए और हाथियो ने अपनी सूड ऊपर उठा कर अभिवादन किया।

दूसरी ओर धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना की ऐसी व्यूह रचना की जो कि पितामह के व्यूह रचना को तोड सके। युधिष्ठिर और अर्जुन विशेष रूप से उसकी रचना में सहयोग दे रहे थे और भीम सेन अपने साथियो की पीठ ठोक रहा था। जब सारी सेना की व्यवस्था होगई तो श्री कृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा —"पार्थ ! पितामह की कुशल व्यूह रचना देख रहे हो ? चारो ओर विकट गाडियां ही विकट गाडिया हैं और उन के महारथी उन के पीछे हैं, उन के बाद है सैनिक और सैनिक टुकडिया भी मिली जुली हैं, पग पग पर गजारोही, अश्वारोही पदाति और रथी सैनिको से पाला पड़ेगा. तब कही जाकर पितामह का रथ मिलेगा इस प्रकार पितामह का मुकाबला तुम इन सहस्त्रों दीवारों को तोड़ कर ही कर सकते हो। और इन दीवारो को तोड़ना सहज नही है।"

अर्जुन ने बात समझते ही अपने सहयोगी गंधर्वो और विद्या-

धरो को बुलाया और उनसे उस दिन के लिए वायुयानो की व्यवस्था करने को कहा। कुछ ही देरि मे आकाश मार्ग से युद्ध करने की योजना पूर्ण हो गई और विकट गाड़ियो को विशेष रूप से मोर्चे पर लगा दिया गया। तभी युधिष्ठिर पहुंचे और धृष्ट द्युम्न से कुछ बाते करने के उपरान्त अर्जुन शिखन्डी को बुला कर उन्होने आदेश दिया —"आज द्रुपद राज की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए तुम्हे अर्जुन के आगे रहना है। अर्जुन तुम्हारी आड लेकर भीष्म पितामह पर प्रहार करेगा और तुम स्वय अपने पराक्रम का प्रदर्शन करोगे तभी द्रुपद महाराज की प्रतिज्ञा पूर्ण हो सकती है?"

शिखन्डी ने आदेश का पालन करने का वायदा करते हुए कहा—"मेरे द्वारा पिता जी की प्रतिज्ञा की पूर्ति हो, इस से बढ कर और मेरे लिए प्रसन्नता की क्या बात हो सकती है?"

वह अर्जुन के आगे होगया, यह देख श्री कृष्ण का मुखमण्डल पूर्ण यौवन पर आये सूर्य की भांति तेजमान हो गया, उन्हे अपार हर्ष हुआ और वे बोले—"पार्थ! लो आज तुम्हारे रास्ते की मेरु पर्वत समान दीवार गिर जायेगी। शर्त यह है कि उस समय तुम्हारे हाथो मे कम्पन न आये।"

अर्जुन ने कहा—"मधु सूदन! माता कुन्ती की कोख की सौगन्ध मैं रण क्षेत्र मे अपनी किसी भी भावना को आड़े न आने दूगा और सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध करूगा।"

ज्यों ही युद्ध आरम्भ किए जाने की सूचना के लिए भीष्म पितामह ने रण भेरी बजवाई; कौरवो की विकट गाडियां आग के गोले बरसाने लगी, जिसके उत्तर मे पाण्डवो की ओर से धुआंधार गोलों की वर्षा होने लगी। सारे रण क्षेत्र मे धुआं और आग की लपटें उछलने लगी। कुछ देरि तक इसी प्रकार शतघ्वी चलती रही। भयकर आवाजों से घोडे उछलने लगे। हाथियो की चिंघाडो का शोर सारे रण में छा गया। बडा भयंकर वातावरण हो गया। तभी धृष्ट द्युम्न के संकेत पर गधर्वों व विद्याधरो ने एक सकेत किया और आकाश से गोले बरसाये जाने लगे। जिन के कारण कौरव सेना मे कोलाहल मच गया। बहुत से सैनिक आंख फाड़ फाड कर आकाश से आते अग्नि गोलो को देखते, कुछ चचल घोडे

इधर उधर भागने लगे। कुछ पदाति नौसिखये सैनिक मल मूत्र त्यागने लगे और एक घण्टे की गोलावर्षा से ही कौरव सेना के छक्के छूट गए। कौरवो को अपनी विकट गाडियो को बन्द करना पडा और कौरवो की ओर से गोलो का वर्षा बन्द होते ही पाण्डवो की गोला वर्षा बन्द होगई।

भीष्म पितामह ने अपनी सेना को आगे बढने का आदेश दिया और पाण्डवो की सेना भी अपने सेनापति का आदेश पाकर आगे बढ़ी। दोनो सेनाए एक दूसरे के निकट पहूंचते ही परस्पर भिड़ गई। दोनों ओर के महारथी एक दूसरे को परास्त करने के उद्धेश्य से अपने भीषण अस्त्र शस्त्रो का प्रयोग करने लगे। भीमसेन गदा लेकर गजारोही सेना पर टूट पडा। जिस हाथी की सूण्ड पर उसकी गदा पडती, वही चिघाड मार कर भाग पडता। जिस हाथी पर दो तीन गदाओ के प्रहार हो जाते वह पहाड़ की भाति ढह जाता कुछ ही देरि मे कौरवो को गजारोही सेना मे हा हा कार मच गया। सात्यकि अपने धनुष के जौहर दिखा रहा था और भूरिश्रवा तथा भगदत्त अपने अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर रहे थे।

परन्तु अर्जुन का रथ अपने सामने आने वाले वीरों का सहार करता आगे बढ़ रहा था, शिखण्डी तथा अर्जुन के वाणो के सामने कौरवो की सेना का जो भी दल पडता, वही या तो मुकावला करता करता धाराशायी हो जाता; अथवा पैने वाणों की तावन लाकर भाग खड़ा होता। अर्जुन के साथ शिखण्डी को देख कर ही कौरव वीरो का साहस जवाव देजाता, कितने हो सैनिक दूरि से देख कर ही दुम दवा कर भाग पड़ते और जो सामने आते, वे मानो प्राणो के साथ खिलवाड़ करते, मृत्यु दान लेने अथवा पराजय का प्रसाद नेने भर को। उस दिन परम प्रतापी धनुर्धारी वीर अर्जुन के साथ शिखन्डी के हो जाने से कौरव सेना मे तहलका मच गया और इस वातावरण से लाभ उठाते हुए श्री कष्ण रथ को तेजी से भीष्म पितामह की ओर वढाते जाते थे। वे भीष्म जो असंख्य वीर दलों से रक्षित थे और जो तारागण के वीच गौरव पूर्ण ढग पर दीप्तिमान चन्द्रमा के समान चमक रहे थे, जो नौ दिन के युद्ध में कौरवो की नौका के एक मात्र सफल तथा वीर केवट वने हुए थे, जिन पर कौरव सेना

ा गौरव आवारित था, अर्जुन की गति को रोकने के लिए तयार हे थे। ज्यों ही उन्होंने सामने को सेना में भगदड़ मचती देखी, वे बोल उठे—"मालूम होता है धनजय आ रहा है।"

दुर्योधन, जो अपनी सेना में मचे कोलाहल और भगदड़ से चिन्तित हो उठा था, दौड कर पितामह के पास पहुंचा और घबरा कर बोला- "पितामह! देख रहे हैं हमारी सेना का साहस टूट रहा है, भीमसेन की गदाओ की चोट के सामने हाथी नही ठहर पा रहे और दूसरी ओर न जाने क्यों पदाति, अश्वारोही और रथी सेना मे हाहाकार मच गया है। जाने कौन सहारक आ गया है। जैसे वायु के प्रबल प्रहारो व तूफान के सामने मदोन्मत हाथियो की भाति झूमते मेघ उड़ जाते हैं, हमारे रणेण्मत्त वीर महारथी तक किसी पाण्डव योद्धा के बाणों से उड़े जा रहे हैं। लगता हैं अर्जुन आ गया है। कुछ कीजिए पितामह! वरना मैं कही का न रहूगा।"

दुर्योधन की घबराहट भीष्म पितामह को न सुहाई। वे भय से घृणा प्रकट करते हुए वोले—"इतनी जल्दी तुम घबरा जाते हो, क्यो? भय किस बात का। रण क्षेत्र में आये हैं, हम अपने प्राणों का मोह त्याग कर, फिर चाहे कोई भी क्यों न आये लड़ना ही तो है, कापने से क्या होगा? जाओ अपना मोर्चा सम्भालो। मैं जानता हू श्री कृष्ण रथ ला रहे हैं और अर्जुन के बाण प्रलय मचा रहे हैं।"

पितामह की बात मे एक ललकार थी, डपट भी, दुर्योधन का मुह उतर गया, वह कांपता हुआ अपने स्थान पर चला गया और पितामह ने अपने बाण सम्भाले।

अर्जुन ने सामने पहुंचते ही एक बाण पितामह के चरणों मे फेंका। पितामह ने अपने चरणों में पड़े बाण को देखा और फिर एक बाण निकाल कर धनुष पर चढाया, ज्यों ही डोरी को उन्हों ने कान तक खीच कर सामने निशाना बांधा, दृष्टि सामने गई, तो वे सन्न रह गए। अंग अंग शिथिल पड़ गया, उत्साह जाता रहा।

उन्होने देखा कि सामने है शिखण्डी। वह शिखण्डी, जो उनकी मृत्यु का साधन बन कर उत्पन्न हुआ है, जिस के लिए द्रुपद ने घोर तपस्या की थी। यह वही शिखण्डी है जो पुरुष होते हुए

भी स्त्री के समान है। नपुसक का सामना है। उन के मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि क्या उन जैसे महाबली के लिए नपुसक से लडना उचित है? क्या अपुरुष पर शस्त्र चलाना क्षत्रियोचित धर्म के अनुसार उचित है? नही, वे प्रतिज्ञा कर चुके है कि किसी भी नारी शरीर धारी मानव या नपुंसक पर अस्त्र नही उठायेंगे और नपुंसक से लडना उनकी मर्यादा के विरुद्ध है।

परन्तु शिखण्डी को उनके तथा अर्जुन के बीच दीवार बन कर खड़े हुए शिखण्डी की उपस्थिति से पितामह का मुख मण्डल क्रोध के मारे तपते सूर्य की भांति जलने लगा। लगता था मानो अभी अभी उनके नेत्रो से ज्वालाएं निकल पड़ेगी और शिखण्डी ज्वाला बाणों से भस्म हो जायेगा। उनकी आंखें लाल अगारो की भाति दहक रही थी। उनका मुख मण्डल अगारे की नाईं लाल हो उठा था। उनके हाथो की मुट्ठियां बध गई। और जब अर्जुन ने तडातड़ बाण वर्षा जारी की, तो पितामह के क्रोध का ठिकाना न रहा। यह क्रोध था शिखण्डी और अपनी विवशता पर। किन्तु पितामह ने अपने को नियन्त्रित किया और गम्भीर हो गए। उनका मुख कठोर होगया।

निष्क्रिय खडे देख कर शिखण्डी ने भी पितामह पर बाणों की वर्षा की और अर्जुन तो बाण चला ही रहा था। पितामह शिखण्डी के बाणों का कोई भी प्रतिरोध नही कर रहे थे। इस से शिखण्डी का साहस और भी बड़ा और वह तीव्र गति से बाण वर्षा करने लगा। अर्जुन ने भी उस समय तनिक जो कडा करके पितामह के मर्मस्थलों पर बाण मारने आरम्भ कर दिए। उस समय पितामह पास खड़े दु:शासन को सम्बोधित करते हुए बोले—"देखो यह बान अर्जुन के है, जैसे केकड़ी के बच्चे ही उसके शरीर को विदीर्ण कर डालते हैं, इसी प्रकार अर्जुन ही मेरे शरीर को बींध रहा है।"

उस समय जब कि एक ओर से धडाधड बाण चल रहे थे और दूसरी ओर पितामह निश्चल, व शांत खडे थे, बल्कि अर्जुन के बाणों की चोट से भी उनका मुख तनिक भी मलिन नही हुआ, यह दृश्य देख कर उस अवसर पर उपस्थित सभी योद्धा आश्चर्य चकित रह गए। कौरवो ने शोर मचाया—"पितामह! बाण

चलाईये।'

परन्तु वे तो समझ गए थे कि अब जीवन सध्या का समय आगया और कुछ ही देरि वाद उसकी इहलीला समाप्त होने वाली है। वे शात रहे और सहर्ष वाण सहते रहे। अर्जुन का एक एक बाण उनके किसी मर्मस्थल को वीधता। परन्तु पितामह के मुख से न आह निकलती और न क्रोध या पश्चाताप की ही बात। वे खड़े मुस्करा रहे थे, बल्कि कभी कभी यही कह उठते कि—"अर्जुन! पर मुझे गर्व है कि उसके बाण ही मुझे चिरनिद्रा सुलाने मे सफल होगे।"

दुःशासन ने चीख कर कहा—"पितामह! कीजिए युद्ध। वरना हम कही के न रहेगे। देखिये अर्जुन किस प्रकार आक्रमण कर रहा है। पितामह! अपनो रक्षा कीजिए।"

"दु शासन! अब तो जीवन सध्या हो चुकी। अब मेरी चिन्ता छोडो। अपनी चिन्ता करो।"—पितामह बोले।

उसी समय सारे कौरवो मे खलबली मच गई। और सब मिल कर पितामह से आत्म रक्षा की प्रार्थना करने लगे। क्यो कि वे स्वय उस भीषण बाण वर्षा को रोक सकने मे असमर्थ थे।

शान्तनुनन्दन फिर भी निश्चेष्ट खडे थे बल्कि उस समय वे जिन प्रभु की आराधना कर रहे थे। उन के मुख पर लेश मात्र भी चिन्ता न थी। कमल की नाई दमकता उनका मुख मण्डल शात था। बाणो से उनका कवच छिद गया और शरोर से लाल लौहू की धाराए स्थान से बह निकली। अर्जुन के बाण उनके शरीर को वेध कर दूसरो ओर निकल जाते। तभी एक कौरव चिल्लाया—अरे! पितामह तो अर्जुन के मोह मे स्वय अपना नाश करेंगे और हमे भी पराजित करादेगे।"

इस चीख पुकार को सुन कर पितामह से न रहा गया वे अर्जुन की गति को रोकने की इच्छा से हाथ मे खडग व ढाल लेकर रथ से उतरने को हुए कि उसी समय श्री कृष्ण ने उस ओर इगित किया और अर्जुन ने मन को दृढ कर के ऐसे तीखे बाणो की मार की कि देखते ही देखते पितामह की ढाल टूटकर गिर गई और वे खडगके लिए रह गए। अब क्या था, अर्जुन ने पितामह को गिराने के लिए और भी वेग से वाण चलाए और थोड़ी सी ही देरि मे पितामह का

सारा शरीर छिद गया। उस सयय शांत खडे पितामह को देखकर आकाश मे युद्ध देख रहे देववाओ को वडा आश्चर्य हुआ और वे भी पितामह की महानता की श्रद्धापूर्वक प्रशसा करने लगे।

कुछ ही देरि मे पितामह का सारा शरीर बिंघ गया और वे अपने रथ से लुढक पडे। जैसे पर्वत के गिरने से उस के आश्रित सभी वृक्ष आदि दब जाते हैं, इसी प्रकार पितामह का गिरना हुआ कि कौरवो का मान भी ढह गया और वे सभी हा हा कार करने लगे। क्षण भर मे कोह राम मच गया। पितामह का गिरना था कि मन्द मन्द समीर छोटी छोटी वून्दें बरसाने लगी, जैसे आकाश रो उठा हो। चारों ओर शोक छा गया। कौरव रो पड़े और पाण्डव महारथियों ने विजय के शख नाद किए। पितामह गिरे तो पर उन का शरीर पृथ्वी से न लगा, बल्कि अर्जुन के उन बाणों के सहारे ऊपर ही रुका रहा, जो पितामह का शरीर भेद कर दूसरी ओर निकल गए थे उस विलक्षण शरश्घ्या पर पडे भीष्म जी के शरीर से एक अनूठी आभा फूट रही थी। अभी तक उनके मुख पर शांति विराजमान थी अभी तक उनके ब्रह्मचर्य का तेज अनूठी शोभा दर्शा रहा था। अभी तक उस महावली का सुर्य समान मुख मण्डल पर वल का तेज था।

❀ ❀ ❀ ❀

पितामह के गिरते ही युद्ध बन्द होगया और दोनों ओर के राजागण शूरवीर पितामह के अन्तिम दर्शन करने हेतु दौड पडे। पाण्डव और कौरव पक्षी राजागण और पितामह के परिवार के तारागण चारो ओर से उन्हे घेर कर खडे हो गए। सभी के हाथ जुड गए थे। सभी अभिवादन कर रहे थे। सभी गम्भीर थे और आपस मे मिले हुए इसी प्रकार खडे थे जैसे आकाश में दीप्तिमान चन्द्रमा के चारों ओर उन के परम शिष्य तथा प्रिय पुत्र तारागण। उस समय वे सभी पितामह के चारो ओर खडे अपनी अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित कर रहे थे। तभी सभी को लक्ष्य करके पितामह बोले—"मेरा सिर नीचे लटक रहा है। उसे ऊपर उठाने के लिए कोई सहारा तो लाओ। कोई वीर मेरे सिर के नीचे वीरोचित तकिया लगा दे।"

पितामह की बात सुनते ही पाण्डव तथा कौरव पक्षीय कई राजा गण अपने अपने डेरो की ओर दौडे। नरम गदगदे तकिए लेने के लिए और कुछ ही क्षण बाद वहा अनेक रेशमी, नरम तथा सुन्दर तकिए आगए। चारो ओर से राजागण पितामह के सिरहाने अपना अपना तकिया लगाने के लिए आय। पर पितामह ने उन सभी के तकियो को देखकर इकार कर दिया किसी का भी तकिया स्वीकार न किया। प्रत्येक निराश होकर रह गया।

तब पितामह ने अर्जुन से कहा—"बेटा! मेरा सिर नीचे लटक रहा है, इससे मुझे बडा कष्ट हो रहा है। तुम ने शय्या तो दी, पर तकिया नही। कोई उचित सहारा तो सिर के नीचे लगा दो"

पितामह ने यह बात उसी अर्जुन से कही, जिसने अभी अभी प्राणहारी बाणो से पितामह का शरीर बींध डाला था। जो पितामह के वध के लिए कुछ ही देरि पहले बडी चतुराई से बाण वर्षा कर रहा था। एक आज्ञाकारी शिष्य तथा पौत्र की भाति अर्जुन ने आज्ञा शिरोधार्य की और अपने तरकश से तीन तेज़ बाण निकाले। और पितामह के सिर को उनकी नोक पर रख कर उन्हे भूमि पर गडा दिया। इस प्रकार महाबली भीष्म पितामह के लिए उपयुक्त तकिया बना दिया गया।

पितामह प्रसन्न होकर बोले—"बेटा अर्जुन! तुम्हारी तीक्ष्ण बुद्धि और वीराचित धर्म तथा कर्तव्य का तुम्हारा ज्ञान तुम्हे अपूर्व यश अरजन करने का कारण बनेगा। अन्तिम समय भी तुम मुझे अपनी वीरता की प्रशसा के लिए बाध्य कर रहे हो। मुझे तुम पर गर्व है।"

राजागण ने विनयपूर्वक निवेदन किया—"पितामह! इस समय आपकी दशा देखकर हम सभी व्यथित हैं और यह सहन कर रहे हैं कि जब आप जैसे धर्म योद्धा के सामने भी मृत्यु हाथ पसारे खडी है तो हम जैसो की क्या बिसात है। एक दिन यह अवसर हमारे सामने भी आना है। ऐसे समय कुछ उपदेश कीजिए।"

"प्रिय बन्धुओ! मेरे प्रति तुम्हारी इतनी श्रद्धा होने का कारण जो है उसे मैं समझता हू। पर मैं वृद्ध होने के कारण इतना महान नही कि धर्मोपदेश कर सकू। और रणक्षेत्र मे किसी के मृत्यु शय्या पर पड़े हुए यह सम्भव भी नही, फिर भी आप लोग

कुछ सुनना ही चाहते हैं तो मैं बस यही कहना चाहता हू कि परस्पर वैर नाश का कारण बनता है। युद्ध से कभी कोई समस्या हल नही होती शुभ प्रकृति वाले व्यक्ति मनुष्य रूप मे भी देवता समान ही है उन्हे परास्त करना असम्भव है। और जिन प्रभु का बताया मार्ग ही सच्चिदानन्द की प्राप्ति का एकमात्र साधन है। अब मेरा गला सूखता जा रहा है। बेटा दुर्योधन मुझे पानी चाहिए।"—इतना कह कर पितामह मौन हो गए।

"पितामह! अभी ही लाया"—कह कर दुर्योधन वहा से पानी लेने चला। तभी पितामह की बाणी गूजी।—"ठहरो! रण-क्षेत्र मे बाणो की शय्या पर पडे व्यक्ति के लिए उस जल की आवश्यकता नही। मेरी बात तुम नही समझोगे।"

दुर्योधन चक्कर मे पड़ गया, वह पितामह का आशय न समझ पाया। हतप्रेम होकर बोला -"पितामह! फिर कैसा जल चाहिए आपको?"

दुर्योधन के प्रश्न का उत्तर न देकर, पितामह अर्जुन को लक्ष्य करके बोले—"हा बेटा! तुम ही मुझे जल भी पिला सकते हो। मेरा सारा शरीर तुम्हारे बाणो की चोटो से जल रहा है। इस उष्णता को तुम्ही शान्त कर सकते हो"

अर्जुन ने तुरन्त गाण्डीव पर एक तीक्ष्ण बाण चढाया और पितामह की दाहिनी बगल मे पृथ्वी पर सम्पूर्ण शक्ति लगा कर खीच मारा। और बाण लगते ही बिजली टूटने की सी आवाज़ आई। पृथ्वी दहल गई और एक जल स्रोत बडे वेग से फूट निकला। मानो शान्तनुनन्दन भीष्म की मा गंगा के स्तन से दुग्ध धारा निकली हो। अमृत समान मधुर तथा शीतल जल पीकर पितामह बडे प्रसन्न हुए बारम्बार अर्जुन को आशीर्वाद दिया, पर वह आशीर्वाद न युद्ध मे उस की विजय की कामना का था और न कीर्ति की वृद्धि का, बल्कि था धर्म निष्ठ होने का।

दुर्योधन को इस से बडी प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगा पितामह बहुत ही शुभ प्रकृति के महापुरुष हैं, कही युद्ध में अर्जुन को विजय का आशीर्वाद दे देते तो कौरवो का ढेर हो जाता।

उस समय सूर्य का रथ अपनी मजिल की अन्तिम अध्याय को आरम्भ कर रहा था, जैसे भास्कर अन्तिम सांसे ले रहे पृथ्वी के

स्कर के गम मे डूबने जा रहा हो।

दुर्योधन हाथ जोड कर घुटनो के बल बैठ गया और अश्रुपात करते हुए बोला—"पितामह! अब आप के पश्चात हमारा क्या होगा, आप तो हमे बीच मझधार मे ही छोड़ जा रहे हैं"

पितामह की आवाज थक गई थी, बोले "बेटा दुर्योधन! तुम्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो यही मेरी कामना है. देखा तुमने? अर्जुन ने मेरे सिर को तकिया कैसे लगाया, उस ने मेरी प्यास कैसे बुझाई? यह बात क्या और किसी से सम्भव है? यह सब उसके पुण्य, प्रताप तथा शुभ कर्मो का फल है और है उसकी न्याय प्रियता, तीक्ष्ण बुद्धि तथा पराक्रम के कारण। अब भी समय है। विलम्ब न करो। इनसे सन्धि करलो।"

दुर्योधन को यह बात भला कैसे पसन्द आ सकती थी, बोला तो कुछ नही पर मन ही मन कुढता रहा।

तब अर्जुन ने हाथ जोड कर विनय पूर्वक पूछा—"पितामह! आप ने जो आज्ञा दी, मैंने पूर्ण की। अब आपकी अन्तिम कामना जो हो वह भी बतादे, ताकि उसे पूर्ण करके मे अपने को धन्य समझू आप चाहे जिस ओर भी रहे, पर हमने सदा ही आप का आदर किया है और आज आप को खोकर हमारे कुल को जो क्षति पहुच रही है, उसका उत्तर दायित्व मेरे ही ऊपर है। यह धृष्टता मुझ से हुई है। मैं इसका अपराधी हू। कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।"

पितामह अपने जीवन की अन्तिम घडिया गिन रहे थे, तो भी अर्जुन की बात सुन कर उनके अधरो पर मुस्कान खेल गई, बोले —"बेटा! तुम ने जो कुछ किया, वह गृहस्थ धर्म के आधीन आता है, तुम ने अपना कर्तव्य निभाया। तुम युद्ध मे इस लिए तो नही आये कि अपने कुल या वश की रक्षा करे। वल्कि इस लिए आये हो कि अन्याय के पक्ष पातियों को, जिस प्रकार भी सम्भव हो, परास्त करें और न्याय की रक्षा के लिए शत्रु के प्राण हरण करने मे भी न हिचको। मैं जानता हूं कि तुम मेरा वध इस लिए नही करना चाहते थे कि मै वुरा आदमी हूं। वल्कि मैं तुम्हारे शत्रुओ का सेनापति था तुमने जो किया वह तुम्हारे लिए उचित ही था। रही बात अन्तिम कामना की तो यह प्रश्न दुर्योधन पूछे तो अच्छा हो।"

दुर्योधन को बात खटकी, फिर भी उस समय उपस्थित लोगों की लज्जा वश वह बोला -"हां पितामह बताईये ना। मैं तो आप का सेवक हू।"

"मेरी कामना यही है कि यह युद्ध मेरे साथ ही समाप्त हो जाये। बेटा ! मेरी आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिए तुम पाण्डवो से अवश्य ही सन्धि करलो।"—पितामह ने कहा।

वह वात दुर्योधन के तीर सी लगी, मन ही मन वह विल-विला उठा। परन्तु मुख से उसके कुछ भी न निकला, धीरे धीरे सभी राजा पितामह को अन्तिम प्रणाम कर के अपने अपने शिविर में चले आये।

× × × ×

दानवीर कर्ण को जब ज्ञात हुआ कि पितामह भीष्म रणभूमि मे पड़े अन्तिम स्वांसे ले रहे है, यह तुरन्त दर्शनार्थ दौड पड़ा।

पितामह बाणो की शय्या पर लेटे थे, कर्ण पहुचा और घुटनो के वल पैरो की ओर बैठ कर उसने हाथ जोड़ दिये—"पूज्यकुल-नायक ! सर्वथा निर्दोष होने पर भी सदा आप की घृणा का जो पात्र बना रहा, वही सूत पुत्र कर्ण आप को सादर प्रणाम करता है। स्वीकार करे।"

पितामह ने आखे खोली. उन्होने देखा कि विनय पूर्वक प्रणाम करके कर्ण कुछ भयभीत सा हो गया है। यह देख उन का दिल भर आया, निकट बुलाया और बोले -"बेटा ! तुम राधा पुत्र नही वल्कि कुन्ती पुत्र हो मैंने तुमसे कभी द्वेष नही किया और न कभी घृणा ही की। वल्कि पाण्डवो के ज्येष्ठ भ्राता होते हुए भी तुम ने केवल दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए सदा अन्याय का पक्ष लिया, इसी से मेरा मन मलिन हो गया। वैसे तुम जैसा दानवीर आज पृथ्वी पर कोई नही, तुम्हारी दानवीरता के सामने मैं नतमस्तक तक होता हू तुम्हारी वीरता, शूरता भी प्रशसनीय है, श्री कृष्ण तथा अर्जुन के अतिरिक्त कौन है जो तुम्हारा मुकाबला कर सके। परन्तु ठण्डे दिल से सोचो कि इस भयंकर युद्ध की बुनियाद मे तुम्हारा क्रोध और दुर्योधन के प्रति अति मोह व पाण्डवो के प्रति तुम्हारा वैर भाव कितना है। आज मैं बाणो की शय्या पर पडा दम तोड रहा हूं, मेरी वीरोचित मृत्यु हो रही है, तुम्हारी ही कृपा से।

क्योकि दुर्योधन के घमण्ड का एक मात्र कारण तुम्ही थे । ......
अस्तु—जो कुछ हुआ सो हुआ, अब मैं चाहता हूं कि मेरे जीवन का अन्त होने के साथ साथ पाण्डवो के प्रति तुम्हारा वैर भाव समाप्त हो जाये। तुम अपने भाईयो की ओर रहो, तो कदाचित दुर्योधन सन्धि के लिए विवश हो जाये और यह भयकर युद्ध समाप्त हो जाये।"

कर्ण ने पितामह की बात सुनी तो वह वडे असमजस मे पड़ गया, फिर भी बोला– "पितामह ! मैं माता कुन्ती का पुत्र हू, यह मुझे ज्ञात हो गया है। परन्तु मैं दुर्योधन की ओर रहने को बाध्य हूं क्योंकि जब दुर्योधन ने मुझे सम्पत्ति दी थी तो मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि उसके लिए मैं अपने प्राण तक दे दूगा। अतएव. मुझे कृपया कौरव पक्ष की ओर से लडने की आज्ञा दीजिए।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।" पितामह बोले।

कर्ण की बातो को सुन कर पितामह सदा ही उसे ललकारा करते थे, इसी लिए कर्ण समझता था कि पितामह उससे घृणा करते है। एक बार आवेश मे आकर युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कर्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि वह तब तक युद्ध मे नही उतरेगा जब तक भीष्म का बध नही होजाता। अब चूकि पितामह ससार से जा रहे थे, इस लिए उस ने पूछा—"पितामह आप ही कौरवो का सहारा थे। आप के वलबूते पर ही दुर्योधन ने युद्ध ठाना था, अब आप जा रहे हैं। अब तो कौरवो को बडी विपत्तिया पडेंगी कृपया बताईये कि युद्ध का सचालन कैसे हो?"

"कर्ण ! तुम पर दुर्योजन को गर्व है और उसे मुझ पर सदा ही क्रोध आता रहा कि क्यो नही मैं, जो कर्ण के रास्ते मे दीवार वनकर खडा हो गया हू, समाप्त हो जाता। तुम योग्य हो, धुरन्धर धनुर्धारी हो, तुम्हारे पास विद्याए है, अस्त्र-शस्त्र है, वल है और वुद्धि हे। इसी के साथ दानवीरता के कारण तुम्हारे पास अपने पुण्य का भण्डार है। साहस पूर्वक रण मे उतरो। अब कौरवो की नौका की पतवार तुम्ही हो। कौरव सेना को अपनी सम्पति समझ कर उसकी रक्षा करो।"

भीष्म पितामह की आशीष पाकर कर्ण वहुत प्रसन्न हुआ, पितामह के चरण छुए, वारम्वार प्रणाम किया और रथ पर चढकर

रणक्षेत्र मे जा पहुचा। शोक विह्वल दुर्योधन ने जब कर्ण को रण-क्षेत्र मे आते देखा, उसका मन मयूर नृत्य कर उठा। उसकी आशाए पुनर्जीवित हो गई। उसका चेहरा खिल उठा। उसने एक शखनाद किया, वह पितामह की मृत्यु को भूल गया और दौडकर कर्ण को छाती से लगाकर बोला—"कर्ण! तुम आगए तो मानो विजय मेरे शिविर में आगई। तुम हो तो मेरी सारी चिन्ताए दूर हो गई।"

"मैंने कहा था ना—कर्ण बोला—कि जब पितामह नही रहेगे मै अपने प्राणो को भी तुम्हारे लिए बलि देने आ जाऊगा। मैं आ गया और अब देखो मेरा रण कौशल।"

दुर्योधन ने बार बार शख ध्वनि की। सभी कौरव चौक पडे। जब उन सभी ने तेजस्वी कर्ण को देखा, उछल पडे और कर्ण की जय जयकार करने लगे।

× × × ×

ज्यों ही सूर्य डूबा, भीष्म रूपी भास्कर भी अस्त हो गया। अब हाड मास का एक ढाँचा था जो बाणो पर रक्खा था। तेज तथा आभा मुखमण्डल से विलीन हो गई और वह शरीर जिसको देखकर अच्छे अच्छे वीर कांप जाया करते थे, अब मिट्टी के समान सो गया। चारो ओर अधकार छा गया, और उधर जब धृतराष्ट्र ने भीष्म पितामह के बध का समाचार सुना तो उनके मन मे जल रहा आशा दीप बुझ गया, अधकार छा गया, महलों मे अधेरा हो गया।

इधर दुर्योधन के शिविर मे समस्त कौरव भ्राता उपस्थित थे। सभी गम्भीर और चिन्तित दिखाई देते थे। कर्ण को भी वही बुला लिया गया। इतनी अधिक सख्या मे लोग उपस्थित होने के उपरान्त भी कोई शब्द सुनाई नही दे रहा था, जिसका यह अर्थ सहज ही मे लगाया जा सकता है, कि अन्दर बैठे सभी लोग विचार मग्न हैं, किसी गम्भीर समस्या पर सोच रहे हैं।

तभी शिविर की निस्तब्धता को भग करते हुए दुर्योधन बोल उठा—"तो हाँ कर्ण! कुछ सोचा, किसे सेनापति नियुक्त किया जाय?

कर्ण ने कोई उत्तर न दिया।

दुर्योधन पुन. बोला—"तुम्हारे शौर्य पर मुझे बहुत विश्वास है और मुझे आशा है कि तुम सेनापति पद के लिए उपयुक्त हो पर इस विषय मे मैं तुम्हारी राय को महत्त्व दूगा क्योकि तुम मेरे ऐसे अन्तरग मित्र हो जिसकी बात पर मैं आख मीचकर विश्वास कर सकता हूं तुम जो राय दोगे वह अवश्य ही मेरे हित मे होगी।"

तब कर्ण ने उत्तर दिया, बडी शात मुद्रा मे, गम्भीरता पूर्वक –"राजन् ! आप के लिए मैं अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकता हूं। और मुझे स्वय अपनी शक्ति का विश्वास है। तो भी मेरी राय मे भीष्म पितामह के बाद हमारे पास द्रोणाचार्य और कृपाचार्य जैसे शस्त्र विद्या के गुरु विद्यमान है। हमारी सेना के वीरो की अधिकतर सख्या उनकी ही शिष्य है। वे शस्त्र विद्या मे तो प्रवीण हैं ही, व्युह रचना और युद्ध सचालन मे भी पारगत हैं। अतः इन दो महानुभावो मे से किसी एक को यह कार्य सौपा जाये तो अत्युत्तम होगा। मैं द्रोणाचार्य को अधिक उपयुक्त समझता हू।"

सभी कौरव एक स्वर से कह उठे—"ठीक है, पितामह के बाद द्रोणाचार्य ही सेनापति बनने चाहिए।"

दुर्योधन बोला—"द्रोणाचार्य पर मेरी भी दृष्टि गई थी, अब सबकी राय मिल गई तो बात निश्चित ही समझिए।

एक प्रकार से कर्ण का प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हुआ। तब दुर्योधन की आज्ञा से दो कौरव गए और द्रोणाचार्य को वहा ले आए।

दुर्योधन ने विनीत भाव से कहा—आचार्य जी ! जाति, कुल, शास्त्र ज्ञान, वय, बुद्धि, वीरता, कुशलता आदि सभी बातो मे आप श्रेष्ठ है। पितामह के बाद एक आप ही हैं जिनके सहारे पर हम गर्व कर सकते हैं। अब हमारा भाग्य आप ही के हाथो मे है। यदि आप हमारी सेना का सचालन कार्य सम्भाल ले और सेनापतित्व स्वीकार कर लें तो मुझे आशा है कि हम शत्रुओ को परास्त करने मे सफल होगे। हम सबका निर्णय यही है।"

द्रोणाचार्य गम्भीर हो गए, उनके मनोभाव जो उनके मुख मण्डल पर उभर आये थे, साफ बता रहे थे कि वे विनती तो स्वीकार कर लेगे, परन्तु दुर्योधन की आशा पूर्ण होगी इसमे उन्हे

सन्देह था। मौन की स्वीकृति का लक्षण जानकर सभी कौरव विपुलनाद कर उठे।

उठने से पहले द्रोणाचार्य बोले—"आप जो कार्य मुझे सौंपेंगे, वह मुझे करना ही होगा, पितामह की इच्छा पूर्ण हो जाती तो अच्छा था।"

"क्षत्रिय आगे बढा पग पीछे नही हटाया करते—दुर्योधन बोला—युद्ध के लिए आये हैं तो तलवार की धार पर ही हमारा फैसला होगा।"

कर्ण उस अवसर पर चुप न रह सका, बोला—"आचार्य जी! अब सन्धि की बाते उठाने से कोई लाभ नहीं हम दुर्योधन की इच्छा से रण क्षेत्र मे आये हैं और उसी की इच्छा से कार्य करना हमारा कर्तव्य है।"

※ तैतालीसवां परिच्छेद ※

द्रोणाचार्य के चले जाने के उपरान्त अन्य कौरव भी उठ कर अपने अपने शिविर की ओर चल दिए, पर दुर्योधन, कर्ण और दु शासन वही बैठे रहे। वे तीनो आपस मे मन्त्रणा करने लगे। यह मन्त्रणा थी युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिए किसी षडयन्त्र की रूप रेखा के सम्बन्ध मे।

तीनो घुल मिल कर आपस मे बात चीत करते रहे और अन्त मे दुर्योधन गद गद होकर बोला—"तो बस यही ठीक है। क्यो न इसी समय चल कर द्रोणाचार्य से वचन ले लिया जाये।"

"हा, हा, आचार्य चाहे तो यह उनके लिए बाये हाथ का खेल है।"—कर्ण ने प्रोत्साहित करते हुए कहा।

तीनो उठे और द्रोणाचार्य के शिविर की ओर चल पडे।

× × × ×

आचार्य सोने की तैयारी कर रहे थे कि तीनो महारथियो को सामने देख कर उन्हे आश्चर्य हुआ। विस्मित होकर पूछा -"क्या कोई विशेष बात है ?"

'हां आचार्य जी, एक विनती लेकर आये हैं।"—दुर्योधन ने बैठते हुए कहा।

द्रोणाचार्य समझ गए कि कोई विशेष बात है, तीनो को बैठा कर स्वय भी सावधान होकर बैठ गए और धीरे से पूछा—"क्या बात है ?"

"किसी भी उपाय से आप युधिष्ठिर को जीवित ही कैद कर के हमे सौंप दें तो बहुत ही अच्छा हो। इस भयकर युद्ध की अन्तेष्टि हो जाये इस से अधिक हम आप से कुछ अधिक नही चाहते।"—दुर्योधन ने कहा।

कर्ण स्वर मे स्वर मिला कर तुरन्त बोल पडा—"इस कार्य को आप यदि सफलता पूर्वक पूरा कर दे तो फिर काम बन जाये गा। और महाराज दुर्योधन, मैं और हम सभी उनके साथी सन्तुष्ट हो जाये गे। और मैं यह जानता हू कि यह काम आप के लिए कठिन नही है।

कर्ण की बात समाप्त होते ही दु.शासन ने कहना आरम्भ कर दिया - 'आप की बात पर हम सभी विचार कर ही रहे थे कि तभी हमे शीघ्र ही युद्ध समाप्त कर देने के लिए यह उपाय सूझा है। बस आप इकार न करें। इस काम का तो कर ही डालें। यही हमारी विजय है, जिसका श्रेय आप को ही प्राप्त होगा। बल्कि जो काम पितामह न कर पाये, वह आप के हाथो पूर्ण हो जायेगा।"

आचार्य ने तीनो की बाते सुन कर एक दृष्टि उन के मुख पर डाली और इस विनती का रहस्य उन्होने अपने अपने विचारो के अनुरूप समझा वे युद्ध मे तो अवश्य ही शरीक हो गए थे, पर पाण्डु पुत्रो का मारने के पक्ष में नही थे; बल्कि मन ही मन यह सघर्ष चल रहा था कि धर्मराज युधिष्ठिर को मारना अधर्म तो नहीं है। वे अर्जुन को अपने बेटे से भी अधिक प्यार करते थे, जब उसे अपने विरुद्ध रण मे लडते देखने तो उन का मन चीत्कार कर उठता। वे नही चाहते थे कि इतने भले व यशस्वी पाण्डवो का वध उनके हाथों हो। अत: दुर्योधन के प्रस्ताव से वे बड़े प्रसन्न हुए।

बोले—' दुर्योधन! क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि युधिष्ठिर के प्राणो की रक्षा हो जाये? तुम्हारा कल्याण हो। वास्तव में युधिष्ठिर धर्मराज है, उसका वध होना ठीक है भी नही। और जब तुम ही ने यह समझ लिया कि धर्मराज युधिष्ठिर के प्राण न लिये जाये तो फिर युधिष्ठिर वास्तव मे अजात शत्रु है। लोगों ने 'शत्रु रहित' की जो उसे उपाधि दी है वह आज सार्थक हुई प्रसन्नता की बात है कि तुम्हीं ने उसको सार्थक किया। जब तुम ही उसे

वध न करके जीवित पकड लेने के पक्ष मे हो गए तो युधिष्ठिर धन्य है, जिसका कोई शत्रू नही। आज मुझे तुम्हारा प्रस्ताव सुन कर बडी ही प्रसन्नता हुई"

द्रोणाचार्य की बाते सुन कर दुर्योधन और उसके साथियो के मुह पर जो भाव आये थे, यदि उस समय आचार्य की दृष्टि उस ओर होती तो वे चौक जाते पर वे तो कुछ सोचने लगे थे। नीची दृष्टि किए सोचते रहे और अन्त मे गरदन उठा कर बोले—"बेटा! मैंने जान लिया कि युधिष्ठिर को जीवित पकडवाने से तुम्हारा क्या उद्देश्य है। तुम्हारा यही उद्देश्य तो है कि युधिष्ठिर को बन्दी बना कर पाण्डवो पर अपनी विजय की धाक जमा दे और फिर युधिष्ठिर से सन्धि करके, उन्हे छोड दे। युद्ध समाप्त हो जाये और बात भी रह जाये। इसके अतिरिक्त और क्या उद्देश्य हो सकता है युधिष्ठिर को पकडने का।"

यह कहते कहते द्रोणाचार्य की आखो से प्रसन्नता व प्रफुलता उबलने लगी, वे गद गद हो उठे और सोचने लगे—"बुद्धिमान धर्म पुत्र का जन्म सफल है, कुन्ती नन्दन बडे भाग्य शाली है, जिण्हो ने अपने शील स्वभाव से शत्रु तक को प्रभावित कर दिया है।"

वे बार बार यही सोचते और धार्मिक जीवन की विजय पर असीम सन्तोष तथा प्रसन्नता अनुभब करने लगे। फिर यह सोच कर कि अपने भ्राताओ के प्रति दुर्योधन के मन मे कुछ प्रेम तो है ही, भ्रातृ स्नेह ने जोर तो मारा ही, उन्हे बडी ही प्रसन्नता हुई। उन का मन खिल उठा।

"तुम धन्य हो दुर्योधन! तुमने अपने भाईयो के लिए जो कुछ सोचा वह तुम्हारी महानता का प्रतीक है"—द्रोण बोले।

दुर्योधन बडी कठिनाई से अपने को नियन्त्रित कर पा रहा था, फिर भी अवसर को देख कर उसने अपने को काबू मे रक्खा, परन्तु अन्तिम बात तो उसके कलेजे मे छुरी की भाति चुभ गई। वह अपनी आवाज को सयत करते हुए, परन्तु आवेश मे आकर बोला—"आचार्य जी! आप को तो न जाने क्या हो जाता है, कभी कभी पाण्डवो की आवश्यकता से अधिक प्रशसा करके उन्हे पृथ्वी से उठा कर आकाश पर रख देते हैं। मैं युद्ध जीतने के लिए उपाय कर रहा हू और आप समझ रहे हैं कि मैं युधिष्ठिर के उच्चादर्श के

सामने नतमस्तक हो रहा हूं ।"

द्रोणाचार्य को दुर्योधन की बात से ठेस लगी। फिर भी अपनी स्थिति कोसमझ कर उन्होने शात भाव से पूछा—"तो फिर साफ साफ बताओ न अपना उद्देश्य।"

"बात यह है आचार्य जी !—दुर्योधन ने आचार्य जी को अपना वास्तविक उद्देश्य बताते हुए कहा—"यदि आप युधिष्ठिर को जीवित पकड लें तो वे हमारे बन्दी हो जायेंगे और इससे पाण्डवो की हार हो जायेगी। फिर युधिष्ठिर हमारे हाथ मे होगा, जो चाहे करेंगे। रण क्षेत्र से तो मामला समाप्त हो जायेगा। घर जाकर देखा जायेगा।"

आचार्य सशंक हो उठे। बल्कि जो शका उनके मन मे जागृत हुई उससे सिहर उठे। विस्मित होकर पूछा—"तो क्या इरादा है तुम्हारा ! साफ साफ बताओ।"

उनकी वाणी मे कठोरता आ गई थी कर्ण ने उसे भाप लिया, धीरे से दुर्योधन को कुहनी मारी। दुर्योधन ने सम्भलते हुए कहा—"आप गलत न समझें। हम युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर राज्य का थोडा सा भाग पाण्डवो को देने की बात करके सन्धि कर लेंगे। और फिर ... "

द्रोणाचार्य एक दम प्रसन्न हो उठे—उनके भाव बदल गए। तेजी से बोले—"और फिर भाईयो की भांति रहने लगेंगे।"

"नही आचार्य जी, आप फिर भ्रम मे पड़ गए—दुर्योधन को कर्ण ने बहुत सकेत किया कि वह उस समय कुछ न कहे, पर वह बिना कहे न रह सका—"युधिष्ठिर तो क्षत्रिय राजाओ की रीति नीति के पालन मे तनिक सी भी भूल नही करते। हम पुनः उन्हे जुए के लिये निमन्त्रित करेंगे।"

"और पुनः राज्य ले लेंगे—बीच ही मे दु.शासन बोल उठा—इस युद्ध से पाण्डवो को भी यह प्रतीत हो ही गया होगा कि युद्ध के द्वारा राज्य ले लेना दुर्लभ है, अत: पुनः वे युद्ध के लिए तैयार न होगे। और राज्य हमारा ही रहेगा।"

"क्या मैं पूछ सकता हू कि इस कुचक्र के रचने की आवश्यकता क्यो अनुभव हुई ?"—द्रोणाचार्य ने पूछा। उस समय उनका

चेहरा कठोर था। परन्तु न तो दुर्योधन ने उनके चेहरे को परखा और न उनके शब्दों पर ही ध्यान दिया, वह तो अपनी बनाई योजना पर फूलकर कुप्पा हो रहा था और ऐसे कह रहा था जैसे इस सर्वोत्तम योजना के लिए उसे कोई पुरस्कार मिलने वाला है, अपने सेनापति के नाते अपने षडयन्त्र की सारी बाते उनके आगे खोलते हुए उसने कहा—"आचार्य जी! हम तीनो ने यह अनुभव किया है कि युद्ध की जो गति चल रही है, यदि यही गति रहे तो सम्भव है कि कौरव और पाण्डव सभी रण क्षेत्र मे पितामह भीष्म का अनुसरण कर जाए। पर कृष्ण तो फिर भी शेष रह जायेंगे। न द्रौपदी तथा कुन्ती आदि का ही बध होगा। इस लिए सम्भव है कृष्ण हमारा राजपाट कुन्ती या द्रौपदी को दे दें और इस प्रकार पाण्डवों के परिवार को ही राज श्री प्राप्त हो जाये। समस्या का अन्धकार पूर्ण पहलू यही है। इस लिए हम तीनो ने बड़े विचार के उपरान्त इस अन्धकारपूर्ण व दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से बच निकलने का यही मार्ग सोचा है। आज पितामह की मृत्यु के समय युधिष्ठिर के मुख पर जो भाव आ रहे थे वे इस बात के द्योतक हैं कि वह अपने कुल का नाश नही देखना चाहता और दुबारा युद्ध के लिये किसी प्रकार तैयार न होगा।"

सारी बात सुनकर द्रोणाचार्य उदास हो गए। वे सोचने लगे कि व्यर्थ ही वे कल्पना करने लगे थे कि दुर्योधन का दिल अच्छा है, उसमे भ्रातृ स्नेह जागृत हो सकता है। वे मन ही मन दुर्योधन की निन्दा करने लगे। फिर भी अपने को यह कहकर उन्होने सान्त्वना दी कि चलो, जो भी हो, युधिष्ठिर के प्राण न लेने का कोई न कोई तो बहाना मिला ही।

कर्ण ने द्रोणाचार्य के मुख पर गहरी दृष्टि डाली और पूछा—"क्यो आचार्य जी क्या हमारी योजना आपको पसन्द न आई।"

"आप लोगो ने समस्या के अन्धकार पूर्ण पहलू को देखकर अपनी योजना बनाई और मुझे आपकी योजना पसन्द आ सकती है तो उसके प्रकाश पूर्ण पहलू को देखकर।" द्रोण ने कहा।

"वह क्या ?"

"वह यह कि आपकी योजना से युधिष्ठिर के प्राणो की रक्षा हो जायेगी, हम धर्मराज के बध करने केपाप से बच जायेंगे और यह

महा युद्ध बन्द हो जायेगा ।"—द्रोण ने बताया ।

दुर्योधन और कर्ण आचार्य की बात से सन्तुष्ट न हुए। पर उन्हे तो अपनी योजना मान लिए जाने से मतलब था। अतः कर्ण बोला—"जैसे भी हो आप इस योजना को सफल बनाने मे तो सहयोग देंगे। इसकी सफलता का भार तो आप ही पर है।"

"हां, आचार्य जी आपको कल युधिष्ठिर को जीवित पकड कर देना है।"—दुर्योधन ने जोर देकर कहा।

'मैं पूर्ण प्रयत्न करूंगा।" द्रोणाचार्य के कण्ठ से निकला दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होने आचार्य जी को धन्यवाद दिया।

रात्रि बहुत हो गई थी, आचार्य सोना चाहते थे, उन्हे जम्हाई आने लगी. यह देख तीनो वहा से उठ खड़े हुए परन्तु चलते चलते दुर्योधन ने कहा—"तो मुझे आशा है कि आप युधिष्ठिर को जीवित पकडने की प्रतिज्ञा कर रहे है।"

अनायास ही, न चाहते हुए भी, द्रोण के मुह से निकल गया —"हां, हा, तुम विश्वास रक्खो, मै युधिष्ठिर को जीवित ही पकडूगा।"

कर्ण ने उस अवसर पर द्रोणाचार्य की प्रशसा करदी—"राजन्! आप द्रोणाचार्य की बात पर किसी प्रकार की शका न करें। वे अपनी बात के बडे धनी है, जो एक बार मुह से निकल गया बस पत्थर की लकीर होगया।"

कदाचित उस समय आचार्य को दुर्योधन तथा कर्ण की नीति का भेद खुला होगा और सम्भव है अपने वचन पर उन्हे कुछ खेद भी हुआ हो।

× × × ×

सारे पाण्डव युधिष्ठिर के शिविर मे उपस्थित थे। आगे युद्ध चलाने की योजनाए बन रही थी और शत्रुओ की योजना की जानकारी की प्रतिक्षा हो रही थी, तभी एक गुप्तचर ने प्रवेश किया।

"कहो, क्या समाचार लाये?"—यह अर्जुन का प्रश्न था।

"द्रोणाचार्य, सेनापति चुने गए। और कल को महाराज युधिष्ठिर को जीवित पकडने की योजना बनी है। दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से वचन लिया है कि वे महाराज युधिष्ठिर को जीवित पकड

कर देंगे।"—गुप्तचर ने कहा।

'और कुछ ?"

"दुर्योधन, कर्ण, तथा दुःशासन ने यह षडयन्त्र दुर्योधन के शिविर मे बैठ कर रचा है"

गुप्तचर की बाते सुन कर सारे पाण्डव चिन्ताग्रहस्त हो गए। वे द्रोणाचार्य की अद्वितीय शूरता, एवं शस्त्र विद्या के अनुपम ज्ञान से तो भलि भाति परिचित ही थे। अतः जब द्रोणाचार्य द्वारा दुर्योधन को महाराज युधिष्टिर के जीवित पकड कर उन्हे सौप दिए जाने के वचन की बात सुनी तो वे भयभीत भी हुए।

अर्जुन ने कहा—"अब तो किसी भी प्रकार महाराज युधिष्ठिर की रक्षा का पूरा पूरा प्रबन्ध किया जाना चाहिए। कही शत्रु अपनी योजना मे सफल हो गए तो हम कही के न रहेगे।"

भीम ने कुछ दृढ होकर कहा—'हम सबको अपनी सेना सहित महाराज के चारो ओर रक्षार्थ रहना चाहिए।"

नकुल तथा सहदेव ने भी भीमसेन का समर्थन किया। अर्जुन ने भी समर्थन कर दिया, पर अन्त मे इतना और कह दिया—"कल का दिन हमे बडी सावधानी से व्यतीत करना है। शत्रु की प्रत्येक चाल को समझ कर युद्ध करना होगा। तनिक सी भी भूल हमे ढेर कर देगी।"

युधिष्ठिर ने उसे सन्तुष्ट करते हुए कहा—"भयभीत होने की आवश्यकता नही। कल हम अपनी व्यूह रचना इस प्रकार करगे कि शत्रु का उद्देश्य पूर्ण हो ही न सके। हा, यदि हमे उनके षडयन्त्र का पता न चलता तो सम्भव था वे सफल हो जाते।"

थोडी देर बाद सभी अपने अपने शिविर मे चले गए। और छावनियो पर निस्तब्धता छा गई।
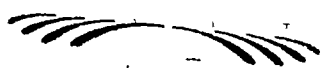
* चौतालीसवां परिच्छेद *

युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की चेष्टा

द्रोणाचार्य ने जान बूझ कर अपनी सेना की व्यूह रचना इस प्रकार की कि वे अन्य कौरव पक्षीय वीरो को एक एक पाण्डव महारथी के सामने छोडते हुए स्वयं युधिष्ठिर को पकडने जा सकें और अर्जुन आदि अन्य पाण्डव वीर कौरव वीरो से उलझ कर रह जाय। युधिष्ठिर उनके पंजे मे आ जाये। उस दिन जब द्रोणाचार्य को कौरव वीरो ने सेनापति के रूप मे देखा तो उत्साह पूर्वक उनका अभिनन्दन किया और कर्ण को उनके साथ देखकर तो सैनिक कहने लगे—"अब पाण्डवो की पराजय निश्चित है। पितामह तो पाण्डवो से स्नेह रखते थे अत. वे स्वय ही अर्जुन के सामने निष्क्रिय होकर खड़े रहे और मारे गए, पर कर्ण तो किसी को रियायत नही करने वाला।" कौरव पक्षीय वीरो ने कर्ण के स्वागत मे बार बार शंख नाद किए और द्रोणाचार्य के अभिनन्दन मे जय जयकार की।

उधर चूंकि पाण्डवो को दुर्योधन की योजना ज्ञात हो गई थी इस लिए धृष्टद्युम्न ने पाण्डव पक्षीय सेना की व्यूह रचना इस प्रकार की कि सारी सेना एक प्रकार से महाराज युधिष्टिर की रक्षा मे हो गई।

सूर्य का रथ आकाश पथ पर बढ़ रहा था। किरणें ताप वर्षा करने लगी और पाण्डवो के सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपना शंख बजाया। समस्त शूरवीर सेनापति की ओर किसी आदेश के सुनने की इच्छा से देखने लगे। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित होगया।

सेनापति एक हाथी पर खड़े हो गए और समस्त सेना को

सुनाकर बोले—"वीर सैनिको! आज का युद्ध बाज और मैंना का युद्ध है। हमे अपने महाराज की रक्षा द्रोणाचार्य रूपी बाज से करनी है। आज हमे शत्रु को पराजित करने के लिए नही वरन आत्म रक्षा धर्मराज की रक्षा के निमित्त युद्ध करना है। हमे शत्रु के षडयन्त्र को विफल करना है। इस लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगाकर भी महाराज को बचाना है। आप सब आज आक्रमणी न होकर धर्मराज के अग रक्षक हैं। विजय हमारी होगी।"

समस्त सैनिको ने मिलकर धर्मराज की जय जयकार की। महारथियो ने सेनापति के आदेश का स्वागत करने के लिए शख नाद किए। हाथी चिघाड उठे और अश्वो ने हिनहिना कर अपना उत्साह प्रदर्शित किया।

दूसरी ओर—

सेनापति द्रोणाचार्य के शख नाद को सुनकर कर्ण ने अपना शख बजाया और अन्य कौरव वीरो ने उसके शख नाद के उत्तर मे अपने अपने शख बजाये. समस्त कौरव वीरो ने एक बार "महाराज दुर्योधन की जय" के नादो से आकाश गुजा दिया। सेनापति के आदेश पर-रण के बाजे बज उठे और कौरव सेना व्यूह के रूप मे आगे बढी। द्रोणाचार्य आज अपने वचन की पूर्ति के लिए मन ही मन योजना बना रहे थे। ज्यो ही दोनो सेनाओ मैं मुकाबला आरम्भ हुआ, विकट गाड़ियो ने आग उगलनी आरम्भ कर दी। और पदाति से पदाति, रथी से रथी, अश्वारोही से अश्वारोही तथा गजारोही से गजारोही जूझने लगे. तलवारो की खन खन, धनुषो की टकार, हाथियो की भीषण चिघाड, मारकाट, गदाओ के परस्पर टकराव और रथो के दौड़ने से ऐसा भीषण ध्वनि हो रही थी कि कान फटे जाते थे। प्रत्येक अपनी अपनी रक्षा और अपने अपने मुकाबले के शत्रु को परास्त करने के लिए प्रयत्नशील था, फिर भी पाण्डवों की सेना को महाराज युधिष्टिर का विशेष रूप से ध्यान था जैसे पुष्प काँटो से रक्षित होता है, उसी प्रकार धर्मराज विराट सेना से रक्षित थे।

युद्ध का ग्यारहवां दिन था और आज कौरवो की ओर से मुख्य योद्धा थे द्रोणाचार्य। वे जिधर से निकलते सैनिको के जमघट का काई की भांति साफ करते चले जाते। जसे अग्नि सूखे वन को

जलाती हुई फैलती है, ठीक उसी प्रकार पाण्डव सेना को भस्म करते हुए आचार्य द्रोण चक्कर काट रहे थे । उनके बाण जिस अभागे पर पड जाते, वही त्राहिमान त्राहिमान करता हुआ, यमलोक सिधार जाता । कितने ही रथ खाली हो गए, और अश्व बिना सवार के अनाथ की भांति भयभीत होकर भागने लगे। ऐसा भयकर सग्राम हो रहा था कि किसी को यह भी पता नही चल रहा था कि द्रोण है किस मोरचे पर । वे विद्युत गति से अपना स्थान वदल रहे थे, कभी इस ओर तो कभी उस ओर, कभी इस दिशा मे नारकाट मचाई तो कभी दूसरी दिशा मे जहा देखो द्रोण ही द्रोण दिखाई देते । पाण्डव सैनिकों को भ्रम होने लगा कि कही द्रोण अनेक शरीर तो धारण करके नही आ गए ।

धृष्टद्युम्न जिस मोरचे पर था, उस पर कौरव महारथियों ने मिलकर आक्रमण कर दिया । और सग्राम होने लगा और द्रोण तथा कर्ण के भीषण रूप धारण करके पाण्डव सेना पर यमराज की भाँति टूट पडने से प्रोत्साहित होकर कौरव महारथी भीषण मारकाट मचाने लगे । जैसे उन्हे आशा हो कि वे अब हुए विजयी । कुछ ही देरि बाद पाण्डवो का व्यूह उस मोरचे पर टूट गया और पाण्डव तथा कौरव वीरो के बीच द्वन्द्व युद्ध छिड गया । माया युद्ध मे निपुण शकुनि सहदेव से युद्ध करने लगा भयकर दानव के रूप मे शकुनि टूट कर पडा पर सहदेव ने भी कच्ची गोलिया नही खेली थी । उसने ईंट का जवाब पत्थर से दिया । शकुनि के माथे पर पसीना छलक आया और सहदेव की आखें चमकने लगी । तब शकुनि को सन्देह हुआ की कही सहदेव विजय तो नही हो जायेगा, उसने सम्पूर्ण साहस बटोर कर आक्रमण किया और दोनो बुरी तरह जूझने लगे। इस भयकर युद्ध मे दोनो के रथ टूट गए। तब दोनों वीर अपने अपने रथो से गदा लेकर कूद पडे । दोनो की भारी गदाए टकराने लगी। ऐसी भीषण ध्वनि होती थी मानो दो पहाड सप्राण होकर आपस मे टकरा रहे हो ।

इधर भीमसेन और विविंशति आपस मे टकरा रहे थे । भीमसेन ने बाणो की मार से विविंशति के रथ की ध्वजा गिरा दी, फिर सारथि को मार डाला । कुपित होकर विविंशति ने भी भीम को खूब छकाया, कुछ ही देरि मे दोनो के रथ टूट गए और वे तलवार व ढाल सम्भाल कर नीचे उतर आये । सूर्य किरणो के

प्रभाव ने दोनो तलवारें ऐसी चमक रही थी मानो तड़ित रेखा आकाश के बजाये पृथ्वी पर आकर बार बार चमक रही हो।

शल्य ने अपने भानजे नकुल को अपने मुकाबले पर आते देख कर कहा—"नकुल, मैं नही चाहता कि तुम्हारा वध मेरे हाथों हो। मरना ही है तो यह सेवा किसी और कौरव वीर से जाकर लो।"

नकुल को मामा की बात बड़ी कड़वी लगी, गरज कर बोला—"मुझे लगता है कि आप को अपने भांजे के हाथो ही अपनी मुक्ति करानी है, अब आपका मस्तिष्क फिर गया है। मरते हुए लोगो की आखे फिरती हैं पर आपका मस्तिष्क भी फिर गया है, इसलिए सिंह को ठोकर मार कर जगा रहे हो।"

शल्य को बडा क्रोध आया, कहा—"रे मूर्ख ! मुझे क्रोध दिला कर अपनी मृत्यु को निमन्त्रित कर रहा है ? तो ले अपने कर्मों का फल भोग।"

—और भीषण बाण वर्षा करदी। बाणो से अधिक चोट लगी नकुल को मामा के शब्दो। उसमे दांत भीच कर ऐसे तीक्ष्ण बाण चलाए कि मामा के रथ की ध्वजा धूल मे आ रही, रथ की छतरी घोड़ो के पैरो मे लुढकने लगी और शल्य का रथ टूट फूट गया। मामा बड़े चिन्तित हुए। वे हतप्रभ होकर कुछ करने की सोच ही रहे थे, कि नकुल ने विजय का शख बजा दिया, शल्य हाथ मलते रह गए।

कृपाचार्य का पाला पड़ा धृष्टकेतु से। दानो मे भीषण युद्ध हुआ, पर कृपाचार्य के सामने धृष्टकेतु अधिक देरि न ठहर सका। सात्याकि और कृतवर्मा तो दो भयानक जगली पशुओ को भाति एक दूसरे पर झपट रहे थे। और उधर विराट राज कर्ण से भिड़े थे। कर्ण को तो अपने पौरुष व रणकौशल पर अभिमान था, पर विराट राज के मुकाबले पर आकर उसे ज्ञात हो गया कि किसी वीर योद्धा का रण भूमि मे आकर परास्त करना हसी खेल नहीं है।

अभिमन्यु अर्जुन का ही दूसरा रूप है। वह जिधर जाता है, अर्जुन की भाति अपना पराक्रम दिखा कर शत्रुओ को चकित कर देता है। बल्कि युद्ध के दस दिन मे ही उसका इतना दब दबा बैठ गया है कि जब कौरव सैनिक उस बालक के रथ को आते देखते हैं तो चीख चीख कर कहने लगते हैं—"अरे अर्जुन पुत्र अभिमन्यु आ

गया, सावधान, सावधान।"

जब ऐसी आवाजें अर्जुन के कान मे पड़ती हैं तो उसे अपने पुत्र पर गर्व होने लगता है। परन्तु अभिमन्यु अपने वाणो से प्रलय मचता हुआ चीखते हुए कौरव सैनिको को खदेड़ देता है। उसने अकेले ही पौरव, कृतवर्मा जयद्रथ, शल्य आदि चार महारथियो का मुकावला किया। और चारो महारथियो के डट कर मुक़ाबला करने पर भी अभिमन्यु ने उन्हे परास्त कर दिया।

इसके वाद भीम और शल्य के बीच गदायुद्ध छिड़ गया भीमसेन जब भीषण सिंहनाद करके झपटता तो दूर खड़े कौरव सैनिको का दिल कांप जाता. शल्य ने कितनी ही देरि तक भीमसेन की गदा का मुकावला किया। जब सूर्य सिर पर आ गया और आकाश से अग्नि वाण वरसाने लगे, शल्य पसीने से तरवतर होकर हांपने लगा, पर भीमसेन वार पर वार किए जा रहा था। अन्त मे शल्य का साहस जाता रहा और उसे रण क्षेत्र छोडते हो वना।

शल्य को रण क्षेत्र से भागते देख और भीमसेन को पीछा करते हुए कौरव सनिक पर वज्र की भांति टूटते देख कर कौरव सेना मे खलवली मच गई। सैनिको का साहस डगमगाने लगा। 'भागो, भागो' की ध्वनि गूंज उठी। और कौरव सनिक भीमसेन की गदा से वचने के लिए पीठ दिखा कर भागने लगे।

द्रोण ने यह देखा तो सैनिको का साहस वढाने के लिए उन्हो ने अपने सारथि को आदेश दिया— 'मेरा रथ तीव्र गति से उस ओर ले चलो जहां युधिष्टिर है।"

द्रोण के रथ मे सिन्धु देश के चार फुरतीले और सुन्दर घोड़ जुते थे, सारथि ने चावुक मारी और घोड़ कितने ही सैनिको को कुचलते, तीव्र गति से युधिष्टर की ओर वढ़ने लगे, घोडे हवा से वातें कर रहे थे इतनी तीव्र गति से द्रोण के रथ को अपनी ओर आते देख कर युधिष्टिर ने वाज़ के पर लगे हुए तीक्ष्ण वाणो की वर्षा उस ओर आरम्भ करदी, ताकि द्रोण की गति अवरुद्ध हो सके! परन्तु वाणों की वर्षा भी द्रोण की गति को न रोक पाई। उन्होंने क्रुद्ध होकर युधिष्टिर के वाणो के उत्तर मे ऐसे वाण चलाए कि युधिष्टिर को आत्म रक्षा कर सकना दुर्लभ हो गया। एक वाण ऐसा लगा कि धर्मराज का धनुष टूट गया। युधिष्टिर सम्भले और दूसरा धनुष लेकर युद्ध करे, इस से पहले ही द्रोणाचार्य वडे वेग से

उनके निकट पहुच गए। धृष्ट द्युम्न ने द्रोण को रोकने की हजार चेष्टा की पर किसी प्रकार भी द्रोण को न रोक पाये। उनका प्रचड वेग किसी के रोके नही रुकता था।

कौरव पक्षीय वीरो ने द्रोण को युधिष्ठिर के निकट पहुचते हुए देखकर ही शोर मचा दिया—"युधिष्ठिर पकडे गए, युधिष्ठिर पकडे गए।"

इस आवाज से सारा कुरुक्षेत्र गूज उठा। भागते हुए कौरव सैनिक रुक गए। पाण्डव वीरो की गति मन्द पड गई। भीमसेन की भुजाए शिथिल सी पड गई।

इतने ही में अनायास ही अर्जुन उधर आ पहुचा। द्रोणाचार्य द्वारा बहाई रक्त की नदी को पार करता, हड्डियो और शवो के ढेरो को लाघता और तीव्र गति से पृथ्वी को कपाता हुआ अर्जुन का रथ वहा आ खडा हुआ। श्री कृष्ण ने ललकारा—"देखते क्या हो धनजय। चलाओ वाण। द्रोण तुम्हारे गुरु नही इस समय मुख्य शत्रु हैं।"

द्रोण देखते ही तनिक देरि के लिए तो सन्न रह गए। श्री कृष्ण को ललकार सुनकर अर्जुन ने आवेश मे आकर जो गाण्डीव धनुष से वाणो की वर्षा आरम्भ की है, तो देखते ही देखते वाणों की बौछार हो गई। इतनी तीव्र गति से वाण चल रहे थे कि यह पता ही नही चलता था कि अर्जुन कब तीर चढ़ाता है, और कब छोड देता है। वाणो के मारे द्रोण के आगे अधेरा सा छा गया। उसी समय अर्जुन ने एक ऐसा अस्त्र प्रयोग किया कि जिसके छूटते ही चारो ओर धुए और अधकार का बादल सा फैल गया, द्रोणाचार्य अपने शिष्य के इस भीषण आक्रमण के मारे पीछे हट गए।

अर्जुन आगे वढ़ता रहा, तभी द्रोण की रक्षा के लिए कई कौरव महारथी आ डटे। अर्जुन सभी को एक साथ हटाता रहा। उस सेवा दिन समाप्त होने वाला था पश्चिम दिशा में लाली फैल रही थी, सूर्य किरणे पृथ्वी से विदा ले रही थी और अर्जुन के वाणो के आगे कौरव वीर पीछे हटने पर विवश थे, वल्कि वार वार आकाश की ओर देखते थे।

द्रोण ने युद्ध की समाप्ति का विगुल वजवा दिया। और पाण्डवो ने विजय के वाजे वजाने आरम्भ कर दिए। कौरव सेना पर भय छा गया। परन्तु पाण्डव पक्षीय सैनिक वड़ी शान से अपने अपने शिविर को लौट चले। सब से पीछे थे कृष्ण और अर्जुन।

* पैंतालीसवां परिच्छेद *

बारहवां दिन

ग्यारहवें दिन का युद्ध समाप्त करके लौटे तो रण वाण उतार कर, कुछ खा पी कर दुर्योधन सीधा द्रोणाचार्य के शिविर मे पहुचा। पीछे पीछे त्रिगर्त नरेश सुशर्मा भी पहुच गया। दुर्योधन का मुह लटका हुआ था, वह चिन्ता मग्न था। उस के मनोभाव को पढ कर द्रोणाचार्य बोले— 'मैं जानता हू तुम चिन्तित और दुखित हो क्यों कि मैं अपना वचन पूर्ण न कर सका। परन्तु इसका कारण है धनजय श्री कृष्ण जिस के सारथि हैं, उस के सामने आने पर युधिष्ठिर को पकड पाना दुर्लभ है। इस बात को भी तुम समझ लो।"

"परन्तु आचार्य जी! विना युधिष्ठिर को वन्दी बनाए हमारी विजय असम्भव है।" साफ जाहिर था कि उस दिन के युद्ध से दुर्योधन का मनोवल बहुत टूट गया था। उस के शब्द उसके विचार को प्रगट कर रहे थे।

द्रोण वोले—"तुम्हारी योजना की पूर्ति के लिए मनोवल का सशक्त होना आवश्यक है। अधीर क्यो होते हो।"

"आचार्य! ग्यारह दिन मे मैं ने जो खोया है, उसे देखकर मैं सिहर उठता हूं। अव सान्त्वना तथा धैर्य वन्धाने से काम न चलेगा।" दुर्योधन ने अपने मनोदश्म प्रगट करते हुए कहा। "वस एक ही उपाय है—गम्भीरता पूर्वक द्रोण कहने लगे—यदि किसी प्रकार अर्जुन को कही उलझा दिया जाय। उलझाया भी ऐसा

जाये कि वह अवकाश न ग्रहण कर सके मेरे निकट पहुँचने का, तो युधिष्ठिर को बन्दी बनाया जा सकता है। इतनी बडी योजना बनाई है तो ऐसी भी योजना बनाओ कि अर्जुन का मुझ से मुकाबला हो और वह युधिष्ठिर की रक्षा को आ ही न सके।"

"भला ऐसा उपाय क्या हो सकता है? मेरी समझ मे तो नही आता।"

"यदि कुछ वीर अपने प्राणो की आहुति देने को तैयार हो जाय तो यह भी सम्भव है।"

"जानबूझ कर प्राण खोने को भला कौन तैयार होगा?"

"कुछ भी हो जब तक कुछ वीर संशप्तक व्रत धारण कर के अर्जुन को युद्ध के लिए नही ललकारेंगे, और अपने प्राणों का मोह छोड कर यमलोक जाने की तैयारी करके अर्जुन के मुकाबले पर नही जायेंगे तब तक काम न चलेगा"—द्रोणाचार्य ने सोचकर बताया।

'ऐसे वीर कौन हो सकते हैं? आप ही बताए।"

दुर्योधन के प्रश्न पर अभी द्रोणाचार्य विचार कर ही रहे थे कि सुशर्मा वहां से उठ गया। विचार मग्न द्रोण तथा दुर्योधन को इस का आभास भी न हुआ।

कुछ देरि तक दुर्योधन तथा द्रोणाचार्य मे विचार विमर्श होता रहा, पर उन्होंने संशप्तक-व्रत धारन करके युद्ध करने के लिए तैयार हो सकने वाले वीरो को न खोज पाये।

रात्रि यौवन की ड्योढी पर पग रखने वाली थी, दिन भर युद्ध करने के कारण सभी थके हुए थे फिर भी द्रोण तथा दुर्योधन का नीद कहा, वे तो युद्ध की योजना बनाने और अपनी योजना की सफलता का उपाय खोजने मे तल्लीन थे।

सुशर्मा ने कुछ देरि बाद शिविर मे पग रखा। सुशर्मा बाहर से आते देखकर कदाचित तब द्रोण को भान हुआ कि सुशर्मा बिना कुछ कहे सुने ही वहा से चला गया था।

सुशर्मा ने विनीत भाव से कहा।—"गुरु देव! आपको चिन्तित रहने की आवश्यकता नहीं। मैंने आपकी समस्या हल कर दी है। मेरे देश के वीर संशप्तक-व्रत धारण करके कल अर्जुन

को युद्ध के लिए ललकारेंगे और आत्म आहुति देकर भी उस का वध करेंगे। अब आप निश्चित होकर युधिष्ठर को बन्दी बनाने की बात सोचें।"

सुशर्मा की बात सुनकर दुर्योधन एक दम प्रसन्न हो उठा। उसे अपार हर्ष हुआ। उसने आत्म सन्तोष के लिए पूछा—"क्या सच ?"

"हां, राजन ! मैं आपकी ओर से युद्ध करने के लिए आया हू, अपने वीर साथियो अथवा अपने प्राणो की रक्षा करने नहीं। मैंने आप दोनो को चिन्ता मग्न देखा और जाकर अपने भाईयो से मत्रणा की। मुझे प्रसन्नता है कि ऐसे वीर शूरो की एक टोली मैंने तैयार कर ली है, जो आपकी आज्ञा मिलते ही सशप्तक-व्रत की दीक्षा ग्रहण करलेगी।" सुशर्मा ने उल्लास पूर्वक कहा। उसे बहुत सन्तोष था कि वह दुर्योधन के प्रति अपनी वफादारी को सिद्ध कर पा रहा है। बल्कि वह ऐसे कार्य को सम्पन्न कर रहा है, जिसे पूर्ण करने के लिए कोई मिला ही नही।

द्रोणाचार्य को कोई प्रसन्नता हुई या नही यह नही कहा जा सकता, क्योंकि वे उसी प्रकार शात बठे रहे, अपनी ओर से कुछ कहना आवश्यक जानकर वे बोले—"त्रिगर्त्त नरेश ! तुम अपनी उस सैनिक टोली को संशप्तक-व्रत की दीक्षा दिलाओ। मरणसन्न पर पड़े लोगों के लिए जो दान-पुण्य आदि आवश्यक समझे जाते हैं, वे सभी सम्पन्न कराओ। प्रातः उस टोलो को अपने प्राणो का मोह छोड़ कर अर्जुन के सामने जाना है।"

दुर्योधन को लक्ष्य करके उन्हों ने कहा—"बेटा ! रात्रि बहुत जा चुकी, अब आराम करो। कल फिर मैं अपने वचन को पूर्ण करने का भागीरथ प्रयत्न करूगा।"

× × + × × × ×

ज्यो ही पूर्व क्षितिज की मांग सिन्दूरी हुई। एक भारी सेना ने संशप्तक-व्रत की दीक्षा ली। सब ने घास के बने वस्त्र धारण किए। जिन भाषित धर्म के अनुसार उन्होने प्रभु वन्दना की और फिर सासारिक मोह तथा परिग्रह आदि का त्याग करके, सभी से

क्षमा याचना करने के उपरान्त शपथ ली कि हम लोग युद्ध में धनंजय का बध किए बिना नहीं लौटेंगे। यदि भय के कारण पीठ दिखाकर भाग आये तो हमें महापाप का दोष प्राप्त हो। हम प्राणों तक का उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहेंगे।

शपथ लेने के पश्चात् वे संशप्तको ने दान-पुण्य किए। अपने गुरुओ, बन्धु बाधवो को अन्तिम प्रणाम किया और अस्त्र शस्त्र सम्भाल कर तैयार हो गए।

दोनो ओर की सेनाएं सज गई। रण क्षेत्र मे जाने से पूर्व दोनो ओर के सैनिक एक दूसरे से बन्धुओं की भांति मिलते जुलते थे, घायलो की खबर लेते थे। इसी प्रकार दोनो ओर के वीर परस्पर मिले और जब युद्ध का समय हो गया, सेनापतियो ने रण क्षेत्र की ओर जाने के लिए अपना शंख बजाया, दोनो ओर के सैनिक अपनी अपनी सेना मे आकर अपने अपने स्थान पर खडे हो गए। सेनापतियो ने उस दिन के युद्ध के लिए आवश्यक सूचनाएं तथा हिदायतें दी और फिर दोनो सनाए रण क्षत्र की ओर चल दी।

सूर्य एक बास ऊपर चढ़ चुका था, दोनो ओर से व्यूह रचना हो चुकी थी। तभी कौरवो की ओर से त्रिगर्तराज की सशप्तको की टोली ने पुकार पुकार कर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। इस टोली को आत्मघाती सैनिक टोली भी कहा जा सकता है। इस प्रकार की सैनिक टोलियो का आजकल भी रिवाज है। कि सेना की कोई विशेष टुकडी किसी मुख्य कार्य को पूर्ण करने की शपथ लेकर जाती है और कार्य पूर्ण किए बिना नहीं लौटती।

इसी प्रकार की थी वह भी त्रिगर्त्त देश की सेना, जिसकी ललकार को सुनकर अर्जुन तडप गया। उन दिनो क्षत्रियो मे यह प्रथा थी कि यदि रण क्षेत्र मे किसी विशेष व्यक्ति को युद्ध की चुनौती दी जाती है तो वह बिना किसी का बहाना किए ही युद्ध करने के लिए आ डटता। उसी रीति के अनुसार जब अर्जुन ने एक विशेष सैन्य-दल को, जो सशप्तको के वेश मे था, युद्ध की चुनौती देते हुए देखा, तो युधिष्टिर के पास जाकर बोला—"राजन्! देखिए वे लोग सशप्तक व्रत लेकर मुझे ललकार रहे हैं। आप तो जानते ही हैं कि मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि कोई मुझे, युद्ध के लिए ललकारेगा

तो मैं उस से युद्ध अवश्य करूंगा। वह देखिये, सुशर्मा और उसके साथी आज मुझे ही युद्ध की चुनौती दे रहे हैं। इसलिए मैं तो जा रहा हूं और उनका विनाश करके ही लौटूंगा। आप मुझे इसकी आज्ञा दीजिए।"

युधिष्ठिर ने सारी परिस्थिति पर विचार किया और बोले—"बड़ी विकट समस्या आ गई है। मेरी आज्ञा की बात जाने दो। तुम्हें दुर्योधन का इरादा मालूम ही है। द्रोणाचार्य का वचन भी ज्ञात है और यह भी जानते हो कि द्रोणाचार्य बड़े बली हैं, शूर हैं, कष्ट-सहिष्णु, शस्त्र विद्या मे पारंगत, बुद्धिमान और पराक्रमी हैं और अपने वचन की पूर्ति के लिए हर सम्भव उपाय अपना सकते हैं। उनके प्रण और उनकी सामर्थ्य को ध्यान मे रखते हुए तथा शत्रु की चाल को समझ कर अपनी मर्यादा का ध्यान रखकर जो तुम उचित समझते हो करो।"

अर्जुन भी सोच मे पड़ गया, तभी त्रिगर्त्त देश के वीरो ने ललकारा—"अर्जुन! कहां छुप गया है। यदि वह जीवित है तो आये और हम से लोहा ले हम या तो उसका वध कर देंगे अथवा अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देंगे। अन्य किसी दशा मे नही लौटेंगे।" अर्जुन यह सुनकर उद्विग्न हो गया। बोला—"राजन्! वह देखिये फिर शत्रुओ ने मुझे ललकारा। मुझे जाना ही होगा। आपकी रक्षा पांचाल राज पुत्र सत्याजित करेंगे। जब तक वे जीवित रहेंगे तब तक आप पर किसी प्रकार का संकट नही आ सकता।"

सत्यजित को बुलाकर अर्जुन ने कहा—"मैं अपने महाराज को तुम्हे सौंपता हूं। मेरी ही तरह उनकी रक्षा करना और शत्रु तुम्हारे शव पर ही उतरकर हम तक जा सके। बस यही मैं चाहता हूं।"

सत्यजित ने विश्वास दिलाया कि प्राणो की आहुति देकर भी वह युधिष्ठर की रक्षा करेगा।

और अर्जुन संशप्तको की ओर ऐसे लपका जैसे भूखा शेर शिकार पर लपकता है। श्री कृष्ण अर्जुन से कह रहे थे—"धनंजय! यह सब तुम्हारे ही बाणों की प्रतीक्षा मे खड़े हैं। प्राणो के भय के कारण तो उन्हे रोना चाहिए था, पर व्रत के नशे में यह बड़े उत्साह तथा उल्लास के साथ खड़े है। तनिक इन्हें अपना रण कौशल

खाकर इनका नशा तो चूर कर दो।"

इधर पाण्डव तथा कौरव सेनाएं एक दूसरे को परास्त करने लिए भीषण संग्राम कर रही थी और उधर अर्जुन ने त्रिगर्त्त शवासी सैनिको पर इतना भयकर आक्रमण किया कि देखते ही खते उनके सिर पर चढा, व्रत का भूत हवा हो गया। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणो से त्रिगर्त्तों का सारा उत्साह भग हो गया। एक बार जो अर्जुन ने अग्नि बाण मारा और उसकी लपटे जो विशैले विषधरो की लपलपाती जिव्हाओ की भाति लपलपाई, त्रिगर्त्त-देशीय सुशप्तक विचलित हो गए। सभी के मुह पर घबराहट नृत्य कर गई। अपने सैनिको को भयभीत देखकर सुशर्मा ने ललकारा—

"शूरवीरो! याद रखो। तुम ने क्षत्रियो की भरी सभा मे शपथ खाकर व्रत धारण किया है। घोर प्रतिज्ञा कर चुकने और प्राणो का मोह त्याग चुकने के बाद भय-विह्वल होना तुम्हे शोभा नही देता। तुम कही मैदान से यू ही वापिस चले गए, तो लोग तुम्हारी हसी उडायेंगे। कोई तुम्हे पास भी न बैठायेगा। डरो नही। आगे बढो। तुम इतना बडी सख्या मे हो और शत्रु अकेला है। आगे बढो और प्राणो की बलि चढ़ा दो। या शत्रु का वध कर डालो। अरे यदि तुम अर्जुन को बाटने बैठो तो एक एक बोटी भी एक एक के भाग मे न पड़े।"

यह कहकर सुशर्मा ने शख नाद किया, फिर सैनिक भी एक दूसरे को प्रोत्साहित करने लगे। कितने ही शख एक साथ बज उठे और फिर भयानक युद्ध आरम्भ हो गया।

दोनो ओर से बाण वर्षा होती रही, पर त्रिगर्त्त नरेश के सशप्तक सैनिक हटे नही, तब अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—"मधु सूदन! लगता है सुशर्मा की चेतावनी नव स्फूर्ति प्रदान करने मे सफल हो गई। अब जब तक इनके तन मे प्राण हैं यह हटेंगे नही, इस लिए आप भी तनिक उत्साह मे आ जाईये। हमे झिझकना नही है, इन्हे यमलोक पहुंचाना ही होगा।"

श्री कृष्ण पूर्ण कुशलता से रथ चलाने लगे। उस समय उन्हो ने ऐसी अद्भुत कुशलता का परिचय दिया कि शत्रु भी दातों तले उगली दबाते रह गए और अर्जुन के गान्डीव का कमाल तो देखने

ही लायक था उस ने पूर्ण चतुराई का परिचय दिया। अर्जुन विद्युत गति से अपने स्थान बदल लेता था, जल्दी ही वाणो का रुख बदल जाता और प्रत्येक सशप्तक को अर्जुन अपने ही सामने प्रतीत होता। घोर सग्राम हो रहा था, एक वार क्रुद्ध होकर सशप्तको ने इतनी घोर वाण वर्षा की कि अर्जुन का रथ वाणो से ढक गया, उस समय श्री कृष्ण ने कहा—"अर्जुन ! कुशल तो है ?"

अर्जुन श्री कृष्ण की वात समझ गया और 'हा' कह कर त्रिगर्त्तों के वाणो से छाये अधकार में ही गाण्डीव से एक ऐसा अद्भुत वाण मारा कि त्रिगर्त्तों की वाण वर्षा विल्कुल ऐसे ही हवा में उड गई जैसे आंधी से मद्यखण्ड।

उस समय रणभूमि का दृश्य इतना भयानक था मानो प्रलय के समय सदृश की नृत्य भूमि का दृश्य हो। सारे क्षेत्र मे जहा तक दृष्टि जाती, सिर विहीन धड, भुजा विहीन धड, टूटे हाथ पैर, कटे सिर आदि ही दिखाई देते। स्थान स्थान पर मास पिड और रक्त की धाराएं सी बहती दिखाई देती।

× × × × × ×

ज्यो ही अर्जुन त्रिगर्त्त देशीय सशप्तको से युद्ध करने के लिए गया, द्रोणाचार्य ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि पाण्डवो के व्यूह पर उस ओर आक्रमण करो जहां पर युधिष्ठिर की पताका लहरा रही है। आज्ञा पाने की देरि थी कि सेना ने उसी ओर अभियान कर दिया।

द्रोणाचार्य को एक विशाल सेना सहित अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर उनका मन्तव्य समझ गए और उन्होने धृष्ट द्युम्न को सचेत करते हुए कहा—"वह देखो ब्राह्मण वीर आचार्य द्रोण अपने वचन की पूर्ति के लिए मेरी ओर आ रहे है। ऐसा न हो कि अर्जुन के दूसरी ओर होने का लाभ वे उठा जाये। शीघ्र ही उनकी प्रगति रोकने का प्रयत्न करो।"

धृष्ट द्युम्न ने कहा—"आप निश्चित रहिए। मैं द्रोण को आप के पास तक पहुचने का अवसर ही न दूगा।"

—और एक विशाल सेना लेकर, द्रोण के पास आने की प्रतीक्षा किए बिना ही, धृष्ट द्युम्न आगे बढ़ा. बीच ही मे जाकर वह उन्हे घेर नेना चाहता था। जब द्रोणाचार्य ने विशाल सेना सहित धृष्ट द्युम्न को अपनी ओर आते देखा तो उन्हे द्रुपद राज की प्रतिज्ञा और तपस्या तुरन्त याद आ गई, जो उनकी विस्मृति के गर्भ मे सुरक्षित थी। उसी समय उन्हे पितामह की मृत्यु और शिखन्डी की याद आई। उनका मन कह उठा—"शिखण्डी का जन्म पितामह के वध के लिए हुआ, वह सार्थक हो गया, और धृष्ट द्युम्न मेरी मृत्यु का कारण बनेगा, यह बात भी सत्य ही सिद्ध होगी।" इतना मन मे आना था कि वे धृष्टद्युम्न के तेजमयी मुख को देख कर सिहर उठे। उन्हे वह साक्षात यमदूत प्रतीत हुआ। और शीघ्रता से उन्होने अपने रथ का रुख द्रुपद की ओर घुमवा दिया।

द्रुपद द्रोणाचार्य से भिड गये। भयकर युद्ध होने लगा। क्षण भर मे ही रक्त धारा वह निकली। दोनो ओर से सैनिक 'आह' करके गिरने लगे। तनिक तनिक देर बाद महमाती जीवन ज्योतियां बुझ जाती। शवो के ढेर लग गए। वे सुन्दर युवा शरीर जो किसी परिवार के रक्त थे, रथो के नीचे, घोड़े और हाथियों के पैरों में कुचल जाते। पर दो सिंह, द्रोण तथा द्रुपद उसी प्रकार डटे हुए थे। फिर द्रोण ने अपना रथ पुनः युधिष्ठिर की ओर बढवा दिया।

आचार्य को अपनी ओर आते देख कर युधिष्ठिर अविचलित भाव से गुरुदेव पर बाण वर्षा करने लगे। पहले तीन बाण जा कर आचार्य के चरणो मे गिरे और फिर दूसरे बाण उन को क्षति पहुचाने लगे। पर आचार्य के बाणो की भी झडी लग गई। यह देख कर सत्यजित द्रोणाचार्य पर टूट पडा। भयानक युद्ध छिड़ गया। उस समय द्रोण साक्षात काल का रूप ग्रहण कर गए। उनके बाण पाण्डव पक्षीय वीर सैनिकों के प्राण हरने लगे। पाचाल राज कुमार वृक के प्राण उन के बाणो ने हर लिए और सत्यजित का भी वही हाल हुआ।

यह देख कुपित होकर विराट पुत्र शतानीक द्रोण पर झपटा। पर दूसरे ही क्षण शतानीक का कुण्डलो वाला सिर युद्ध-भूमि पर लुढकने लगा। इसी बीच केदम नामक राजा द्रोणाचार्य के सामने आया, उसने भीषण बाण वर्षा आरम्भ की, पर इस से पूर्व कि वह

द्रोण का कुछ बिगाड़ पाता, उस के ही प्राण पखेरु द्रोण के बाणो से उड़ गए।

द्रोण आगे बढते ही चले गए। उनके प्रबल वेग को रोकने के लिए साहस कर के वसुधान आया और वह भी यमलोक पहुंचा। युधामन्यु, सात्यकि, शिखण्डी, उत्तमौजा आदि कितने ही महारथियो को तितर बितर करते हुए द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के निकट पहुच गए। उस समय अपने प्राणों का मोह त्याग कर द्रुपद राज का एक और पुत्र पाचाल्य बिजली की भांति द्रोण पर टूट पड़ा। वह कितनी ही देरि तक भीषण संग्राम करता रहा। पर अन्त मे वह बिल्कुल उसी प्रकार अपने रथ से नीचे लुढक गया, जैसे आकाश से कोई तारा टूटता है।

उस समय द्रोणाचार्य का अद्भुत रण कौशल देख कर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। वह कर्ण से बोला—'कर्ण! द्रोणाचार्य का पराक्रम तो देखो। पाण्डवो की सेना को कैसे मूली गाजरो की भांति काटते हुए आगे बढ रहे हैं। सारे क्षेत्र मे जो शव ही शव दिखाई देते हैं और रक्त की जो नदी सी बह रही है, वह सब द्रोणाचार्य का ही प्रताप है। मैं कहता हू अब पाण्डव अवश्य ही परास्त हो जायेंगे।"

इधर दुर्योधन ने यह बात कही, उधर भीमसेन, सात्यकि, युधामन्यु, उतमौजा, द्रुपद, विराट, शिखडी, धृष्टकेतु, आदि बहुत से वीर द्रोणाचार्य के सम्मुख आगए और बडा ही भयकर आक्रमण कर दिया।

उधर कर्ण दुर्योधन की बात का उत्तर देते हुए बोला—"दुर्योधन! पाण्डव यूं ही हार मानने वाले नही। वे इतनी जल्दी रण से पीछे हटने वाले। वे कभी उन यातनाओ को नही भूल सकते जो उन्हें विष से, आग से और जुए के खेल से पहुंची थी। वनवास और अज्ञात वास मे हुए उन के हृदय में घाव अभी तक रिस रहे होगे। वे उन सब यातनाओं को भूलने वाले नही। वे अन्तिम क्षण तक मुकाबला करेंगे। और भीमसेन तथा नकुल सहदेव अपने प्राणो की आहुति देकर भी युधिष्ठिर की रक्षा करेंगे। वह देखो पाण्डव पक्षीय कितने ही वीरो ने एक साथ मिल कर द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया है, वे द्रोण के आगे लोहे की दीवार बन गए हैं।

आचार्य कितने भी बलिष्ट और शास्त्र विद्या में पारगत सही, पर सहन करने की भी एक सीमा होती है। हमे ऐसे समय पर चलकर उनकी सहायता करनी चाहिए।"

इतना कह कर कर्ण द्रोणाचार्य की सहायता को आगे बढा और उस के पीछे पीछे ही दुर्योधन का रथ चल पडा।

× × × ×

द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की कितनी ही चेष्टा की, पर द्रुपद, भीम, सात्यकि और विराट आदि उनके आड़े आये और वे लाख प्रयत्न करने पर भी युधिष्ठिर को न पकड पाये। तव दुर्योधन ने एक भारी गज-सेना भीम की ओर बढ़ा दी। भीम सेन ने रथ पर से ही हाथियो पर वाणो की ऐसी वर्षा की कि समस्त हाथी विलबिला उठे। वाणो की वौछार से उन की बुरी दशा होगई। और हाथियों के शरीर रक्त–प्रपात वन गए।

भीमसेन को ज्ञात था कि गज सेना को उसके सामने भेजने की उद्दण्डता किस धूर्त ने की है, अतः गजारोही सेना को निष्काम कर के उसने दुर्योधन के रथ को अपने वाणों का निशाना बनाया। उस के अर्द्ध-चन्द्र वाणों के प्रहार से दुर्योधन के रथ की ध्वजा काट कर गिर गई और धनुष भी टूट गया। दुर्योधन की यह दुर्दशा होते देख कर अग नामक एक नरेश साथी पर सवार होकर भीमसेन के आगे जा डटा। उस से कुपित होकर भीमसेन ने नाराच वाणों की वर्षा की। जिससे कुछ ही देरि में अग का हाथी रक्त से लथ पथ होगया और एक नभ स्पर्शी चिंघाड़ मार कर रण क्षेत्र से भाग पड़ा वेचारा अंग वहुत प्रयत्न करने पर भी जव हाथी को न रोक पाया तो निराश होकर रण भूमि से जाने में ही अपना कल्याण समझ वैठा। उसे रण क्षेत्र से भागता देख सारी कौरव सेना भाग पडी। जो शूरवीर अपने प्राण हथेली पर रख कर रण क्षेत्र में आये थे। इस प्रकार भाग रहे थे मानो भेड़ के झुण्ड पर किसी भेड़िये ने आक्रमण कर दिया है।

हाथियो की सेना का भागना था कि अश्व भी कांप गए और वे भी हाथियो का अनुसरण करते हुए भागने लगे। फिर नम्बर रथो का आया। इस भाग दौड़ मे पदाति सैनिक कुचले जाने लगे।

हाथियो व घोडो के पैरो तले सैकड़ों नरमुण्ड कुचले गए। त्राहि त्राहि और चीख पुकार से सारा क्षेत्र भर गया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो प्रलय आ गई है।

यह देख कर दुर्योधन पक्षीय भगदत्त नरेश से न रहा गया उस ने सेना को रोकने के लिए शख नाद किए। शोर मचाया। गला फाड़ फाड कर चिल्लाया—"रुक जाओ, रुक जाओ; भागो मत, तुम्हे माता के दूध की सौगध।"

परन्तु वहा कौन सुनता था, सब को अपने अपने प्राणो की पड़ी थी, यह देखकर वह अपने सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर, भीम सेन की ओर झपटा। वह हाथी बहुत ही हिंसक प्रकृति का था। ऐसे अवसरो के लिए ही शूर भगदत्त ने उसे पाल रक्खा था।

हाथी ने जाते ही अपनी सूण्ड गदा की भाति बडे जोर से घुमाई और क्षण भर मे ही उस ने भीमसेन के रथ को चूर चूर कर दिया। रथ के घोडो को सूण्ड मे दबा दबा कर दूर फेंक दिया। विवश होकर भीमसेन रथ से कूद पडा और गदा सम्भाल कर उस दुष्ट हाथी की ओर झपटा। वह हिंसक हाथी, भीमसेन को गदा लिए अपनी ओर आते देख कर और भी कुपित हो गया और भीमसेन को अपनी सूण्ड मे दबोच कर मार डालने के लिए दौडा। परन्तु उस समय भीमसेन को एक उपाय सूझा। गदा घुमा कर उस ने हाथी के मस्तक पर फेंक कर मारी और स्वय दौड़कर हाथी के पैरो के पास पहुंच गया उसे हाथियो के मर्मस्थलो का तो पूर्ण ज्ञान था ही, जाते ही घूंसों से हाथी के नीचे के मर्मस्थालो पर चोट करने लगा। वज्रकाय भीमसेन के घुसो की मार से हाथी बिलबिला उठा। पर टांगो से सटे होने के कारण हाथी उसका कुछ न बिगाड सकता था। वह उसे पकडने और घूंसो की मार से बचने के लिए कुम्हार के चाक की भांति चक्कर खाने लगा। पर भीमसेन भी उसे बुरी तरह चिपटा था, वह भी घूमता रहा।

घूमते घूमते अचानक उस हिंसक गज ने भीमसेन को अपनी सूण्ड मे कस लिया और उठा कर दूर फेंक दिया। चोट तो लगी पर क्रोध के मारे भीमसेन जल उठा। दौड कर पुन. हाथी के पीछे से उसकी टांगों मे घुस गया और लगा मर्म स्थलो पर चोटें करने। आखिर हाथी बेचारा उसके घूंसो से तग आगया।

भीमसेन को आशा थी कि शीघ्र ही कोई गजारोही पाण्डव पक्षीय उधर आ निकले गा और भीमसेन को उस के सहारे इस खूंख्वार हाथी से छुटकारा मिल जाये गा, पर किसी का ध्यान इस ओर हो तो कोई आये भी। कितनी ही देरि तक हाथी और भीम सेन के वीच आंख मिचौली का खेल सा चलता रहा। और इधर जब किसी ने भीमसेन को कही न पाया तो पाण्डव पक्षीय सेना मे शोर मच गया—"अरे! भामसेन को भगदत्त के हाथी ने मार डाला।"

इतनी आवाज उठनी थी कि सारी पाण्डव पक्षीय सेना मे कोलाहाल मच गया। यह शोर सुन कर युधिष्ठिर ने भी समझ लिया कि सचमुच ही भीमसेन मारा गया होगा। यह सोच कर उन्हे जितना शोक हुआ उस से अधिक भगदत्त पर क्रोध आया। उन्हो ने अपने जवानो को आदेश दिया कि चलो तुरन्त भगदत्त पर आक्रमण कर दो। भीमसेन के हत्यारे को उस की धृष्टता का फल चखा दो।'

दशार्ण देश के राजा ने अपने लडाकू हाथो पर सवार होकर अपने सगी साथी सैनिको सहित भगदत्त पर भीषण आक्रमण कर दिया। दशार्ण के हाथी ने वड़े जोर से युद्ध किया, फिर भी सुप्रतोक के आगे वह अधिक देर न ठहर सका। सुप्रतीक ने अपने दातो से उस हाथी की पस्लिया तोड डाली। और देखते ही देखते वह भूमि पर लुढक गया. उसी समय भीमसेन को अवसर मिला और वह सुप्रतीक की टांगो के बीच से निकल भागा।

इधर दशार्ण के सैनिक और युधिष्ठिर के भेजे सनिक एक साथ सुप्रतीक पर टूट पडे। उन के वाणो, भालो, गदाओ और तलवारो की मार से सुप्रतीक व भगदत्त की बूरी दशा हो गई तो भी भगदत्त ने हिम्मत न हारी। भगदत्त और सुप्रतीक घायल हो चुके थे, फिर वूढ भगदत्त का कलेजा दावानल की भाति जल रहा था। अपने चारो ओर पडे सैनिको की कोई चिन्ता न कर के, उस ने अपने हाथी को सात्यकि की ओर वढा दिया। क्रुद्ध हाथी ने जाते ही सात्यकि के रथ पर आक्रमण कर दिया और रथ को उठा कर फेंक दिया। सात्यकि फुरती से रथ से कूद गया, वरना कदाचित वह स्वय भी अपने रथ के साथ साथ नष्ट हो जाता। परन्तु सात्यकि

का सारथि बडा कुशल था, ज्यो ही रथ दूर जा गिरा, उस ने दौड कर रथ को सीधा किया, घोडो को पकड कर पुनः जोडा और सात्यकि के पास ले आया। परन्तु रथ की कील कील हिल गई थी, वह युद्ध के काम का न था, आश्रय लेने के लिए सात्यकि उस पर चढ गया अवश्य पर दूर नेजा कर वह उतर गया और दूसरे रथ पर चढ गया।

सुप्रतीक का क्रोध शात न हुआ था, उसने दूसरे पाण्डव पक्षीय सनिकों को मारा, रथ तोडे और घोडो को धाराशाही कर दिया। जो पदाति सामने पडता हाथी उसे ही उठा कर गेंद की भाति फेंक देता, जो रथ सामने आ जाता, उसे ही तोड डालता। इस प्रकार उसने नाश का डका वजा दिया, चारो ओर तबाही सी आ गई। पाण्डव पक्षीय सैनिको मे भय सा छा गया। भगदत्त शान से हाथी पर वैठा पाण्डवो के नाश की इस लीला पर गर्व कर रहा था, मानो इन्द्र अपने ऐरावत गज पर विराजमान होकर असुरों का नाश कर रहे हों।

इतने ही मे भगदत्त ने देखा कि सामने से वाण वरसाता भीमसेन का रथ उसको ओर वढ़ता आ रहा है। भीम अपने धनुष से पैने वाणो की वर्षा कर रहा था। भगदत्त ने अपना हाथी उसी ओर वढ़ा दिया, स्वय वाण वर्षा करनी आरम्भ कर दी। सुप्रतीक ने जब अपने वैरी को रथ पर सवार देखा उसकी आखो मे खून उतर आया। जाते ही रथ पर सूण्ड को गदा की भाति मारने लगा, कुछ ही देरी में रथ की वुरजी तोड डाली और इतने ज़ोर की चिघाड़ मारी कि उसे सुनकर भी भीमसेन के रथ के घोडे भयभीत होकर भाग पडे।

उस समय इतनी धूल उड रही थी कि आकाश की ओर पृथ्वी से वादल से उटते प्रतीत होते। वार वार सुप्रतीक की कलेजे को कम्पित कर डालने वाली चिघाडें उठ रही थी- यह चिंघाडें सशप्तकों का मुकावला करते हुए अर्जुन के कान मे भी पड़ी। सुन कर वह स्तब्ध रह गया। इधर देखा और श्री कृष्ण से वोला— "मधु सूदन ! रण क्षत्र मे धूल ही धूल उड़ रही है। हाथियो की चिंघाड़ सुनाई दे रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि शूर भगदत्त ने अपने सुप्रतीक हाथी पर सवार होकर भयकर आक्रमण कर दिया

है। युद्ध के खूंख्वार हाथियों को चलाने में भगदत्त जैसा संसार मे और कोई नही है। मुझे डर है कहीं भगदत्त हमारी सेना को तितर-बितर करके हमें हरा न दे।"

कृष्ण बोले—"भीमसेन तो वहां है ही। और तुम ठहरे संशप्तको के मुकावले पर, तुम कर ही क्या सकते हो।"

"मधु सूदन! मैं काफी सशप्तको को मौत के घाट उतार चुका। काफी सेना को परास्त कर चुका अब इस मोर्चे को जोडकर पहले मुझे उनकी खबर लेनी चाहिए। देखिये वहा चलना बडा आवश्यक है जहां द्रोणाचार्य युधिष्ठिर से लड रहे हैं।"—अर्जुन बोला।

श्री कृष्ण ने अर्जुन की बात मान ली और रथ उसी ओर घुमा दिया जिधर भीमसेन और भगदत्त के हाथी का युद्ध हो रहा था। पर सुशर्मराज और उसके भाई सशप्तक उसके रथ का पीछा करने लगे और चिलाने लगे—"ठहरो ठहरो जाते कहा हो।"

यह देख अर्जुन बडी दुविधा मे पडा। क्षण भर के लिए किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा होकर सोचने लगा कि "क्या करू? सुशर्मा इधर ललकार रहा है। उधर उत्तरी मोर्चे पर सेना व्यूह टूट रहा है, सकट आ गया है, उधर जाऊ तो सुशर्मा समझेगा कि अर्जुन डर कर भाग गया है। यदि यही डटा रहूं और उधर तुरन्त मदद न पहुची तो किया कराया सब चौपट हो जायेगा और पराजय हो जायेगी।"

अर्जुन अभी इसी सोच विचार मे पड़ा था कि इतने मे सुशर्मा ने एक शक्ति-अस्त्र अर्जुन पर छोडा और एक तोमर श्री कृष्ण पर। सचेत होकर तुरन्त ही अर्जुन ने तीन बाण मारकर सुशर्मा को ईंट का जवाब पत्थर से दे दिया और श्री कृष्ण को तेजी से भगदत्त की ओर रथ दौडा ले चलने को कहा।

अर्जुन के पहुंचते ही पाण्डवो की सेना मे नवीन उत्साह का सचार हुआ। सब जहां के तहां रुक गए और आक्रमण करने के लिए तैयार हो गए। कौरव सेना पर भीषण आक्रमण करके अर्जुन भगदत्त के हाथी की ओर बढा। सुप्रतीक बुरी तरह अर्जुन के रथ पर झपटा, पर श्री कृष्ण की कुशलता के कारण हाथी रथ का कुछ न बिगाड सका। भगदत्त ने श्री कृष्ण और अर्जुन पर भीषण बाण

वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु अर्जुन ने पहले अपने वाणो से सुप्रतीक के कवच को तोड डाला, इस से वाणो का प्रभाव हाथी के शरीर पर होने लगा। गाण्डीव से छूटे वाणों की मार से सुप्रतीक नाचने सा लगा। भगदत्त को वडा क्रोध आया उसने श्री कृष्ण पर एक शक्ति फेंकी परन्तु धनुर्धारी अर्जुन ने शक्ति को अपने वाणो से तोड डाला। तव भगदत्त ने एक तोमर अर्जुन पर चलाया, जो जाकर अर्जुन के मुकुट पर लगा। उसने अपना मुकुट तो सम्भाल लिया, पर कुपित होकर गर्जना की—"भगदत्त लो, अव इस ससार को अन्तिम वार अच्छी प्रकार देख लो।"

कहते कहते अपना गाण्डीव तान लिया। क्रुद्ध भगदत्त के वाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रिया पडी हुई थी, भौहो का चमडा आखो की ओर लटक गया था, उसे देख कर सिंह का स्मरण हो आता था, फिर भी वृद्ध सिंह भगदत्त अपने शील स्वभाव तथा प्रताप के लिए वड़ा प्रसिद्ध था, लोग उसे इन्द्र का मित्र कहा करते थे, अर्जुन की गर्जना सुन कर भी उसने हिम्मत न हारी, वाण चलाता ही रहा। पर गाण्डीव से छूटे वाणो के कारण उस का धनुष टूट गया, तरकश टूट कर दूर जा गिरा। अर्जुन ने भगदत्त के मर्म स्थानो को छेद डाला।

अस्त्र शस्त्र विद्या सिखाते समय उन दिनों यह भी सिखाया जाता था कि कवच धारी के शरीर को वींधने के लिए कहाँ प्रहार करना चाहिए। अर्जुन अपने गुरु द्रोणाचार्य से यह सभी कुछ सीख चुका था, इस लिए उस ने वही वाण जहां वाणो से शरीर विध जाता था। उस ने भगदत्त के सभी अस्त्रो को भी काट डाला। भगदत्त का शरीर लोहुलुहान हो गया। अन्त मे उस ने हाथी का अकुश ही अभिमन्त्रित कर के अर्जुन पर इस प्रकार मारा कि यदि उस समय श्री कृष्ण अपनी कुशलता से रथ को दूसरी ओर न मोड़ देते तो अर्जुन का सिर कट गया होता। हां, अर्जुन तो उस अस्त्र से वच गया, परन्तु वह अभिमन्त्रित अकुश जो प्राणहारी अस्त्र वन गया था, श्री कृष्ण की छाती पर आ कर लगा। परन्तु श्री कृष्ण का यह अस्त्र कुछ न विगाड़ सका। यह सव उन की शुभ प्रकृति का ही प्रभाव समझिए। कुछ लोग इस वात को इस प्रकार मानते है कि वैष्णवास्त्र ने अभिमन्त्रित होने के कारण श्री कृष्ण

की छाती पर लगते ही वह शक्ति बन-माला सी बन कर श्री कृष्ण की शोभा बढाने लगी।

अर्जुन के अभिमान को इस घटना से बडी ठेस लगी। वह श्री कृष्ण से बोला—"जनार्दन! शत्रु द्वारा चलाया हुआ अस्त्र अपनी छाती पर लेना क्या आप के लिए उचित था? जब आप ने प्रतिज्ञा की है कि महाभारत मे आप रथ हांकने के अतिरिक्त और कुछ न करेंगे तो फिर जब धनुष लिए तो मैं खडा हूं, और वार आप सह रहे हैं, यह कहां का न्याय है?"

श्री कृष्ण हस कर बोले—"मैं युद्ध मे तो भाग नहीं ले रहा, पर यदि शत्रु का वार मेरे ऊपर होता है तो फ़िर क्या इस लिए कि मैं युद्ध नही कर रहा, उस से किसी प्रकार बच सकता हूं। मैं सारथि हू इस लिए मेरा धर्म है कि रथ इस प्रकार हाकू कि रथ पर सवार योद्धा को कम से कम हानि हो।"

अर्जुन कुछ न बोला, बल्कि भगदत्त के उस वार का उत्तर दृढता से देने के लिए एक तीक्ष्ण बाण गाण्डीव की डोरी को कान तक खींच कर इस प्रकार मारा कि सुप्रतीक हाथी के मस्तक को काटता हुआ वह बाण इस प्रकार निकल गया जैसे सांप अपने बिल मे जाता है बाण का लगना था कि हाथी के मुंह से चिघाड के रूप मे एक भयकर चीत्कार निकला। और वह वही पृथ्वी पर बैठ गया। भगदत्त ने अपने हाथी को बहुत उकसाया, बडा डांटा डपटा, बार बार उसे सहलाया. पर हाथी जब बैठ गया तो बैठ गया, वह न उठा। पीड़ा के मारे उस का बुरा हाल था, वह रह रह कर चिघाड रहा था बेहाल होकर और पीडा से परेशान होकर वह अपने दांतों से धरती कुरेदने लगा और थोड़ी ही देरि बाद उस विषैले बाण की मार से ही पीड़ित होकर पैर पटक पटक कर उसने प्राण छोड दिये।

यह देख कर अर्जु न को मानसिक दुख हुआ, क्योंकि वह हाथी को मारना नही चाहता था, वह यदि मारना भी चाहता था, तो भगदत्त को, पर भगदत्त बच गया था, उसे देख कर अर्जु न फिर व्याकुल हो उठा। उस ने समझ बूझ कर एक ऐसा बाण मारा जिससे भगदत्त के सिर पर बधी रेशमी पट्टी कट गई। वह पट्टी इस लिए बंधी थी कि भौओं पर की खाल जो बुढ़ापे के कारण लटक

गई थी, उसे पट्टी ऊपर रोके रहती थी। वह खाल ऐसी थी कि उस के लटक जाने पर भगदत्त की आंखें पूरी तरह न खुलती थी। पट्टी का कटना हुआ है कि खाल पुन. आखो के आगे आ गई तब वेचारा भगदत्त अर्द्ध चक्षु हीन होगया और उस की आंखो के आगे अवकार छा गया, तभी गाण्डीव से छूटा एक वाण और आया जो उसकी छाती को चीरता हुआ निकल गया। सोने की माला पहने हुए भगदत्त हाथी पर से नीचे लुढ़क गया। और अभी कुछ देरि पहले जो शूरवीर पाण्डव सेना के लिए काल रूप घर कर आया था, जिस के हाथी ने कोहराम मचा दिया था, वही भगदत्त मिट्टी में लुढकने लगा। और उस के रक्त से दो हाथ मिट्टी लाल कीचड की नाईं हो गई।

भगदत्त के मरते ही पाण्डव सेना में उत्साह छा गया, विजय के शंख वजने लगे। अर्जुन की जय जयकार होने लगी। कौरवो की सेना मे शोक छा गया। परन्तु शकुनि के भाई वृषक और अचल तव भी विचलित न हुए और वे जम कर लडते रहे। उन दोनों मे से एक ने आगे से और दूसरे ने पीछे से अर्जुन पर वाण वरसाने आरम्भ कर दिये। अर्जुन को कुछ देरि तक तो उन सिंह-शिशुओ ने खूब तग किया। पर अन्त मे अर्जुन से न रहा गया, उस ने भयकर वाण वर्षा की और उन दोनों को मार गिराया।

अपने दोनो सुन्दर तथा चवल भाईयों के मरने पर शकुनि के क्षोभ और क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने अर्जुन के विरुद्ध माया युद्ध आरम्भ कर दिया और वे सभी अस्त्र तथा उपाय प्रयोग करने लगा जिनमे उसे कुशलता प्राप्त थी। परन्तु अर्जुन भी किसी वात में कम न था, उसने शकुनि के प्रत्येक अस्त्र को अपने अस्त्र से काट डाला। एक वार शकुनि ने ऐसो शक्ति प्रयोग की जिससे अर्जुन की ओर धुएं का वादल सा उमड पडा। अर्जुन ने उसके उत्तर मे ऐसा अस्त्र प्रयोग किया, जिससे वह धुएं का वादल घूमकर शकुनि की ओर वढने लगा और फिर वेचारे शकुनि को उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया। अन्त मे अर्जुन के बाणों से शकुनि वुरी तरह घायल हो गया। निकट था कि अर्जुन के वाण उसके प्राण लेते कि शकुनि वच कर रण क्षेत्र से भाग निकला। रण से भागते सैनिक पर वीर पुरुष अस्त्र प्रयोग नही किया करते। इस

लिए अर्जुन ने उसे निकल जाने दिया।

भगदत्त के मारे जाने और शकुनि के भाग जाने के उपरान्त तो पाण्डव सेना मे असीम उत्साह आ गया और वह द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पडी मार काट होने लगी। असख्य वीर खेत रहे। कितने ही योद्धा घायल हो गए। रक्त की धाराए बह निकलीं। रण क्षेत्र की भूमि गारे की भाति हो गई। शवों से क्षेत्र पट गया। महारथियो के कवच टूट गए। घोडो की जिव्हा बाहर निकल आई। कौरव सेना का साहस टूट गया, त्राहि त्राहि मच गई।

उधर आकाश में सुर्य आत्मुत्सर्ग की तैयारी कर रहा था। अपना ताप सूर्य ने समेट लिया था और रात्रि के आगमन के लक्षण साफ होते जा रहे थे। इधर कौरवो की सेना की दुर्दशा देखकर पाण्डवो को सेना को और भी प्रोत्साहन मिला। उसने कौरवो के हाथी घोडो को भी धाराशाही करना आरम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य से भी उस समय कुछ करते न बना। इस दशा को देखकर कुछ कौरव महारथी तो मानसिक सन्तुलन तक खो बैठे।

ज्योहो सूर्य अस्त हुआ द्रोणाचार्य ने विनाश के उस अध्याय को स्थगित कर देने मे ही कल्याण समझा। युद्ध के समाप्त करने के लिए शख बजा दिए गए। पाण्डव विजय नाद करते हुए अपने शिवरो की ओर चले और कौरव मुह लटकाए हुए वापिस हुए।

बारहवे दिन का युद्ध इस प्रकार समाप्त हो गया।

* छयालीसवां परिच्छेद *

तेहरवां दिन

ज्योही रात्रि का साम्राज्य समाप्त हुआ और सूर्य की किरणे पृथ्वी को आलौकिक करने लगी, दुर्योधन क्रोध मे भरा हुआ आचार्य द्रोण के शिविर मे गया। उस समय कुछ सैनिक भी वहा उपस्थित थे और सेनापति द्रोण युद्ध का वाणा पहन रहे थे। जाते ही दुर्योधन ने आचार्य को प्रणाम किया और सैनिको की उपस्थिति का परवाह किए विना ही वरस पडा:—

"आचार्य! युधिष्ठिर के निकट पहुंच जाने पर भी आप कल उसे पकड़ न सके। इस का अर्थ मैं क्या लगाऊ? यदि सच मुच आप को हमारी रक्षा की चिन्ता होती और अपने वचन को पूर्ति के लिए आप प्रयत्न शील होते तो मुझे विश्वास है, कल जो कुछ हुआ, वह न होता।"

आचार्य ने शांत मुद्रा मे ही कहा—"कल जो कुछ हुआ उस का उत्तर दायित्व मुझ पर तो नही है शत्रु वल के सामने हमारी न चले, तो इस मे मेरा क्या दोष?"

"नही, नही, यदि आप युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ने का दृढ़ संकल्प किए होते, तो फिर किस में इतनी शक्ति है कि जो आप को इच्छा पूर्ण होने से रोक सके? आप को अपने वचन की चिन्ता ही नही। आप तो ब्राह्मण है न, आप के वचन भी ऐसे ही होते हैं।"—उस समय दुर्योधन का मुख क्रोध के मारे लाल हो रहा था।

दुर्योधन के इन शब्दो से द्रोण को बड़ी चोट लगी। सैनिकों की उपस्थिति मे बात कही गई था, इस लिए उन्हे और भी असह्य हो गई। वह उत्तोजित होकर बोले—"दुर्योधन ! तुम्हारी यह बाते बता रही हैं कि तुम मानसिक सन्तुलन खो बैठे हो। मैंने तो पहले ही कह दिया था कि जब तक अर्जुन हस्तक्षेप करता रहेगा, तुम्हारा उद्धेश्य पूर्ण नही होगा। कल भी ठीक समय पर अर्जुन वहा पहुच गया। फिर मैं क्या कर सकता था, अपना सा प्रयत्न मैंने बहुत किया। और भविष्य में भी करता रहूंगा। क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न होकर भी तुम्हारे मुह से ऐसी बाते निकलती हैं कि आश्चर्य होता है।"

क्रोध तो द्रोण को भी बहुत आया था, परन्तु वे क्रोध को पी गए, अपने को उन्होने शांत कर लिया। दुर्योधन उत्तर मे कुछ कहना ही चाहता था कि द्रोण बोल उठे—"युद्ध का समय होने वाला है। मुझे तैयार हो लेने दो। बातो से काम नही चले गा। युद्ध मे शस्त्र और बल चाहिए। दुर्योधन चुप होकर वापिस चला गया।

कर्ण का दान

रात्रि का प्रथम पहर था। भोजन करके सैनिक विश्राम कर रहे थे। परन्तु अर्जुन के नेत्रों से तो निद्रा सठी हुई थी। वह कभी शैया पर करवटे बदलता, तो कभी व्याकुल होकर उठ पडता और शिविर मे इधर से उधर टहलने लगा। पर उसे शाति किसी भी प्रकार न मिलती। कोई समस्या उसके मस्तिष्क को मथे डाल रही थी। जब किसी भी प्रकार चैन न आया तो वह अपने शिविर से निकल कर श्री कृष्ण के शिविर की ओर चला।

उसने देखा कि मधुसूदन भी शैया पर पडे करवटे बदल रहे है, जसे शैया पर शूल बिछे हो और उनके कारण उन्हे चैन न पडती हो। श्री कृष्ण की व्याकुलता देखकर वह सोचने लगा—"मधुसूदन ! तो स्वय ही चिन्ताकुल है। इस समय उनसे कुछ पूछना ठीक न होगा, जो स्वयं व्याकुल है वह दूसरे की व्याकुलता कैसे दूर कर सकेगा ?— नही, इस समय उनसे कुछ कहना ठीक नही।"—यह सोचकर वह जैसे आया था वैसे ही उल्टे पैरो लौटने लगा।

उसी समय श्री कृष्ण ने पुकार कर कहा—"अर्जुन ! क्यों आये थे और क्यो वापिस चल दिए ?"

अर्जुन के पैर रुक गए, जैसे किसी ने श्रखलाएं डाल दी हो। बोला—"महाराज ! एक समस्या का समाधान कराने आया था। पर यहां देखा कि आप स्वय व्याकुल है। कोई जटिल समस्या आपके हृदय से शूल की भांति खटक रही है। फिर एक व्याकुल दूसरे को

व्याकुलता कैसे हरेगा ? यही सोचकर मैं वापिस लौट रहा हू ।"

"नही, मुझे ऐसी कोई बात नही है । मेरी व्याकुलता का कारण तुम्हारा ही भविष्य है । मैं तुम्हारे ही बारे मे सोच रहा था । बोलो, तुम क्यों व्याकुल हो ?" — श्री कृष्ण ने पूछा ।

"रहने दीजिए, मधुसूदन ! आप जब निश्चित होगे, तभी पूछूगा ।"—यह कह कर अर्जुन ने जाने का उपक्रम किया ।

"अर्जुन ! तुम यो चले जाओगे, तो मुझे एक और चिन्ता आ घेरेगी । बोलो क्या बात हैं ?"—मधुसूदन ने आग्रह करते हुए कहा ।

अर्जुन को रुकना पडा । वह श्री कृष्ण के पास बैठ गया, बोला—"आज मुझे नीद ही नही आती, बार-बार मेरे सामने यही प्रश्न आ खडा होता है कि द्रोणाचार्य को कैसे मारा जाये । वे जब तक जीवित हैं, तब तक हमारी सेना के लिए कालरूप धारण किए रहेगे । हमारी सफलता के लिए उनका बध होना आवश्यक है । पर हम मे से कोई ऐसा नही दीख पडता, जो उन्हे मार सके । आप से यही जानना चाहता हू कि द्रोण को मारने का क्या उपाय है ?"

श्री कृष्ण के अधरो पर मुस्कान खेल गई वे बोले—"पार्थ ! द्रोणाचार्य को मैदान से हटाना कोई बडी बात नही है परन्तु मैं सोच रहा हूं कि करण का क्या होगा ? उसे कैसे मारा जायेगा ?"

"ओह ! बस कर्ण के बारे मे आप चिन्तित हैं ?—अर्जुन ने उतावलेपन से कहा—वह तो मेरे एक बाण का भक्षण है । आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे है ।"

"धनजय ! कर्ण न तेरे बाण का भक्षण है न मेरे । उसे न तुम मार सकोगे न मैं । वह वास्तव मे विकट वीर है, हमारे लिए वही विकट समस्या है ।" — श्री कृष्ण ने कहा ।

अर्जुन को बडा आश्चर्य हुआ उसने कहा—"मधुसूदन ! आप न जाने कर्ण को क्या समझ बैठे हैं ? मेरे विचार से तो उसका बध करना साधारण सी बात है ।"

"नही, कर्ण जहाँ महाबली है, वहीं इस युग मे सब से श्रेष्ठ दानवीर है । उसके पूर्व सचित पुण्य के प्रभाव से उसे मार डालना किसी के बस की बात नही । वह अपनी शुभ प्रकृति के कारण अजेय है । और उस समय तक वह अजेय है, जब तक उसके पास दैवी

कवच, कुण्डल है। जब तक उसके शरीर पर देवता द्वारा दिये गए कवच तथा कुण्डल है, तब तक तुम्हारा कोई अस्त्र भी उसका वध नही कर सकता"—श्री कृष्ण ने कर्ण की अपराजिता का कारण बताते हुए कहा।

यह सुनकर अर्जुन को भी चिन्ता हो गई। उसने पूछा—"तो गोविन्द उसके शरीर से कुण्डल उतरवाने की युक्ति ही सोचिए।"

"बस इसी जटिल समस्या को सुलझाने के लिए मैं व्याकुल हू।"—श्री कृष्ण बोले।

दैवी कवच कुण्डल कर्ण को कैसे मिले? यह जाने बिना कर्ण की कथा अधूरी ही रह जायेगी, इस लिए यहां हम उसे भी बता देना आवश्यक समझते हैं।

युद्ध से बहुत दिनो पूर्व की बात है।

कर्ण की दानवीरता की चर्चा सारे संसार में होने लगी। कोई याचक उस के द्वार से खाली हाथ नही लौटता था। कर्ण की प्रतिज्ञा थी कि याचक यदि प्राण भी मागे तो भी वह उसे निराश न करेगा। धन तथा सम्पत्ति दान में देना तो उस के दैनिक कार्य क्रम की बात थी।

आखिर यह चर्चा देवताओं तक भी पहुंच गई और स्वय इन्द्र ही कर्ण के प्रशसक हो गए।

एक दिन समस्त देवता गण उपस्थित थे। इन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान थे। मृत्यु लोक की बात चल पडी इन्द्र बोले—"भरत खण्ड के दानवीर कर्ण जैसा दानवीर न आज तक कोई हुआ, न है और कदाचित भविष्य मे कोई हो भी न। वह किसी याचक को इकार करना ही नहीं जानता। उसकी प्रतिज्ञा है कि कोई उस के प्राण भी मांगे तो वह प्रसन्नता पूर्वक दे देगा। सारा ससार उसका प्रशंसक हो गया है।"

एक देवता को शंका हो गई। बोला—"महाराज! मुझे इस बात मे सन्देह है। सम्भव है वह धन आदि दान मे दे देता हो, इसी से नाम हो गया हो, पर किसी याचक को वह इंकार नहीं करता; यह गलत बात है।"

"तुम्हे सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा ले लो।" इन्द्र बोले।

"आप की आज्ञा हो तो मैं परीक्षा लू ।"

"हां; हां, तुम्हे पूर्ण स्वतन्त्रता है ।"

इस प्रकार इन्द्र की आज्ञा पा कर देवता कर्ण की परीक्षा को चला और उस ने जाते ही चम्पा पुरी पर जो कर्ण की राजधानी थी, मूसलाधार वर्षा करनी आरम्भ कर दी । लगातार वर्षा होती रही वह ऐसी वर्षा थी कि चम्पापुरी के इतिहास मे उस वर्षा से पूर्व कभी ऐसी घोर वर्षा का उदाहरण मिलता ही न था । वह घोर वर्षा लगातार सात दिन तक होती रही। नागरिको को रोटी के लाले पड गए । क्योंकि लकडियां भीग गई थी । जो कुछ सूखी थी, उन से चार पांच दिन तक रोटिया पकाते रहे । पर फिर तो चूल्हे मे आग जलाना असम्भव हो गया। एक दो दिन तो बेचारो ने किसी प्रकार गुजारा किया, पर जब वर्षा ने रुकने का नाम ही न लिया, तो वे चिल्ल चिला उठे । अपने बच्चों को रोटी के लिए रोते व हा हा कार करते देख कर उनका हृदय चीत्कार कर उठा । सब लोग तग आ गए और अन्त मे विवश होकर वे एकत्रित हो कर कर्ण के पास गए। और जाकर दुहाई मचाई। कर्ण ने उनकी बात सहानुभूति पूर्वक सुनी और उन की विपदा को दूर करने के लिए उस ने अपने भण्डार की सारी लकड़िया नागरिको मे वितरित करदी ।

एक दो समय उन से नागिरको ने काम लिया: पर वर्षा तो रुकने का नाम ही न लेती थी । वह देवता जो इतनी भयकर वर्षा करा रहा था, सोचने लगा कि परीक्षा का समय तो अब आने वाला है। देखता हूं अब नागरिको को कर्ण क्या देता है। उस ने वर्षा और भी तीव्र करदी । नागिरक पुन. कर्ण के पास गए और दुहाई मचाई ।

एक ही सवाल था कि—"महाराज लकड़ियां चाहिए । वरना हमारे बालक भूखों मर जायेंगे ।"

कर्ण ने उनकी बात सुनी और बोला—"प्रजा जन ! घबराओ नही । जब तक मेरे पास लकड़ी का एक भी टुकड़ा रहेगा, मैं देता रहूगा । तुम्हारे बालको को मैं भूखो नही मरने दूगा ।"

और इतना कह कर उस ने धनुष उठाया, चल पड़ा शुद्ध चन्दन से निर्मित अपने राज प्रसाद को गिराने के लिए। कर्ण का

महल वहुत ही विशाल था, जो शुद्ध चन्दन की लकडियों से वनाया गया था उस चन्दन की सुगन्ध ५२ कोस तक जाती थी। चारो ओर वावन कोस तक कर्ण का महल महकता रहता था। करोडो रुपये की लकडी उस मे लगी थी, वर्षों मे वह तैयार हुआ था पर कर्ण ने अपने वाणो से गिरा दिया और सारे महल की लकडिया नागरिको मे बाट दी। जहा विशाल महल था, वहां उजाड-स्थान रह गया पर कर्ण के मुख पर पश्चाताप अथवा खेद का तनिक सा भाव भी नही आया, वल्कि वह वहुत प्रसन्न था कि उस के द्वार से याचक खाली वापिस नही लौटे। वह सन्तुष्ट था और जिन प्रभु के प्रति वार वार कृतज्ञता प्रगट कर रहा था कि उनकी कृपा से वह अपने नागरिको को विपदा से उबार पाया।

यह देख देवता को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह कर्ण के पास पहुचा। उस ने कहा—"धन्य, धन्य दानवीर कर्ण, तुम धन्य हो।"

"क्या तुम्हे भी कुछ चाहिए। वोलो क्या चाहते हो।" देवता को याचक समझ कर कर्ण ने कहा।

"नही राजन्! मैं तो देवलोक से आप की परीक्षा के लिए आया था। देवराज इन्द्र ने जो कहा था, वही सत्य निकला। आप वास्तव मे महान दानवीर है। मैं आप से वहुत प्रसन्न हू।"—देव ने कहा।

फिर कर्ण को उस वर्षा का रहस्य ज्ञात हुआ। देवता द्वारा प्रशसा होने पर भी कर्ण को गर्व न हुआ।

उस देवता ने कर्ण से प्रसन्न होकर कवच तथा कुण्डल दिए और वोला कि जब तक तुम्हारे शरीर पर यह रहेगे, तुम्हे कोई भी शत्रु न मार सकेगा।

तभी से कर्ण के पास वह कवच और कुण्डल थे।

× × × ×

श्री कृष्ण ने कवच तथा कुण्डल कर्ण से लेने की एक युक्ति सोची। उन्होंने किसी प्रकार दोनो पक्षो को तीन दिन तक युद्ध स्थगित रखने के लिए रजामन्द कर दिया और स्वय तेला धारण करके वैठ गए। तीन दिन तक अखण्ड तपस्या की। जिसके कारण स्वयं देवराज इन्द्र को वासुदेव के पास आना पडा। उसने आते ही पूछा—"मधु सूदन! वतलाईये, कैसे याद किया?"

श्री कृष्ण बोले—"युद्ध तीन दिन के लिए स्थगित कराकर मैने आपको बुलाया है। समझ लीजिए कोई महत्त्व पूर्ण कार्य ही होगा।"

"हां, यह तो मैं समझता हूं। अब बताईये भी कि मुझ से आप क्या चाहते हैं?"—इन्द्र ने पूछा।

"बस आप से इतना ही चाहता हूं कि याचक का रूप धारण करके जाईये और कर्ण से दैवी कवच कुण्डल मांगकर ला दीजिए।" —श्री कृष्ण अपने उद्देश्य को प्रगट करते हुए बोले।

"कर्ण के कवच और कुण्डल से आप क्या लाभ उठाना चाहते हैं?"—इन्द्र ने पूछा।

"बात यह है कि कर्ण पर जब तक दैवी कवच कुण्डल रहेंगे, वह किसी प्रकार भी नहीं मारा जा सकता। और बिना कर्ण के मरे पाण्डवों की विजय नही हो सकती, सम्भव है कर्ण के हाथो अर्जुन ही मारा जाये इस लिए दुष्ट दुर्योधन को पराजित करने के लिए कर्ण से कवच कुण्डल ले आने की आवश्यकता है।"—श्री कृष्ण गम्भीरता पूर्वक बोले।

"मधु सूदन! आप भी ऐसे उपाय अपनाकर शत्रु को पराजित करना चाहेगे, यह तो आशा नही थी।"—विस्मित होकर इन्द्र बोले।

"मैं न्याय के पक्ष मे हूं। खेद की बात है कर्ण इतना महान व्यक्ति होते हुए भी परिस्थितियो वश दुष्ट दुर्योधन की ओर है, उस नीच को परास्त करने के लिए मुझ सखेद कर्ण का वध कराने की योजना करनी पड रही है।"—श्री कृष्ण ने कहा।

"लेकिन। कर्ण से धोखा देकर कवच कुण्डल लेना तो अन्याय है। मैं ऐसा कैसे करू? कर्ण महान व्यक्ति है। मुझे उसके चरण छूने चाहिए। उस जसा दानवीर ससार मे और कौन है: फिर आप ही बताईये इतने पुण्यवान से धोखा करना कहा तक उचित है?"- इन्द्र ने श्री कृष्ण की आज्ञा का पालन न कर सकने की अपनी विवशता को दर्शाते हुए कहा।

"कर्ण! इतना दानवीर है कि वह यह जानते हुए भी कि कवच कुण्डल क्यों मांगे जा रहे हैं, वह सहर्ष दे देगा। आप निश्चिन्त रहिए कि इससे आपकी महानता पर आंच नहीं आने वाली। क्योंकि आप जो कुछ करेंगे वह धर्म व आपकी रक्षा के लिए ही करेंगे और

आपके कार्य से अधर्म तथा अन्याय का पक्ष कमजोर होगा।"—श्री कृष्ण ने समझाते हुए कहा।

"क्या आप इस कार्य को किसी दूसरे के द्वारा नहीं करा सकते? कर्ण यह थोड़े ही देखता है कि याचक छोटा है बड़ा। कोई साधारण व्यक्ति भी यदि उक्त याचना करेगा, तो वह उसे निराश नहीं लौटाएगा।"—इन्द्र ने कहा।

"बात इतनी सी ही होती तो आपको कष्ट नहीं दिया जाता—श्री कृष्ण ने कहा—सवाल तो एक और भी गम्भीर है, वह यह कि कर्ण की शुभ प्रकृति के कारण आपका एक देवता, जिसने उसे कवच व कुण्डल दिये थे, उसकी रक्षा मे रहता है। यदि कोई साधारण व्यक्ति जायेगा, तो कदाचित वह देवता विघ्न उत्पन्न कर देगा और हम सफल नहीं हो सकेंगे। इसीलिए आपको स्मरण किया है।"

इस प्रकार श्री कृष्ण ने इन्द्र को बाध्य कर दिया कि वही याचक बन कर जाये। वासुदेव होने के कारण इन्द्र उनकी आज्ञा का पालन करने को विवश था। वह वहां से याचक का वेष धारण करके चल पडा।

उधर उस देवता को भी इस बात का पता चल गया कि इन्द्र याचक बन कर कर्ण से कवच तथा कुण्डल मांगने जा रहा है। उसने कहा :—

आग बन कर तू चला है मैं हवा हो जाऊंगा।
रोग बन कर तू चला है मैं दवा हो जाऊंगा।

और वह इन्द्र के पहुंचने से पूर्व ही कर्ण के पास पहुंच गया और जाकर कहा—"सावधान, कर्ण! सावधान!"

"क्यों क्या बात है?" विस्मित होकर कर्ण ने पूछा।

"अभी ही एक याचक आयेगा—वह देवता बोला—वह आप से दैवी कवच कुण्डल मांगेगा, आप कहीं उसे कवच कुण्डल मत दे बैठना।"

कर्ण ने कहा—"यह भला कैसे सम्भव है, कि कोई याचक आये तथा मुझ से किसी वस्तु की याचना करे, और मैं उसे इन्कार कर दूं। यह तो मेरे स्वभाव के ही प्रतिकूल है। नहीं, मैं उसे निराश नहीं कर सकता।"

"कर्ण ! आप नही जानते कि वह कौन है ?"

'कोई भी हो।"

"वह देवराज इन्द्र है श्री कृष्ण ने उसे भेजा है।"

"यह तो और भी अच्छी बात है कि देवराज इन्द्र याचक बन कर मेरे पास आ रहा है मैं उसे कदापि निराश नही करूगा।'

"परन्तु एक तरफ से वह तुम्हारा जीवन ही तुम से मांग रहा है।"

"प्राणो के रक्षक यत्रो की ही नही, वह चाहे मुझ से प्राण भी माग ले, मैं सहर्ष दे दूगा। यही तो मेरी प्रतिज्ञा है।"

कर्ण का उत्तर सुनकर वह देवता अवाक् रह गया। बहुत समझाया, पर कर्ण न माना। बेचारा निराश होकर चला गया, और सोचता रहा—"यह तो स्वामी ही जा रहा है, अब मैं क्या कर सकता हूं। कोई दूसरा होता तो उसे जाने ही न देता।"

× × × ×

इन्द्र याचक के वेश मे पहुंचे। कर्ण ने बढ़ा कर आदर सत्कार किया। फिर पूछा—"कहिए क्या चाहिए ?'

इन्द्र बोले—"कर्ण ! मैंने आपकी दानवीरता की बडी प्रशसा सुनी है। यदि यह सत्य है कि आप किसी को निराश नही करते तो कृपया अपने दैवी कवच कुण्डल मुझे प्रदान कीजिए।"

सुनते ही कर्ण ने कवच उतारना आरम्भ कर दिया। कुण्डल भी उतार डाले और इन्द्र को देते हुए बोले—'और कुछ ? कुछ और चाहिए तो वह भी माग लो"

अरे इन्द्र कवच और कुण्डल तो क्या वस्तु है तुम जाओ और श्री कृष्ण की सम्मति लेकर आओ और तुम मेरे प्राण मागो देखो मैं देता हूं या नही। कर्ण ने हार्दिक प्रसन्नता के साथ कहा।

कर्ण की दानवीरता को देखकर इन्द्र मन ही मन लज्जित हुए। उन्हे खेद हुआ कि ऐसे महापुरुष से मैंने उसके प्राण ही माग लिए। वे बोले—'कर्ण ! जानते हो मैं कौन हूं ?"

"हा, जानता हू, तुम याचक हो।

"नही, मैं इन्द्र हूं।"

"ग़लत, बिल्कुल ग़लत ! तुम इन्द्र कैसे ? इन्द्र तो मैं हू। तुम तो याचक हो।"

"नही, मैं याचक के रूप मे भले ही हू पर हूं देवता ही।"

"नही, नही, इन्द्र तो मैं हू, जो तुम्हे दान दे रहा हू। तुम इन्द्र कैसे? तुम तो मेरे सामने हाथ फैला रहे हो।"

इन्द्र लज्जित हो गए और मन ही मन कहा—"हां, कर्ण तुम वास्तव मे इन्द्र से भी महान हो।"

इन्द्र ने तब सोचा कि ऐसे महापुरुष के साथ मुझे अन्याय नही करना चाहिए। और उन्होने कहा—"कर्ण! तुम चाहो तो मुझ से कुछ मांग सकते हो।"

कर्ण ने हंस कर कहा—"तुम भला मुझे क्या दे सकते हो। मैं याचक से कुछ मांगू यह मुझे शोभा नही देता। मैं देना जानता हू, मांगना नही!"

इन्द्र ने बहुत चाहा कि कर्ण कुछ मांगे, पर उसने स्वीकार न किया, तब वे स्वयं ही बोले—"लो मैं तुम्हें एक शक्ति देता हूं, जो युद्ध मे किसी भी महान योद्धा को मार सकती है। पर एक ही योद्धा का वध इस से हो सकेगा। तुम चाहो तो किसी पर भी इसे प्रयोग कर सकते हो।"

कर्ण ने हंस कर कहा—"मुझे तुम कुछ न दो तो ही अच्छा है। क्या पता तुम पुनः याचक रूप धारण करके आओ और इस शक्ति को भी वापिस ले जाओ"

"नही, ऐसा नही होगा।"

यह कहकर इन्द्र ने वह शक्ति वही फेक दी और वहां से चल पडे। जाकर कवच कुण्डल श्री कृष्ण को दिए और कहा—"वासुदेव! मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि उस महापुरुष के साथ मेरे द्वारा अन्याय हुआ है। वास्तव मे कर्ण बहुत ही महान पुरुष है। उसकी समता करने वाला संसार मे कोई नही।"

× × × ×

इधर दोनो ओर को सेनाएं रण क्षेत्र मे पहुंच गई। सेनापतियो ने अपनी अपनी सेना को क्रम से खडा किया और आवश्यक हिदायतें करके शख बजाए। कल जो घायल हुए थे, उन मे से भी अधिकतर आज रण क्षेत्र में खडे थे। कौरवो की ओर से युद्ध आरम्भ होते ही संशप्तकों (त्रिगर्त्त देशीय वीरो) ने आज पुनः अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। दक्षिण दिशा की ओर खडे संशप्तको की चुनौती अर्जुन ने स्वीकार की और अपना रथ बढाते हुए उधर चल पड़ा।

निकट जाकर उसने कहा—"तो तुम लोग यमलोक सिधारने के लिए बेताब हो रहे हो।"

सुशर्मा गरज वडा—"तनिक दो दो हाथ करले तब तुम्हे पता चले कि कौन यमलोक सिधारता है।"

अर्जुन ने गाण्डीव उठाया और बाण वर्षा आरम्भ कर दी, सशप्तक भो टिड्डी दल की भाति अर्जुन पर टूट पड़े। घोर सग्राम छिड गया।

अर्जुन के दक्षिण की ओर चले जाने पर द्रोणाचार्य ने अपनी सेना की चक्र व्यूह मे रचना की। यह देख कर पाण्डव सेना का सेनापति धृष्टद्युम्न चिन्तित हो उठा। उसने जाकर युधिष्ठिर से कहा—"राजन्! आज बडी विकट समस्या आ गई। द्रोण ने आज चक्र व्यूह रचा है। उसे कौन तोड सकेगा?"

इतने ही मे द्रोण ने धावा बोल दिया। युधिष्ठिर की ओर से भीम, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुतिभोज, उतमौजा, विराट राज, कैकेय वीर आदि कितने हो महारथी थे। परन्तु चक्र व्यूह मे व्यवस्थित द्रोण की सेमा के धावे को उन सभी सर्व विख्यात महारथियो मे से कोई न रोक पाया। सभी जी तोड प्रयत्न कर रहे थे, भीमसेन कभी धनुष उठाता, तो कभी गदा लेकर चलता। धृष्टद्युम्न कभी किसी ओर से आक्रमण करता, तो कभी किसी ओर से व्यूह तोडने का प्रयत्न करता, पर जहा भी जाता, अपने को घिरा पाता। यह दशा देखकर युधिष्ठिर चिन्तित हो उठे। सैनिको को मोर्चे पर लगाकर उन्होने भीमसेन, नकुल और सहदेव को अपने पास बुलाया। बोले—"आज लगता है हमारी पराजय का दिन आ गया। द्रोणाचार्य ने ऐसे चक्र व्यूह की रचना की है कि हम मे से सिवाय अर्जुन के और कोई इसे तोडने की विधि नही जानता। जिधर से हमारे महारथी, इस व्यूह को तोडने की चेष्टा करते है उसी ओर से अपने को घिरा पाते हैं। हमारे सभी किये कराये पर पानी फिरना चाहता है। अब क्या किया जाये?"

भीमसेन ने कहा—"महाराज! मैं अपने सभी अस्त्र प्रयोग कर चुका परन्तु इस व्यूह का तो रास्ता ही दिखाई नही देता। ऐसा चक्र है कि जिधर से जाता हूं उसी ओर से टिड्डी दल की भांति सैनिक और महारथी टूट पड़ते हैं। मैं स्वय निराश हो चुका हूं।"

नकुल ने कहा—"राजन्! आज लक्षण अच्छे नही दिखाई देते। मै स्वय विस्मित हू कि यह व्यूह है तो कैसा? एक ऐसा चक्करदार किला द्रोणाचार्य ने बनाया है कि हम कुछ कर ही नही पाते।"

सहदेव भी बोला—'महाराज! मुझे तो लगता है कि यह जो कुछ हो रहा है। दुर्योधन और द्रोणाचार्य के पहले से सोचे समझे पडयन्त्र के अन्तर्गत है। द्रोणाचार्य को ज्ञात है कि चक्र व्यूह को तोडना हम मे से कोई नही जानता, जो जानता है, उसे पहले ही हम से अलग कर दिया गया है।"

युधिष्टिर को आशा थी कि भाईयो से परामर्श करके कोई न कोई उपाय निकल आयेगा, परन्तु उन सब की बातों से भी वे निराश ही हुए। अन्त मे सिर पकड कर बैठ गए और शोक विह्वल होकर कहने लगे—"हाय! मैंने समझा था कि यह युद्ध हमारी विपत्तियो को समाप्त कर देगा, परन्तु अब तो यह दीख रहा है कि यह सब कुछ हमारे नाश का सामान हो रहा है। और इस नाश के बीज को बोने वाला मैं ही। मेरे ही कारण हमारे कुल के महान पितामह का वध हुआ, मेरे ही कारण भरत क्षेत्र के असख्य योद्धा मौत के घाट उतरे। मैं ही विनाश का कारण हू। हा देव! अपना विनाश होते मैं कैसे देख सकता हू। इस से तो अच्छा है कि मेरे जीवन ही का अन्त हो जाये।"

भीमसेन ज्येष्ट भ्राता युधिष्ठिर को इस प्रकार विचलित होते देखकर बडा दुखी हुआ और सान्त्वना देते हुए बोला—"महाराज! अब पश्चाताप से क्या लाभ। आपका इस मे क्या दोप? दुष्ट दुर्योधन के पड्यन्त्रो मे हम लोग फसते रहे और विपत्तियो मे पडते रहे। आज भी उसी दुष्ट के जाल मे फसे हैं। पर कोई विपत्ति सदैव नही रहती। समस्त महान आत्माओ का कथन है कि युद्ध में आप ही की विजय होगी। आप सन्तोप करके हमें प्रयत्न करते रहने का आदेश दीजिए। जब तक मेरे शरीर मे प्राण है, मैं आपकी पराजय नही होने दूगा।"

"भैया! तुम से मुझे यही आशा है, पर भेड़िया धसान से क्या लाभ? मैं तुम्हें बिना मौत मरवाकर कैसे सुखी रह सकता हूं? और जब राज्य व सम्पत्ति को भोगने वाले मेरे भाई ही नही

रहेंगे तो मैं इस राज्य को लेकर क्या करूगा ? इस लिए मैं तुम्हारे प्राणो की आहुति दिलाना नही चाहता।"—युधिष्ठिर गम्भीरता पूर्वक बोले।

"राजन्! शत्रु की सेनाएं आगे बढ रही हैं, वह देखिए हमारे सैनिक मिट्टी के पुतलो की भाँति ढहते चले जा रहे हैं। द्रोणाचार्य के रथ से वार-वार विजय शंख की ध्वनि आ रही है। हमारी सेना का मनोबल गिर रहा है। अब बातें करने से काम न चलेगा। चलिए सब मिलकर टूट पड़ें। जिए या मरे, पर हम जीते जी दुष्ट दुर्योधन के हाथ में विजय पताका नही देख सकते।"—नकुल ने उत्साह पूर्वक कहा।

युधिष्ठिर ने पुन दु:ख प्रगट करते हुए कहा—"मुझे पराजय या विजय की इतनी चिन्ता नही, चिन्ता इस वात की है कि मेरा प्रिय भ्राता अर्जुन, जिस पर हमे गर्व है, मेरे लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा रहा है, यदि कही शत्रुओं की विजय हो गई तो हम उस वीर को क्या उत्तर देंगे? "... हा शोक! आज रण क्षेत्र में मुझे यह भी दिन देखना पडा ?"

युधिष्ठिर सिर पकड दु ख प्रगट कर ही रहे थे। कि उधर से अर्जुन पुत्र अभिमन्यु आ निकला, जिसने वाल्यावस्था में ही गत १२ दिन मे वह पराक्रम दिखाया था कि शत्रु उससे उसी प्रकार कांपते थे जैसे अर्जुन से। सभी कहते थे कि अभिमन्यु श्री कृष्ण और अर्जुन से किसी वात मे कम नही। वह आया और आते ही युधिष्ठिर को प्रणाम किया, फिर विस्फारित नेत्रो से सभी पर दृष्टि डाली उन्हें देखते ही उसके विस्मय का ठिकाना न रहा। उसने कहा—"महाराज! आप लोग इस समय किस सोच मे बैठे हैं? आपके चेहरो से तो लगता कि आप पर कोई भारी विपत्ति आ गई है। या कोई भयानक घटना घटी है। आप किस का शोक मना रहे है? उधर शत्रु सेना प्रलय मचाती चली आ रही है। हमारे महारथी तक कान टेक गए। और इधर आप शोकावस्था में बैठे आंसू वहाते से दीख पड रहे है? क्या कारण है? कुछ मैं भी तो जानूं।"

युधिष्ठिर ने गरदन उठाई और उसे अपने पास बुलाकर कहा—"वेटा! तुम्हारी वीरता पर हम जितना भी गर्व करें कम

ही है बारह दिन तक तुमने जिस पराक्रम का प्रदर्शन किया, उस ने हमें भी आश्चर्य मे डाल दिया है। तुम ने, वड़े वडे विख्यात योद्धाओं के दात खट्टे कर दिए है। तुम्हारे अन्दर उत्साह है, वल है और कौशल है। ठीक है हमे इस समय इस प्रकार देखकर तुम्हे आश्चर्य हुआ होगा। पर बेटा! दुःख है कि आज हमारे और तुम्हारे वारह दिन के सफलता पूर्ण युद्ध के कारनामे पर पानी फिर रहा है।"

"क्यों क्या हुआ ?" आश्चर्य से अभिमन्यु ने कहा। "वात यह है कि दुष्ट दुर्योधन के कुचक्र मे फिर एक वार हम फस गए हैं। आज द्रोणाचार्य ने चक्र व्यूह रचा है, परन्तु उस मे प्रवेश करने और उसे तोडने की विधि हम में से कोई नही जानता। वीर अर्जुन जानता था, पर वह तो दक्षिण की ओर संशप्तको से लड़ने गया है। यही वह समस्या है जिसके कारण हम दुखित हैं। कुछ समझ मे नही आता कि क्या करें? आज हमारी पराजय निश्चित है।"—युधिष्टिर ने वड़े प्रेम से अभिमन्यु को समझाया।

अभिमन्यु ने छाती तानकर कहा—"पिता जी यहां नही तो क्या हुआ, उनका पुत्र तो यहां है।"

युधिष्ठिर की आंखो मे तुरन्त चमक आ गई। हर्षातिरेक से पूछा—"क्या तुम जानते हो चक्र व्यूह तोड़ना ?"

"मैं चक्र व्यूह मे प्रवेश करना तो जानता हू परन्तु प्रवेश करने के उपरान्त कही कोई सकट आ जाये तो व्यूह से वाहर निकलने की विधि मुझे ज्ञात नही"—नम्र शब्दो में अभिमन्यु बोला।

भीम को अभिमन्यु की वात से वड़ी प्रसन्नता हुई, उस ने कहा—"प्रवेश करने के उपरान्त संकट की तुम ने एक ही कही। मैं जो तुम्हारे साथ रहूंगा।"

युधिष्ठिर वोले—"हां, हां हम सभी तुम्हारे पीछे पीछे चलेंगे व्यूह को तोडकर एक वार तुम प्रवेश कर लो, फिर तो जिधर से तुम आगे वढ़ोगे, हम तुम्हारे पीछे पीछे चले आवेगे और तुम्हारी सहायता को तैयार रहेंगे।"

भीमसेन ने पुनः कहा—तुम्हारे ठीक पीछे मैं रहूंगा। उस समय तुम्हारे अंगरक्षक जैसा काम करूगा और धृष्टद्युम्न, सात्यकि

आदि वीरो को भी साथ लेलेंगे, वे सब अपनी अपनी सेनाओ सहित तुम्हारा अनुकरण करेंगे। एक बार तुम ने व्यूह तोड दिया, तो फिर यह निश्चित समझो कि हम सब कौरव सेना को तहस नहस करके छोड़ेंगे।

युधिष्ठिर ने तब कुछ सोचकर कहा—"लेकिन तुम्हें कुछ हो गया तो मे अर्जुन भैया को क्या उत्तर दूंगा। नही, यह ठीक नही है। मैं अपनी विजय की कामना के लिए तुम्हे सकट मे नही डाल सकता।"

"महाराज! आप क्यों ऐसी चिन्ता करते हैं। मैं अपने मामा श्री कृष्ण और अपने पिता को दिखा दूँगा कि उनको अनुपस्थिति मे मैं उनके कार्य को पूर्ण कर सकता हू। अपने पराक्रम से मैं उन्हें प्रसन्न कर दूगा।" बड़े जोश के साथ अभिमन्यु ने श्री कृष्ण और अर्जुन की वीरता को स्मरण करके कहा।

"हा, हाँ ठीक है। अभिमन्यु अपने पिता के अनुरूप ही है। और हम जो साथ होंगे: तो इस पर संकट हो कैसे सकता है। मैं अपनी गदा से एक-एक कोरव को मौत के घाट उतार दूगा।"—भीमसेन ने उत्साह दर्शाते हुए कहा।

युधिष्ठिर ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटा! तुम्हारा बल हमेशा बढ़ता रहेगा। तुम यशस्वी होवोगे।"

* संतालीसवां परिच्छेद *

अभिमन्यु का वध

युधिष्ठिर चाहते थे कि अभिनन्यु को किसी सकट में न डाला जाय अतः उन्होने धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, भीमसेन' सात्यकि, नकुल और सहदेव आदि सभी महारथियों को साथ लेकर एक विशाल सेना सहित अभिमन्यु का अनुकरण करना आरम्भ किया।

अभिमन्यु गर्व के साथ अपने रथ पर सवार होकर द्रोण की चक्र व्यूह मे व्यवस्थित सेना की ओर बढ़ा। उसने अपने सारथि को उत्साहित करते हुए कहा—"सुमित्र ! वह देखो द्रोण के रथ की ध्वजा। वस उसी ओर रथ वढ़ाओ। जल्दी करो।"

सारथि ने अभिमन्यु की आज्ञा पाकर रथ को तीव्र गति से उसी ओर हांकना आरम्भ कर दिया। परन्तु रथ की गति से अभिमन्यु सन्तुष्ट न हुआ। उसने रथ को तेजी से हाकने के लिए पुनः सारथि को उकसाया। उत्साह में आकर वह वार-वार कहने लगा —"सुमित्र चलाओ, और तेज़ चलाओ।"

सारथि ने घोड़ो को तेज़ी से हांकते हुए नम्र भाव से कहा —"भैया ! चक्र व्यूह तोडना, वह भी द्रोणाचार्य जंसे रण चातुर्य मे पारंगत विद्या भास्कर द्वारा रचित, वड़ा ही जटिल कार्य है। तुम्हें महाराज युधिष्ठिर ने वड़ा ही भारी काम सौंप दिया है। द्रोणाचार्य अस्त्र विद्या के महान आचार्य हैं और महावली हैं। आप तो उनके सामने अवस्था में अभी विलकुल वालक समान ही हैं। इस लिए एक वार पुन. सोच लीजिए, ऐसा न हो कि ...."

अभिमन्यु सारथि की बात सुन कर हस पडा और बोला— "सुमित्र ! तुम जानते हो कि मैं वासुदेव श्री कृष्ण का भानजा और सर्व विख्यात धनुर्धारी वीर अर्जुन का पुत्र हूं। मेरी रगो मे वह रक्त दौड रहा है कि भय और अशंका तो मेरे पास भी नही फटक सकते। तुम जिन्हे महावली कह रहे हो उस की सारी सेना को मिला कर भी मेरा वल उन से अधिक है। और फिर कुल नायक को चिन्तित पडा देख कर मैं चुप रह जाऊं यह मुझ से नही होगा। तुम चिन्ता मत करो। बस तेज चलाओ। मुझे शीघ्र ही उस ओर पहुचादो"

अभिमन्यु की आज्ञा मान कर सारथि ने उसी ओर रथ वढा दिया। पीछे पीछे अन्य पान्डव वीरो के रथ और उन के सैनिक थे।

× × × ×

आकाश मे सूर्य चमक रहा था, उसकी किरण अग्निबाणों की भाति पृथ्वी पर बरस रही थी, इधर अभिमन्यु का रथ वडे वेग से कौरव सेना की ओर बढ रहा था। तीन तीन वर्ष की आयु के वडे ही सुन्दर, चचल और वेगवान घोडे अभिमन्यु के सुनहरे रथ मे जुते थे। अभिमन्यु की भाति उन मे भी उत्साह था। मानो वे भी शीघ्र ही कौरव सेना मैं पहुंच कर उन के चक्र व्यूह को तोड डालने के लिए उत्सुक हो।

अभिमन्यु का रथ ज्यो ही कौरव सेना के व्यूह के निकट पहुचा कौरव सेना मे हल चल मच गई। "—वह देखो अर्जुन पुत्र अभिमन्यु आ रहा है।" बहुत से सैनिक अभिमन्यु के रथ की ओर सकेत कर के एक साथ चीख उठे।

कुछ दूसरे सैनिक चिल्लाए - "और उस के पीछे पाण्डव-वीर अपनी सेना सहित वडी तेजी से बढे चले आ रहे हैं।"

"अर्जुन न सही अभिमन्यु ही आज प्रलय मचा देगा।" किसी ने आशका प्रकट करते हुए कहा।

'अजी ! द्रोणाचार्य ने आज वह व्यूह रचा है कि अभिमन्यु जैसे कल के छोकरे को तो प्रवेश मार्ग का पता भी नही चलेगा।" एक सैनिक वोला।

"वह भी सिहनी का एक केहरी ही है देखो तो किस शान से चला आ रहा है।" दूसरे ने कहा।

कर्णिकार वृक्ष की ध्वजा लहराते हुए अभिमन्यु के रथ के

कौरव सेना के निकट पहुंचते ही, एक बार तो कौरव सैनिको के दिल दहल गए। सभी मन ही मन सोचने लगे—"वीरता मे अभिमन्यु अर्जुन से किसी प्रकार कम नही। आज के युद्ध में देखना ही चाहिए।"

—और अभिमन्यु का रथ घड़ घडाता हुआ ऐसे आ धमका जैसे छलाँग लगा कर सिंह अपने शिकार के सिर पर आ धमकता है। एक मुहूर्त के लिए तो कौरव सेना की वह गति हो गई जैसे विजली टूटने पर भयभीत असहाय मनुष्य की हो जाती है। आन की आन में अभिमन्यु का रथ आया और बडे वेग से आक्रमण कर के उस ने अपने लिए मार्ग वना लिया। बडे यत्न से वनाया हुआ द्रोणाचार्य का व्यूह देखते ही देखते टूट गया और अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश कर लिया।

जैसे तूफान के सामने आने वाली चट्टाने भी ढहती चली जाती है। इसी प्रकार अभिमण्यु के सामने जो भी कौरव वीर आया वही यमलोक कूच करता गया। जैसे आग मैं पड़ कर पतंगे भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार अभिमन्यु की गति को रोकने की चेष्टा करने वाले कौरव वीर अभिमन्यु के शौर्य की ज्वाला में भस्म हो गए शवों और नर मुन्डों के ढेरो पर से उतरता हुआ अभिमन्यु का रथ आगे ही वढता गया। शिशु सिंह का प्रत्येक वाण यमदूत बन कर निकलता जिस पर पडता उसी के प्राण लेकर छोडता। जिधर से उसका रथ निकलता उधर ही सैनिकों के शव भूमि पर विछ जाते यहा तक कि पैर रखने को स्थान न मिलता। जिधर दृष्टि जाती उधर ही धनुष वाण, ढाल, तलवार, फरसे, गदा, अकुश, भाले, रास, चावुक, शख, नर मंड, कटे हुए मानव अग, फटे कवच, रथो के टुकड़े आदि विखरे पड़े थे। कटे हुए हाथों, फटे सिरो, कुचली हुई खोपड़ियो, हाथ पाव विहीन धड़ो आदि इस प्रकार विछ गए कि भूमि दिखाई ही नहीं देती थी। कौरव सैनिक जान हथेली पर रख कर आते, परन्तु क्षण भर में वे यमलोक सिधार जाते। यह दशा देख कर कौरव सैनिक भय विह्वल होकर इधर उधर भागने की चेष्टा करने लगे।

द्रोण के व्यवस्थित व्यूह की यह दुर्दशा देख कर दुर्योधन विक्षुब्ध हो उठा। उस ने अपने सनिको को फटकारना आरम्भ कर दिया और जव उसकी फटकारो से भी सैनिकों को उत्साह न आया

तो वह स्वय ही जोश मे आकर बाल वीर से जा भिडा। परन्तु दुर्योधन को क्रुद्ध होकर अपने सामने आया देख कर अभिमन्यु की बाछें खिल गई। बड़े जोश से बोला—"आईये ! महाराज में आप ही की सेवा के लिए तो यहा आया हूं। अभी तक आप कहां छुपे हुए थे ?"

दुर्योधन की कनपटी जलने लगी, आवेश में आकर बोला—"क्यो रे छोकरे ! कुछ सैनिको पर तेरा वार क्या चल गया तू होश ही खो बैठा। सिंह की माद मे आकर भी छाती तानता है। ठहर अभी ही तुझे बताता हूं।"

कह कर दुर्योधन अभिमन्यु की ओर झपटा, पर इस से पहले कि वह कोई वार कर सके, अभिमन्यु के वाण उसकी ओर फुफकारे नागो की भाँति झपटे।

"ओह ! तू तो सिपोलिया है।"—इतना कह कर दुर्योधन वही रुक गया और वाण वरसाने लगा परन्तु अभिमन्यु के बाणो के आगे उस के बाण कुछ न कर पाये। दुर्योधन कितनी वार दिशा बदल बदल कर वार करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु अभिमन्यु दुर्योधन के बाणों को बीच ही मे काटता रहा। इस प्रकार दोनो मे घोर युद्ध छिड़ गया। अभिमन्यु के प्रहारो को देख कर कौरव सैनिको को शका होने लगी कि कही महाराज दुर्योधन बालक के हाथो ही न मारे जायें। भयभीत होकर सैनिक शोर मचाने लगे।

द्रोणाचार्य को जब पता चला कि दुर्योधन अभिमन्यु से जा भिड़ा है और वह वीर बालक दुर्योधन का नाको दम किए हुए हैं। उन्हें बड़ी ही चिन्ता हुई और तुरन्त कुछ वीरो को आदेश दिया कि वे जाकर शीघ्र ही दुर्योधन की रक्षा करें। जैसे भी हो दुर्योधन को उस सिंह-शिशु के पजे से सुरक्षित छुडा लें। आदेश पाते ही कितने ही वीर दुर्योधन की सहायता के लिए दौड पड़े।

दुर्योधन अपनी सी बहुत कोशिशें कर रहा था कि किसी प्रकार अभिमन्यु के चक्कर से निकला जाये पर वह वीर बालक उसे छोड़ा लेने दे तभी तो दुर्योधन निकले। इतने में ही द्रोणाचार्य की कुमक वहा पहुंच गई। जब एक साथ कितने ही वीरो ने दुर्योधन की रक्षा करनी आरम्भ कर दी, तो दुर्योधन को बड़ा सन्तोप हुआ। सभी वीर बड़े परिश्रम से अभिमन्यु से युद्ध करने लगे, परन्तु अभि-

मन्यु इतने वीरो के मुकावले पर आने के पश्चात तनिक भी विचलित न हुआ। वह उसी तरह वहादुरी से लडता रहा। यह देख कर दुर्योधन सहित सभी कौरव वीर चकित रह गए और मन ही मन उसकी प्रशसा करने लगे।

कौरव वीर जी जान तोड कर लड रहे थे, इस घोर युद्ध मे दुर्योधन का दांव चल गया, और वह वहां से बच निकला। और "खैर से वुद्धु घर को आये" का कहावत चरितार्थ करता हुए, वह अपने प्राणों की खेर मनाते हुए वहाँ से चला गया।

जव अभिमन्यु ने अपने सामने के योद्धाओं में दुयोधन को न पाया, तो वह पश्चाताप करते हुए सोचने लगा—"अफसोस हाथ मे आया हुआ शिकार वच कर निकल गया।"

उसे दु ख तो हुआ पर युद्ध करने में शिथिलता न आई। उसी प्रकार वह लडता रहा और सोचता रहा कि शीघ्र ही इन वीरों को मार कर वह दुर्योधन को जा घेरे। उस ने वड उत्साह से उन्हे मार भगाया और आगे वडा। इसी आशा से कि आगे कही न कही तो फिर दुर्योधन से सामना होगा और अव की बार वह उसे वच निकलने का अवसर ही न देगा। वह मार काट करता हुआ आगे वढता जा रहा था, पर उसकी चचल दृष्टि वार वार दुयोधन को ही खोज रही थी।

कौरव सेना ने जव देखा कि वालक अभिमन्यु प्रलय मचाता हुआ आगे वढा ही जाता है, और यदि यही गति रही तो शीघ्र ही वह समस्त कौरव सेना को मार भगायेगा, तो युद्ध-धर्म और लज्जा को उसने ताण पर रख दिया। और व्रहुत से वीर इकट्ठे होकर एक साथ चारो ओर से उस वीर वालक पर टूट पड़े। परन्तु जैसे वढ़ती हुई वाढ के मामने रेत के असख्य टोले तहस नहस होते चले जाते हैं, वर्पा-ऋतु मे उफनती नदिया अपनी रेती ले किनारों को ढहाती हुई चली जाती हैं, इसी प्रकार अभिमन्यु अपने सामने आये हुए वीरो को ढहाता, मार काट करता आगे वढ गया। कौरवों की विशाल सेना के मध्य अभिमन्यु मेरु पर्वत की भांति दृढ होकर खडा था, जो टकराता वही टुकड़े टुकड़े हो जाता।

कौरव वीरो मे ही हा हा कार मच गया और यह देखकर द्रोण, अश्वस्थामा, कर्ण, शकुनि आदि सात महारथियों ने अपने अपने

रथो पर चढकर एक साथ ही उस पर हल्ला बोल दिया। इसी बीच अश्नख नासक एक राजा बड़े वेग से अभिमन्यु के सामने पहूचा और जाकर भीषण प्रहार करने लगा। अपने बाणो से अभिमन्यु ने उसके वेग को रोक दिया और दो ही बाणो की मार से उसका शरीर आहत होकर रथ से नीचे-लुढक गया। क्रुद्ध होकर कर्ण ने तब बाण वर्षा आरम्भ की और मुकाबले पर जा डटा। अभिमन्यु ने कर्ण को देखा तो तनिक सा मुस्करा कर बोला—"पिता से पराजित होने की कामना छोडकर पुत्र के हाथो अपनी मिट्टी खराब कराने आये हो तो लो।"

बस बाण वर्षा आरम्भ कर दी, उसके अभेद्य कवच को तोड़ डाला और काफी परेशान किया। कर्ण की बुरी दशा देख दूसरे वीर आ डटे, पर सभी को अभिमन्यु ने अधिक देर तक न टिकने दिया। कितने ही वीरो को अपने प्राणो से हाथ धोना पड़ा। मद्रराज शल्य भी बुरी तरह घायल हुए, और अपने रथ पर ही अचेत पड गए। यह देखकर मद्रराज का छोटा भाई क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और गरज कर बोला—"अभिमन्यु अब सम्भल। देख मैं तेरा काल बनकर आता हू" इतना कहकर वह अभिमन्यु की ओर झपटा, परन्तु अभिमन्यु ने उसके रथ को तोड़ डाला और अन्त मे यह कहकर कि—"जा तू भी, मृत्यु को प्राप्त हो।" एक बाण मारा जो उसके सिर को दो भागो मे विभाजित करते हुए दूर निकल गया।

अपने मामा श्री कृष्ण और पिता वीर अर्जुन से सीखी अस्त्र विद्या को काम मे लाकर कौरव दल के लिए सर्वनाश का दृश्य प्रस्तुत करने वाले अभिमन्यु की वीरता तथा रण कौशल को देखकर द्रोणाचार्य मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। वे गदगद हो उठे। और कृपाचार्य को सम्बोधित करके कहने लगे – 'मुझे सन्देह हैं कि अर्जुन भी इस वीर के समान पराक्रम दिखा सकता है."

द्रोण ने मुग्ध होकर यह शब्द कहे थे, जो दुर्योधन ने भी सुन लिए। अभिमन्यु की प्रशसा द्रोण के मुह से सुनकर दुर्योधन को बडा क्रोध आया। कहने लगा—"आचार्य को अर्जुन से कितना स्नेह है, यह उसके पुत्र की प्रशसा सुनकर ही कोई समझ सकता है। अभिमन्यु ठहरा उनके परम शिष्य का पुत्र। फिर आचार्य उसका

दमन कैसे कर सकते हैं ? वे चाहते तो अब तक भला यह बालक जीता बच सकता था ?"

दुर्योधन का मन अपराधी था, अपराधी जैसे दूसरो की ओर से शंकित रहता है. इसी प्रकार दुर्योधन सदैव ही द्रोण के प्रति सशंक रहता था उसने यह बात कहकर द्रोणाचार्य के मन को अशांत कर दिया। तभी दुःशासन बोला—"राजन् ! द्रोणाचार्य उससे स्नेह रखने के कारण उसे क्षमा कर रहे हैं तो क्या हुआ ? मैं जो हूं। लो मैं अभी ही इस अभिमानी बालक को ठिकाने लगाये देता हूं।"

इतना कहकर वह अभिमन्यु की ओर झपटा। दोनों मे घोर संग्राम होने लगा। वे दोनों एक दूसरे को चकमा देते, पैतरे बदलते और अद्‌भुत अस्त्रो का प्रयोग करके परास्त करने का प्रयत्न करते रहे। जब बहुत देरि हो गई, युद्ध चलते तो एक बार अभिमन्यु ने क्रुद्ध होकर एक तीक्ष्ण बाण मारा, जिसे खाकर दुःशासन पुनः बाण न चला सका। अचेत होकर अपने रथ में ही चित गिर पडा। उसके चतुर साथी ने दुःशासन की दशा देखकर अपने रण को रण स्थल से दूर ले गया। पराक्रमी दु.शासन की पराजय को देखकर कौरवो मे सर्वत्र भय छा गया और जो थोड़े बहुत पाण्डव सैनिक इस दृश्य को देख रहे थे, वे हर्षातिरेक मे अभिमण्यु की जय जयकार करने लगे।

महाबली कर्ण अभिमन्यु की जय जयकार को सुनकर क्रोध से जलने लगा, वह पुनः ताल ठोककर अभिमन्यु के सामने आ डटा। दोनो मे भयकर युद्ध होने लगा, अन्त मे एक बार अभियन्यु ने जोर से कहा—"कर्ण ! पहले तो बच गए थे, अब की बार सावधान।"

कर्ण ने उसी क्षण एक भयानक बाण धनुष पर चढ़ाया पर अभिमन्यु ने उसका धनुष ही तोड डाला। कर्ण दात पीसने लगा, पर अभिमन्यु ने उसे इतना अवकाश ही न दिया कि वह दूसरा धनुष ले सके। तभी कर्ण के भाई सूत पुत्र ने अभिमन्यु पर आक्रमण कर दिया। वह कर्ण का बदला लेना चाहता था, परन्तु अभिमन्यु के एक बाण से ही उसका सिर धड से भिन्न होकर पृथ्वी पर गिर गया। लगे हाथों अभिमन्यु ने कर्ण की भी फिर खबर ले ली और कर्ण को अपने प्राण बचाने के लिए अपनी सेना सहित रण क्षेत्र से हट जाना पड़ा।

कर्ण को जब अभिमन्यु ने खदेड दिया, तो कौरवो की पंक्तिया जगह जगह से टूट गई। सैनिक अपने प्राण लेकर भागने लगे। यह दशा देखकर द्रोणाचार्य को बडी चिन्ता हुई। उन्होने सैनिकों को ललकारा, उन्हें रोका और युद्ध के लिए उकसाया। पर जो भी अभिमन्यु के सामने आने का साहस करता वही मारा जाता। वह उस समय उस ज्वाला के समान था, जिसमें कोई भी सैनिक रूपी लकडी जाने पर धू धू करके जलने लगती थी।

× × × ×

अभिमन्यु तो उस ओर साक्षात यमराज का रूप धारण किए प्रलय का ताण्डव नृत्य कर रहा है। आओ हम दूसरी ओर लौट चलें। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, पाण्डव-वीर अपनी सेना सहित अभिमन्यु के पीछे पीछे आ रहे थे, जब अभिमन्यु ने व्यूह ताड कर अपने लिए मार्ग लिया, और कौरव सैनिक उसकी गति को अवरुद्ध करने के लिए उससे युद्ध करने लगे, तो उधर पाण्डव वीरो ने भी व्यूह मे घुसने की चेष्टा की। परन्तु उसी क्षण जयद्रथ अपने सैनिको को लेकर वहां पहुच गया और उसने पाण्डवों पर भीषण आक्रमण कर दिया। धृतराष्ट्र के भांजे, सिंधु नरेश जयद्रथ के इस साहस पूर्ण कार्य और सूफ को देखकर उस मोरचे के कौरव सैनिको को उत्साह की लहर दौड गई। दूसरी ओर के कौरव सैनिक शीघ्र ही दौडकर वहाँ पहुच गए, जहा जयद्रथ पाण्डव-वीरो का रास्ता रोके खडा था। शीघ्र ही व्यूह मे आई दरार भर गई। इतने सैनिक वहाँ पहुच गए, कि अभिमन्यु ने जिन पंक्तियो को तोड़कर अपने लिए मार्ग वनाया था, वे पूर्ण हो गई और पहले से भी अधिक सुदृढ हो गई। पाण्डव वीर जयद्रथ से टक्कर लेने लगे। व्यूह के द्वार पर युधिष्ठिर तथा भीमसेन जयद्रथ से भिड गए। भीषण संग्राम हो रहा था, कि युधिष्ठिर ने एक वार भाला फेंक कर जयद्रथ पर मारा, जिससे जयद्रथ का धनुष टूट गया। क्षण भर मे ही जयद्रथ ने दूसरा धनुष सम्भाल लिया। और युधिष्ठिर पर बाणो की वर्षा आरम्भ कर दी।

भीमसेन ने जयद्रथ के भीषण आक्रमण के उत्तर में बाण बरसाये और उसके रथ की ध्वजा तथा छतरी कट कर रण भूमि में गिर गई। जयद्रथ का धनुष भी टूट गया, फिर भी वह किंचित-

मात्र भी विचलित न हुआ। उसने पुन: एक दूसरा धनुष सम्भाला और भीमसेन पर ही बाण बरसाने लगा, जिससे भीमसेन का धनुष कट कर गिर गया पल भर मे ही जयद्रथ के बाणो से भीमसेन के रथ के घोडे ढेर हो गए। लाचार होकर भीमसेन को अपना रथ छोडकर सात्यकि के रथ पर चढना पडा।

जयद्रथ ने जिस कुशलता से व्यूह की टूटो किले बन्दी को फिर से पूरा करके और वीरता से पाण्डवो को रोके रखकर व्यूह को ज्यो का त्यो बना दिया और पाण्डवों को व्यूह में प्रवेश न करने दिया, इस लिए अकेला अभिमन्यु कुछ सैनिको सहित ही व्यूह में पहुंच पाया और समस्त पाण्डव-वीर जो सकट के समय अभिमन्यु की रक्षा करने के उद्देश्य से चले थे, व्यूह से बाहर ही रह गए। अभिमन्यु व्यूह में अकेला महाबली होने हुए भी कौरवो का नाश कर रहा था, जो भी उसके सामने आता उसे वह मार गिराता। पाण्डव-वीर बाहर खड़े खडे तो उसका तमाशा देखते रहे या कभी-कभी व्यूह मे प्रवेश करने के लिए भीषण आक्रमण करते रहे। परन्तु जयद्रथ वहा से न टला। उसने एक बार ललकार कर कहा भी—"मैं जीते जी अब किसी को भी व्यूह मे प्रवेश न करने दूंगा।"

—और हुआ भी यही भीमसेन की गदा, नकुल सहदेव का रण कौशल और अन्य वीरो की चतुरता भी किसी काम न आई।

इधर पाण्डव वीर व्यूह मे प्रवेश करने के लिए असफल प्रयत्न कर रहे थे, उधर बालक अभिमन्यु सभी कौरव वीरो और उनकी सेना के बीच खड़ा अपने बाणो से सेना को तहस -नहस कर रहा था। दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण अभी बालक ही था, बिल्कुल अभिमन्यु की आयु का ही परन्तु अभिमन्यु की भाँति उस मे भी वीरता फूट रही थी। उसे भय छू तक न गया था। अभिमन्यु की बाण वर्षा से व्याकुल हो कर जब सभी योद्धा पीछे हटने लगे, तो लक्ष्मण से न रहा गया। वह अकेले ही जाकर अभिमन्यु से जा भिडा। बालक लक्ष्मण की इस निर्भयता तथा वीरता को देख कर भागती हुई कौरव सेना पुन. इकट्ठी हो गई और बालक लक्ष्मण का साथ देकर लड़ने लगी। उस ने बड़े वेग से अभिमन्यु पर बाण वर्षा करनी आरम्भ करदी, पर वे बाण उसे ऐसे लगे, जैसे पर्वत पर मेघ बूंदे।

दुर्योधन पुत्र अपने अदभुत पराक्रम का परिचय देता हुआ बड़ी वीरता से युद्ध करता रहा। जब बहुत देरि हो गई और

बालक लक्ष्मण ने हार न मानी तो आवेश मे आकर अभिमन्यु ने उस पर एक भाला चलाया। केचुली से निकले साँप की भाति चमकता हुआ वह भाला वीर लक्ष्मण के बड़े जोर से लगा। घुघराले बालो वाला वह परम सुन्दर बालक भाले की चोट न सह सका बेचारा घायल हो कर भूमि पर लुढ़क गया और देखते ही देखते कुडल धारी, सुन्दर नासिका व सुन्दर भौहो वाले उस राजकुमार लक्ष्मण के प्राण पखेरू उड गए।

सैनिकों में शोर हुआ—"राजकुमार लक्ष्मण मारा गया। लक्ष्मण काम आया।"

इस शोर को सुन कर विस्मित नेत्रों से दुर्योधन ने भूमि पर तडप तड़प कर प्राण देते अपने प्रिय पुत्र को देखा। वह आपे से बाहर हो गया। उस के नेत्रो मे खून उतर आया, उसका मुख मण्डल प्रातः काल के उदय होते सूर्य की भाँति लाल हो उठा अग अग गरम हो गया और चिल्ला कर कहा—"इस दुष्ट अभिमन्यु का इसी क्षण वध करो मार डालो इस सपोलिये को सब मिलकर मेरे पुत्र के हत्यारे को एक क्षण मत जीवित रहने दो।"

आर्त स्वर मे हा हा कार कर रहे कौरव सैनिक एक दम अभिमन्यु पर टूट पडे।

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य की ओर देखकर कहा—"अब तो आप को सन्तोष आया आचार्य ! मेरे बेटे को मरवा दिया ना।"

दुर्योधन की बात से द्रोणाचार्य के तन, वदन मे आग सी लग गई पर पुत्र शोक का आघात पहूचने की अवस्था मे दुर्योधन को जानकर उन्होने शात भाव से कहा—' लक्ष्मण जैसे वीर के वध होने से किसे दु.ख न हुआ होगा। पर किया ही क्या जा सकता है। मैं तो अपने प्राण देकर भी उसे बचा सकता तो प्रसन्नता होती।"

' आप तो अभी अभी ऐसे खडे हुए हैं मानो कुछ हुआ ही नही। मैं अभिमन्यु को जीवित नही देखना चाहता आचार्य ! अभी ही सब महारथियो को लेकर उस दुष्ट को मार डालना होगा।"—दुर्योधन ने दात पीसते हुए चिल्लाकर कहा।

"एक वीर बालक के मुकाबले पर हम सब का जाना तो युद्ध धर्म के विपरीत होगा।" द्रोणाचार्य बोले।

"युद्ध-धर्म, युद्ध-धर्म-जल कर दुर्योधन ने कहा— क्या है आप का युद्ध धर्म। मेरा बेटा मारा गया और आप ने युद्ध धर्म की रट

लगा रक्खी है। आप सेनापति हैं या धर्म गुरू ? मुझे अभिमन्यु का सिर चाहिए।"

"ठीक है इस दुष्ट को अभी ही मार डालें गे।" समस्त महारथी चिल्लाए।

"चलिए ! देख क्या रहे हैं वह दुष्ट हमारे सैनिकों को खा जायेगा।"—दुर्योधन पुनः गरजा।

द्रोणाचार्य क्रोध मे आकर अश्वस्थामा, वृहद्वल, कृतवर्मा, आदि पांच महारथियो को साथ लेकर तेजी से अभिमन्यु की ओर बढ़े। और क्षण भर मे ही छः महारथियो ने उस वीर बालक को चारो ओर से जा घेरा। अब तक दुर्योधन की आज्ञा पा कर चारो ओर से घरने वालो सैनिकों को अभिमन्यु मौत के घाट उतार चुका था।

कौरव महारथी जी तोड़ कर युद्ध करने लगे। पर अभिमन्यु चारो ओर से प्रहार कर रहे महारथियो का सफलता से मुकाबला करता रहा। उस ने एक बार द्रोण की ओर अबाध गति से बाण बरसाते हुए गरज कर कहा—"आचार्य जी ! क्या यही हैं आप और आप के साथियो की वीरता ? आप तो ब्राह्मण है। विद्वद्वर. धर्म शास्त्रो के ज्ञाता, नीतिवान होकर अधर्म पर कमर बाध ली ? कहाँ गया तुम्हारा युद्ध धर्म ?"

कर्ण की ओर बाण बरसाते हुए उसने ताना मारा—"बड़े दानवीर व नीतिवान बनते हो। हारने लगे तो न्याय और धर्म को ही तिलाजलि दे दो ? धिक्कार है तुम्हारी वीरता पर। दो चूल्लू पानी में डूब मरो।"

चारो ओर बाण वर्षा करता हुआ वह वीर बालक रथ पर खड़ा नाच सा रहा था। अकेला ही छहो महारथियो का डट कर मुकाबला कर रहा था। अपने बाणों से शत्रुओ के बाण तोड़ता और स्वय प्रहार कर के उन के नाको दम कर रहा था। द्रोणाचार्य पूर्ण कौशल का प्रयोग कर के लड रहे थे तभी एक बार पुनः अभिमन्यु ने ताना मारा—"तो आप हैं शस्त्र व युद्ध विद्या के गुरू। दुर्योधन के साथ रह कर लाज, धर्म और नीति सभी बेच खाये। एक बालक को छ महारथियो और उन के सैनिको ने घेर रक्खा है। कहा है आपकी वह विद्या ? कहा है आपकी आंखो का पानी ? क्या वृद्धा-

वस्था मे सभी भूल गए ? युद्ध धर्म को तिलांजलि देदी है तो कुछ कर के भी दिखाओ ।”

बात ठीक थी । उस स्थिति मे उसे यही कहना भी चाहिए था । वह अकेला ही छ महारथियो से टक्कर ले रहा था, फिर भी किसी के वाण उस पर असर न कर रहे थे । शत्रुओ से घिरा होने पर भी उस के मुख पर चिन्ता का कोई लक्षण दिखाई न देता था । वह पहले की ही भांति निश्चिंत हो कर युद्ध कर रहा था । द्रोणाचार्य मन ही मन लज्जित थे, पर लडने पर विवश थे। कर्ण वहुतेरा निशाना वाध कर वाण चलाता पर अभिमन्यु तो क्षण क्षण मे पैंतरे वदल रहा था । अपने निशाने खाली जाने से वह भी घवरा गया, लज्जित भी हुआ और अन्त मे क्रोध भी आया, न जाने अपने पर या अभिमन्यु पर । फिर भी वह लडता रहा । कदाचित अकेला उस स्थिति मे लडता तो अब तक अभिमन्यु के बाणो से विंध गया होता आकाश मे अपने विमानो पर चढे जो देवता इस महा समर को देख रहे थे अभिमन्यु के पराक्रम, वीरता तथा साहस पर मुग्ध हो गए । उनका मन हुआ कि दौड कर इस वीर वालक को छाती से लगा ले ।

तभी कर्ण ने धीरे से द्रोणाचार्य से कहा—“गुरूदेव ! यह वालक है या माया मयी योद्धा । किसी तरह मार ही नही खाता । कुछ कीजिए गुरूदेव ! वरना दुर्योधन हमे अपने वाग्वाणों से वीध डालेगा ।”

द्रोण ने कर्ण को उत्तर देते हुए कहा—“वात यह है कि इस ने जो कवच पहन रक्खा है, वह भेदा नही जा सकता । ठीक से निशाना वाध कर इस के घोडो को रास काट डालो और पीछे की ओर से इस पर अस्त्र चलाओ ।”

कर्ण ने आचार्य के परामर्श के अनुसार कार्य किया । पीछे की ओर से अस्त्र चलाए । अभिमन्यु का धनुप कट गया । तव क्रुद्ध हो कर अभिमन्यु ने ललकारा—“अधर्मियो ! पीछे से अस्त्र चलाते तुम्हें लज्जा नही आई । इसी विरते पर वीर वनते हो । एक वालक के ऊपर यह अन्याय । धिक्कार है तुम्हारे वाहुवल पर ।”

कर्ण रुका नहीं, वह अस्त्र चलाता ही रहा और शीघ्र ही समस्त महारथियो ने मिल कर अभिमन्यु के सारथि और उस के

घोड़ो को मार डाला। वह रथ विहीन हो गया। धनुष भी उस के पास न रहा। पर उस वीर के मुख पर भय का कोई भाव प्रकट न हुआ। वह साहस पूर्वक ढाल तलवार लेकर मैदान में आ डटा उस समय उस के मुख पर अदम्भ वीरता झलक रही थी, मानो क्षत्रियोचित शूरता का वह मूर्त रूप हो।

ढाल तलवार लेकर ही उस वीर ने रण कौशल का ऐसा अदभुत प्रदर्शन किया कि शत्रु विस्मय मे पड़ गए। अभिमन्यु विद्युत गति से तलवार घुमाता रहा और जो भी उस के सामने पड़ा उसी की अच्छी खासी खबर लेता रहा। तलवार का चक्कर इस जोर से उस ने बाधा कि तलवार चलती हो दिखाई न देती थी ऐसा लगता था कि जैसे कोई तेज धार का चक्र उसके हाथो मे हो। पर तभी द्रोण ने उसकी तलवार काट डाली और कर्ण ने कई तीक्ष्ण बाण चला कर उसकी ढाल काट डाली।

उस समय वीर अभिमन्यु का साहस अभूत पूर्व था, जिसने देखा उससे प्रशसा करते न बनी। ढाल तलवार के समाप्त होने ही उसके पास कोई अस्त्र न रह गया था परन्तु उस की सूझ देखिए। दौड़ कर उसने तुरन्त ही टूटे रथ का पहिया हाथ मे उठा लिया और उसे ही चक्र की भाति घुमाने लगा। ऐसा करते हुए लगता था मानो श्री कृष्ण के भाजे के हाथ मे सुदर्शन चक्र आ गया हो। वल्कि मानो सुदर्शन चक्र लिए ही स्वय वासुदेव ही रण क्षेत्र मे आगए हों। द्रोण के मुह से भी हठात निकल गया—"धन्य वीर बालक! तुम अजेय हो।"

रथ के पहिए को ही अस्त्र के रूप से प्रयोग करके कितने ही कौरव सैनिको को मौत के घाट उतार दिया। कुपित होकर यह समझ कर अस्त्रहीन वीर बालक अब कर ही क्या सकता है, कौरव सैनिको ने उसे चारो ओर से घेर लिया। भालो, गदाओ, तलवारों और वाणो से उस पर आक्रमण करने लगे और कुछ ही देरि मे वीर अभिमन्यु के हाथ का रथ का पहिया चूर—चूर हो गया। इसी बीच दु:शासन पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर आ झपटा। परन्तु दूर पड़ी एक गदा अभिमन्यु के हाथ भी लग गई। दोनों मे घोर युद्ध छिड़ गया। दोनों वीर एक दूसरे पर भयकर गदा प्रहार करते रहे दोनों ही कई बार गिरे, पुन: उठे और भिड़ गए। दूसरे सैनिक

भी कभी कभी दुःशासन के पुत्र का साथ दे देते। अभिमन्यु बुरी तरह घायल हो चुका था, उसका सारा शरीर चूर-चूर हो रहा था एक बार जब दोनों गिरे तो अभिमन्यु के उठने मे कुछ देरि हो गई। दुःशासन का पुत्र तनिक पहले ही उठ खडा हुआ। तब तो समस्त कौरव चिल्ला उठे—"मारो, देर न करो।" और उसने अभिमन्यु पर गदा का एक भीषण प्रहार किया। अभिमन्यु गदा की मार से उठ न सका। फिर क्या था, कितने ही प्रहार उस पर हुए। जब कौरव सैनिको ने उसे बेजान समझ कर छोडा, तो अभिमन्यु ने अपनी डूबती आवाज मे कहा—"अरे पापियो एक व्यक्ति को चारो ओर से घेरकर मारना कहा का धर्म है? जाओ अब भी मुझे विश्वास है कि मेरे पिता तुम दुष्टों के इस अन्याय का बदला लेगें। तुम अपने किए पर पछताओगे और तुम्हारी वह गति होगी कि तुम्हारी सन्तानो तक तुम पर थूकेगी विश्वास रक्खो अधर्म तथा अन्याय की कभी विजय नही होगी"

फिर उसने अपनी डूबती आवाज मे धीरे धीरे कहा—"मातेश्वरी! तुम्हे अन्तिम प्रणाम। खेद कि मैं अन्तिम समय तुम्हारे दर्शन न कर सका। पिता जी! आप जहाँ भी हो, मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें। आप विश्वास रक्खें कि आप के पुत्र ने आपके नाम को बट्टा नही लगाया। आप मेरी त्रुटियो को क्षमा कर दे और इन दुष्टो को इन के अपराध का अवश्य दण्ड दे। .. मामा जी! आप कहा हैं, आपका भानजा शत्रुओ के बीच अकेला प्राण दे रहा है जहा हो मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें।" इतना कहते कहते उसकी जबान बन्द होगई। आंखे फिर गई और गरदन एक ओर लटक गई।

सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के शव को घेर कर कौरव जगली व्याधो की भाति नाचने कूदने और आनन्द मनाने लगे। लेकिन जो सच्चे वीर थे उनकी आंखो मे आसू आ गए। आकाश के पक्षी तक चीत्कार करने लगे और देवतागण उस वीर बालक के शव पर पुष्प पंखुडियाँ बरसाने लगे। यह देख कर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया। द्रोण का मुख लज्जा से लटक गया।

जब कौरव वीर अभिमन्यु की मृत्यु पर आनन्द मना रहे थे और रह रह कर दुर्योधन, दुःशासन के पुत्र और द्रोणाचार्य की जय

जयकार मना रहे थे, उस समय ही युधिष्ठिर व्यूह से बाहर खड़े अभिमन्यु की पताका और रथ कही न देख कर मन ही मन सशंक हो उठे और अपने धडकते हृदय से वार वार पूछने लगे—यह जय जयकार कैसी ? कहीं सुभद्रा पुत्र......"

आगे उनसे कुछ न कहा जाता

एक महारथी ने द्रोण को उल्लास पूर्वक कहा—"आचार्य ! आज बडी कठिनाई से उस दुष्ट का अन्त हुआ। कैसा शुभ दिन है आज कि......"

"आज हम सब परास्त हो गए। हम सब पथ विमुख हो गए। आज शोक का दिन है।" द्रोण बोले।

सुनकर दुर्योधन की आखों मे खून उत्तर आया।

* अठतालीसवां परिच्छेद *

पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य रक्त के आंसू बहाता हुआ शोक मे डूब रहा था, उधर कुरुक्षेत्र मे सूर्य मुख अभिमन्यु अन्तिम स्वासे ले रहा था कौरव वीर बिल्कुल वैसे ही आनन्द मना रहे थे जसे जगली असभ्य लोग किसी मनुष्य की अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि देकर आनन्द मनाते, नाचते गाते हैं। बार बार शख ध्वनियां हो रही थी; बार बार जय जयकार की गगन भेदी आवाज गूज जाती। युधिष्ठिर का मन सशक हो उठा। उनका रोम रोम काप उठा।

तभी किसी ने समाचार दिया—"सुभद्रा पुत्र वीर अभिमन्यु मारा गया। कौरव महारथियों ने उस वीर बालक को चारो ओर से घेर कर हत्या कर डाली।"

युधिष्ठिर के हृदय पर भयंकर आघात हुआ। वे अपने को सम्भाल न सके। उनकी पलकें भीग गईं। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। कुछ कह नही पाये। भीम, नकुल और सहदेव को भी बड़ा दुख हुआ परन्तु इस से अधिक दुख उन्हें महाराज युधिष्ठिर की दशा देख कर हुआ।

सूर्य अस्त हो गया। युद्ध बन्द कर दिया गया।

× × × × × × ×

अपने शिविर में शोकातुर युधिष्ठर रह रह कर अभिमन्यु की वीरता और अपनी भूल पर कुछ न कुछ कह बैठते। सभी पाण्डव

जयकार मना रहे थे, उस समय ही युधिष्ठिर व्यूह से बाहर खड़े अभिमन्यु की पताका और रथ कही न देख कर मन ही मन सशंक हो उठे और अपने धडकते हृदय से बार बार पूछने लगे—यह जय जयकार कैसी ? कही सुभद्रा पुत्र . . ."

आगे उनसे कुछ न कहा जाता

एक महारथी ने द्रोण को उल्लास पूर्वक कहा—"आचार्य ! आज बड़ी कठिनाई से उस दुष्ट का अन्त हुआ। कैसा शुभ दिन है आज कि......"

"आज हम सब परास्त हो गए। हम सब पथ विमुख हो गए। आज शोक का दिन है।" द्रोण बोले।

सुनकर दुर्योधन की आखों मे खून उत्तर आया।

* अठतालीसवां परिच्छेद *

अर्जुन की प्रतिज्ञा

पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य रक्त के आंसू बहाता हुआ शोक मे डूब रहा था. उधर कुरुक्षेत्र मे सूर्य मुख अभिमन्यु अन्तिम स्वासें ले रहा था कौरव वीर बिल्कुल वैसे ही आनन्द मना रहे थे जसे जगली असभ्य लोग किसी मनुष्य की अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि देकर आनन्द मनाते, नाचते गाते हैं। बार बार शख ध्वनियां हो रही थी; बार बार जय जयकार की गगन भेदी आवाज गूज जाती। युधिष्ठिर का मन सशक हो उठा। उनका रोम रोम काप उठा।

तभी किसी ने समाचार दिया—"सुभद्रा पुत्र वीर अभिमन्यु मारा गया। कौरव महारथियों ने उस वीर बालक को चारो ओर से घेर कर हत्या कर डाली।"

युधिष्ठिर के हृदय पर भयकर आघात हुआ। वे अपने को सम्भाल न सके। उनकी पलकें भीग गई। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। कुछ कह नहीं पाये। भीम, नकुल और सहदेव को भी बड़ा दुख हुआ परन्तु इस से अधिक दुख उन्हे महाराज युधिष्ठिर की दशा देख कर हुआ।

सूर्य अस्त हो गया। युद्ध बन्द कर दिया गया।

× × × × × × ×

अपने शिविर में शोकातुर युधिष्ठर रह रह कर अभिमन्यु की वीरता और अपनी भूल पर कुछ न कुछ कह बैठते। तभी पाण्डव

महारथी वहा बैठे उन्हे सान्त्वना दे रहे थे। युधिष्ठिर बोले—"हा, शोक । कृपाचार्य, दुर्योधन कर्ण और दु शासन को खदेड देने वाला परम प्रतापी मेधावी वीर बालक अभिमन्यु मेरी ही भूल के कारण मारा गया । अब मैं अर्जुन को क्या उत्तर दूगा । जब वह अपने प्रिय पुत्र को मुझ से पूछेगा तो मैं किस मु से कहूगा कि मैंने अपनी विजय की कामना से चक्र व्यूह मे भेज कर मरवा डाला । सुभद्रा और उत्तरा जब मुझ से उस वीर की मृत्यु के लिए उत्तर मागेगी ता मैं कैसे कहूगा कि वह बालक मेरे लिए रण करता हुआ शहीद हो गया । हाय ! सुभद्रा का लाल और उत्तरा का सुहाग मेरे रहते हुए दुष्ट कौरव महारथियों द्वारा मारा गया और मैं कुछ न कर सका । नही, नही उसकी मृत्यु का जिम्मेदार मैं हू । मैंने ही उसे चक्रव्यूह मे भेजा था । ससार क्या कहेगा ? यही ना, कि युधिष्ठिर ने अपने भाग्य की आग मे अर्जुन पुत्र की आहुति देदी ।"

युधिष्ठिर को इस प्रकार विलाप करते देख कर समस्त उपस्थित पाण्डव वीरो का हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था । भीमसेन ने सान्त्वना देते हुए कहा— 'महाराज ! वीर अभिमन्यु मरा नही, वह अमर हो गया, उस ने ऐसे पराक्रम का प्रदर्शन किया कि शत्रु तक मंत्र मुग्ध हो गए। वह आज भी, अब भी जीवित है। उस ने अपने पिता और अपनी माता का नाम उज्जवल कर दिया । धन्य है अर्जुन, धन्य है सुभद्रा । हमे उस के लिए शोक नही करना चाहिए। वह वीर गति को प्राप्त हुआ ।'' पर प्रेम मोह शक्ति जिन्हो मे है उन्हें दुख होता ही है ।

कहने को तो भीम ने यह शब्द कह दिए, पर स्वय उस का हृदय भी उस के शब्दो से सन्तुष्ट नही हो रहा था । यह तो सभी जानते हैं कि जिस ने जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन मरना है । शोक और विलाप करने से भी कुछ होता नही, फिर भी महान-आत्माए तक अपने प्रिय व्यक्तियो की मृत्यु पर विलाप करती ही हैं । अभिमन्यु का विछोह तो ऐसा विछोह था कि सुनने वाले भी बेवस रो पड़े । उसकी वीरता और शत्रुओं के अधर्म की गाथा ने तो और अग्नि मे घृत की आहुति का काम किया ।

युधिष्ठिर सुबकते हुए बोले—"मैं किस तरह अपने मन को समझाऊ । उस वीर की मृत्यु ने मेरे मन को क्षत-विक्षत कर दिया

है। ऐसा लगता है मानो वीर बालक मेरी आखो के सामने अदम्य उत्साह से शत्रु के व्यूह की ओर बढ रहा है और कह रहा है—"ताऊ जी! आप चिन्ता मत करें यह शत्रु तो कुल मिला कर भी मेरी शक्ति के सोलहवें भाग के बराबर भी नही, मैं अभी ही उन्हें मार भगाता हू।"—ओह! किस उत्साह से वह गया। पलक झपकते ही उस ने कौरवो का व्यूह तोड कर अपने लिए मार्ग बना लिया। और हम सब मिल कर भी उस व्यूह मे प्रवेश न कर सके। पापी जयद्रथ ने मुझ से मेरे वीर-बालक को छीन लिया।"

सात्यकि बोला—"राजन्! अब इस शोक से क्या लाभ धैर्य रखिये। अर्जुन उन दुष्टो मे से एक एक से अभिमन्यु की हत्या का बदला लेगा। आप की ही यह दशा है तो सोचिये कि उस की क्या दशा होगी, अभिमन्यु जिस के दिल का टुकडा था अर्जुन अभी आता ही होगा। आप ही हैं जो उसे सान्त्वना दे सकते है। इस लिए सम्भलिए और अर्जुन को धैर्य बन्धाने के लिए तैयार हो जाईये। उस वीर बालक की मृत्यु पर आसू बहाना आप को शोभा नही देता आप को तो गर्व होना चाहिए कि आप के परिवार का एक बालक सारी शत्रु सेना को नाको चने चबा गया और यदि शत्रु दल अधर्म पर न उतरता, तो वह विजय पताका फहराता हुआ लौटता।"

"आप जो कह रहे हैं अक्षरश सत्य है। पर मैं क्या करू दिल तो नही मानता। मैं सोच रहा हू कि जब राजकुमारी उत्तरा विधवा के वेश मे बाल खोले हुए मेरे सामने से निकलेगी तो मैं अपने हृदय को कटने से कैसे रोकूगा? सुभद्रा के नेत्रो से बहती अश्रुधारा को कैसे रोकूगा। वह दोनो सन्नारीया मुझे जीवित देखकर क्या कहेगी? यही ना कि राज्य पाने के लिए स्वयं तो जीवित रहा, और अभिमन्यु की बलि दे आया।"—दुख-विह्वल होकर युधिष्ठिर ने कहा।

द्रुपद बोले—"राजन्! मौत में किसका चारा है, कौन है जो मृत्यु को रोक सके। मौत किसी के टाले नही टलती। एक दिन सब ने मरना ही है। आप कर ही क्या सकते थे। जिन भगवान के वचन अटल हैं—

जान ही लेने की हिकमत में तरक्की देखी,
मौत का रोकने वाला कोई पैदा न हुआ।"

इसी प्रकार सभी महाराज युधिष्ठिर को सान्त्वना दे रहे थे। पर युधिष्ठिर बार-बार अपने मन को समझाते, पर हृदय मे उठ रहे शोक के तूफान को वे रोक न पाते।

युधिष्ठिर के शिविर मे शोक और विलाप चल रहा था, सान्त्वना तथा धैर्य के वार्तालाप हो रहे थे कभी कभी कोई वीर अभिमन्यु की वीरता के राग छेड़ देता, कोई उसके असीम साहस का गुणगान करता, तो कोई उसके उठ जाने से हुई हानि को याद करके रो उठता। शोक सभा थी वह, प्रत्येक एक दूसरे को धैर्य बन्धा रहा था, और प्रत्येक आसूं भी बहाता जाता था। उस वीर बालक की मृत्यु पर युधिष्ठिर के शिविर में ही नही कौरवो के भी शिवरो मे शोक प्रकट किया जा रहा था जाने वाला जा चुका था, हा उसकी बाते रह गई थीं उसकी चर्चा शेष थी—

छुप गए वे साज़ हस्ती छोड कर।
अब तो बस आवाज़ ही आवाज़ है।

× × × ×

संशप्तकों का सहार करके जब अर्जुन अपने शिविर की ओर लौट रहा था, बार-बार उसका मन किसी अज्ञात शोक से बोझल हो जाता। बार-बार उसके मन पर कोई आघात सा लगता और वह आप ही आप शोक विह्वल सा हो जाता। उसने एक बार श्री कृष्ण से कहा—"मधुसूदन! न जाने क्यो मेरा मन दुखित हो रहा है। बार-बार कोई अज्ञात खेद मेरे हृदय पर छा जाता है और ऐसा होता है मानो मेरे हृदय पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा हो। मेरा मन बोझल हो रहा है, आंखें बरस पड़ने को हो रही हैं। जाने क्या बात है?"

श्री कृष्ण मुस्करा पडे—"शत्रुओ का सहार करके लौट रहे हो और बता रहे हो अपने मन को दुखित, बडे आश्चर्य की बात है। सम्भव है मन मे तुम्हारे कोई आशका छुपी हो, हमे कभी कभी विश्वास का रूप धारण करके तुम्हारे मन को शोकातुर कर जाती हो। पर यह तो युद्ध है, इस मे कितनी ही घटनाए ऐसी भी घट सकती हैं, जिन्हें सुनकर ही तुम्हारे हृदय पर वज्राघात हो। किन्तु तुम्हे दुखित होना शोभा नही देता। धैर्य और साहस से काम लो"

अर्जुन शांत हो गया। परन्तु कुछ ही दूर आगे आने पर जब

सका रथ शिविर के इतना निकट हो गया कि वह शिविर के सामने खड़े व्यक्ति को देख सके, दुखित होकर फिर बोला—'गोविन्द! आज कुछ लक्षण ही उलटे हो रहे हैं। प्रतिदिन जब मैं युद्ध से लौटता था, तो सभी मेरे स्वागत को बाहर निकल आते थे। मेरा पुत्र वीर अभिमन्यु शिविर से बाहर खडा मुस्कराता होता, पर आज तो कोई भी नही दीख पड रहा, बल्कि शिविर के सामने खडा सैनिक भी बार-बार मुझे देखकर सिर नीचा कर लेता है। कही कोई दुखद घटना तो नही घट गई? आज मेरे दक्षिण की ओर चले जाने के पश्चात्, सुना है, द्रोणाचार्य ने चक्र व्यूह रचा था। उसे तोडना मेरे अतिरिक्त हम में से और कोई नही जानता। हाँ अभिमन्यु को अभी मैं चक्र व्यूह मे प्रवेश करना ही सिखा सका हूं, व्यूह से निकलना अभी उसे नही बताया कहीं महाराज युधिष्ठिर या मेरे किसी दूसरे भ्राता के ऊपर कोई विपत्ति तो नही टूट गई? मेरा हृदय बोझल हो रहा है। मुझे सारा शिविर शोक में डूबा प्रतीत हो रहा है। क्या कारण है?"

"धनजय! विश्वास रक्खो कि युधिष्ठिर का वध कोई कर पायेगा, अभी ऐसा कोई नही जन्मा।—श्री कृष्ण ने घोडो की रास ढीली करते हुए कहा—रहो किसी के युद्ध मे काम आने की बात, सो दावानल जले और उसमे लोग कूदें तो यह आशा करना कि दावानल का उन पर कोई प्रभाव ही नही होगा, मूर्खता है। युद्ध में आये हैं तो कितने ही प्रियजन मारे ही जायेंगे। मरने वालो का शोक करने से क्या लाभ? जो आया है उसे जाना ही है। जब भीष्म जैसे मारे गए तो दूसरों की तो बात ही क्या? फिर भी निश्चित रहो, तुम्हारे भाईयो मे से सभी सुरक्षित हैं।"

अर्जुन का मन फिर भी दुखित रहा, वह शोक को अपने से अलग न कर पाया। बोझल मन लिए वह शिविर पर जाकर उतरा, तो सैनिको ने उसे सामने देखकर गरदन झुका ली। उसका हृदय धडक उठा।

'क्या बात है?"

सैनिक कुछ न बोला।

उसने पुनः प्रश्न किया—"यह रोनी सी सूरत क्यो बना ली है? क्या कोई विशेष घटना हुई?

सैनिक ने अपनी दृष्टि पृथ्वी पर जमा दी और पैर से मिट्टी कुरेदने लगा।

अर्जुन सिहर उठा,—"अभिमन्यु आज कहा गया ?"

सैनिक पुनः कुछ न बोला।

आहत पक्षी की भांति उसका मन तड़प उठा। वह अन्दर गया, जहां युधिष्ठिर अपने भ्राताओ तथा सगी-साथियों सहित बैठे थे। जाते ही उसने चारो ओर दृष्टि डाली। सभी की गरदनें लटक रही थी। अर्जुन के मन मे खेदयुक्त आशका का बवडर उठ खड़ा हुआ। उसने युधिष्ठिर को प्रणाम किया और छूटते ही पूछा—"क्या बात है आप इस प्रकार मुरझाये हुए क्यो बैठे है ? क्या हुआ है ? क्या कोई... ...?"

उसने उपस्थित वीरो पर दृष्टि डाली। उसके सभी भ्राता और अन्य स्नेही बन्धु बान्धव वहाँ बैठे थे। फिर पूछा—"महाराज! आप सभी के चेहरे क्यो उतरे हुए है ? क्या बात हुई है ? आप सभी शोक विह्वल दिखाई देते है ?

महाराज युधिष्ठिर फिर भी कुछ न बोले। किस मुंह से वे उस दुखद समाचार को सुनाते। उनका मन तुरन्त चीत्कार कर उठने को हुआ, पर अपने को उन्होने नियन्त्रित किया।

"आप मौन क्यो हैं, बताईये, मुझे शीघ्र बताईये, हुआ क्या है ? मेरा मन आशकित हो गया है। अभिमन्यु कहाँ है, वह रोज की भांति आज कही दिखाई क्यो नही पड़ता ?"—अर्जुन ने पूछा।

कुछ कहने के लिए युधिष्ठिर ने मुह खोला, पर आवाज कण्ठ में ही अटक कर रह गई।

अर्जुन ने दुखित होकर कहा—"तो क्या मेरा प्रिय पुत्र.. ..."

आगे वह कुछ न कह पाया, उसके नेत्रो मे आसू आ गए।

"हम ने तो बहुत प्रयत्न किया कि उस वीर बालक की सहायता को पहुंचे पर ..."

युधिष्ठिर के इतने शब्द सुनकर ही अर्जुन ने सारी बात समझ ली। उसके मन पर भयकर वज्राघात हुआ वह खड़ा न रह सका और बालको की भांति बिलख बिलख कर रोने लगा। उसके रुदन को देखकर अन्य वीर भी अश्रुपात करने लगे।

अर्जुन ने विलाप करते हुए कहा—"हाय! मैं कही का न

रहा। मेरे लिए आज सारा संसार अंधकारपूर्ण हो गया। अब मैं सुभद्रा को क्या जवाब दूंगा। और राजकुमारी उत्तरा जिसके हाथों की मेहन्दी भी अभी तक न मिटी, उसको क्या कहकर सान्त्वना दूंगा। हा ! जिसका पालन पोषण मैंने इतने प्यार से किया, जिसके कौशल, साहस और वीरता पर मुझे सदा ही गर्व रहा, मेरे रहते वह होनहार मुझे बिलखता छोड़ कर मुझ से मुंह मोड़ कर चला गया। हा ! मेरा गाण्डीव, मेरा भुजबल उस सुकुमार मेरे हृदय पाश के किसी काम न आ सका। ओह ! जब मैंने द्रोणाचार्य द्वारा चक्र व्यूह रचना की बात सुनी थी, मेरा माथा तो तभी ठनका था। पर खेद कि मैंने संशप्तकों का सामना छोड़कर आत्म सम्मान को ठेस देना गवारा न किया। मैं क्या जानता था कि मेरे चार महाबली भ्राताओं और अनेक महारथियों के रहते हुए शत्रु उस वीर बालक को निगल जायेंगे ? मैं होता तो एक बार उसकी रक्षा के लिए साक्षात यमराज से भी टकरा जाता और प्राण रहते मैं उसे संसार से मुंह न मोड़ने देता। हाय ! सुभद्रा सोचती होगी कि उसका लाल शीघ्र ही विजय सन्देश लेकर आयेगा, उत्तरा उसके स्वागत के लिए आरती का थाल सजाए बैठी होगी। द्रौपदी उससे उसके शत्रुओं के संहार का शुभ सम्वाद सुनने के लिए बेताब बैठी होगी। लेकिन वह वीरवर चला गया। और मैं असहायों की भांति रोने के लिए रह गया।"

अर्जुन की हिचकियां बंध गईं। जो वीर सदा सिंह की भांति गर्जना करता रहता था, जो सदा साहस और वीरता की बातें करते रहने के लिए प्रसिद्ध था, जिसके नेत्रों से सदा हर्ष, उत्साह, यौवन, साहस, आलोक, तेज और चिनगारियां निकलती थीं, वह अश्रुपात कर रहा था। देखने वालों से भी न रहा गया और वे अपने करुण क्रन्दन को तो बड़ी कठिनाई से रोक पाये पर अपनी आंखों से बहती अविरल अश्रुधारा को किसी प्रकार भी न रोक पाये।

अर्जुन ने फिर अपने को धिक्कारते हुए कहा—"टूट जाओ ऐ अतुल्य बलवाहिनी भुजाओं टूट जाओ, फट जा ऐ वज्र के समान विशाल छाती फट जा, जब मैं अपने लाडले की रक्षा ही न कर सका तो फिर मुझे तुम्हारी क्या जरूरत। नहीं, नहीं मुझे नहीं चाहिए

यह शरीर।

उसी समय श्री कृष्ण ने उसे समझाते हुए कहा—धनजय ! तुम्हें क्या हो गया है ? अपने को सम्भालो। तुम तो शत्रु के लिए साक्षात काल हो। तुम्हारी आखो मे आंसू ? छी. छीः तुम्हे यह शोभा नही देता। मुझे तो आशा थी कि इस दु.खद समाचार को सुनकर तुम्हारे नेत्रो से क्रोध की चिंगारियां निकल पड़ेंगी और तुम वीर-अभिमन्यु के हत्यारों से बदला लेने के लिए बेचैन हो जाओगे। परन्तु तुम तो नारियों की भाँति विलाप करने लगे। वह वीर वीर-गति को प्राप्त हुआ है, उस पर अश्रु बहाना उसका अपमान करना है। धनंजय ! मनुष्य सभी कुछ टाल सकता है, पर मृत्यु को टालना उसके वस की बात नही। जिसने जन्म लिया है उसे मरना ही है। हां,

फूल तो दो दिन बहारे गुलिस्तां दिखला गए।
हसरत उन गुंचो पे है, जो बिन खिले मुरझा गए।"

परन्तु वह वीर तो कली होते हुए भी अपने अभूत पूर्व गुणो से अपने को अमर कर गया। अर्जुन ! आत्मा कभी नही मरता, वह चोला बदल सकता है, परन्तु उसका कभी नाश नहीं होता। अभिमन्यु के शरीर को शत्रुओ ने निर्जीव कर दिया तो क्या हुआ, उस की आत्मा जिस रूप मे भी जायेगी, उसी रूप मे वह अपना उज्ज्वल रूप दिखायेगी। तुम विश्वास रक्खो कि वह वीर मर कर भी अमर है। उसने तुम्हारे नाम को उज्ज्वल ही किया है। तुम्हें गर्व होना चाहिए कि तुम्हारी अनुपस्थिति में उस ने वही काम किया जो तुम्हे करना चाहिए था।"

इसी प्रकार कितनी ही प्रकार से श्री कृष्ण अर्जुन को धैर्य बन्धाने लगे। वे अभिमन्यु के मामा थे, उस की मृत्यु से उन्हें भी धक्का लगा, पर उन के लिए शोक और हर्ष समान ही थे। उन्होंने अनेक धार्मिक गाथाए सुना कर और जिन प्रभु की वाणी बताकर इस नश्वर ससार की वास्तविकता दर्शाते हुए अर्जुन को धैर्य बन्धाया जब श्री कृष्ण के उपदेश से अर्जुन को कुछ सन्तोष हुआ तो उस ने युधिष्ठिर से कहा—"महाराज ! मुझे यह तो बताईये कि वीर अभिमन्यु किस प्रकार मारा गया और कौन उसकी हत्या के लिए

जिम्मेदार हैं !"

तब युधिष्ठिर बोले—"तुम्हारे सशप्तकों से युद्ध करने जाने के उपरान्त द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह रचा। हम में से कोई उस व्यूह को तोडना नही जानता था, हमारी सेना का संहार होने लगा मैं बड़ा ही दुखी हुआ। तभी उस वीर ने आकर बताया कि वह व्यूह मे प्रवेश करना जानता है। हमने सोचा कि हम भी उस के पीछे व्यूह मे चले जायेगे ताकि सकट के समय हम उस की रक्षा कर सक। यह सोच कर मैंने उसे व्यूह तोडने की आज्ञा देदी। और हम सब उस के पीछे पीछे चले। एक विशाल सेना हमारे साथ थी, परन्तु पापी जयद्रथ ने हमारा रास्ता रोक लिया और वीर अभिमन्यु तो व्यूह मे चला गया, जयद्रथ ने हमें न जाने दिया वह वीर अकेला ही शत्रुओ को तहस नहस करता हुआ आगे बढता रहा। जहा से व्यूह टूटा था जयद्रथ ने अपने सैनिको से वह दरार तुरन्त भर दी और फिर दुष्ट कौरव महारथियो ने मिल कर चारो तरफ से घेर कर उसे मार डाला"

इतना सुन कर ही अर्जुन की भृकुटि धनुष के समान तन गई आखो में ज्वाला झाकने लगी और उस ने उसी समय प्रतिज्ञा की—'मैं अपने गाण्डीव की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हू कि कल सूर्य अस्त होने से पहले ही दुष्ट जयद्रथ का जो मेरे पुत्र के वध का कारण बना सिर काट डालूंगा। अन्यथा मैं स्वय ही जीवित चिता मे प्रवेश करूगा।"

अर्जुन की प्रतिज्ञा सुन कर वहां उपस्थित पाण्डव कांप उठे। बडी ही दृढ़ प्रतिज्ञा थी। और सभी जानते थे कि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा अवश्य ही पूर्ण करेगा। श्री कृष्ण भी उस की प्रतिज्ञा सुन कर विस्मित रह गए।

उस के बाद युधिष्ठिर ने सारी कथा विस्तार सुनाई। जिसे सुन कर अर्जुन बिगड़ कर बोला—"द्रोणाचार्य को लज्जा न आई। एक बालक को छः महारथियो ने घेर कर मारा, इस अधर्म पर वे डूब न मरे। अच्छा कोई बात नही मैं इस युद्ध मे इन सबको मौत के घाट उतार दूंगा।"

फिर उस ने अपनी दृढ प्रतिज्ञा को दोहराया और कहा कि

"यदि जयद्रथ की रक्षा के लिए आचार्य द्रोण और कृप भी आ जाए तो उन को भी मैं अपने बाणो की भेंट चढ़ा दूगा।"

यह कह कर अर्जुन ने अपने गाण्डीव का जोर से टकार किया और श्री कृष्ण ने पाचजन्य बजाया और भीमसेन बोल उठा—"गाण्डीव की यह टकार, और मधुसूदन के
धृतराष्ट्र के पुत्रो के सर्वनाश की सूचना है।"
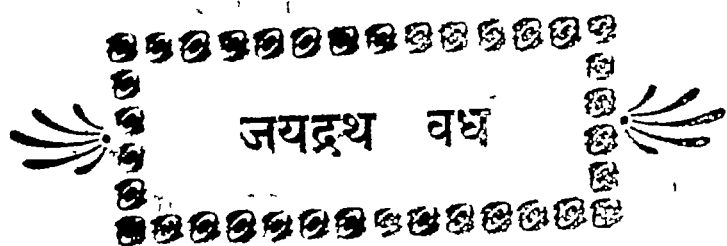
जयद्रथ अपने शिविर में विश्राम कर रहा था, तभी एक दूत ने आकर प्रणाम किया।

"क्या बात है ?"

"राजन् ! अभी अभी हमारे जासूसों ने सूचना दी है कि अर्जुन ने कल सूर्यास्त से पहले पहले आप का वध करने को प्रतिज्ञा की है। वह या तो सूर्यास्त से पूर्व ही आप को मार डालेगा अन्यथा स्वय जीवित ही चिता में जल मरेगा।"

जयद्रथ को जैसे बिजली का नगा तार छू गया हो। एक दम व्याकुलता से उठ खड़ा हुआ। उसकी आखे फटी सो रह गई। पूछा—"क्या कहा ? अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है ?"

"जी हाँ।"

वह खडा न रह सका, आसन पर गिर सा पडा। "अब क्या होगा ?"—यह थे वे शब्द जो उसके मुह से निकले। उसके बाद वह चिन्ता मग्न हो गया। न जाने क्या सोचता रहा।

कुछ देरि बाद वह कहता सुना गया—"लेकिन मैंने तो अर्जुन के पुत्र को नही मारा, मैंने तो एक भी वाण उस पर नही चलाया। मैं तो अभिमन्यु का हत्यारा नहीं। फिर अर्जुन मुझ पर क्यो कुपित हुआ ?"

कुछ देरि तक फिर उसके मुंह पर मौन छा गया। वह

तडप रहा था, मानो उस के हृदय मे विष से बुझा तीर चुभ गया हो

'दुर्योधन ! सुना आप ने ? अर्जुन ने मुझे कल सूर्यास्त तक मारने की प्रतिज्ञा की है।"—भय विह्वल जयद्रथ ने दुर्योधन से जाकर कहा।

दुर्योधन ने उसका भय विह्वल चेहरा देखा तो स्वय व्याकुल हो गया—"हां, दूतो ने ऐसा ही समाचार दिया है।" उस ने कहा।

"तो फिर अब क्या होगा ?"

"जो होगा देखा जाये गा। चिन्ता क्यों करते हो ?"

"नही दुर्योधन ! अर्जुन अपनी बात का धनी है, वह मुझे मारे बिना न छोड़ेगा। देखो तो अभिमन्यु को मारा किसी ने और फल भोगे कोई हैं न यह अन्याय। मुझे तो अपने देश लौट जाने की आज्ञा दे दीजिए। बस मैं अब और यहा नही ठहर सकता।"—कापता हुआ जयद्रथ बोला।

"क्या कह रहे हो ? युद्ध छोड कर चले जाना चाहते हो ?" विस्मित होकर दुर्योधन ने प्रश्न किया।

"हां, मुझे नही चाहिए यह युद्ध आप के साथियो ने वास्तव मे अभिमन्यु के साथ अन्याय किया, और अब उस अन्याय का बदला मुझ से लिया जायेगा। मैं दूसरे की आई मे क्यो मरू ? मुझे तो बस आज्ञा दीजिए ताकि मैं अभी ही अपने देश लौट जाऊ।"—जयद्रथ ने अपनी मानसिक दशा का परिचय देते हुए कहा।

दुर्योधन समझ गया कि जयद्रथ बुरी तरह घबरा गया है, उस ने उसे धीरज बधाते हुए कहा—'आप भय न करें, मैं विश्वास दिलाता हू कि अर्जुन आपका बाल भी बांका नही कर सकता। आप की रक्षा के लिए मैं कर्ण चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल्य, वृषसेन पुरुमित्र, जय, कांभोज, सुदक्षिण, सत्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख दुःशासन, सुबाहु, कालिगव, अवन्तिदेश के दोनो राजाओ, आचार्य द्रोण, अश्वस्थामा, शकुनि आदि समस्त महारथियों को लगा दूगा। हम प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेंगे। फिर अर्जुन की क्या मजाल है आप के पास भी फटक सके। प्रसन्नता की बात तो यह है कि कल को हम आप का पता भी न चलने देंगे। और सूर्यास्त

होने पर हमारा मुख्य शत्रु अर्जुन स्वय ही जीवित जल मरेगा। इस लिए आप को तो प्रसन्न होना चाहिए कि क्रोध मे आकर हमारा शत्रु स्वय ही अपने नाश का जाल रच गया।"

"किन्तु यदि अर्जुन ने मुझे खोज निकाला तो ?"

"मैं कहता हू हम तुम्हे ऐसे स्थान पर रक्खेंगे कि हम सब मारे गए तभी अर्जुन आप के पास तक पहुच सकता है, जो कि असम्भव है।"

"अर्जुन बड़ा वीर है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नही।"

मैं समझता हूं कि भय के मारे आप पर अर्जुन को भूत सवार हो गया है।"

जयद्रथ स्वयं भी एक महाबली था पहले तो भय के मारे वह अपने मनोभावो को छुपा न सका, पर जब उसे दुर्योधन का सहारा मिला और कुछ धैर्य बधा तो वह आत्म सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा के लिए सचेत होगया और दूर्योधन की अन्तिम बात से वह स्वयं ही आत्म ग्लानि के मारे कुछ कह सकने योग्य न रहा। हां उसने इतना अवश्य कहा—"दुर्योधन ! कल यदि थोडी सी भी भूल हो गई, तो आप अपने एक परम सहयोगी से हाथ धो बैठेंगे।"

"नही, ऐसा कदापि नही होगा।" दृढ़ता से दुर्योधन बोला।

जयद्रथ सन्तुष्ट होकर वहा से चला गया तो दूर्योधन ने एक भयकर अट्टहास किया और फिर स्वय ही बोला—"अवश्य ही मेरा भाग्य जाग रहा है। आज भयकर शत्रु, अर्जुन पुत्र अभिमन्यु का पत्ता कटा और कल अर्जुन भी समाप्त हो जायेगा। फिर तो विजय का श्रेय मुझे मिला ही रक्खा है।"

उस के पापी मन ने शंकित होकर पूछा—"और यदि अर्जुन जयद्रथ तक पहुच गया तथा उसका बध कर डालने मे ही सफल हो गया तो ? ......स्मरण है कि उस के सारथि हैं श्री कृष्ण और सहयोगी हैं भीमसेन,, धृष्टद्युम्न आदि।"

वह बोला—"तो भी मेरा ही लाभ है, जीत फिर भी मेरी ही है क्योंकि जयद्रथ के पिता की भविष्य वाणी के अनुसार जो जयद्रथ का सिर काट कर भूमि पर गिरा देगा उसी के सिर के उसी समय सौ टुकड़े हो जायेंगे। जयद्रथ का पिता बड़ा ही पुण्यवान

तथा शुभ प्रकृति वाला व्यक्ति है, उसकी बात कभी असत्य सिद्ध नही होगी। इस लिए मेरे तो दोनों हाथो मे लड्डू हैं। जीत हर प्रकार से मेरी ही है। अहा हाइ हाइ हाइ"

वात-यह थी कि सिन्धु देश के प्रसिद्ध नरेश वृद्ध क्षय के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रक्खा गया जयद्रथ। बडी तपस्या के पश्चात यह पुत्र हुआ था। इस कारण वडा ही आनन्द मनाया गया। ज्योतिषियो से इसके जीवन के सम्बन्ध मे पूछा गया। तब उन्होने बताया कि जयद्रथ वडा ही यशस्वी व परम प्रतापी राजा बनेगा, किन्तु एक श्रेष्ठ क्षत्रिय के हाथो सिर काटे जाने से इसकी मृत्यु होगी।

यद्यपि वृद्ध क्षय बडा ही धर्म ध्यानी, सच्चरित्र, सुशील, गुणी, विद्यावान और धर्म के मर्म का ज्ञाता था, और वह जानता था कि यह शरीर नाशवान है, आत्मा अपने किए कर्मों का फल भोगता ही है, उसे अपने कर्मानुसार चोले बदलने हाते हैं, जिसे जीवन मिला, उसके लिए मृत्यु अवश्यमभावी है तथापि बडे वडे ज्ञानियो और तपस्वियो तक को अपने प्रिय जनो की मृत्यु पर खेद होता ही है अत. वृद्ध क्षय भी घोर तपस्या से प्राप्त पुत्र रत्न की मृत्यु की भविष्य-वाणी सुनकर व्यथित हो गया और उसने कई सप्ताह निराहार जाप किया, फिर घोषणा की कि जो मेरे पुत्र का सिर काट कर पृथ्वी पर गिरायेगा, उसी क्षण उसके भी सिर के सौ टुकडे हो जायेगे।

जयद्रथ के व्यस्क हो जाने पर वृद्ध क्षय ने राज-सिंहासन पर जयद्रथ को बैठाया और स्वय पच महा व्रती, साधु वृति धारण कर ली।

द्रोणाचार्य अपनी शैय्या पर पडे करवटे बदल रहे थे। जयद्रथ वहा पहुचा और चरण पकड कर प्रणाम किया। फिर विनीत भाव से पूछा—"आचार्य! इस समय आने के लिये मुझे क्षमा करें। मैं यह जानना चाहता हू कि आप ने मुझे और अर्जुन को एक साथ ही अस्त्र-विद्या सिखाई थी। क्या हम दोनो की शिक्षा मे कोई अन्तर है? अर्जुन मुझ से किसी बात मे अधिक तो नही?"

द्रोण जानते थे कि यह प्रश्न क्यों पूछा गया है, वे बोले—

"जयद्रथ ! तुम दोनों को मैंने तो एक जैसी ही शिक्षा दी थी। परन्तु आपने लगातार अभ्यास और अपनी कठिन तपस्या के कारण, साथ ही अपने पूर्व संचित पुण्य तथा शुभ प्रकृति के कारण अर्जुन तुम से बढा-चढ़ा है इस में कोई सन्देह नही।"

जयद्रथ का हृदय कांप उठा। बोला—"तो फिर क्या अर्जुन मुझे . . ?"

"नहीं, नही, तुम्हे भयभीत न होना चाहिए—द्रोण ने बात समझते हुए बीच मे ही कहा—कल हम ऐसे व्यूह की रचना करेंगे जिसे तोडना अर्जुन के लिए भी दु साहस होगा। उस व्यूह के सबसे पिछले मोरचे पर हम तुम्हे रक्खेंगे, तुम्हारी रक्षा मे अनेक वीर रहेंगे। व्यूह के अगले मोरचों पर मैं स्वय रहूंगा। फिर तुम तो क्षत्रिय हो। अपने पूर्वजो की शानदार परम्परा को जीवित रखते हुए निर्भय होकर युद्ध करो। यमराज तो हम सब का पीछा कर रहे हैं, अन्तर इतना है कि कोई पहले जाता है, किसी को पीछे जाना है। सभी को अपने अपने कर्मो का फल भोगना है, तुम्हे भी और मुझे भी। तुम या मैं इस से बचकर भागकर और कही जा ही कहा सकते हैं।"

सारी रात बेचारे जयद्रथ ने व्याकुलता से गुजारी। बिल्कुल उसी सैनिक की भाँति जिसे स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर उसके सिर पर नंगी तीक्ष्ण तलवार बाल में बांध कर लटका दी गई हो। उसे चारों ओर अर्जुन ही गाण्डीव लिए हुए दिखाई देता।

× × × × × × ×

पक्षियो का कलख आरम्भ हो गया, अधकार की चादर को विदीर्ण करती सूर्य की स्वर्णिम किरणें फूट निकलीं। छावनियो मे चहल पहल आरम्भ हो गई। ज्यो ही सूर्य की किरणे सफेद हुईं, द्रोणाचार्य अपने शिविर से बाहर निकले, तैयारी का शख नाद हुआ और कुछ ही देरि बाद सेनाएं रण क्षेत्र में पहुच गईं। द्रोणाचार्य अपनी सेना की व्यवस्था में लग गए। सबसे पीछे जयद्रथ को अपनी सेना व सरक्षकों के साथ रक्खा गया। उसकी रक्षा के लिए भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वस्थामा, शल्य वृषसेन आदि महारथी अपनी सेनाओं सहित सुसज्जित खड़े थे। इन वीरों की सेना और पाण्डवों की

सेना के बीच में शस्त्रधारियों मे श्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने एक भारी सेना को शकट चक्र-व्यूह मे रचा शकट व्यूह के अन्दर कुछ दूर आगे पद्म-व्यूह बनाया। उससे आगे एक सूत्री-मुख-व्यूह रचा। उस व्यूह मे जयद्रथ सुरक्षित था। शकट व्यूह के द्वार पर स्वय द्रोणाचार्य खडे हुए. उस दिन उन्होने सफेद वस्त्र धारण किए हुए थे, उनका कवच भी सफेद रग का था। उनके रथ के घोडो का रग भी सफेद ही था। वे अपने अपूर्व तेज के साथ प्रकाशवान ह रहे थे। व्यूह की व्यवस्था तथा मजबूती देखकर दुर्योधन को धीरज बधा।

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्मर्षण ने कौरव सेना के आगे लाकर अपनी सेना खडी कर दी. उस सेना मे एक हज़ार रथ, एक सौ हाथी, तीन हज़ार घोडे, दस हजार पैदल और डेढ हज़ार धनुर्धारी वीर सुव्यवस्थित रूप से खडे थे। अपनी इस सेना के आगे अपना रथ खडा करके दुर्मर्षण ने अपना शख बजाया और पाण्डवो को युद्ध के लिए ललकारा—

"कहा है वह अर्जुन, जिसे अपने बल पर बडा अभिमान है, जिसके बारे मे पाण्डवो ने उडा रक्खा है कि उसे युद्ध मे परास्त ही नही किया जा सकता। कहा है वह ? आये तो हमारे सामने। मैं अभी ससार को दिखा दूगा कि अभिमानो का सिर नीचा होता है। वह हमारी सेना से टकराकर इसी प्रकार चूर चूर हो जायेगा जिस प्रकार मिट्टी का घडा पहाड़ से टकराकर टुकड़े टुकडे हो जाता है।"

अर्जुन ने चुनौती सुनी तो पाण्डवो की व्यवस्थित सेना से निकलकर दुर्मर्षण की सेना के सामने आ खड़ा हुआ और अपना शंख बजाया, जिसका अर्थ था कि उसे चुनौती स्वीकार है। उस ने गरज कर कहा—"दुर्मर्षण ! घबराते क्यों हो, तुम्हे अभी ही अपनी शक्ति का पता चल जायेगा, ठीक ही कहा है कि जब चींटी की मौत आती है तो उसके पंख निकल जाते हैं।"

कौरव सेना में बार-बार शख बजने लगे। तब अर्जुन ने श्री कृष्ण को कहा—"केशव ! अब रथ दुर्मर्षण की सेना की ओर चलाईये, उधर जो गज सेना है, उसको तोडते हुए अन्दर घुसेंगे।"

जाते ही अर्जुन ने दुर्मर्षण की सेना पर भयंकर प्रहार किया।

गज सेना उसके बाणो का ताव न ला सकी और कुछ ही देर में तितर बितर हो गई। दुर्मर्षण बार-बार ललकारता रहा। पर सेना मे उत्साह का सचार न हुआ। बल्कि जो भी वीर अर्जुन के सामने आया, वही मृत्यु को प्राप्त हुआ। तीव्र अंधड़ के चलने पर जैसे मेघ खण्ड बिखर जाते हैं इसी प्रकार अर्जुन के बाणों से दुर्मर्षण की सेना बिखर गई यह देख दुःशासन को बड़ा क्रोध आया और वह अपनी सेना सहित अर्जुन के सामने आ डटा बड़ा ही रोमांचकारी और वीभत्स दृश्य उपस्थित हो गया। अर्जुन के बाणो की मार से सैनिकों के शरीर निष्प्राण होने लगे। चारो ओर शवों के ढेर लग गए। रथ टूट गए और सिर, धड़ तथा हाथ पैर इधर-उधर बिखर गए। उस वीभत्स दृश्य को देखकर दुःशासन की बची खुची सेना का साहस टूट गया और वह मैदान छोड़कर भाग निकली। दुःशासन ने बहुतेरा जोर मारा, पर जैसे सिंह के सामने भेडो की एक नही चलती, इसी प्रकार दुर्मर्षण तिलमिलाने के उपरान्त कुछ न कर पाया वह भागा और जाकर द्रोणाचार्य के पास भय विह्वल होकर पुकार की—' आचार्य ! अर्जुन की गति को रोकिए वह तो साक्षात काल रूप धारण करके तबाही मचाता हुआ बढा चला आ रहा है।"

द्रोण बोले—"दुर्मर्षण ! उसकी गति को रोक पाना बच्चो का खेल नही है।"

इतने ही मे अर्जुन का रथ भी द्रोण के पास पहुच गया। जाते ही उसने तीन बाण उनके चरणो मे फेके और वीरोचित प्रणाम के उपरान्त उसने कहा—"गुरुदेव ! अपने प्रिय पुत्र को गवाकर और दुःख से व्यथित होकर. अपने पुत्र की हत्या के लिए जिम्मेदार जयद्रथ की खोज मे मैं आया हू। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी है। आज आप कृपया मुझे अनुगृहीत करें।"

अर्जुन के नम्र निवेदन को सुनकर द्रोण बोले—"पार्थ ! आज तो तुम मुझ से टक्कर लिए बिना आगे न जा सकोगे।"

"क्या आप मेरी प्रतिज्ञा पूर्ति के पथ पर दीवार बनकर खड़े रहना चाहते हैं ?"—अर्जुन ने प्रश्न किया।

"मैं तुम्हारे शत्रु दल का सेनापति जो हूं।"—द्रोण बोले।

अर्जुन ने द्रोण के शब्दो का उत्तर अपने तीक्ष्ण बाणों से

दिया।

भयंकर संग्राम छिड गया। अर्जुन तीक्षण वाणों का प्रहार कर रहा था और द्रोण उसके वाणों को तोड़ जा रहे थे। तब कुपित होकर अर्जुन ने पैतरा वदल कर बाण चलाने आरम्भ कर दिए। एक दो बाण द्रोण को चोट पहुंचाने मे सफल हुए तो उन्हें भी क्रोध आया और कुपित होकर ऐसे बाण चलाये कि अर्जुन तथा श्री कृष्ण दोनों ही घायल हो गए इस से कुपित होकर अर्जुन गाण्डीव पर वाण चला ही रहा था कि द्रोण ने उसके धनुष की डोरी काट डाली। और फिर मुस्करा कर आचार्य ने उसके घोडो रथ और उसके चारो ओर वाणो की वर्षा कर दी। अर्जुन ने दूसरा धनुष लेकर बाण चलाये और आचार्य पर हावी होने की इच्छा से तीक्ष्ण बाण चलाने आरम्भ कर दिए।

परन्तु द्रोण भी उसी प्रकार अर्जुन का मुकावला करने लगे। फिर क्या था वे रोक बाणो से उन्होने अर्जुन को घने अधकार मे डाल दिया। यह देखकर वासुदेव अर्जुन से बोले— शस्त्र विद्या में पारगंत द्रोण से ही जूझते रहे तो यही शाम हो जायेगी। अब देरि करना ठीक नही कहो तो द्रोण को यही छोड़ कर रथ आगे बडा दूं। आचार्य थकने वाले नही है

अर्जुन ने स्वीकृति दे दी, तब श्री कृष्ण ने बडी कुशलता से आचार्य की वाईं ओर से रथ हांक दिया और आगे निकल गए। यह देख द्रोण ने कहा—"पार्थ ! तुम तो शत्रु को परास्त किए बिना आगे बढते ही न थ. आज कैसे निकले जा रहे हो ?"

अर्जुन ने मुस्कराकर कहा—"आप कही शत्रु थोड ही है, आप तो गुरु देव हैं। भला आप को हराने की क्षमता मुझ मे कहाँ ? मैं तो आपका शिष्य हूं पुत्र के समान। आप को परास्त करने की समता भला ससार मे किस रण बांकुरे में हो सकती है ."

यह कहता हुआ अर्जुन आगे बढ़ गया। श्री कृष्ण घोडो को तेजी से दौड़ा रहे थ। द्रोण के सामने से हट कर अर्जुन का रथ कौरव-सेना की ओर चला।

अर्जुन जाते ही भोजों की सेना पर टूट पड़ा। कृत वर्मा और सुदक्षिण पर उसने एक साथ ही आक्रमण कर दिया और उन दोनो

को परास्त करके श्रुतायुध से जा भिडा। भयकर सग्राम छिड़ गया। श्रुतायुध के घोडे मारे गए इस पर क्रुद्ध होकर वह गदा हाथ में लेकर रथ से उतर आया और क्रोध वश गदा का प्रहार श्री कृष्ण पर कर दिया। पर नि शस्त्र और युद्ध में न लड़ रहे श्री कृष्ण पर चलाई गदा उलटी श्रुतायुध को ही जा लगी, जिसकी चोट खाकर उसका शरीर तडपने लगा। कुछ ही क्षण पश्चात उसकी यई लीला समाप्त हो गई। यह उस वर दान का परिणाम था जो उसकी मां ने प्राप्त किया था।

इस वर दान की भी एक कथा है।

× × × ×

कहते हैं श्रुतायुध की मां पर्णशम वडी पुण्यवती थी। उस ने अपनी तपस्या से वैसमण देवता के प्रसन्न होने पर वर दान मांगा था कि उसका पुत्र किसी शत्रु के हाथो न मारा जाये।

उत्तर मे देवता ने कृपा कर एक गदा उसे भेंट की और कहा कि तेरा वेटा इस गदा को लेकर लडेगा तो कोई भी शत्रु उसका वध न कर सकेगा परन्तु शर्त यह है कि यह गदा उस पर न चलाई जाय, जो नि शस्त्र हो. अथवा जो युद्ध में शरीक न हो। यदि इन मे से किसी पर चलाई गई तो यह गदा उलटकर चलाने वाले का ही वध कर देगी।

तो वही थी वह गदा जो श्रुतायुध ने चलाई थी और क्रोधवश देवता की शर्त वह भूल गया, जिसके कारण श्री कृष्ण जो नि शस्त्र भी थे और लड भी न रहे थे पर गदा का वार कर बैठने से उस गदा ने उसी का वध कर दिया।

× × × ×

श्रुतायुध के मरते ही काभोज राज सुदक्षिण ने अर्जुन पर प्रहार किया। परन्तु अर्जुन के वाणो के सामने उसकी एक न चली। अर्जुन ने उसके घोड़ों को मार डाला। धनुप तोड डाला और उस के कवच को चूर २ कर दिया। अन्त में एक ऐसा तीक्ष्ण वाण खीच कर मारा जो सीधे जाकर उसकी छाती पर लगा और वह हाथ फला कर भुमि पर गिर पडा। उसके मुह से एक चीत्कार निकला और छाती से रक्त का फव्वारा।

श्रुतायुध और काभोज का इस प्रकार अन्त देख कर श्रुतायु व अच्छुतायु दो राजा अर्जुन पर टूट पड़े । वे दोनो दो ओर से अर्जुन पर बाण बरसाने लगे । दोनो ही बड़े चंचल और बलवान राजा थे, उनका मुकाबला करते २ अर्जुन बहुत थक गया बड़ा घोर सग्राम छिड़ा था । दोनो ने मिलकर अर्जुन को घायल कर दिया। थक कर अर्जुन ध्वज स्तम्भ के सहारे खड़ा हो गया ।

उस समय श्री कृष्ण बोले "पार्थ ! रुक कैसे गए ? इन दोनो राजाओ की आत्मा इनके शरीर के बन्धन से मुक्त होने को लालायित है । और तुम्हारे बाणो की प्रतीक्षा कर रही हैं । देखो सूर्य का रथ बहुत आगे जा चुका है । तुम्हें जयद्रथ का वध करना है "

अर्जुन को फिर उत्साह हुआ और उसने धनुष हाथ में सम्भाल लिया । देखते ही देखते उसने उन दोनों राजाओं को मार डाला। यह देख उनके दो पुत्र क्रुद्ध हो कर अर्जुन पर झपटे । पर जैसे इस्पात की दीवार से सिर टकराने पर सिर टकराने वाले को ही हानि पहुंचती है, उसी प्रकार उन दोनों के प्रहार करने से उनके प्राणो पर ही बन आई। अर्जुन ने दोनो को ही चिरनिद्रा मे सुला दिया ।

गाण्डीव पर दूसरी डोरी चढाकर, अर्जुन कौरव-सेना सागर को चीरता हुआ आगे बढ़ा । उसके बाणो की मार से चारों ओर शव ही शव दिखाई देने लगे । कही कुचली हुई खोपड़ियां पडी थी, तो कही कटे हुए सिर रक्त के धारायें बह रही थी । टूटे हुए कवचो, चूर चूर हुए रथो और घोड़ो के शवो से धरती पट गई । कुछ ही देरि मे, वह स्थान, जो पहले छटे हुए कडियेले जवानो की पक्तियो से भरा था, मास पिण्डो, रक्त धाराओ, हड्डियो और रथो के अवशेषों से भर गया और तिल धरने को भी भूमि नही मिलती थी। अर्जुन का रथ शवो को कुचलता हुआ आगे जा रहा था।

उस समय वह भयानक अस्त्र प्रयोग कर रहा था। कभी उस के अस्त्रों से आग की लपटें निकलती थी तो कभी धुआं छूटता था। चिनगारियां सी छोड़ते उसके बाण क्षणभर में अनेक प्राणियो को मौत के घाट उतार देते थे । घोड़ों व मनुष्यो के चीत्कारो ने उस

स्थान पर वीत्स वातावरण बना दिया।

मार काट करता, रथो और हाथियो को मिटाता विनाश की ज्वाला वखेरता अर्जुन उस स्थान पर पहुच गया जहां जयद्रथ था।

अर्जुन का रथ जयद्रथ की ओर जाते देख दुर्योधन वहुत चिन्तित हुआ तुरन्त ही वह द्रोणाचार्य के पास पहुचा और बोला–

"आचार्य ! अर्जुन तो हमारे व्यूह को तोडकर अन्दर प्रवेश कर चुका है और वह मार काट करता उस स्थान पर पहुच गया है, जहा अनेक वीरो से सुरक्षित जयद्रथ खडा है । हमारी इस हार से वह वीर विचलित हो उठेंगे जो जयद्रथ की रक्षा पर तैनात हैं। हम सब को आशा थी कि अर्जुन विना आचार्य जी से निवटे आगे नहीं जायेगा, न आचार्य हो उसे आगे जाने देगे। पर वह आशा तो झूठी निकली। आप के देखते २ अर्जुन अपना रथ आगे वढा ले गया मालूम होता है कि आप पाण्डवों की विजय का रास्ता साफ करने को सदा हो प्रस्तुत रहते हैं। यह देख कर मेरा मन अधीर हो उठा है। आप ही वताईये कि मैंने आप का क्या विगाड़ा है, जो आप मुझे पराजित करने पर तुले हैं। यदि पहले ही मुझे आपका इरादा ज्ञात हो जाता तो वेचारे जयद्रथ से यहाँ रुकने का आग्रह ही न करता। वह तो अपने देश जाना चाहता था। परन्तु मैंने ही उसे न जाने दिया। मेरी भूल से उस बेचारे के प्राणों पर आ बनी। अर्जुन ने यदि उस पर आक्रमण कर दिया तो फिर वह किसी प्रकार न वच पायेगा"

दुर्योधन के शब्दो से द्रोणाचार्य को वडी ठेस लगी । तो भी समय के अनुसार उन्होने क्रोध को पी लिया और बोले—"दुर्योधन! तुम ने इस समय जो शब्द कहे है, यद्यपि वे मेरे हृदय में वाणों की भांति लगे है तथापि में उनका वुरा नही मानता ! क्योंकि मे तुम्हे पुत्रवत मानता हूं, जैसा अश्वस्थामा, वैसे ही मेरे लिए तुम । इस लिए तुम्हारी वात को छोडकर में इस समय जो उचित समझता हूं वही वताता हू। देखो ! पाण्डवो की सेना हमारे सैनिको को मारती काटती वडी तीव्र गति से वढ़ी चली आ रही है। इस समय मैं यह उचित नही समझता कि यह मोर्चा छोडकर अर्जुन का पीछा करने जाऊं। यदि मे यहाँ से हट गया तो अनर्थ हो जायेगा। देखो ! इस समय अर्जुन तो जयद्रथ की खोज मे गया है और युधिष्टिर इधर आ

रहा है। मैं उसे जीवत पकड कर तुम्हे सौपना चाहता हू। इस प्रकार तुम्हारी एक इच्छा की पूर्ति हो जायेगी।"

बीच ही मे दुर्योधन बोल उठा—"पर जयद्रथ बेचारे का क्या होगा ?"

"हाँ, तुम भी बड़े शूरबीर हो। अर्जुन का सामना करने के लिए तुम तुरन्त वहा जाग्रो।"

"क्या आपको आशा है कि क्रुद्ध अर्जुन को मे रोक पाऊगा।"

"मैं तुम्हे एक अभिमान्त्रित कवच दूगा। इस दैवी कवच को पहन कर यदि तुम युद्ध करोगे तो तुम पर शत्रु का कोई भी अस्त्र प्रभाव न डाल सकेगा। और इस कबच के सहारे तुम जयद्रथ की रक्षा कर सकोगे। इधर मे युधिष्ठिर को पकड़ लूंगा।"

द्रोण की बात सुनकर दुर्योधन को अपार हर्ष हुआ। उसने दैवी कवच लिया और उसे पहन कर एक बड़ी सेना साथ ले अर्जुन का सामना करने चल पडा।

× × × ×

अर्जुन कौरव सेना को तहस नहस करता हुआ आगे बढा चला जा रहा था। बहुत दूर निकल जाने पर श्री कृष्ण ने देखा कि घोड़े थके हुए हे। उन्होने रथ एक स्थान पर रोक दिया ताकि घोडे सुस्ता ले। रथ रुका देखकर विन्द और अनुविन्द नामक दो वीरो ने आक्रमण कर दिया अर्जुन ने बड़े कौशल से उनकी सेना को तितर वितर कर दिया और उन्हे भी मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद थोडी देर श्री कृष्ण ने घोडो को सुस्ताने का अवसर देकर फिर रथ हांक दिया और जयद्रथ की ओर तेजी से रथ बढाने लगे।

पीछे से शोर उठा तो श्री कृष्ण ने घूम कर देखा और अर्जुन को सचेत करते हुए बोले "पार्थ ! देखो, पीछे से दुर्योधन आ रहा है, उसके साथ एक बडी सेना है चिरकाल से मन मैं क्रोध की जो आग दबा रक्खी है, आज उसे प्रगट करो। इस अनर्थ की जड़ को जला कर भस्म कर दो। इससे अच्छा अवसर नही मिलेगा ! आज यह तुम्हारा शत्रु तुम्हारे बाणो का लक्ष्य बनने को आ रहा है। स्मरण रहे यह महारथी है। दूर से भी आक्रमण करने की सामर्थ्य

रखता है। अस्त्र विद्या का कुशल जानकार है। जोश के साथ युद्ध करेगा। शरीर का गठीला और बली है तनिक सावधानी से गाण्डीव के कमाल दिखाना।"

यह कह कर श्री कृष्ण ने रथ घुमा दिया और अर्जुन ने एका एक दुर्योधन पर हमला कर दिया।

इस अचानक आक्रमण से दुर्योधन तनिक भी न घबराया बल्कि गरज कर बोला—',अर्जुन ! सुना तो बहुत है कि तुम बड़े वीर हो, वीरोचित रोमाचकारी कृत्य तुम ने किए हैं, किन्तु तुम्हारी वीरता का सही परिचय तो हम अब तक मिला नही है। जरा देखें तो सही कि तुम मे कौन सा ऐसा पराक्रम है कि जिसकी इतनी प्रशसा सुनने मे आ रही है" तनिक सी गरमी पाकर या शरद ऋतु मे बर्फानी हवा से जैसे कच्चे चमड़े का जूता है, इसी प्रकार दैवी कवच पाकर दुर्योधन अकड गया था। और दोनो मे घोर सग्राम छिड गया।

बहुत देरि तक दोनो एक दूसरे पर बाण वर्षा करते रहे। फिर भी दुर्योधन उसी प्रकार डटा रहा। गाण्डीव से निकले प्राण बाण उसका कुछ न बिगाड रहे थे तब श्रीकृष्ण ने विस्मय पूर्वक कहा-"पार्थ! यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जो बाण बलिष्ट लोगो के प्राण ले लेते हैं, उन्ही का दुर्योधन पर कोइ प्रभाव नही हो रहा। गाण्डीव से निकला बाण और उसका शत्रु पर कोई प्रभाव न हो। आश्चर्य की बात है। मुझे तो कभी ऐसी आशा न थी। अर्जुन! कही तुम्हारी पकड मे ढील तो नही रहती? भुजाओ का बल तो कम नही हो गया? गांण्डीव का तनाव तो स्वाभाविक है? फिर क्या बात है जो तुम्हारे बाण दुर्योधन पर असर नही करते?"

अर्जुन ने कहा—"मधु सूदन ! लगता है द्रोण ने अपना अभिमन्त्रित कवच इसे दे दिया है उसी को दुर्योधन पहने हुए है। आचार्य ने इस कवच का भेद मुझे भी बताया था। यही कारण है कि मेरे बाण उस पर असर नही करते। यह उसी के बल पर साहस बाँध अभी तक रुका है। फिर भी आप अभी ही देखिये कि दूसरे के कवच को शरीर पर लादे, लदे बैल की भाति खड़े दुर्योधन का क्या दशा होती है?"

यह कहते अर्जुन ने पैतरे वदल कर ऐसे तीक्ष्ण वाण चलाये, कि उनकी मार से क्षण भर मे ही दुर्योधन के रथ के घोडे धाराशायी हो गए। सारथि नीचे लूढक गया और रथ चूर चूर हो गया कुछ ही देरि मे दुर्योधन का धनुष भी अर्जुन ने काट डाला। दस्ताने फाड डाले और दुर्योधन के शरीर का वह भाग जो कवच से ढका नही था, अर्जुन के वाणो से विध गया। अर्थात जिन वस्तुओ व भागों पर अभिमन्त्रित कवच नही था; अर्जुन के वाणो की मार उन्ही पर अपना रग दिखा गई।

अर्जुन के वाणो से दुर्योधन के हाथ, पाव, नाखून, उगलियां तक विध गए और अन्त में दुर्योधन को हार माननी पडी। वह समर भूमि मे पीठ दिखा कर भाग खडा हुआ। श्री कृष्ण ने पाचजन्य वजाया और वडे जोर से विजय नाद किया।

जयद्रथ की रक्षा पर नियत वीरों ने जव यह देखा उनके दिल एक वारगी दहल उठे। पर मरता क्या न करता की लोकोक्ति के अनुसार भूरि श्रवा कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वथामा, जयद्रथ आदि आठो महारथी अर्जुन के मुकावले पर आगए। परन्तु अर्जुन ने गाण्डीव की एक टकार करके उनकी सेना का दिल दहला दिया। वाण वर्षा आरम्भ हो गई।

× × × ×

दुर्योधन को अर्जुन का पीछा करते देख कर पाण्डव सेना ने शत्रुओ पर और भी जोर का आक्रमण कर दिया। धृष्टद्युम्न ने सोचा कि जयद्रथ की रक्षा करने यदि द्रोणाचार्य भी चले गए तो वड़ा अनर्थ हो जायेगा। इसलिए उन्हे रोक रखना चाहिए। इसी उद्देश्य से उसने द्रोण पर लगातार आक्रमण जारी रखा। धृष्टद्युम्न की इस चाल के कारण कौरव सेना तीन भागो में विभाजित होकर कमजोर पड गई।

एक वार अवसर पाकर धृष्टद्युम्न ने अपना रथ द्रोण के रथ से टकरा दिया। दोनों के रथ एक दूसरे से भिड़ गए। दोनो रथ आस पास खडे वडे ही भले प्रतीत हो रहे थे। धृष्टद्युम्न ने अपने धनुषवाण फैंक दिए और तलवार लेकर द्रोण के पर जा चढा और उन पर उन्मत होकर प्रहार करने लगा। वह तो था उनका जन्म का वैरी।

उस पर वे बिल्कुल उसी प्रकार झपटे जैसे किसी मृग को अपनी माद पर आया देख सिंह झपटता है। धृष्टद्युम्न की आंखों मे रक्त-पिपासा झलक रही थी। बहुत देर तक वह आक्रमण करता रहा। एक बार द्रोण ने ऐसा पैना वार किया कि वह धृष्टद्युम्न के प्राण ही ले लेता, यदि ठीक उसी समय सात्यकि बाण से उनके प्रहार को न काट देता। अचानक सात्यकि की बाण वर्षा हो जाने से द्रोण का ध्यान उसकी ओर चला गया। इसी बीच पाचाल देश के रथ सवार धृष्टद्युम्न को वहा से हटा ले गए।

काले नाग के समान फुफकारते हुए और लाल-लाल नेत्रो से चिनगारिया बरसाते हुए दोणाचार्य सात्यकि पर टूट पडे। परन्तु सात्यकि भी कोई मामूली योद्धा न था। पाण्डव-सेना के सब से चतुर योद्धाओ मे उसका स्थान था। जब उसने द्रोणाचार्य को अपनी ओर झपटते हुए देखा तो वह खुद भी उनकी ओर झपट पडा।

चलते २ सात्यकि ने अपने सारथि से कहा—"सारथि! यह है द्रोणाचार्य! जो अपनी ब्राह्मणोचित वृत्ति को छोडकर धर्म राज को पीडा पहुचाने वाले क्षत्रियोचित कार्य कर रहे हैं: इन्ही के कारण दुर्योधन को घमण्ड है। स्वय यह भी अपने बल के, घमण्ड मे बौराये रहते हैं चलाओ वेग व कुशलता से रथ, तनिक इनका भी दर्प चूर्ण कर दू।"

सात्यकि का सकेत पाते ही सारथि ने घोडे छोड दिए। चाँदी से सफेद चमकने वाले घोडे हवा से बाते करने लगे और सात्यकि को द्रोणाचार्य को ओर ले दौडे। पास पहुचते २ सात्यकि और द्रोण ने एक दूसरे पर वाण बरसाने आरम्भ कर दिए। दोनो मे भयकर युद्ध छिड गया। दोनो ओर से नाराच बाणो की वर्षा हो रही थी। दोनो वीर कब बाण तरकश से लेते है कब खीचते है और कब छोड देते है। इस बात का पता ही न चलता था। दोनो के वाणो से रथो के बीच की दूरि वाणो से पट गई। इस रोमांचकारी दृश्य को देख कर दूसरे सैनिक परस्पर युद्ध करना भूल गए और सात्यकि दोनो के रथो की ध्वजाए टूट कर गिर गई। रथो की छतरिया भी टूट गई। पर वे आपस मे भिड़े ही हुए थे। कोई भी हार मानने को तैयार न था। सात्यकि बार बार सिंह गर्जना करता और उनके

उत्तर मे द्रोण वृद्ध सिंह की भाँति गरजते। दोनो के धनुषो की टकारें बड़े जोरों से सुनाई दे रही थी। उनके आस पास युद्ध रत सभी सैनिक रुक गए थे। मृदग, शख आदि की ध्वनिया मौन हो गई। आकाश मे देवता, विद्याधर-गधर्व, यक्ष आदि इन दोनो के युद्ध को विस्मय पूर्वक देख रहे थे।

द्रोण का धनुप सात्यकि के वाण से टूट गया, तो उन्होने दूसरा धनुष सम्भाला पर उसकी डोरी चढा ही रहे थे कि वह भी सात्यकि ने तोड डाला। द्रोण ने तीसरा धनुष उठाया, कुछ ही देरि मे वह भी टूट गया। इस प्रकार द्रोण के पूरे एक सौ धनुष सात्यिक ने तोड डाले। द्रोण उसके पराक्रम को देखकर मन ही मन कहने लगे— 'सात्यकि तो धुरन्धर रामचन्द्र, कार्तिकेय, भीष्म और धनजय आदि कुशल योद्धाओ की टक्कर का वीर है।"

सात्यकि ने और भी कुशलता का परिचय दिया। द्रोण जिस अस्त्र का प्रयोग करते, सात्यकि भी उसी अस्त्र का उसी प्रकार प्रयोग करता। द्रोण तग आगए। तो उन्होने सात्यकि के वध की इच्छा से आग्नेयास्त्र चलाया। आग की लपटे बखेरता आग्नेयास्त्र चला। तभी सात्यकि ने वरुणास्त्र चलाया, जो पानी बरसाता हुआ चला और उस ने बीच ही मे आग्नेयास्त्र को ठण्डा कर दिया। इस प्रकार बहुत देरि तक भयकर अस्त्रो का प्रयाग होता रहा परन्तु सात्यकि ने किसी से भी हार न मानी वह डटा ही रहा और प्रत्येक अस्त्र की काट करता रहा। द्रोणाचार्य यह देखकर बडे क्रुध हुए, तब उन्होने एक दिव्यास्त्र छोडा, जिसे सात्यकि न काट पाया, तो भी उसने अपने को बचा लिया पर तभी से वह कुछ कमजोर पडने लगा। यह देख कौरव-सेना मे हर्ष की लहर दौड गई।

तभी युधिष्ठिर को पता चला कि सात्यकि पर सकट आया हुआ है, उन्होने अपने आस-पास के वीरो से कहा—"कुशल योद्धा नरोत्तम और सच्चे वीर सात्यकि द्रोण के बाणो से बहुत ही पीड़ित हो रहे हैं। चलो, हम लोग उधर चल कर उस वीर पुरुष की सहायता करे।"

धृष्टद्युम्न ने युधिष्टिर को रोकते हुए कहा—"धर्मराज! आप का वहा जाना ठीक नही है। मुझे आज्ञा दीजिए कि सात्यकि की सहायता करू।"

"ठीक है द्रुपद कुमार ! तुम तुरन्त जाओ—युधिष्ठर बोले- अपने साथ कुशल वीरो को लेते जाओ। सात्यकि कमजोर पड रहा है, कही अवसर पाकर द्रोणाचार्य उसका वध करने मे सफल हो गए तो हमे 'भयकर क्षति होगी। जाओ, देरि न करो।"

एक वडी सेना को लेकर धृष्टद्युम्न तुरन्त उस ओर चल पडा। वडी कठिनाई से उसने सात्यकि को द्रोण के फन्दे से बचाया।

× × × ×

दूर से श्री कृष्ण के पाँच जन्य की आवाज सुनाई दे रही थी। युधिष्ठिर के कान उसी ओर थे। सात्यकि को सम्बोधित करते हुए वह अपनी चिन्ता प्रगट करते हुए बोले—"सात्यकि ! सुना तुमने ! अकेले पाच जन्य की ही आवाज आ रही है, गाण्डीव धनुष की टकार सुनाई नहीं देती अर्जुन को कही कुछ हो तो नही गया ?"

सात्यकि ने ध्यान से सुना और बोला—"बात तो आपकी ठीक है पर पाच जन्य भी तो अर्जुन के लिए ही वज रहा होगा। अर्जुन के प्रहारो से शत्रु मर रहे होगे तभी तो श्री कृष्ण शख वजाते होगे। यदि अर्जुन को कुछ हो जाता। तो पाच जन्य ही क्यो सुनाई देता ?"

"नही सात्यकि, सम्भव है श्री कृष्ण ही उस दशा मे स्वय लडने लग गए हो। जान पडता है अर्जुन सकट मे पड गया है। आगे सिन्धु राज की सेना है, पीछे द्रोण की। अर्जुन सुवह से व्यूह मे घुसा है और अव शाम होने को आई, अभी तक उसका पता नही चला। जरूर दाल मे कुछ काला है।"—युधिष्ठिर चिन्ता व्यक्त करते हुए बोले।

"नही धर्मराज ! आप व्यर्थ ही चिन्तित हो गए। अर्जुन को कोई परास्त कर सके, असम्भव है।" सात्यकि ने दृढता पूर्वक कहा।

"वह देखो फिर पाच जन्य की ही ध्वनि सुनाई दी—युधिष्ठिर फिर चिन्तातुर होकर वोले—गाण्डीव की टकार सुनाई ही नही देती। सात्यकि ! तुम अर्जुन के मित्र हो। वह तुम से वडा स्नेह रखता है। वह तुम्हारी वडी प्रशसा किया करता। जव हम वनवास मे थे तो कितनी ही वार अर्जुन को मैंने कहते सुना कि सात्यकि

जैसा ऊचा वीर कही देखने को भी न मिलेगा। उस ओर तो देखो ! आकाश मे कैसी धूल उड़ रही है। अर्जुन जरूर शत्रुओ से घिरा हुआ है और सकट मे है। जयद्रथ कोई असाधारण महारथी नही, फिर उसकी रक्षा के लिए आज कई महारथी अपने प्राणो की बाज़ी लगाने को तैयार है। तुम अभी ही इसी घडी अर्जुन की सहायता को चले जाओ।

कहते कहते युधिष्ठिर बड़े ही अधीर हो उठे।

महाराज युधिष्ठिर के बार बार आग्रह पर सात्यकि ने नम्र भाव से कहा—"धर्मराज ! आपकी आज्ञा मेरे सिर-आखो पर है और फिर अर्जुन के लिए मैं क्या नही कर सकता ? मैं उसके लिए अपने प्राण भी न्योछावर कर सकता हू आपकी आज्ञा होने पर तो मैं एक बार देवताओ से भी टक्कर ले सकता हूं। परन्तु मुझे वासुदेव और धनंजय ने जो आज्ञा दी है, वह भी मुझे याद है। उसी के कारण मैं आपको अकेला नहीं छोड़ सकता।"

उतावले होकर युधिष्ठिर पूछ बैठे—"वह कौन सी आज्ञा है, जो मेरी आशा के रास्ते मे रोडा बन गई है ?"

"महाराज ! रुष्ट न हो। उन्होने जाते समय मुझ से कहा था कि—'जब तक हम दोनो जयद्रथ का वध करके न लौटे तब तक तुम युधिष्ठिर की रक्षा करते रहना। खूब सावधान रहना, तनिक सी भी असावधानी न हो। तुम्हारे ही भरोसे हम युधिष्ठिर को छोड जाते हैं। द्रोण की प्रतिज्ञा को ध्यान मे रखना और उनकी रक्षा में प्रत्येक प्रकार को बाजी लगा देना।'—अब आप ही बताईये मैं कैसे यहा से जा सकता हू ? वे मुझ पर भरोसा करके इतनी बडी जिम्मेदारी डाल गए हैं।"—सात्यकि ने विनीत भाव से कहा।

"जिसके आदेश की तुम्हे इतनी चिन्ता है उसके प्राणो की तुम्हे तनिक भी चिन्ता नही। तुम इसी समय उसके काम न आओगे, तो कब आवेगी तुम्हारी मित्रता ?—आवेश मे आकर, युधिष्ठिर बोले।

"महाराज ! मुझे विश्वास है कि शत्रुओं की सम्मिलित शक्ति धनजय की शक्ति के सोल्हवें भाग के समान भी नही है। धनंजय अजेय है। आप व्यर्थ ही चिन्ता कर रहे है।"—सात्यकि ने कहा।

'नही, नही यह तो तुम्हारा बहाना है । साफ क्यो नही कहते कि उस संकट पूर्ण स्थान पर तुम जाना ही नहीं चाहते ।"—युधिष्ठिर अर्जुन के स्नेह में आकर कह गए ।

सात्यकि के हृदय को इन शब्दों से ठेस लगी, आहत पक्षी की भांति तड़प कर वह बोला—"महाराज ! मुझे ज्ञात नही था कि आप रण क्षेत्र में खडे होकर अपने इस अनन्य भक्त के लिए यह कटु शब्द भी प्रयोग कर सकेंगे। मुझे इसका बड़ा ही खेद है । तो भी आपको ललकारने और फटकारने का अधिकार है, इसलिए मैं सब कुछ सहन करूंगा। फिर भी शत्रुओ से आपकी रक्षा के लिए अन्त समय तक डटा रहूगा ।"

यह सुन युधिष्ठिर अपने शब्दो पर पश्चाताप करने लगे और बहुत सोच विचार के बाद बोले—"सात्यकि ! मुझे क्षमा करना । वास्तव में अर्जुन मुझे अपने प्राणो से भी अधिक प्रिय है । जब कभी मैं उसे संकट मे पडा महसूस करता हू तो बेचैन हो जाता हूं। तुम मेरी बात मानो और उसकी जाकर खबर लो। यहा मेरी रक्षा के लिए भीमसेन है, धृष्टद्युम्न है और भी कितने ही वीर हैं, तुम्हे मेरी आज्ञा माननी ही होगी।"

विवश होकर सात्यकि चलने को तैयार हुआ। धर्मराज ने सात्यकि के रथ पर हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री रखवा दी और खूब विश्राम करके ताजे हो रहे चंचल तथा चतुर घोडे भी जुतवा दिए। आशीर्वाद देकर सात्यकि को विदा किया।

सात्यकि ने रथ पर सवार होकर भीमसेन से कहा—"महाबली भीमसेन ! केशव और धनंजय ने तो धर्मराज को मुझे सौंपा था, उसी भरोसे के साथ मैं युधिष्ठिर को तुम्हे सौंपता हू । उनकी अच्छी तरह देख भाल करना और द्रोण से सावधान रहना ।"

सारथि ने घोडे छोड़ दिए। हवा से बातें करते घोडे कौरव सेना की ओर तीव्र गति से भागने लगे । रास्ते में कौरव-सेना ने सात्यकि का डटकर मुकाबला किया । पर सात्यकि उनकी भारी सेना को तितर बितर करता हुआ आगे बढ़ता रहा।

जैसे ही सात्यकि युधिष्ठिर को छोड़कर अर्जुन को ओर चला, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पाण्डव सेना पर हमले करने आरम्भ

कर दिए। पाण्डव सेना की पंक्तिया कई जगह से टूट गई और उन्हे पीछे हटना पड गया। यह देख युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए।

× × × ×

युधिष्ठिर पुन चिन्तित हो उठे। बोले —"अर्जुन अभी तक लौटा नही और सात्यकि की भी कोई खबर नहीं आई और उधर से बार बार पाँचजन्य की ध्वनि आ रही है, गाण्डीव की टंकार सुनने को मेरे कान बेचैन हो रहे है, टंकार सुनाई ही नही देती। मेरा मन शका के मारे काप रहा है, न जाने क्यो मुझे चिन्ता हो रही है। कहीं मेरे प्रिय भ्राता अर्जुन पर कोई सकट तो नही आ गया। भीमसेन ? मै बहुत चिन्ताकुल हो रहा हू। मेरी समझ मे ही नही आता कि क्या करू ?"

युधिष्टिर को इस प्रकार व्याकुल देखकर भीम सेन भी चिन्ताकुल हो गया, उसने कहा—"महाराज ! यद्यपि मैं आपको चिन्ता रहित करने के लिए आपकी आज्ञानुसार सब कुछ करने को तत्पर हूं। तो भी मै आपकी चिन्ता निर्मूल समझता हूं क्योकि प्रिय भ्राता अर्जुन का कुछ विगाड सके, ऐसा तो मुझे कोई दिखाई नहीं देता। आपको मैने कभी इतना अधीर होते नही देखा। आप निश्चिन्त रहिए अथवा मुझ से बताईये कि क्या करू ?"

"भैया ! न जाने क्यों मेरा दिल बहुत घबरा रहा है तुम तुरन्त जाओ और अर्जुन की खबर लो"—युधिष्ठिर बोले !

"मेरे लिए तो अर्जुन की खबर लेना भी उतना आवश्यक है जितना आपकी रक्षा करना। सात्यकि आपकी रक्षा का भार मुझ पर छोड कर गए है, अब आप ही बताईये कि मै क्या करू ? आपकी आज्ञा का पालन करू या आपके प्रति अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए यही रहूं ?"—भीम सेन ने कहा।

"तुम मेरी चिन्ता न करो। मुझे यहां कोई खाये नही जा रहा। अर्जुन के प्राण बहुत मूल्यवान हैं। उसकी रक्षा पहले करो। वह है तो हमारे लिए सब कुछ है। वह न रहा और तुमने मेरे प्राणों की रक्षा कर ली तो भी सब कुछ चौपट हो जायेगा। मैं जो कुछ कहता हूँ वही करो। तुरन्त अर्जुन की सहायता को पहुंचो।"—युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर कहा उस समय यह साफ जाहिर हो रहा था कि अर्जुन के प्रति उन्हे कितना स्नेह है।

भीम सेन ने एक आज्ञाकारी अर्जुन की भांति कहा—"आप की आज्ञा सिर-आंखो पर। मै जाता हू और वहा यदि अर्जुन भईया पर कोई सकट होगा तो अपने प्राण देकर भी उन्हे सकट-मुक्त करूगा। पर आप अपने को सम्भाले रहे। कही ऐसा न हो कि अर्जुन की चिन्ता ही मे आप अपने को भूल जायें और शत्रु का दाव चल जाय। और ऐसा भी न हो कि आप मेरी तरह किसी और को भी मेरे पीछे पीछे ही भेज दें, और शत्रु के लिए मैदान साफ़ हो जाये।"

"तुम निश्चित रहो भीम! मैं सावधान हू। हाँ, तुम ज्योही अर्जुन के पास पहुचो और वह कुशल से हो तो सिह-नाद करना। मैं तुम्हारे नाद को सुनकर समझ लूगा कि अर्जुन सकुशल है।"—युधिष्ठिर बोले।

भीमसेन ने अपने रथ मे आवश्यक अस्त्र-शस्त्र रक्खे और जाने से पूर्व धृष्टद्युम्न को पास बुलाकर कहा—महाराज युधिष्टिर अर्जुन के लिए बडे चिन्तित हैं। उनकी आज्ञा से मैं उसकी सहायता के लिए जा रहा हू। राजा की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है इसलिए मैं यह जानता हुआ भी कि अर्जुन भैया सकुशल होगे और शत्रु की कोई शक्ति भी उनका कुछ नही बिगाड़ सकती, मैं उस ओर जा रहा हूं। अब मै महाराज की रक्षा का भार तुम पर सौंपता हू द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा तो तुम्हे ज्ञात ही है। उनसे सावधान रहना।"

"तुम विश्वास रक्खो जब तक मेरे शरीर मे प्राण है, महाराज के पास भी कोई नही फटक सकता।" धृष्टद्युम्न ने आश्वासन देते हुए कहा।—और भीम सेन का रथ कौरव सेना की ओर तीव्र गति से बढने लगा।

भीम के रथ को अपनी ओर आते देख कौरव-सेना मे कोलाहल मच गया। सब ने उसका रास्ता रोक लिया, पर भीम सेन की बाण वर्षा के आगे किसी की न चली। रक्त की नदिया बहाता हुआ, कौरव सैनिको के शवों पर से बढाता हुआ भीम सेन आगे बढता गया। धृतराष्ट्र के ग्यारह बेटों को उसने यम लोक पहुचाया।

भीम इस प्रकार कौरव-सेना का संहार करता करता दूर निकल गया और आगे जाकर उसका वास्ता पड़ा, द्रोणाचार्य से।

कर दिए। पाण्डव सेना की पक्तियां कई जगह से टूट गई और उन्हे पीछे हटना पड गया। यह देख युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए।

× × × ×

युधिष्ठिर पुनः चिन्तित हो उठे। बोले—"अर्जुन अभी तक लौटा नही और सात्यकि की भी कोई खबर नही आई और उधर से बार बार पाँचजन्य की ध्वनि आ रही है, गाण्डीव की टकार सुनने को मेरे कान बेचैन हो रहे हैं, टकार सुनाई ही नही देती। मेरा मन शका के मारे काप रहा है न जाने क्यो मुझे चिन्ता हो रही है। कही मेरे प्रिय भ्राता अर्जुन पर कोई सकट तो नही आ गया। भीमसेन ? मैं बहुत चिन्ताकुल हो रहा हूं। मेरी समझ मे ही नही आता कि क्या करूं ?"

युधिष्टिर को इस प्रकार व्याकुल देखकर भीम सेन भी चिन्ताकुल हो गया. उसने कहा—"महाराज ! यद्यपि मैं आपको चिन्ता रहित करने के लिए आपकी आज्ञानुसार सब कुछ करने को तत्पर हूं। तो भी मैं आपकी चिन्ता निर्मूल समझता हूं क्योकि प्रिय भ्राता अर्जुन का कुछ बिगाड सके, ऐसा तो मुझे कोई दिखाई नहीं देता। आपको मैंने कभी इतना अधीर होते नहीं देखा। आप निश्चिन्त रहिए अथवा मुझ से बताईये कि क्या करूं ?"

"भैया ! न जाने क्यों मेरा दिल बहुत घबरा रहा है तुम तुरन्त जाओ और अर्जुन की खबर लो।"—युधिष्ठिर बोले।

"मेरे लिए तो अर्जुन की खबर लेना भी उतना आवश्यक है जितना आपको रक्षा करना। सात्यकि आपकी रक्षा का भार मुझ पर छोड कर गए हैं, अब आप ही बताईये कि मैं क्या करूं ? आपकी आज्ञा का पालन करू या आपके प्रति अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए यही रहू ?"—भीम सेन ने कहा।

"तुम मेरी चिन्ता न करो। मुझे यहां कोई खाये नही जा रहा। अर्जुन के प्राण बहुत मूल्यवान हैं। उसकी रक्षा पहले करो। वह है तो हमारे लिए सब कुछ है। वह न रहा और तुमने मेरे प्राणों की रक्षा कर लो तो भी सब कुछ चौपट हो जायेगा। मैं जो कुछ कहता हू वही करो। तुरन्त अर्जुन की सहायता को पहुंचो।"—युधिष्ठिर ने व्याकुल होकर कहा उस समय यह साफ़ जाहिर हो रहा था कि अर्जुन के प्रति उन्हे कितना स्नेह है।

भीम सेन ने एक आज्ञाकारी अर्जुन की भांति कहा—"आप की आज्ञा सिर-आखो पर। मै जाता हू और वहा यदि अर्जुन भईया पर कोई सकट होगा तो अपने प्राण देकर भी उन्हे सकट-मुक्त करूगा। पर आप अपने को सम्भाले रहे। कही ऐसा न हो कि अर्जुन की चिन्ता ही मे आप अपने को भूल जायें और शत्रु का दाव चल जाय। और ऐसा भी न हो कि आप मेरी तरह किसी और को भी मेरे पीछे पीछे ही भेज दे, और शत्रु के लिए मैदान साफ हो जाये।"

"तुम निश्चिंत रहो भीम! मैं सावधान हू। हाँ, तुम ज्योही अर्जुन के पास पहुचो और वह कुशल से हो तो सिंह-नाद करना। मैं तुम्हारे नाद को सुनकर समझ लूंगा कि अर्जुन सकुशल है।"—युधिष्ठिर बोले।

भीमसेन ने अपने रथ मे आवश्यक अस्त्र-शस्त्र रक्खे और जाने से पूर्व धृष्टद्युम्न को पास बुलाकर कहा—महाराज युधिष्टिर अर्जुन के लिए बडे चिन्तित है। उनकी आज्ञा से मैं उसकी सहायता के लिए जा रहा हू। राजा की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है इसलिए मैं यह जानता हुआ भी कि अर्जुन भैया सकुशल होगे और शत्रु को कोई शक्ति भी उनका कुछ नही बिगाड़ सकती, मैं उस ओर जा रहा हू। अब मै महाराज की रक्षा का भार तुम पर सौंपता हू द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा तो तुम्हे ज्ञात ही है। उनसे सावधान रहना।"

"तुम विश्वास रक्खो जब तक मेरे शरीर मे प्राण है, महाराज के पास भी कोई नही फटक सकता।" धृष्टद्युम्न ने आश्वासन देते हुए कहा।—और भीम सेन का रथ कौरव सेना की ओर तीव्र गति से बढ़ने लगा।

भीम के रथ को अपनी ओर आते देख कौरव-सेना मे कोलाहल मच गया। सब ने उसका रास्ता रोक लिया, पर भीम सेन की बाण वर्षा के आगे किसी की न चली। रक्त की नदियां बहाता हुआ, कौरव सैनिको के शवो पर से बढाता हुआ भीम सेन आगे बढता गया। धृतराष्ट्र के ग्यारह बेटो को उसने यम लोक पहुचाया।

भीम इस प्रकार कौरव-सेना का सहार करता करता दूर निकल गया और आगे जाकर उसका वास्ता पड़ा, द्रोणाचार्य से।

द्रोण उसका रास्ता रोक कर वोले—"भीम सेन ! मैं तुम्हारा शत्रु हू। मुझे परास्त किए बिना तुम आगे नही बढ़ सकोगे। मेरी अनुमति पाकर ही तुम्हारा भाई अर्जुन व्यूह मे प्रवेश कर सका है। पर तुम्हे जाने की मैं आज्ञा नही दू गा"

आचार्य का विचार था कि अर्जुन की ही भाति भीम सेन भी उनके प्रति आदर प्रगट करेगा। परन्तु भीम सेन तो उल्टा क्रुद्ध हो गया. उसने गरज कर कहा—"ब्राह्मण श्रेष्ट ! अर्जुन व्यूह मे घुस गया है तो आप से आज्ञा लेकर नही आपकी कृपा वश ; नही, वरन अपने बल के बूते पर उसने व्यूह को तोड कर प्रवेश किया है। परन्तु आप याद रखिये कि अर्जुन ने आप पर दया की होगी, किन्तु आप मुझ से ऐसी आशा न रखिये। मैं आप का शत्रु हू और मेरे सामने जो कोई आयेगा, चाहे वह मेरा गुरु ही क्यो न हो, मेरे हाथो अपनी धृष्टता का फल चखे बिना न रहेगा। भीम किसी की दया का मोहताज नही है, वह बल के द्वारा अपना रास्ता बनाना जानता है।"

द्रोण तो उसके स्वभाव से परिचित थे ही, उन्होने क्रुद्ध भीम को शाँत करने के लिए कहा— 'अरे वृकोदर ! पहले गुरु-ऋण तो चुकाता जा। जाता कहाँ है ?"

भीम और भी क्रुद्ध हो गया और खिसिया कर बोला—'हा ठीक है, आपका ऋण भी चुकाता चलू। पर याद रहे कि मैं आपको पूरी तरह छका दूंगा।"

"मूर्ख ! यह मत भूल कि मुझ से ही तूने वह विद्या प्राप्त की है, जिसके बल पर तू अकड रहा है।"—कुपित होकर द्रोण वोले 'ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह दिन लद गए, जब आप हमारे गुरु थे हमारे पिता तुल्य थे। तब हम आपका शीश झुकाते थे आप को पूजते थे। पर आज तो आप छूटते हा स्वय अपने को मेरा शत्रु कह चुके है। फिर भी आप चाहते हैं तो आप को शत्रु गुरु मानकर आप का गुरु ऋण चुकाए ही देता हू।"

"यह कहता हुआ भीम सेन भूखे भेडये की भाँति अपने रथ से उतरा और दौड़कर उसने द्रोण का रथ उठाकर फेंक दिया। द्रोण बड़ी कठिनाई से कूद कर अपने प्राण बचा सके। वे दौड़ कर दूसरे

रथ पर जा चढे, उसे भा भीम ने अपनी गदा से चूर चूर कर दिया। तब विवश हो द्रोण एक और रथ पर जा चढे, क्रुद्ध होकर पागल हाथी की भाति भीम उस रथ की ओर भागा और इससे पहले कि द्रोण अपने बाणो से उसकी गति को रोक पाये उसने उस रथ को अपनी बलिष्ट भुजाओ से ऊपर उठा लिया और ऊपर की ओर फेंक कर अपने रथ पर आ चढा। द्रोण उस बार भी बडी कठिनाई से बच सके।

भीम सेन इस प्रकार गुरु ऋण चुका कर आगे बढ गया। स्मरण रहे कि इस अद्भुत बल-प्रदर्शक के कारण ही भीम को मदोन्मत्त हाथी की उपमा दी जाती है, वास्तव मे उसमे विचित्र बल था। वह अपनी गदा घुमाता हुआ कौरव सेना पर टूट पडा और असख्य सनिको को यमलोक पहुचाता हुआ व्यूह मे घुस गया। उस दिन उसने द्रोण के कई रथ तोड़े थे, जिससे कौरव-सैनिक भय विह्वल हो गए थे और उसके सामने पड कर युद्ध करने का साहस उन्हे न होता था वह कौरव सेना को चीरता फोडता जा रहा था कि भोजो ने उसका सामना किया। परन्तु जिस प्रकार अग्नि सूखे वन को जला कर भस्म कर डालती है, इसी प्रकार भीम ने भोजो को भी नष्ट कर डाला और आगे बढने लगा। जितने भी सैनिक बल उसके सामने आये उन्हे मारता, पछाडता वह आगे ही बढा। कही बाणो से वार करता तो कही गदा से सनिको का सहार करता आखिर वह उस स्थान पर पहुच ही गया जहा अर्जुन जयद्रथ की सेना से लड रहा था।

अर्जुन को सुरक्षित देखते ही भीम सेन ने सिह नाद किया। भीम का सिह नाद सुन कर श्री कृष्ण और अर्जुन आनन्द के मारे उछल पड़े और उन्होने भी जोरो से सिह नाद किया। इन सिह नादो को सुन कर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके मन के शोक के बादल हट गए। उन्होने अर्जुन को मन ही मन आशीर्वाद दिया। वे सोचने लगे—"अर्जुन अवश्य ही सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध कर देगा। उसके करने से दुर्योधन का साहस टूट जायेगा। भीष्म पितामह के वध के उपरान्त यह दूसरी बडी क्षति दुर्योधन को होगी, जो उसकी कमर तोड़ देगी। इससे वह युद्ध के भावी परिणाम

के सम्वन्ध मे शकित हो जायेगा और सन्धि के लिए तैयार हो जायेगा सम्भव है कि जयद्रथ की समाप्ति पर ही इस युद्ध की समाप्ति हो जाय। मैं राज्य का न्यूनतम भाग लेकर भी सन्धि कर सकता हू। फिर हम दोनो, कौरव तथा पाण्डव भाईयों की भाति प्रेम से रहने लगेगे।"

इधर युधिष्ठिर के मन मे ऐसे विचार उठ रहे थे, उधर भीम तथा कर्ण मे भयकर सग्राम हो रहा था। कर्ण ने भीम का रास्ता रोक कर कहा—अरे मूर्ख ! तू भी अर्जुन के साथ ही यमलोक जाने के लिए यहां पहुंच गया ?"

भीम कर्ण के शब्दो को सुन कर क्रुद्ध हो गया और आवेश मे आकर उस पर टूट पडा वडा ही भयकर सग्राम होने लगा। भीम के वाणों से कर्ण का धनुष टूट गया। उसने दूसरा धनुष उठाया, पर भीम ने उसे भी तोड दिया। फिर कर्ण ने एक और धनुष उठा लिया, और बाण वर्षा आरम्भ करदी। भीम सेन ने उसका रथ तोड डाला और घोडो व सारथि को मार डाला। दुर्योधन ने अपने दो भाईयो को कर्ण की रक्षा के लिए भेजा। परन्तु उनको भीम ने काल का ग्रास वना दिया।

इस प्रकार दुर्योधन के कई भाईयों को भीम सेन ने मार गिराया। और कर्ण को वुरी तरह घायल कर दिया। दुर्योधन को कर्ण की दशा देखकर वडी चिन्ता हुई। उसने वार वार अपने भ्राताओ को कर्ण की रक्षा को भेजा, पर प्रत्येक भीम के हाथों मारा गया। कर्ण पहले तो शात भाव से लडता रहा और वार वार ऐसे शब्दो का प्रयोग करता रहा, जिन से भीम विचलित हो जाता वह आवेश मे आ जाता और पागल हाथी की भाति प्रहार करता, परन्तु अन्त मे कर्ण का मन दुर्योधन के भाईयो का वध होने के कारण क्रुद्ध हो गया। उसने जी तोड कर युद्ध आरम्भ कर दिया।

भीम सेन ने कर्ण के कई रथ तोड डाले। अनेक धनुप काट डाले और वार वार ऐसे भीपण प्रहार किए जिनसे कर्ण के प्राणों पर आ वनती। कर्ण था वडा ही यशस्वी प्रतापी योद्धा। वह अपनी रक्षा कर लेता। अन्त मे कर्ण ने कुपित होकर भीम सेन के रथ को तोड [डाला। उसके रथ के घोडो और सारथि को मार डाला।

भीम सेन ने रथ से कूद कर हाथियो के शवो के पीछे मोरचा जमाया। वहां से उसके हाथ जो भी लगा, रथो के टुकडे, पहिए, टूटे हुए भाले, टूटी गदाए आदि, वही फेक कर कर्ण को मारी। उस समय यदि कर्ण चाहता तो भीम को मार डालता, परन्तु जब ऐसा अवसर आया, जो उसे कुन्ती को दिया वचन याद आगया। उसने वचन दिया था कि वह अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव को न मारेगा। उसी वचन के अनुसार उसने भीम सेन का वध न किया।

इतने मे ही श्री कृष्ण की नजर भीम सेन पर पड़ गई जो निःशस्त्र होकर भी कर्ण के ऊपर प्रहार कर रहा था उन्होंने अर्जुन से कहा—"पार्थ ! उधर देखो भीम सेन को कर्ण मारे डाल रहा है।"

अर्जुन औरो से लडना भूल तुरन्त भीम सेन की रक्षा के लिए पहुच गया।

× × × ×

इधर सात्यकि और भूरि श्रवा मे युद्ध हो रहा था। लडते लडते सात्यकि और भूरि श्रवा दोनों के घोड़े मारे गए, धनुष कट गए और रथ भी बेकार हो गए। इसके पश्चात दोनो वीर ढाल तलवार लेकर भूमि पर उतर आये। और आपस मे भिड गए। दोनो ने ही वडे पराक्रम का प्रदर्शन किया। दोनो ही एक दूसरे से वढ कर थे। अत. दोनो अपने अपने बाहु वल से एक दूसरे को पराजित करने की चेष्टा करते रहे। परन्तु किसी ने भी हार न मानी और दोनो की ढाले कट गई। तव वे आपस मे मल्ल युद्ध करने लगे।

दोनो एक दूसरे की छाती से छाती टकराते और गिर पडते। एक दूसरे को कसकर पकड लेते और जमीन पर लोटने लगते। फिर अचानक उछल कर खडे हो जाते। और एक दूसरे को धक्का देकर मार गिराते। इसी प्रकार दोनो युद्ध रत रहे।

इतने मे श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"धनजय ! सात्यकि थक गया प्रतीत होता है। जान पड़ता है भूरि श्रवा उसकी जान ही लेकर छोडेगा।"

परन्तु अर्जुन तो कौरव सेना से भिडा था, फिर उसे यह बात भी भली नही लगी थी कि जब वह सात्यकि को युधिष्टिर की रक्षा का भार सौंप कर आया था, तो सात्यकि वहां युधिष्टिर को छोडकर चला क्यो आया। इसलिए वह युद्ध करने मे दत्तचित्त रहा। उसने सात्यकि की चिन्ता नही की।

परन्तु श्री कृष्ण ने पुन अर्जुन का ध्यान उसी ओर खींचा। बोले—"अर्जुन! सात्यकि को जब भूरि श्रवा ने युद्ध के लिए ललकारा था, वह तभी थका हुआ था और अब तो वह बहुत ही थक गया है। उसकी रक्षा करो वरना तुम्हारा प्रिय मित्र भूरि श्रवा के हाथो मारा जायेगा।"

इतने में भूरि श्रवा ने सात्यकि को दोनों हाथो मे दबोच कर ऊपर उठा लिया और भूमि पर पटक दिया। कौरव सैनिक चीख पडे—"सात्यकि मारा गया। सात्यकि मारा गया।"

"अर्जुन! देखो वृष्णि कुल को सब से प्रतापी वीर सात्यकि भूमि पर असहाय सा पडा है। जो तुम्हारे प्राण बचाने और तुम्हारी सहायता करने आया था उसी की तुम्हारे सामने हत्या हो रही है। तुम्हारे देखते ही देखते तुम्हारा मित्र अपने प्राण गवाने वाला है।" श्री कृष्ण ने अर्जुन से एक बार पुन सात्यकि की सहायता करने का आग्रह किया।

अर्जुन ने देखा कि भूमि पर पडे उसके मित्र सात्यकि को भूरि श्रुवा उसी प्रकार खींच रहा है, जिस प्रकार सिंह हाथी को घसीट रहा हो। यह देख अर्जुन भारी चिन्ता मे पड गया। उसे कुछ सूझ न पडा कि क्या करे?

अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—' मधु सूदन! भूरि श्रवा मुझ से नही लड रहा, फिर मैं क्या करू? जब कोई वीर दूसरे से लड़ रहा हो तो तीसरे को उस मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही होता। पर मैं अपने मित्र का वध भी अपनी आखो के आगे नही देख सकता अब आप ही बताईये कि क्या करू?'

श्री कृष्ण बोले—"अर्जुन! कई वीरों से युद्ध कर चुकने के कारण सात्यकि अब निहत्था, निस्हाय और थका हुआ है, वह बुरी

तरह भूरि श्रवा के हाथों मे फसा है तुम्हे इस समय इस सम्बन्ध मे तटस्थता नही बरतनी चाहिए।"

ज्यों ही अर्जुन ने सात्यकि की ओर देखा, उस समय सात्यकि नीचे पडा था और भूरि श्रवा उसके शरीर को एक पांव से दबा कर दाहिने हाथ मे तलवार लेकर उस पर वार करने को उद्यत था। यह देख अर्जुन से न रहा गया। उसने उसी क्षण तान कर बाण चलाया। बाण लगते ही भूरि श्रुवा का दाहिना हाथ कटकर तलवार सहित दूर भूमि मे जा गिरा।

हाथ कटे हुए भूरि श्रवा ने पीछे मुड़ कर अर्जुन को देखा तो क्रुद्ध होकर बोला :—

"अरे, कुन्ती पुत्र, मुझे तुम से ऐसे अवीरोचित कार्य की आशा न थी जब मै दूसरे से लड रहा था, तुम्हारी ओर देख तक न रहा था, तो तुमने पीछ से मुझ पर आक्रमण क्यों किया ? ऐसा अधार्मिक, अनियमित और अवीरोचित युद्ध करना तुम्हे किसने सिखाया, कृप ने या द्रोण ने ? मैं जानता हू कि क्षत्रियो को कलकित करने वाला यह कृत्य तुमने स्वय नही किया होगा, अवश्य ही तुम्हे श्री कृष्ण ने उकसाया होगा ? वही है ऐसे अधर्मो के मूल।"

इस प्रकार भूरि श्रवा के मुख से अपनी और श्री कृष्ण की निंदा सुनकर अर्जुन ने कहा—"भूरि श्रवा ! दूसरे के मुँह पर थूकने से पहले अपना मुह पानी मे देख लिया होता। तुम मेरे दाहिने हाथ सात्यकि का वध कर रहे थे, जब कि वह निशस्त्र था और भूमि पर पडा था। तुम्हारे इस अधर्म को मैं सह लेता, तो क्यो ? वह कृत्य तुम्हारा कौन सा ही धर्म के अनुसार था ? और जब अभिमन्यु बुरी तरह थक गया था, निःशस्त्र था, उसका कवच फट गया था, तब कई महारथियो द्वारा चारो ओर से घर कर उस निहत्थे बालक को मारना कौन से धर्म के अनुसार उचित था ? हमारा नाश करने के लिए तुम धर्म को भूल जाते हो, और जब तुम्हारे अधर्म को हम रोकते है तो तुम धर्म की दुहाई देते हो। वृद्धावस्था मे क्या बुद्धि भी गवा ली है ?"

भूरि श्रवा सुनकर मौन रह गया और प्रायश्चित करने के लिए वह वही एक स्थान पर आमरण अनशन कर के बैठ गया।

तभी सात्यकि को होश आया और उसने चारो ओर देखा । अपने अपमान से क्रोध के मारे वह जल रहा था, उसने आव देखा न ताव, तलवार से ध्यान मग्न भूरि श्रवा का सिर काट दिया।

× × × +

अर्जुन जयद्रथ की खोज मे चारो ओर रक्त की नदिया बहाता फिर रहा था, पर कही जयद्रथ नजर ही न आता था । तब वह चिन्तित होकर बोला "सखे ! सूर्य अस्त होने वाला है और जयद्रथ कही दिखाई नही देता ! क्या करू ? क्या मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाऊगा ?"

श्री कृष्ण ने पश्चिमी दिशा की ओर देखा । वे भी चिन्ता मग्न हो गए और कुछ ही देरि मे सूर्य प्रकाश लुप्त हो गया । कौरव सेना मे हर्ष छा गया और पाण्डव सेना का एक एक महारथी और सैनिक चिन्ताकुल हो गया । स्वय अर्जुन दु.ख के मारे शिथिल हो गया।

तभी जयद्रथ आनन्द के मारे उछलता हुआ सामने आ गया और बार बार पश्चिम की ओर देखने लगा । तभी श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"पार्थ ! वह देखो जयद्रथ प्रफुल्लित होकर बारम्बार पश्चिम को ओर देख रहा है। बस इसी समय निशाना बाधकर ऐसा बाण मारो, जो उसके सिर को काटता हुआ निकल जाये। हा देखो वह अपना दैवी, अभिमन्त्रित बाण चलाना, ताकि वह सिर काटता हुआ निकल ही न जाये, बल्कि सिर को लेजा कर जयद्रथ के पिता की गोद मे गिराये।"

श्री कृष्ण ने एक ऐसा बाण पहले ही जयद्रथ बध के लिए रख छोड़ा था, श्री कृष्ण की आज्ञा पाकर उसी बाण को गाण्डीव पर चढाकर अर्जुन ने मारा, और बाण जयद्रथ का सिर उड़ाता हुआ निकला। जयद्रथ का सिर उस बाण की मार से कट कर उसके बाप की गोद मे जाकर पडा। और जब उसका बाप शोकातुर होकर उठा तो सिर भूमि पर गिर पडा और उसके सिर के सौ टुकड़े हो गए।

इधर ज्यो ही जयद्रथ का सिर कटा, त्यो ही सूर्य चमक उठा। इस अद्भुत चमत्कार को देख कर सभी चकित रह गए।

अर्जुन भी विस्मित था। श्री कृष्ण बोले—"पार्थ ! चकित न हो। मैंने ही एक विद्या के द्वारा सूर्य पर अंधकार का परदा डाल दिया था, ताकि जयद्रथ बाहर आ जाये। सो मेरी इच्छा पूर्ण हुई इससे तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।"

अर्जुन ने श्री कृष्ण के प्रति बडी ही कृतज्ञता प्रगट की।

इधर कौरव सेना मे शोक छा गया और पाण्डव सेना सिंह नाद कर उठी।

* पचासवां परिच्छेद *

द्रोणाचार्य का अन्त

युद्ध के चौदहवे दिन जब सायकाल के उपरान्त भी युद्ध जारी रहा और बडी बडी मशालो के प्रकाश मे दोनो ओर की सेनाएं जूझती रही।

कर्ण और घटोत्कच मे उस रात बडा ही भयानक युद्ध हुआ घटोत्कच और उसकी सेना ने इतनी भयकर बाण वर्षा की कि दुर्योधन के झुण्ड के झुण्ड सैनिक मारे गए। प्रलय सा मच गया। यह देख कर दुर्योधन का दिल कापने लगा।

कौरव वीरो ने कर्ण से अनुरोध किया कि किसी न किसी तरह आज घटोत्कच का काम तमाम कर दिया जाय। वरना यह राक्षस हमारी सेना को तबाह कर डालेगा। घटोत्कच ने कर्ण को भी इतनी पीडा पहुंचाई थी कि वह भी क्रुद्ध हो रहा था। कौरवो का अनुरोध सुनकर उसकी उत्तेजना और भी प्रबल हो उठी। वह आपे मे न रहा और उसने देवराज इन्द्र द्वारा दी हुई उस शक्ति-अस्त्र का प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया, जिसे उसने बडे यत्न से अर्जुन का वध करने के लिए सम्भाल कर रक्खा हुआ था। घटोत्कच मारा गया। कौरव सेना की जान मे जान आई। पाण्डवो की सेना को बडा शोक हुआ।

इतने पर भी युद्ध बन्द नही हुआ। द्रोणाचार्य बाणो की इतनी तीव्र बौछार कर रहे थे कि पाण्डव सैनिक गाजर मूली की भाति

कट रहे थे। रहे सहे पाण्डव सैनिक भी भयभीत हो गए थे।

पाण्डव महारथी चिन्तित हो उठे। श्री कृष्ण ने कहा—"अर्जुन! आज द्रोणाचार्य से अपनी सेना की रक्षा करना आसान नही हैं। जब तक वे हैं, तुम्हे अपनी सफलता की आशा ही नही करनी चाहिए। और जब तक उनके हाथो मे शस्त्र हैं, तब तक तुम्हे उनके परास्त होने की आशा नही होनी चाहिए।"

"फिर क्या किया जाय, मधु सूदन! कुछ तो उपाय बताईये।"—अर्जुन ने विनीत भाव से पूछा।

कृष्ण बोले—"एक ही उपाय है वह यह कि किसी प्रकार उन्हे हत प्रद कर दिया जाये। वे जब किसी अपने प्रिय के बध का समाचार सुनेगे, तो वे व्याकुल होकर रह जायेगे और उन से शस्त्र चलेगा ही नही, बस उसी समय उन्हे मारा जा सकता है।"

"परन्तु पहले उनके किसी प्रिय जन की मृत्यु होनी चाहिए"—अर्जुन सोचते हुए बोला।

"नही, इसके लिए यह उपाय किया जा सकता है कि कोई उनके पास जाकर यह समाचार सुनाये कि अश्वस्थामा मारा गया, बस काम बन जायेगा।"—श्री कृष्ण बोले! अर्जुन सुनकर सन्न रह गया। इस प्रकार असत्य मार्ग का अनुकरण करना उसे ठीक न जचा। ऐसा करने से उसने साफ इन्कार कर दिया। पाण्डव पक्ष के दूसरे वीरो ने भी इसे नापसन्द कर दिया।

तब श्री कृष्ण ने कहा—"सोच लो! आज द्रोणाचार्य तुम्हारी सेना को तहस नहस कर देगे। कल तुम्हारे महारथियो को मार डालेगे और इस प्रकार तुम सब मारे जाओगे। यही नही, बल्कि तुम्हारे परिवार का भी एक प्रकार से नाश हो जायेगा, जो तुम्हे विजय दिलाने अथवा दुर्योधन के अन्याय को परास्त करने के लिए तुम्हारे साथ जीवन की आशा त्याग कर यहा आये हैं।"

कृष्ण की बातो का जादू की भाति प्रभाव हुआ। और युधिष्टिर सोचने लगे—"मेरी भूल से मेरे भ्राता जी मेरे साथ वनो मे भटकते फिरे, और दास बनकर रहे और आज मेरे ही कारण सहस्रो शूरवीर द्रोण के हाथों मारे जायेंगे। सहस्रो ललनाए विधवा होगी, लाखो बालक अनाथ हो जायेगे। उसके बाद भी अन्याय का

साम्राज़ रह जायेगा। इसलिए जहा अपना यश बढाने के लिए मैंने अपने भ्राताओ तथा अपने सहयोगियो को यातनाए पहुचाई हैं, वहा आज अपने यश को हानि पहुंचाने का एक कार्य करके मैं इतने प्राण बचा सकता हू। अपने परिवार की रक्षा कर सकता हू और अन्याय का सिर नीचा होने का रास्ता खोल सकता हूं।"

यह सोच कर वे बोले—"ठीक है, इस असत्य भाषण द्वारा द्रोण को मैदान से हटाने का अपयश मैं अपने ऊपर लूगा। श्री कृष्ण की बताई युक्ति हमे अपनानी ही चाहिए।"

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर असत्य भाषण द्वारा शत्रु को परास्त करने को तैयार हो गए। और फिर तो सभी पाण्डव पक्षीय वीर उसके पक्ष मे हुए। भीम सेन को एक उपाय और सूझा। उसने अपनी गदा से अश्वस्थामा हाथी को मार डाला और जोर जोर से चिल्लाने लगा—"अश्वस्थामा को मैंने मार डाला, अश्वस्थामा मारा गया।"

जब यह शब्द द्रोणाचार्य के कान मैं पडे तो वे सन्न रह गए। उन्होंने पुन॰ ध्यान से सुना और निकट ही खड़े युधिष्ठिर से पूछा—"युधिष्टिर क्या यह सही है कि अश्वस्थामा मारा गया।"

उस समय युधिष्टिर जी कड़ा करके कह गए—'हां यह ठीक है कि अश्वस्थामा मारा गया, उसी समय उन्हे धर्म का ध्यान आया और वे धीरे से बोले—"परन्तु मनुष्य नही वरन हाथी" इन शब्दो को द्रोणाचार्य के कानो मे न पड़ने देने के लिए, पाण्डव पक्षीय सैनिकों ने उसी समय ढोल, मृदग और शख बजाने आरम्भ कर दिए और उनकी ऊंची आवाज मे युधिष्ठिर की आवाज दब कर रह गई।

फिर तो द्रोणाचार्य शोकातुर होकर खडे के खडे रह गए। इस समाचार से उन्हे इतना धक्का लगा कि वे शस्त्र सुध बुध खोकर लडना भूल गए और अपने हृदय को सम्भालने की चेष्टा करने लगे। तभी भीम सेन ने आकर उन्हे बडी जली कटी सुनाई। बोलो—"कहिए ब्राह्मण श्रेष्ट! अपना धर्म छोड़ कर क्षत्रियो का धर्म अपनाया और वह भी अन्याय का पक्ष लेने के लिए? कहा गई आप की नीति आपका धर्म? आप ने बेचारे अभिमन्यु बालक को

अधर्म पूर्वक मरवा दिया। इसी बल पर विद्वान तथा नीतिवान बनते हो ?"

एक तो वह अश्वस्थामा की मृत्यु का मिथ्या समाचार सुन कर ही खिन्न हो रहे थे, इन शब्दो से वे और भी दुखित हो गए। उन्होने अपने शस्त्र फेंक दिए। अपने को उन्होंने युद्ध करने मे असमर्थ पाया। तभी धृष्टद्युम्न ने दौड़ कर उनका सिर काट डाला। और द्रोणाचार्य ससार से उठ गए।

कौरवो की सेना मे हाहाकार मच गया और पाण्डव सेना आनन्द मनाने लगी। परन्तु युधिष्ठिर बहुत दुखित थे।
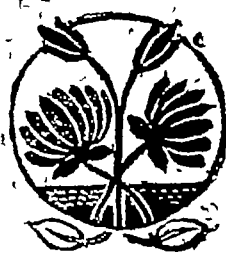
बाज कवूतर की ओर झपटता है।

दुःशासन ने भीम को अपनी ओर झपटते हुए देख कुछ घबरा सा गया, फिर भी वह वहां खड़े रहने पर विवश था बाण धनुष पर चढाकर उसने भीम पर प्रहार किया ही था कि भीम ने अपने वाण से उसके वाण को तोड डाला और धनुप को काट डाला। उसके बाद उसने एक छलांग मारी और दुःशासन को घर दाबा। दोनो भुजाओ मे उसे दाब कर नीचे गिरा दिया, फिर लगा उसके हाथ पांव तोडने। घूसो की मार से ही दुःशासन अधमरा हो गया। नीचे पडा पडा ही वह गाली बके जा रहा था और भीम सेन उसे इस प्रकार मार रहा था जैसे कुम्हार मिट्टी को ठीक करने के लिए ऊपर घूसें लगाता है। थोडी ही देरि में भीम ने दुःशासन का एक हाथ तोड कर फेंक दिया। वह दृश्य बड़ा ही वीभत्स था। भीम उसे मार रहा था और कहता जाता था—"वुला कौन है तेरा सहायक ? देखू तो कौन आता है तुझे बचाने के लिए ? मूर्ख! द्रौपदी को असहाय देखकर तो तूने अपनी वीरता दिखाने के लिए नीचता पूर्ण कार्य किए और उस पर भी अपने पर गर्व करता रहा। अब बता कौन है जो तेरी मुझ से रक्षा कर सके ? कौन है जो तुझे छुडा सके ?"

भीम सेन की मार से दुःशासन के प्राण पखेरू उड गए। इस प्रकार भीम ने उसका रक्त बहा दिया उस समय भीम सेन का रूप बडा भयानक था। वह उठा और चारो ओर आनन्द तथा गर्व से नृत्य सा करने लगा, उस समय उसके भीषण रूप को देखकर कौरव सैनिक कांप उठे। भीम ने सिंह नाद किए और गर्जना की—"कहा है दुःशासन का दुष्ट भाई दुर्योधन! अब उसका नम्बर है। कहाँ छुपा बैठा है, मेरे सामने आये ताकि उसे भी शीघ्र ही यमलोक पहुचा दू। अब वह मरने को तैयार हो जाय।"

उस समय भीम की सिंह गर्जना, उसके भयानक रूप और उसकी दहाड़ कौरवो का दिल दहला रही थी। यहा तक कि एक वार तो कर्ण भी काप उठा। कर्ण की ऐसी दशा देख कर शल्य ने उसे दिलासा देते हुए कहा :—

"कर्ण! तुम जैसे वीर को साहस त्यागना शोभा नही देता। दुःशासन की मृत्यु से दुर्योधन वहुत शोकातुर हो गया है अब उसकी

आखें तुम्ही पर हैं। यदि तुम धीरज खो दोगे तो कैसे काम चलेगा? वह देखो अर्जुन तुम्हारा बध करने की इच्छा से वाण वर्षा कर रहा है।"

इतना सुनते ही कर्ण को होश आया। और वह क्रुद्ध होकर अर्जुन पर टूट पडा।

× × × ×

दुर्योधन दु शासन की मृत्यु के कारण बहुत ही शोक विह्वल था वह चिन्ता मग्न खडा था, अश्वस्थामा उसके पास आया और बोला—"भैया दु शासन का जिस प्रकार वध हुआ, उसे देखकर ही रोगटे खड़े हो जाते हैं। भीम ने बडा ही अमानुषिक व्यवहार किया है जो हो, अब हमारे लिए युद्ध बन्द कर लेना ही उचित है। आप पाण्डवो से सन्धि कर लीजिए।"

सन्धि का नाम सुनते ही दुर्योधन का खून खौल उठा और क्रुद्ध होकर बोला ,'पापी भीम सेन ने जगली पशुओ सा व्यवहार किया और तुम कहते हो उन लोगो से मैं सन्धि कर लू जो ऐसे असभ्य है जिन्हो ने मेरे भाईयो को जयद्रथ को और मेरे सेना पतियो को मार डाला। नही मैं लड़ूगा। अन्तिम समय तक लडता रहूगा।"

उसके सिर पर तो मृत्यु नाच रही थी, वह भला कैसे मानता आवेश मे आकर उसने पाण्डवो पर भयकर आक्रमण कर दिया।

× × × ×

कर्ण और अर्जुन मे भीषण सग्राम छिडा था। दोनो ही टक्कर के महारथी थे। कर्ण ने एक ऐसा वाण चलाया जो काले नाग की भाति विष की आग वरसाता हुआ अर्जुन की ओर चला। श्री कृष्ण ने जब देखा कि सर्पमुखास्त्र अर्जुन की ओर आ रहा है, तो उन्होंने युक्ति पूर्वक रथ नीचा कर लिया और वह अस्त्र अर्जुन के मुकुट को गिराता हुआ निकल गया। यदि श्री कृष्ण ऐसा न करते, तो वह अस्त्र अर्जुन के प्राण ले लेता। अर्जुन को इस वात से वडा क्रोध आया और उसने वड़ी तीव्र गति से वाण वर्षा आरम्भ करदी। इतने मे ही समयवश कर्ण के रथ का एक पहिया अचानक धरती मे धस गया। कर्ण घबरा गया और बोला—"अर्जुन! मेरे रथ का पहिया कीचड़ मे धस गया है, तनिक ठहरो मैं उसे कीचड़ से निकाल

कर सूखी धरती पर रख दू। तुम तो धर्म-युद्ध के धनी हो। युद्ध धर्म को निभा कर तुमने जो यश कमाया है, उसे कलंकित न करना तनिक बाण वर्षा बन्द करलो।"

श्री कृष्ण ने चिढकर कहा—"अरे वाह रे! धर्म के ठेकेदार जब अपनी जान पर बन आई तो तुम्हें धर्म याद आया, पर जब द्रौपदी को अपमानित करा रहे थे, तब तुम्हे धर्म याद नही आया? नौ सिखिये युधिष्ठर को कुचक्र मे फसाते समय तुम्हे धर्म याद नही आया। दुधमुए बालक अभिमन्यु को तुम सात महारथी घेरकर मार रहे थे तब तुम्हे धर्म याद क्यो नही आया?"

श्री कृष्ण की झिडकी सुनकर कर्ण को कुछ कहते न बना और वह अपने अटके हुए रथ पर से ही युद्ध करने लगा। उसने एक बाण बडा ही ताक कर मारा, जो अर्जुन को जा लगा जिससे अर्जुन कुछ देरि के लिए विचलित हो गया। बस इस समय का ही उपयोग करने के लिए कर्ण झट से कूद पडा, रथ का पहिया कीचड से निकालने के लिए। उसने भरसक प्रयास किया पर उस का भाग्य उससे रूठ चुका था, पहिया हज़ार प्रयत्न करने पर भी न निकला।

यह स्थिति देख श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"पार्थ! इस सुन्दर अवसर को हाथ से मत जाने दो।"

और अर्जुन ने बाण वर्षा आरम्भ करदी। कर्ण ने उस समय परशुराम से सीखी विद्या को प्रयोग करना चाहा पर उसे वह याद न रही। और अर्जुन के एक बाण ने उसका सिर धड से अलग कर दिया।

* बावनवां परिच्छेद *

दुर्योधन का अन्त

हिंसात्मक युद्ध के द्वारा अधर्म अथवा अत्याचार को नष्ट करने की आशा करना व्यर्थ है। हथियार बन्द युद्ध से अत्याचार तथा अन्याय कभी नही मिटते। तभी तो भगवान महावीर ने कहा है कि :—

"वैर से वैर निकालने मे वैर ही की वृद्धि होती है।" धार्मिक उद्देश्यो के जो भी युद्ध किए जाते हैं, उनमे भी अनिवार्य रूप से अन्याय और अधर्म होते ही हैं। ऐसे युद्धो के परिणाम स्वरूप अधर्म की वृद्धि ही होती है।

इसी सिद्धान्त के अनुसार यदि हम महाभारत के युद्ध को देखें तो इस परिणाम पर पहुचेगे कि कितनी ही बाते पाण्डवों की ओर से भी धर्म विरोधी ही हुई। कर्ण का वध किस प्रकार हुआ, इसे देखकर, द्रोणाचार्य के बध की गाथा पढकर और भूरिश्रवा के वध मे अपनाए गए उपायों को देखकर तो यह और भी प्रगट हो जाता है कि युद्ध दूसरे पापो अधर्मों तथा अन्यायो का कारण बन जाता है, चाहे वह किया गया हो अधर्म अथवा अन्याय के प्रतिकार के ही लिए।

जब दुर्योधन को कर्ण के वध का समाचार मिला तो उसके शोक की सीमा न रही। यह दु ख उसके लिए असहाय हो उठा। वह बार बार कर्ण को स्मरण करके विलाप करने लगा। उसकी इस शोचनीय स्थिति को देखकर कृपाचार्य ने कहा—"राजन्! आपने जो जो कार्य, जिस जिस व्यक्ति को सौंपा, उसी ने प्रसन्नता पूर्वक

उसे किया और करते करते अपने प्राणो का उत्सर्ग भी कर दिया। इस प्रकार हमारे कितने ही महारथी मारे गए । अब युद्ध के इस भयानक दावानल को शात करना ही उचित है । आपको अपनी रक्षा के लिए अब सन्धि कर लेनी चाहिए । युद्ध बन्द ही आपको श्रेयस्कर होगा ।

यद्यपि दुर्योधन हताश हो चुका था तथापि कृपाचार्य के मुख से सन्धि का शब्द सुनकर वह आवेश मे आगया। कहने लगा—"आचार्य! क्या आप चाहते है कि मैं अपने प्राण बचाने के लिए पाण्डवो से सन्धि कर लू? नही, यह तो कायरता होगी । हमे वीरता से काम लेना होगा क्या मैं भीरु की भाति अपने प्राण बचालू जब कि मेरी खातिर मेरे बन्धु बाधवो व मित्रो ने अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दिया हैं यदि मैं ऐसा करूगा तो ससार मुझ पर थूकेगा, लोग कहेगे कि दुर्योधन ने अपने वृद्ध जनो, मित्रो तथा बन्धु बाधवो को तो मरवा डाला और जब वे सब मारे गए और अपने प्राणो का प्रश्न आया तो सन्धि करली । लोक निन्दा सहकर मैं कौन सा सुख भोगने को जीता रहू? जब मेरे अपने सभी मित्र व बन्धु मारे जा चुके तो सन्धि करके कौन सा सुख भोग सकूगा? अब तो जो भी हो, हमे लडते ही रहना है । क्या तो अन्त मे हम विजयी होगे, अन्यथा अपने प्राण देकर अपने बन्धु बान्धवो के पास पहुच जायेगे।"

सभी कौरव वीरो ने दुर्योधन की इन बातो की सराहना की। सभी ने उसका समर्थन किया और सब ने युद्ध जारी रखना ही उचित ठहराया। इस पर सब की सम्मति से मद्र राज शल्य को सेनापति बनाया गया। शल्य बडा ही पराक्रमी, वीर और शक्ति-मान था। उसकी वीरता अन्य मृत कौरव सेनापतियो से किसी भाति कम न थी। शल्य के सेनापतित्य मे आगे युद्ध आरम्भ हुआ।

पाण्डवो की सेना के सचालन का कार्य स्वय युधिष्ठिर ने सम्भाला युद्ध आरम्भ होते ही महाराज युधिष्ठिर ने स्वय ही शल्य पर आक्रमण किया। जो शाति की मूर्ति से प्रतीत होते थे अब क्रोध की प्रति मूर्ति से बनकर बडे प्रचण्ड वेग से शल्य पर टूट पडे। उनका भीषण-स्वरूप बडा ही आश्चर्य जनक था। देर तक दोनो मे द्वन्द्व युद्ध होता रहा। आखिर युधिष्ठिर ने शल्य पर एक शक्ति-

अस्त्र का प्रयोग किया जिसके द्वारा मद्रराज शल्य घायल होकर धडाम से रथ पर से इस प्रकार गिरे जंसे उत्सव-समाप्ति के वाद इन्द्र-ध्वजा ।

उनके गिरते ही बची खुशी कौरव-सेना मे कोलाहल मच गया । शल्य के मर जाने से कौरव-सेना नि सहाय सी हो गई । भय विह्वल होकर सभी सैनिक कांपने लगे । परन्तु रहे सहे धृतराष्ट्र पुत्रो ने साहस से काम लिया और सब मिलकर भीम सेन पर टूट पड़े । बाणों की वर्षा आरम्भ करदी, पर उन्मत्त हाथी की भाँति भीम सेन वार वार सिह नाद करता हुआ उन पर झपटता रहा और कुछ ही देरि मे उसने अपने बाणो से उन सभी को मार गिराया । फिर तो कौरव सैनिको मे और भी भय छा गया । भीम सेन तो आनन्द के मारे उछलता कूदता रण भूमि मे दहाड़ मारता घूमने लगा, मानो आज ही उसका जीवन सार्थक हुआ हो । तेरह वर्ष तक दबा रखो क्रोध की अग्नि उस दिन भडकी और दुर्योधन के अतिरिक्त शेष रहे सभी धृतराष्ट्र के पुत्रो को मार कर वह सन्तुष्ट सा प्रतीत होता था । वह हर्ष से फूला न समाता था ।

दूसरी ओर शकुनि और सहदेव का युद्ध हो रहा था । तलवार की पैनी धार के समान नोक वाला एक बाण शकुनि पर चलाते हुए सहदेव ने कहा – 'मूर्ख शकुनि ! ले अपने पापो का दण्ड भुगत ही ले ।''

वह बाण शकुनि के हृदय मे प्रविष्ट हो गया, जिससे वास्तव मे उसको अपने पापो का फल मिल ही गया . एक चीत्कार के साथ वह ढेर हो गया । युधिष्ठिर, भीम और सहदेव ने उस दिन इसी प्रकार अनेक दुर्योधन पक्षीय वीरो को मार गिराया ।

× × × ×

कौरव-सेना के लगभग सारे वीर सदा के लिए सो गए। कुरु क्षेत्र मानव शवो से पटा पडा था । चारो ओर कटे हुए हाथ पैर, धड और सिर बिखरे हुए थे । उनसे दुर्गन्ध उठने लगी थी । अकेला दुर्योधन रह गया था, जिसका हृदय टूट गया था और वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर उधर भटकता फिर रहा था । परन्तु उसे शांति न मिलती थी ।

अभी कृपाचार्य शेष थे। उन्हे अपने मन की व्यथा सुनाते हुए दुर्योधन बोला—'आचार्य! अब तो सब तहस नहस हो गया। मैं अकेला हू न जाने मुझे भी कब मृत्यु आ दबाये। दूरदर्शी विदुर शायद पहले ही इस युद्ध के परिणाम को जानते थे, तभी तो वे मुझे बार बार समझाते रहते थे और युद्ध करने को भी उन्होंने बहुत मना किया था। वे चाहते थे कि मैं सन्धि कर लूं। पर मुझपर न जाने कैसा भूत चढा था कि मैंने उनकी एक न सुनी और अपनी हठ से अपना सब कुछ गवा बैठा! अब मे निस्सहाय हू। कुछ समझ मे नही आता कि क्या करू! राज्य पाण्डवो के हाथ मे चला गया, इसका मुझे दुःख नही है, दुःख है तो इस बात का कि मेरे अपने सभी चले गए। मैं उनकी याद मे तडपने रहने के लिए जीवित बचा हू। पिता जी जन्म के अन्ध हैं और माता पिता जी के कारण चक्षु हीन है। वे हमे याद कर करके रोते रहा करेगी। हाय! मेरा अन्त इस प्रकार होगा, मुझे इसकी कभी आशा नही थी।"

कृपाचार्य ने उसे धैर्य बन्धाते हुए कहा—"दुर्योधन! इस प्रकार अधीर क्यो होते हो। तुमने तो साहस त्यागना कभी सीखा नही। तुम अभी अपने को अकेला क्यो समझते हो। अश्वस्थामा और मैं अभी तुम्हारे साथ हैं। तुम साहस पूर्वक युद्ध करो। देखो! तुम्ही ने तो कहा था कि तुम भीरू की भाति जीना नही चाहते। जिस मनुष्य ने सदा शत्रुओ को ललकारा है वह विपदा आने पर इस प्रकार विलाप करने लगे, यह उसके लिए लज्जा की बात है।"

"नही, आचार्य जी! अब क्या रह गया है, जिस पर मैं गर्व करू। मैं जिन पर गर्व करता था, वे सभी मारे गए। अब युद्ध की बात मैं चाहे न करू तो भी युद्ध तो मेरे बध के बाद ही बन्द होगा। मैं भाग कर कहा जा सकता हू। भीम मुझे जीवित थोडे ही छोडेगा। पर मैं निराश हो चुका हू। युद्ध से मैं ऊब गया हू। मेरे जीवित रहने का तो कोई उपाय ही नही। पर खेद है तो इस बात का कि समय रहते मेरी आखें न खुली और अपने बन्धु बाधवो के हत्यारों से मैं बदला न ले सका।" दुर्योधन ने व्याकुल व निराश होकर कहा।

कृपाचार्य बोले—"दुर्योधन! तुम्हे इतना हताश होने की

आवश्यकता नही है। तुम चाहो तो तुम मे अब भी ऐसी शक्ति आ सकती है कि कोई शत्रु तुम्हे न मार सके । किन्तु बदला लेने की भावना छोड दो सर्वज्ञ जिन देव का कथन है की बदला लेने की भावना वाला उतना ही कर्मवर्धन करता है, पार्थ विस्मय पूर्वक दुर्योधन ने पूछा—"क्या कह रहे हैं आचार्य जी ! क्या वास्तव मे कोई ऐसा उपाय भी है कि मैं शत्रुओ द्वारा न मारा जा सकू ?"

"हा हा तुम्हारे घर ही एक ऐसी सन्नारी है, बल्कि देवी है, जिसकी दृष्टि तुम्हारे जिस अग पर पड जायेगी, उसी अग पर शत्रु का कोई शस्त्र या अस्त्र असर न कर सकेगा ।" कारण ससार का वरणक हस्त स्पष्ट नही देखता नीची भावना से शुभ प्रकृति सग्रह है ऐसा जिन देव भगवान का कथन है वह शुभ प्रकृति नत्रो और भावना द्वारा तुम्हे आयेगी फिर कोई शस्त्र अस्त्र असर नही करेगा।—"कौन है वह देवी ! मुझे शीघ्र बताईये ।"

"वह है तुम्हारी जननी, गाधारी । वह पतिव्रता नारी यदि तुम्हारे शरीर पर एक बार दृष्टि डाल दे तो तुम्हारा शरीर इस्पात का हो जायेगा । परन्तु तुम्हे उसके आगे बिल्कुल नग्नावस्था मे जाना होगा ।"—कृपाचार्य ने कहा ।

"पर मेरी माता की आखो पर तो पट्टी बन्धी रहती है, वे कभी अपनी आखो से पट्टी खोलती ही नही, वे अपनी पट्टी खोल सकेगी ?"

"हा, हा पुत्र प्रेम के कारण वे ऐसा कर सकती है।"

"पर मैं उनके सामने नग्न कैसे जाऊ ?"

"यदि तुम्हे अपने प्राणो की रक्षा करनी है, तो यह करना ही होगा ."

कृपाचार्य के शब्द सुनकर दुर्योधन सोचने लगा कि वह क्या करे। बहुत देरि तक वह सोचता रहा और अन्त मे उसने वैसा ही करने का निश्चय कर लिया।

नग्न होकर वह अपनी माता के पास चला । श्री कृष्ण ने उसे देख लिया और वे समझ गए कि दुर्योधन वैसा क्यो कर रहा है। उन्होने तुरन्त ही एक बहुत बडा, बडे बडे मोटे पुष्पों से बना

हुआ हार लिया। जिसकी कई लडिया थी। और दुर्योधन के निकट पहुंच कर कहा—"दुर्योधन ! नग्नावस्था में कहां चल दिए।"

"माता जी के पास जा रहा हू।" दुर्योधन ने सत्य ही कहा।

"माता के पास जा रहे हो और नग्नावस्था मे ? बड़े आश्चर्य की बात है।" श्री कृष्ण ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा।

"बात ही कुछ ऐसी है।"—केशव समझ गये और विचार किया की हारे हुये शत्रु का विश्वास नही करना चाहिए और दाव नही देना चाहिये—

कोई भी बात हो पर गुप्तांगो को तो ढक लिया होता। लो यह पुष्प हार पहन लो जिससे जंघाओं का भाग ढक जाये। तुम्हारा उद्देश्य भी पूरा हो जायेगा और व्यवहार धर्म भी निभ जायेगा"

उसने खुशी खुशी हार पहन लिया।

माता के पास जाकर उसने अनुनय विनय की। गांधारी ने अपनी आखो की पट्टी उतार डाली और उस पर दृष्टि डाली। गले मे पड़ी पुष्प माला देखकर बोली—"मूर्ख ! तूने यह क्या किया ? यह हार गले मे क्यो डाल लिया ?"

"लाज के मारे।"

"कही तुझे रास्ते मे श्री कृष्ण तो नही मिल गए थे ?" गांधारी ने शंकित होकर पूछा।

"हा. उन्होने ही तो मुझे यह माला पहनाई है।"

"मूर्ख ! बस उन्होने तुझे माला क्यो पहनाई तेरे प्राण ही हर लिए।"

"वह क्यो !"

"पगले ! माता ने कहा—फूलों से ढकी जंघाओ पर ही शत्रु वार करेगा और याद रख इसके कारण तेरी मृत्यु होगी।"

"यदि मैं अब पुष्प मालाए उतार फेंकू तो . .. .. ।"

"अब क्या होता है। वह वही समय था पट्टी उतारने से। जा श्री कृष्ण इस अवसर पर भी तुझे मात दे गए। मुझे खेद है कि मेरी दृष्टि से तू लाभ न उठा पाया।"

गांधारी के यह वचन सुनकर दुर्योधन को बडा खेद हुआ हताश व निराश होकर वह वापिस चला आया।

× × × ×

अपने शोक विह्वल हृदय को लिए दुर्योधन इधर उधर फिरता था। श्री कृष्ण द्वारा उसकी योजना असफल कर दिए जाने से वह बहुत दुखित हुआ और अन्त मे जब उसे कही भी शाति न मिली तो गदा लेकर एक जलाशय की ओर चला गया। जहा वह छुपकर अपने जीवन पर विचार करने लगा। जितना वह विचार करता, उतना ही उसे दु.ख होता। वह अपने को सर्व प्रकार से असफल व्यक्ति समझने लगा।

दूसरे दिन जब रणक्षेत्र मे दुर्योधन दिखाई न पड़ा, तो पाडव सोचने लगे कि वह कही जा छुपा है। पाचो ने सोचा कि उसे खोजना चाहिए। जहा कही हो, ढू ढकर उसे दण्ड दिया जाय। पाचो श्री कृष्ण सहित उसकी खोज मे निकले। चलते चलते वे उसी जलाशय पर पहुच गए जहाँ दुर्योधन छिपा बैठा था। युधिष्ठिर ने उसे ललकार कर कहा—"धूर्त ! अब अपने प्राण बचाने के लिए यहा आ छुपा है। अपने परिवार और मित्रो का नाश कराने के पश्चात स्वय बच निकलना चाहते हो। तुम्हारा हर्ष और अभिमान क्या हुआ ? तुम क्षत्रिय कुल में पैदा होकर भी कायरता दर्शाते हो ? बाहर निकलो और क्षत्रियोचित ढग से युद्ध करो। युद्ध से भाग कर जीवित रहने की चेष्टा करके कौरव कुल को कलकित करने वाले दुर्योधन। तुम अपने कर्मों से अपने कुल पर बहुत कालिख पोत चुके, अन्त समय पर और कालिख क्यो पोतते हो ?"

युधिष्ठिर की ललकार सुनकर दुर्योधन व्यथित होकर बोला- "युधिष्ठिर ! यह मत समझना कि मैं प्राण बचाने के लिए यहा छुप कर बैठा हू। मैं भयभीत होकर भी नहीं आया।"

"तो फिर किस लिए आये है यहा श्रीमान् ?"—भीम ने चिढकर पूछा।

"मैं अपनी थकान मिटाने के लिए इस ठण्डे स्थान पर चला आया था, युधिष्ठिर ! मैं न तो डरा हुआ हूं न मुझे प्राणो का मोह है। फिर भी, सच पूछो तो युद्ध से मेरा जी ऊब गया है। मेरे

सगे सम्बन्धी सब मारे जा चुके हैं। बस मैं अकेला ही बचा हू। राज्य सुख का मुझे लोभ नही। यह सारा राज्य अब तुम्हारा ही है। जाओ और निश्चित होकर राज्य काज सम्भालो।"—दुर्योधन ने क्षुब्ध होकर कहा।

"दुर्योधन! कदाचित तुम्हे याद होगा कि एक दिन तुम्ही ने कहा था कि सुई की नोक जितनी भी भूमि नहीं दूगा। शाति प्रस्ताव जब हमने तुम्हारे पास भेजा, तुमने उसे ठुकरा दिया। श्री कृष्ण को भी तुमने निराश लौटाया। हमे पाच गाव देना भी तुम्हे स्वीकार न हुआ। अब कहते हो कि सारा राज्य तुम्हारा ही है। शायद तुम्हे अपने सारे पाप याद नही रहे। तुमने हमे जो यातनाए पहुचाई और द्रौपदी का जो अपमान किया था, वे सब तुम्हारे महा पाप तुम्हारे प्राणो की बलि माग रहे हैं। अब तुम बच नही पाओगे।"—युधिष्ठिर ने गरजते हुए कहा।

युधिष्ठिर के मुख से जब दुर्योधन ने यह कठोर बाते सुनी तो उसने गदा उठा ली और आगे आकर बोला—"अच्छा, यही सही, बिना युद्ध किए तुम्हे चैन नही पडने वाला, तो फिर आजाओ। मैं अकेला हू, थका हुआ हू। मेरे पास कवच भी नहीं है। और तुम पांच हो, तथा तरो ताजा हो। इसलिए एक एक करके निबट लो। चलो।"

यह सुन युधिष्ठिर बोले—"यदि अकेले पर कईयो का आक्रमण करना धर्म नही है, तो इसका ध्यान तुम्हे बालक अभिमन्यु को मारते समय क्यो नही आया था? तुम्ही ने तो घिरवाकर अभिमन्यु को मरवाया था। सात सात महारथी एक बालक को इकट्ठे मिल कर मारें तो धर्म है, और जब हम पाच हो और तुम अकेल हो तो अधर्म है। अब तुम्हे धर्म के उपदेश सूझ हे। सारे जीवन भर अधर्म किये और अब अन्त समय मे धर्म का आड लेते हो? चलो, हम तुम्हारी ही बात मान लेते हैं, चुन लो हम मे से किसी एक का। जिस तुम चाहो वही तुम से युद्ध करेगा। यदि द्वन्द्व युद्ध मे तुमने हम मे से किसी को, जिससे तुम लडोगे, हरा दिया तो सारा राज्य तुम्हारा ही होगा, तुम्हारी विजय हो जायेगी और यदि मारे गए, तो अपने पापो का बदला नरक मे पाओगे।"

यह सुन दुर्योधन ने भीम से गदा युद्ध करने की इच्छा प्रगट की। भीम सेन भी राज़ी हो गया और गदा युद्ध आरम्भ हो गया। दोनो की गदाए जब परस्पर टकराती तो उनमे से चिनगारिया निकल पडती थी। इस प्रकार बडी देर तक युद्ध जारी रहा।

इसी बीच दर्शक आपस मे चर्चा करने लगे कि दोनो मे जीत किस की होगी उस समय श्री कृष्ण ने अर्जुन से इशारो मे ही बताया कि यदि भीम दुर्योधन की जाघ पर गदा मारेगा तो जीत जायेगा भीम सेन ने उस सकेत को देख लिया और आव देखा न ताव एक गदा पूरा शक्ति से दुर्योधन की जाँघ पर दे मारी। जाघ पर गदा लगनी थी कि दुर्योधन पृथ्वी पर कटे पेड़ की भाति गिर पडा। यह देख भीम सेन और उन्मत्त हो गया, मन मे बसी घृणा क्रोध के साथ उबल पडी। उसी उन्मत्त दशा मे उसने घायल पडे दुर्योधन के माथे पर जोर की लात जमाई।

उसका यह कार्य श्री कृष्ण को अच्छा न लगा उन्होने बहुत बुरा भला कहा। भीम सेन चुप रह गया दुर्योधन जाँघ टूट जाने के कारण अधमरी अवस्था मे वही पडा रहा। और पाण्डव अपने शिविर की ओर लौटने लगे तो दुर्योधन ने श्री कृष्ण को बडी जली कटी सुनाई।

* त्रेपनवाँ परिच्छेद *
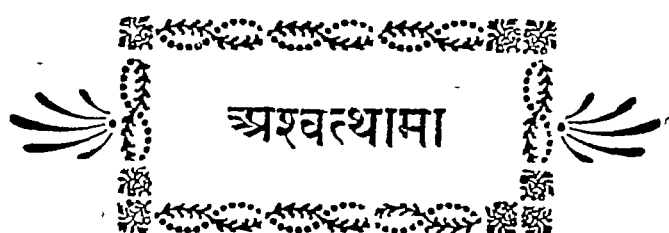
अश्वत्थामा

दुर्योधन पर जो कुछ बीती उसका वृतात सुनकर अश्वस्थामा बहुत क्षुब्ध हो उठा। उसे इस बात का बडा दुःख हुआ कि भीम सेन ने दुर्योधन की जाघ पर गदा प्रहार किया और इस प्रकार युद्ध के नियमों का उल्लघन करके अधर्म तथा पाप किया। साथ ही उसे अपने पिता द्रोणाचार्य के मरने के लिए जो कुछ कुचक्र रचा गया था, वह भी अभी भूला नही था। वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया। उसकी मुट्ठिया बार बार बन्ध जाती और दांत पीसने लगता। उसके जी मे आया कि वह कही भीम को अकेला पाये तो उसे अपने क्रोध की ज्वाला मे भस्म करके रखदे। वह तुरन्त दुर्योधन के बचे खुचे सैनिको को लेकर उस स्थान की ओर चल पडा, जहा दुर्योधन पड़ा हुआ मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा था।

जाते ही उसने दुर्योधन के सामने प्रतिज्ञा की कि आज ही रात्रि को मैं पाण्डवो का बीज नष्ट करके रहूगा मृत्यु की प्रतीक्षा करते दुर्योधन के मन मे पुन पाण्डवो के प्रति विद्वेष की ज्वाला भडक उठी। उसने पड़े पडे ही आस पास खडे लोगो के सामने विधिवत अश्वस्थामा को अपनी सेना का सेनापति बना दिया और बोला—"प्यारे अश्वस्थामा! अब तुम्ही मुझे शाँति दिला सकते हो। तुम्हे सेनापति बनाना कदाचित मेरे जीवन का अन्तिम कार्य है। मैं बडी आशा से तुम्हारी बाट जोहता रहूगा। मत भूलना कि

पाण्डवों ने तुम्हारे यशस्वी पिताका असत्य भाषण के द्वारा वध किया था।"

× × × ×

सूर्य डूब चुका था, रात्रि का अन्धकार धीरे धीरे बढ रहा था। चारो ओर अन्धेरा ही अन्धेरा था। तारों के धूमिल प्रकाश के होते हुए भी अन्धकार का साम्राज्य छाया था। अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा एक बरगद के पेड़ के नीचे रात बिता रहे थे। कृत और अश्वस्थामा बहुत थके हुए थे, वे पडते ही खर्राटे भरने लगे। पर विद्वेष की ज्वाला मे जल रहे अश्वस्थामा को नींद कहां। वह तो पाण्डवों के नाश का उपाय सोच रहा था।

चारो ओर कई प्रकार के पशु पक्षियो की बोलियां गूंज रही थी। उनके होते हुए भी अश्वस्थामा की विचार तरग चल रही थी।

उस बरगद की शाखाओ पर कौरवो के झुण्ड के झुण्ड बसेरा कर रहे थे। रात्रि में वे सब सोये हुए थे कि कही से एक उल्लू उड़ कर आया और आते ही उन सोते कौओ पर प्रहार कर दिया। एक एक करके चोचे मार मार कर उल्लू उन्हें चीरने-फाड़ने लगा। रात का समय था। उल्लू तो भलि भांति देख रहा था, किन्तु कौओ को अन्धेरे मे कुछ दिखाई ही नही देता था। वे चिल्ला चिल्ला कर मरते गए। अकेले उल्लू के आगे सैकडो कौओ की भी एक न चली।

यह देख अश्वस्थामा सोचने लगा—"जिस प्रकार अकेले उल्लू ने सोते हुए सैकडो कौओ को मार डाला, यदि मैं भी सोते हुए पाण्डवो, जिन्होंने मेरे साथिओ को मार डाला है, धृष्टद्युम्न जिसने मेरे पिता की हत्या की और उनके साथियो पर आक्रमण कर दू तो उन्हे मार सकता हू। वे बहुत है, मैं अकेला हूं। इसी प्रकार मैं उनसे बदला ले सकता हू। वे सोते होगे, इस लिए मेरा सामना न कर पायेंगे।"

तभी उसके मन मे प्रश्न हुआ—",क्या यह धर्म युक्त कार्य होगा?"

अश्वस्थामा सोचने लगा—"पाण्डवो ने भी तो अधर्म से मेरे पिता का वध किया है, भीम ने भी तो अधर्म से दुर्योधन की जाघ तोड़ी है। फिर अधर्म पाण्डवो को अधर्म से मार डालने मे क्या

हानि। शत्रु की कमजोरी से लाभ उठाना अनुचित नही हैं। और फिर हमारे पास अब इतनी सेना कहा जो धर्म युद्ध मे उनसे जीत सके। मुझें अपनी प्रतिज्ञा भी तो पूर्ण करनी है।"

बहुत सोच विचार के उपरान्त अश्वस्थामा ने उल्लू और कौओं वाली नीति का पालन करने का ही निश्चय किया और कृपाचार्य को जगा कर उसने अपना निश्चय कह सुनाया। अश्वस्थामा की बात सुनकर कृपाचार्य बहुत लज्जित हुए। वे बोले-"अश्वस्थामा ऐसे अन्याय पूर्ण विचार और तुम जैसे शूरवीर के मन मे। बेटा! हमने जिसके लिए शस्त्र उठाये थे, वह तो मृत्यु की बाट जोह रहा है। हम उस अधर्मी तथा अन्यायी की ओर से लड़े और हार गए। अब अन्त मे हमे ऐसा अनुचित कार्य नही करना चाहिए, जिससे हमारा आत्मा कलंकित हो जाये। अब तो हमारे लिए यही उचित है कि धृतराष्ट्र महा सती गाधारी और महा बुद्धिमान विदुर के पास चलें और जो वे आज्ञा दे वही करे। हमें यह शोभा नही देता कि इस प्रकार महा पाप कमाए। यह तो महा अधर्म की बात है। तुम्हे ऐसी बात सोचनी भी नहो चाहिए।'

यह सुनकर अश्वस्थामा का क्रोध तथा शोक और भी प्रबल हो गया। बोला—'मामा जी! धर्म भी धर्मियों के साथ ही चलता है! जिसे आप अधर्म कह रहे है, वह मेरी दृष्टि मे धर्म है। पिता जी और दुर्योधन को जिस प्रकार मारा गया क्या वह धर्म के अनुकूल है? तो फिर उसका बदला लेने के लिए मैं भी अधर्म का रास्ता क्यो न लू? मैं तो निश्चय कर चुका हूं कि अभी ही पाण्डवो के शिविर मे घुस जाऊगा और अपने पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न, दुर्योधन के हत्यारे भीम सेन और उसके भाईयो को जो कि कवच उतारे सो रहे हैं, जाकर मार डालूगा मैं अपने पिता और दुर्योधन का ऋण इसी प्रकार चुका सकता हूं।"

कृपाचार्य अपने भाजे की बाते सुनकर बड़े व्यथित हुए कहने लगे—'अश्वस्थामा तुम्हारा यश सारे ससार मे फैला है, क्रोध मे आकर ऐसा कार्य मत करो जो तुम्हारे यश की सफेद चादर पर रक्त के छीटे लगा दे। सोते हुए शत्रु को मारना कदापि धर्म नहीं है। तुम यह विचार त्याग दो।"

झल्लाकर अश्वस्थामा बोला—"मामा जी ! आपने यह क्या धर्म धर्म की रट लगा रक्खी है पिता जी का बध धृष्टद्युम्न ने उस समय किया था जब वे अस्त्र शस्त्र फेंक कर ध्यान मान बैठे थे । इस प्रकार कर्म का बन्धन पाण्डवों के हाथो कभी का टूट चुका ! कर्ण कीचड मे फसे रथ के पहिए को निकाल रहा था अर्जुन ने तब उस पर प्रहार किया, भूरिश्रुवा पर अर्जुन ने पीछे से वार किया और भीम सेन ने दुर्योधन की कमर के नीचे वार किया, क्या तब भी धर्म रह गया । पाण्डवो ने तो अधर्म की बाढ ही ला दी तब मैं धर्म से बन्धा रहूं तो क्यो ? आप चाहे इसे धर्म कहे अथवा अधर्म, मैं तो जा रहा हू अपने पिता और दुर्योधन का बदला लेने ।"

इतना कह कर अश्वस्थामा पाण्डवो के शिविर की ओर जाने को उठा । यह देख कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उठ खड़े हुए और बोले—"अश्वस्थामा ! आज तुम महा पाप करने पर उतारु हो गए हो । पर हम तुम्हे अकेले शत्रु के मुह मे नही जाने देंगे ।"

यह कहकर वे दोनो भी अश्वस्थामा के साथ हो लिए ।

× × × ×

आधी रात बीत चुकी थी । पाण्डवो के शिविरो मे सभी सैनिक मृदु निद्रा मे सोये पड़े थे । धृष्टद्युम्न भी पड़ा था । इतने मे ही अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ वहाँ पहुच गया । अश्वस्थामा पहले धृष्टद्युम्न के शिविर मे घुसा और जाते ही धृष्टद्युम्न पर कूद पड़ा सोये पडे धृष्टद्युम्न को उसने कुचल कुचल कर मार डाला और फिर सभी पाचाल राज कुमारों को इसी प्रकार मार डाला । इसके बाद उसने द्रौपदी के पुत्रो की हत्या की ।

कृपाचार्य और कृतवर्मा ने भी अश्वस्थामा का हाथ बटाया और तीनो ने ऐसे ऐसे अमानुषिक अत्याचार किए जैसे कि कभी सुनने मे भी नही आये । यह कुकृत्य करके अश्वस्थामा ने शिविरो मे आग लगा दी, आग बड़े जोरो से भड़क उठी और शिविरों मे फैल गई । इससे सोये पड़े सभी सैनिक जाग पड़े और भयभीत होकर इधर उधर भागने लगे । अश्वस्थामा ने उन सभो को मार डाला जो उसके हाथ लगे । फिर उल्लास पूर्वक बोला—"अब मैं प्रसन्न हू । मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण किया, अब मै दुर्योधन को यह शुभ

समाचार जाकर सुनाता हूं।"

यह कहकर वह अपने मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ उस स्थान की ओर चला, जहां दुर्योधन अन्तिम घड़ियां गिन रहा था।

× × × ×

दुर्योधन के पास पहुंच कर अश्वस्थामा ने हर्षातिरेक से कहा- "महाराज दुर्योधन! आप अभी जीवित है क्या? देखिये, मैं आपके लिए कैसा शुभ समाचार लाया हू, जिसे सुनकर आपका कलेजा अवश्य ही ठण्डा हो जायेगा और आप शाति से मर सकेगे। देखिये! मैंने कृपाचार्य व कृतवर्मा ने सारे पांचाल समाप्त कर दिए। पाण्डवो के भी सारे पुत्र हमने मार डाले। द्रौपदी का कोई पुत्र जीवित नही छोडा। पाण्डवो की सारी सेना को हमने या तो जलाकर मार डाला अथवा कुचल कर या अग प्रत्यग तोड़ कर खत्म कर डाला। इस प्रकार पाण्डवो के वीरो और सनिको का सर्व नाश हो गया, बस पाण्डवों के पक्ष में अब ज्ञात ही व्यक्ति जीवित है और आपके पक्ष के हम तीन। अब तो आपको अवश्य ही शांति मिली होगी। हम ने उन सभी को सोते हुए ही जा घेरा था और इस प्रकार आपके साथ हुए अन्याय का वदला ले लिया।"

दुर्योधन को यह समाचार सुनकर अपार हर्ष हुआ, बोला— "प्रिय गुरु भाई! आज तुमने वह कार्य किया है जिसे भीष्म पितामह, वीर कर्ण और द्रोणाचार्य भी न कर पाय। मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो गई। अब मैं शाति पूर्वक मर सकूंगा। तुम्हारे समाचार सुनने के लिए ही जी रहा था।" इतना कह कर दुर्योधन ने तीन हिचकिया ली और उसके प्राण पखेरू उड गए।

× × × ×

पाण्डवों को अपनी सेना, अपने वीरों और द्रौपदी के पुत्रों के इस प्रकार मारे जाने से वड़ा ही दुख हुआ। युधिष्ठिर वोले—"अभी अभी हमे विजय प्राप्त हुई थी। और मैं समझता था कि यह नाशकारी युद्ध समाप्त हो गया। पर अश्वस्थामा के पापी हाथों ने पांसा पलट दिया। उसने एक पाप करके हमारी जीत को भी पराजय मे परिवर्तित कर डाला। ओह! हम क्या जानते थे कि द्रोण पुत्र अश्वस्थामा इतना नीच हो सकता है। सोते शत्रुओं पर तो आज

तक किसी ने प्रहार नही किया—पर सम्भव है यह मेरे उस कर्म का फल हो जो मैंने द्रोण के साथ किया था। हाय ! मैं युद्ध जीत कर भी बुरी तरह हारा। अब द्रौपदी के दिल पर क्या बीतेगी ? मेरी दशा उस पाजी की सी हो गई जो महा सागर को तो सफलता पूर्वक पार कर लेता है,पर अन्त मे छोटे-से नाले मे डूबकर नष्ट हो जाता है।

श्री कृष्ण उन्हे सांत्वना देते हुए बोले-"महाराज युधिष्टिर ! व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ ? जो होना था हो गया। मरता क्या न करता की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए अश्वस्थामा ने यह सब कुछ किया है। उसने जो कुछ किया वह अपनी आत्मा के साथ ही अन्याय किया है। वीरो का कर्तव्य है कि वे खोकर दुखी और पाकर प्रफुल्लित न हो। आप तो धर्म राज है। आपको विलाप करना शोभा नही देता। जो हुआ, उसे भूल जाओ।"

द्रौपदी की दशा तो बडी ही दयनीय थी। जब उसने अपने बेटो के मारे जाने का समाचार सुना, वह सन्न रह गई। पागलो की भांति अपने बाल नोचने लगी, कपडे फाडने लगी। बडी कठिनाई से उसे होश मे लाया गया। तब वह बल खाती नागिन की भांति जल्दी से पाण्डवो के पास पहुची और उसने गरज कर कहा—"क्या आप लोगो मे कोई भी ऐसा नही है जो मेरे पुत्रो की हत्या का बदला ले सके ?"

इस चुनौती के उत्तर मे भीम सेन कडक कर बोला—"जब तक भीम सेन जीवित है। तुम्हे किसी प्रकार की चिन्ता नही है। मैं शपथ लेता हू कि कोई मेरा साथ दे अथवा न दे जब तक तुम्हारे पुत्रो के हत्यारे अश्वस्थामा से बदला न ले लूंगा, तब तक चैन से न बैठूगा।"

भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर एक बार तो सभी सन्न रह गए। परन्तु फिर उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सभी उसके साथ चलने को तैयार हो गए। सभी भ्राता अश्वस्थामा की खोज मे निकल पडे। ढूढते ढूंढते आखिर उन्होंने गगा के तट पर व्यास के आश्रम मे छुपे अश्वस्थामा का पता लगा ही लिया और जाकर उसे घेर लिया।

अश्वस्थामा और भीम सेन मे युद्ध छिड गया। दोनों वीर

समाचार जाकर सुनाता हूं ।"

यह कहकर वह अपने मामा कृपाचार्य उस स्थान की ओर चला जहा दुर्योधन रहा था।

× × ×

दुर्योधन के पास पहुंच कर अश्वस्थामा ने "महाराज दुर्योधन ! आप अभी जीवित है क्या लिए कैसा शुभ समाचार लाया हू, जिसे सुनक अवश्य ही ठण्डा हो जायेगा और आप शाति से मर मैंने कृपाचार्य व कृतवर्मा ने सारे पाचाल समाप्त क के भी सारे पुत्र हमने मार डाले। द्रौपदी का कोई छोडा। पाण्डवो की सारी सेना को हमने या तो जला अथवा कुचल कर या अग प्रत्यग तोड़ कर खत्म कर प्रकार पाण्डवो के वीरो और सनिको का सर्व नाश पाण्डवों के पक्ष में अब ज्ञात ही व्यक्ति जीवित है और हम तीन। अब तो आपको अवश्य ही शांति मिली हो उन सभी को सोते हुए ही जा घेरा था और इस प्रकार हुए अन्याय का बदला ले लिया।"

दुर्योधन को यह समाचार सुनकर अपार हर्ष हुआ "प्रिय गुरु भाई ! आज तुमने वह कार्य किया है पितामह, वीर कर्ण और द्रोणाचार्य भी न कर पाये। सन्तुष्ट हो गई अब मैं शाति पूर्वक मर सकूंगा। तुम्ही सुनने के लिए ही जी रहा था।" इतना कह कर दुर्योध हिचकिया ली और उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

× × × ×

पाण्डवों को अपनी सेना, अपने वीरों और द्रौपदी के इस प्रकार मारे जाने से बडा ही दुख हुआ। युधिष्ठिर बोले— अभी हमे विजय प्राप्त हुई थी। और मैं समझता था कि यह कारी युद्ध समाप्त हो गया। पर अश्वस्थामा के पापी हाथो ने प पलट दिया। उसने एक पाप करके हमारी जीत को भी पराजय मे परिवर्तित कर डाला। ओह ! हम क्या जानते थे कि द्रोण पुत्र अश्वस्थामा इतना नीच हो सकता है। सोते शत्रुओं पर तो आज

तक किसी ने प्रहार नही किया—पर सम्भव है यह मेरे उस कर्म का फल हो जो मैंने द्रोण के साथ किया था। हाय ! मैं युद्ध जीत कर भी बुरी तरह हारा। अब द्रौपदी के दिल पर क्या वीतेगी ? मेरी दशा उस पाजी की सी हो गई जो महा सागर को तो सफलता पूर्वक पार कर लेता है,पर अन्त मे छोटे-से नाले मे डूबकर नष्ट हो जाता है।

श्री कृष्ण उन्हे सांत्वना देते हुए वोले-"महाराज युधिष्टिर ! व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ ? जो होना था हो गया। मरता क्या न करता की लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए अश्वस्थामा ने यह सब कुछ किया है। उसने जो कुछ किया वह अपनी आत्मा के साथ ही अन्याय किया हैं। वीरो का कर्तव्य है कि वे खोकर दुखी और पाकर प्रफुल्लित न हो । आप तो धर्म राज है । आपको विलाप करना शोभा नही देता। जो हुआ, उसे भूल जाओ।"

द्रौपदी की दशा तो वडी हो दयनीय थी । जव उसने अपने वेटो के मारे जाने का समाचार सुना, वह सन्न रह गई। पागलो की भाति अपने वाल नोचने लगी, कपडे फाडने लगी। वडी कठिनाई से उसे होश मे लाया गया। तव वह वल खाती नागिन की भाति जल्दी से पाण्डवो के पास पहुंची और उसने गरज कर कहा—"क्या आप लोगो मे कोई भी ऐसा नही है जो मेरे पुत्रो की हत्या का वदला ले सके ?"

इस चुनौती के उत्तर मे भीम सेन कडक कर वोला—"जव तक भीम सेन जीवित है। तुम्हे किसी प्रकार की चिन्ता नही है। मैं शपथ लेता हूं कि कोई मेरा साथ दे अथवा न दे जव तक तुम्हारे पुत्रो के हत्यारे अश्वस्थामा से वदला न ले लूंगा, तव तक चैन से न वैठूगा।"

भीम सेन की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर एक वार तो सभी सन्न रह गए। परन्तु फिर उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सभी उसके साथ चलने को तैयार हो गए। सभी भ्राता अश्वस्थामा की खोज मे निकल पडे। ढूढते ढूंढते आखिर उन्होने गंगा के तट पर व्यास के आश्रम मे छुपे अश्वस्थामा का पता लगा ही लिया और जाकर उसे घेर लिया।

अश्वस्थामा और भीम सेन मे युद्ध छिड गया । दोनों वीर

पहले धनुष बाणो से लडे, जब धनुप कट गए तो ढाल तलवार हाथ मे लेकर मैदान मे आगए । अर्जुन को एक बार ऐसा क्रोध आया कि उसने गाण्डीव पर बाण चढाया, ताकि भीम सेन से लड रहे अश्वस्थामा का काम तमाम करदे, परन्तु युधिष्टिर ने उसे रोकते हुए कहा—"भीम ने प्रतिज्ञा की है इसलिए उसे ही लडने दो। वीर जब आपस मे लड रहे हो तो तीसरे को हस्तक्षेप नही करना चाहिए। अश्वस्थामा ऐसी कोई धर्म विरुद्ध बात नही कर रहा, जिसके कारण तुम्हे हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पडे ।"

अर्जुन ने हाथ रोक लिया। उधर ढाल तलवार के भी टूट फूट जाने पर भीम सेन और अश्वस्थामा ने गदा सम्भाल ली । जब दोनो अपनी गदाओं को टकराते तो भयकर ध्वनि निकलती, चिनगारिया झड जाती। दोनो उन्मत्त हाथियो की भाति लडते रहे। .... और फिर उनमे मल्ल युद्ध होने लगा। आखिर मे एक बार भीम सेन ने अश्वस्थामा को ऊपर उठा कर भूमि पर बडे जोरो से पटक दिया। और झट वह उसकी छाती पर चढ़ बैठा । घुटने की एक ही चोट पडनी थी कि अश्वस्थामा 'ची' बोल गया। उसने कहा—"भीम सेन ! मैंने हार मान ली। अब मुझे क्षमा कर दो।"

परन्तु भीम सेन तो और भी जोश मे आ गया, उसने क्रुद्ध होकर कहा—"निद्राअग्नि द्रौपदी के पुत्रो को मारने वाले और रात्रि मे आग लगा कर सहस्रो सैनिको को जला मारने वाले कलंकी तुझे क्षमा करदू ! नही, मैं तेरे प्राण लेकर ही छोडूगा।"

उसने फिर विनती की—"भीम सेन तुम महाबली हो । तुम क्षत्रिय वीर हो। मैं तुम्हारी शरण आता हू । क्षत्रिय कभी शरण आये पर हाथ नही उठाया करते।"

"क्षत्रिय धर्म की दुहाई देकर जान बचाना चाहता है नीच ?

आवेश मे आकर भीम सेन ने कहा—मै तुझे बिना मारे नही छोड सकता। कायर जब परास्त हो गया तो क्षमा याचना करता है। धूर्त ! जब तू धृष्टद्युम्न और उसके भाईयो को, तथा द्रौपदी पुत्रो का मार रहा था तब तुझे ब्राह्मण धर्म का ध्यान नही आया, अब मुझे क्षत्रिय धर्म की दुहाई देकर अपने प्राणो की भिक्षा मांगता है ? ठहरा ना भिक्षा माँग कर जीवन निर्वाह करने वाला ब्राह्मण ही।"

उसी समय युधिष्ठिर दौड पडे बोले—"भीम सेन ! शरण आये वीर पर हाथ उठाना तुम्हे शोभा नही देता है । अश्वस्थामा प्राण दान माग रहा है। और तीर्थंकरो का कथन है कि दानो म सर्व श्रेष्ट दान है अभय दान ! अब इसे छोड़ दो ।"

"नही मुझे तो द्रौपदी भाभी को इसका सिर पेश करना है, ताकि इनके कटे सिर को देखकर वह अपने हृदय मे धधक रही शोक एव क्रोध की ज्वाला को शात कर सके ।"—भीम सेन ने कहा ।

"मैं उस सती के लिए अपने माथे का उज्ज्वल रत्न दूगा । वही मेरी पराजय की निशानी होगी—अश्वस्थामा ने दीनता पूर्वक कहा—महाबली भीम अब मुझे क्षमा करदो। और मेरे माथे का रत्न उस सन्नारी को समर्पित करके कहो कि अश्वस्थामा अपने प्राणो का दान लेकर, पराजय के रूप मे यह रत्न देकर, वन मे चला गया । मैं वन मे चला जाऊगा और अपने पापों के प्रायश्चित के रूप मे घोर तपस्या करू गा ।"

यह सुनकर युधिष्ठिर और भी प्रसन्न हुए । उन्होने भीम के चगुल से अश्वस्थामा को मुक्त कराया। अश्वस्थामा ने माथे का रत्न भीम सेन को दे दिया और वन की ओर चल पडा।

भीम सेन उस रत्न को लेकर द्रोपदी के पास पहुचा और रत्न देकर बोला—"भाभी ! यह रत्न तुम्हारी ही खातिर लाया हू। यह अश्वस्थामा की पराजय का चिन्ह है। उसने हम से प्राण दान माँगा और अपने माथे का यह रत्न तुम्हारे लिए दिया है । जिस दुष्ट ने तुम्हारे पुत्रो को मारा था, वह परास्त हो गया । दु शासन का मैंने रक्त बहा दिया, दुर्योधन भी मारा गया। अब अपने हृदय से क्रोध का दावा नल बुझा दो और शात हो जाओ ।"

भीम सेन द्वारा दिया रत्न द्रौपदी युधिष्टिर को देते हुए बोली—"धर्मराज ! इस रत्न को आप अपने मस्तक पर धारण करे।"

× × × ×

सारा हस्तिनापुर नगर निस्सहाय व विधवा स्त्रियों और अनाथ बालको के करुण चीत्कारो रोने व कलपने के हृदय विदारक शब्दो से गूज उठा। जिधर जाईये उधर ही रोने पीटने की आवाजे आ रही थी, प्रत्येक घर मे शोक मनाया जा रहा था । ऐसा का

नही था जिसका कोई मरा न हो। सब हा हा कार कर रहे थे। सभी की आखों से सावन भादो की झडी लगी थी। सारे नगर मे चीत्कारो का इतना शोर था कि नगर मे प्रवेश करते हुए दिल घबराता था। धृतराष्ट्र अपने साथ निस्सहाय स्त्रियों को लेकर कुरु-क्षेत्र की ओर चले, रोने पीटने वालो का यह दल जब कुरुक्षेत्र मे पहुचा तो एक बार सारा क्षेत्र विलाप से भर गया। जहा लगभग तीन सप्ताह तक तलवारें, धनुष, भाले, बर्छिया, सिह नाद, हाथियो की चिघाड़ें, घोडो की हिनहिनाहट सुनाई देती थी, वही अब स्त्रियों का करुण क्रन्दन गूज रहा था। पृथ्वी से उठते चीत्कार आकाश को छूने लगे। एक भयानक विलाप सारे क्षेत्र की छाती दहला रहा था। उस क्षेत्र मे चारो ओर लाशे ही लाशे दिखाई देती थी। कुत्ते और श्रृगाल वीरो के शवो को खीच रहे थे। चीलो और गिद्धो के झुण्ड के झुण्ड लाशो पर टूट पडे थे। जब चीलो, गिद्धो, कुत्तो और श्रृगालो ने जब मनुष्यो के रोने पीटने की आवाज़ सुनी तो वे भी एक साथ मिल कर बोल उठे। उस समय इतना शोर हुआ कि कान पडी आवाज सुनाई नही देती थी। लगता था कि पशु पक्षी मनुष्यो के चीत्कारो की खिल्ली उडा रहे हो और कह रहे हो—"विनाश की लीला रचाते समय नही सूझा था अब आँसू बहाते हो। अब विलाप करने से क्या लाभ ?"

सब अपने अपने प्रिय जनो के शवो को खोज रहे थे। कोई किसी खोपडी को हसरत भरी नज़रो से देखकर आंसू बहा रही थी तो कोई किसी धड से लिपट कर रुदन कर रही थी। और धृतराष्ट्र तो एक ओर खडे आसू बहाते रहे। वह बेचारे अपने पुत्रो के शवो को भी पहचान सकने की शक्ति न रखते थे।

* चव्वन्नवां परिच्छेद *

गांधारी की फटकार

सजय धृतराष्ट्र का एक प्रकार से दाया हाथ था, वह सदा उसके साथ रहता था, उनके समस्त रहस्य सजय को ज्ञात थे। कहते है वह प्रतिदिन कुरुक्षेत्र के युद्ध का वर्णन जाकर धृतराष्ट्र को सुनाया करता था। वैष्णवो के मतानुसार महाभारत के सारे युद्ध का वृतात उसी का कहा हुआ है। जो भी हो सजय था धृतराष्ट्र का आत्मा ही।

जब वृद्ध धृतराष्ट्र अपने बेटो के शोक मे आँसू वहा रहे थे, तब सजय उन्हे धैर्य बधाता हुआ बोला—' महाराज ! आप जैसे वयो वृद्ध और अनुभवी व्यक्ति को समझाने की क्या आवश्यकता ? आप तो स्वय समझदार और जानकार हैं। आप जानते ही हैं कि जो होना था वह हो गया। मृत वीरो के लिए आसू वहाने से कोई लाभ नही है। अब तो धैर्य ही एक मात्र उपाय है। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मो का फल भोगता है। मृतात्माओ को आपके आसुओ से कोई लाभ नही पहुच सकता। इसलिए आप शात हो जाईये और अपने मन को समझाईये।"

विदुर जी भी उस समय धृतराष्ट्र के पास पहुच गए। उन्होने कहा—"आपके इन बेटो को मैंने बहुत समझाया, पर वे न माने। इसी का कारण है कि आज उनकी यह गति हुई। तो भी हमे यह जान लेना चाहिए कि आत्मा अजर अमर है। यह शरीर अनित्य है। किसी न किसी दिन शरीर का नाश होता ही है। जो लोग इस युद्ध मे मारे गए है, वे वीर गति को प्राप्त हुए हैं। उनके लिए आसू

वहाना और पश्चाताप करना व्यर्थ ही है। अत अब आप विलाप समाप्त करके पाण्डवो को ही अपना पुत्र समझिए। युद्ध मे एक न एक पक्ष की हार तो होती ही है और जब इतना भयकर युद्ध ठना था तो एक न एक पक्ष के वीरो की तो यह गति होती ही है। इसलिए आपका विलाप वेकार है। पाण्डव आपके भाई की ही सन्तान हैं। उन्हे आपना आत्मज जान कर आप सन्तोप करेगे तो आपको शाति मिलेगी। वरना इस व्याकुलता से आप का स्वास्थ्य विगड जायेगा और खोये हुए पुत्रो की आत्मा को भी आप कोई लाभ नही पहुचा सकेंगे।"

इस प्रकार कई बार विदुर जी ने धृतराष्ट्र को सान्त्वना दी। उन्हे अनेक प्रकार से समझाया। किसी प्रकार उनके आसू रुके। तब रोती विलखती स्त्रियो के झुण्ड को पार करते हुए पाण्डव श्री कृष्ण के साथ धृतराष्ट्र के पास आये और नम्रता पूर्वक हाथ जोडे हुए उनके सामने जाकर खडे हो गए। विदुर जी ने कहा—"महाराज! आपके पुत्रवत् भतीजे आपके सामने हाथ जोडे खडे हैं।"

धृतराष्ट्र की आखो से पुन आसू बह निकले। उन्होने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"वेटा युधिष्ठिर! तुम सब सकुशल तो हो!"

युधिष्ठिर वोले—'आप की कृपा से हम जीवित हैं और अब आपके चरणो मे आज्ञाकारी पुत्रो के समान स्थान पाना चाहते हैं। हमारे कारण यदि आपको कुछ कष्ट पहुचा हो तो आप क्षमा करदें। हम नही चाहते थे कि युद्ध हो, वह हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी युद्ध टला नही मुझे अपने भाईयों के लिए वडा शोक है। अब मैं स्वय दुर्योधन की कमी, जो कदाचित आपको खटके, पूरी करने का प्रयत्न करूगा। पिता जी के मुनिव्रत धारण करने के उपरान्त से हम ने आप ही को अपना पिता माना है। पिता उद्दण्ड बालक को भी स्नेह करता है। इसी प्रकार आप हमे अपना स्नेह प्रदान करें।"

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को छाती से लगा लिया। पर वह आलिंगन स्नेह पूर्ण न था।

इतिहास कारो का कथन है कि उसके पश्चात धृतराष्ट्र ने भीमसेन को अपने पास वुलाया। पर धृतराष्ट्र के हाव भाव से श्री कृष्ण भीम के प्रति उनके मनोभाव जान गए और उन्होने भीम के

स्थान पर एक लोहे की प्रतिमा अन्धे धृतराष्ट्र के सामने खडी करदी, श्री कृष्ण का भय सही साबित हुआ। क्योकि पहले तो उन्होने उस प्रतिमा से स्नेह प्रगट किया। परन्तु तभी उन्हे अपने बेटो की याद आ गई और उन्होने प्रतिमा को इतने जोर से भींचा कि प्रतिमा चूर चूर हो गई।

परन्तु प्रतिमा के चूर हो जाने के उपरान्त धृतराष्ट्र को ध्यान आया कि मैंने यह क्या कर डाला. वे दुखित हो कर बोले—"हाय मैंने यह क्या कर डाला, क्रोध मे आकर भीमसेन की हत्या करदी।" इतना कह कर वे विलाप करने लगे। तभी श्री कृष्ण बोले—"महाराज! आप चिन्तित न हो। भीम सेन सकुशल है।"

"तो फिर यह कौन था, जो मेरे हाथो चूर हो गया।"

"वह थी लोहे की प्रतिमा।"

धृतराष्ट्र को क्रोध तो आया, पर उसे पीकर बोले—"श्री कृष्ण! तुम ने बहुत अच्छा किया कि मुझे एक पाप से बचा लिया।"

फिर तो धृतराष्ट्र ने भीम सेन को अपने पास बुलाकर बड़ा स्नेह दर्शाया। इसी प्रकार अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी छाती से लगा कर प्यार किया। उन्हे आशीर्वाद दिया और सुख पूर्वक राज्य काज करने को कहा।

गांधारी एक ओर खडी विलाप कर रही थी। विदुर जी ने जाकर उसे ढाढस बन्धाया। और इसके लिए उन्होने आत्मा के सम्बन्ध मे ज्ञानपूर्ण उपदेश दिया। फिर पाण्डव उसके पास गए और पैर छूकर प्रणाम किया। जब श्री कृष्ण पहुचे तो प्रणाम करके बोले—"सती गांधारी! अब विलाप बन्द करो जाने वाले अब वापिस तो आते नही। अब तो पाण्डवों को ही अपना बेटा समझो। तुम्हारे पुत्र यदि मेरी बात मान लेते और पाण्डवो से सन्धि कर लेते तो आज उनकी यह गति नही होती और न आपको यह दिन देखना पडता ठीक है अभिमान विखण्डे का कारण बनता है। जो समस्याए शांति से सुलझ सकती है वही हिंसा से विकट रूप धारण कर लेती है। तुम जैसी सती, जो धर्म के मर्म को समझती है, मृत व्यक्तियों के लिए आंसू बहाये, यह अच्छा नही लगता। सन्तोष करो।"

गांधारी के हृदय मे क्रोध का दावा नल धधक उठा। उसने

श्री कृष्ण को फटकारते हुए कहा—"कृष्ण तू अब मुझे उपदेश देने आया है। क्या मैं नही जानती कि यह सब युद्ध की जड़ तू ही था तेरे ही कारण मेरे परिवार का नाश हुआ। तेरे ही कारण रक्त की नदिया वही। तेरे ही कारण मेरे सौ पुत्र मारे गए। तेरे ही कारण भारत खण्ड के असख्य वीर वलि चढे। तू न होता तो असख्य नारियो का सुहाग न उजडता असख्य वालक अनाथ न होते। और कुरुक्षेत्र इस प्रकार हड्डियो से भरा न होता। तूने ही युद्ध के बीज बोये। तूने ही भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन और दु.शासन आदि का वध कराया और जिनका तू पक्षपाती बना, उन्हे भी इस योग्य कर दिया, कि वे कभी तेरे सामने छाती तान कर खड़े न हो सकेंगे। मैं जानती हू कि त्रिखण्डी होने के उपरान्त मुझे चाह हुई कि भारत खण्ड मे कोई ऐसा क्षत्रिय कुल न रहे, जो यादवो से किसी भी समय टक्कर ले सके। हमारा कुल तेरी आखो मे खटक रहा था और उसी का तू ने नाश करा दिया। पर याद रख कि तूने मेरा कुल मिटाया है, तो तेरे कुल का भी नाश हो जायेगा और तू अपने पाप का भयकर फल भोगेगा। तेरे सारे कुचक्र के वाद भी मुझे तो पानी देने वाला भी होगा, तू निस्सहाय होकर तडप तडप कर प्यासा ही मर जायेगा। यह एक सती का वचन हैं, जो कभी खाली न जायेगा।"

गाधारी के इन शब्दो को सुनकर सभी काप उठे। श्री कृष्ण का दिल भी दहल गया और पाण्डव भी भयभीत हो गए। पर तीर हाथ से छूट चूका था। सती के मुंह से शाप निकल ही गया था। अब क्या हो सकता था। श्री कृष्ण ने अपनी ओर से बहुत ही स्पष्टीकरण दिया, पर गाधारी को वे सन्तुष्ट न कर सके।

इस समय व्यास जी ने क्रुद्ध सती को शांत करने के उद्देश्य से कहा—"देवी! तुम महान सती हो। तुम पाण्डवो पर क्रुद्ध न होओ। उनके प्रति मन मे द्वेष न रक्खो क्योकि द्वेष अधर्म को जन्म देता है। याद है तुम्ही ने तो युद्ध आरम्भ होने से पूर्व कहा था कि जहा धर्म होगा, जीत भी उन्ही की होगी। और आखिर वही हुआ। जो वाते वीत चुकी उन्हे याद करके मन मे वैर रखना अच्छा नही है। तुम्हारी सहन शीलता और धैर्य का यश समस्त ससार मे फैल रहा है। अव तुम अपने स्वभाव को मत वदलो। यही ठीक है कि तुम मा हो, माँ के हृदय मे अपने पुत्रो के प्रति जो ममता होती है,

उसी के वशीभूत होकर तुम्हे अपने पुत्रो के प्रति शोक है, पर तुम साधारण स्त्री तो नही हो । तुम्हें तो उच्चादर्श प्रस्तुत करना ही शोभा देता है।"

गांधारी ने उत्तर दिया—"मैं जानती हूं कि पुत्रों के वियोग के कारण मेरी बुद्धि अस्थिर हो चुकी है. परन्तु फिर भी पाण्डवो के सौभाग्य पर मैं ईर्ष्या नही करती। आखिर वे भी मेरे लिए पुत्रो के ही समान हैं। मैं जानती हूं कि दुःशासन और शकुनि ही इस कुल के नाश के मूल कारण थे, परन्तु श्री कृष्ण ने शकुनि तथा दुःशासन द्वारा प्रज्वलित अग्नि को हवा दी और वह ज्वाला दावानल बन गई। मुझे यह भी विदित है कि अर्जुन तथा भीम निर्दोष है। अपनी सत्ता के मद में आकर मेरे पुत्रों ने यह विनाशकारी युद्ध छेडा था और अपने अत्याचारी कर्मों के कारण मारे भी गए। परन्तु एक बात का मुझे बहुत खेद एव शोक है। श्री कृष्ण की कृपा से दुर्योधन और भीम सेन मे गदा युद्ध हुआ, यहाँ तक तो ठीक है। लेकिन कृष्ण के सकेत पर भीम सेन ने कमर के नीचे गदा मार कर गिराया, यह मुझ से नही सहा जाता।"

भीम को इस बात का दुःख था कि उसने दुर्योधन को अनीति से मारा है। गांधारी की बाते सुनकर वह क्षमा याचना करते हुए बोला—"मा ! युद्ध मे अपने बचाव के लिए क्रोध वश मुझ से ऐसा हुआ, वह धर्म हुआ या अधर्म, आप इसके लिए मुझे क्षमा कर दे। उस समय मैं क्रोध मे था, क्रोध से पाप होते हैं, मुझ से भी यह पाप हुआ। मैं यह स्वीकार करता हूं कि धर्म-युद्ध करके मैं दुर्योधन को परास्त नही कर सकता था, और दुर्योधन की ओर से युद्ध मे बार बार अधर्म हुआ, बार बार युद्ध-नियमो का उल्लघन होता रहा, बस इसी कारण मैं भी अधर्म कर बैठा। पर यह तो सोचिये कि मेरे द्वारा की गई अनीति की जड क्या थी। दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए के खेल में फंसा कर हमारा राज्य छीन लिया और दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया, इससे हमारे हृदय धधक उठे। तेरह वर्ष तक हम दुर्योधन की अनीति के कारण उत्पन्न हुई क्रोध की चिनगारी को छिपाये रहे। प्रगट होने पर हम ने सिर्फ पांच गाव मागे, उसने सुई की नाक जितनी भूमि भी देने से इन्कार

कर दिया। हमारे शांति-दूत श्री कृष्ण की अपने ही दरबार में उस
हत्या करनी चाही हमारे मामा को उसने धोखा देकर अपने प
मे लिया। युद्ध मे बालक अभिमन्यु को अनीति से मरवाया। य
कितनी ही ऐसी बातें थीं कि मेरे हृदय को छलनी कर गईं थी
उसी की अनीतियों के फल स्वरूप मुझ से यह दुष्कर्म हुआ। इसलि
मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं जीवन भर आपकी ऐसी सेवा करूंगा कि
आपको पुत्र हींना होने का खेद ही नही रहेगा। मैं दुर्योधन को आ
को नही दे सका तो इसके बदले, अपने आप को देता हूं।" वावि
सर्वज्ञ देव का कथन है कि यह सामुदाणी कर्म होते हैं जो प्राणिय
के कई कारणो से सहार होते है—

यह सुन गाधारी करुण स्वर मे बोली—"बेटा ! मुझे दुः
इस बात का है कि तुम लोगों ने मेरे सौ के सौ पुत्र मार डाले, ए
तो छोड ही दिया होता, जिस पर हम सन्तोष कर लेते।"

फिर उस देवी ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया। युधिष्ठिर
कांपते हुए उसके सामने गए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। वे
बहुत ही भय विह्वल हो रहे थे। बडे ही नम्र शब्दो में बोले—"देवी!
जिस अत्याचारी ने आप के पुत्रो की हत्या कराई, वह यदि आप के
शाप के योग्य हो तो शाप दे दीजिये। सचमुच मैं बडा कृतघ्न हूं।
मैंने बडा पाप किया। आप से क्षमा मागू तो किस मुंह से?"
आखिर सामुदाणी कर्म ही होते है जो किसी समय जीव अशु
भावना से बाधते हैं—

गाधारी को क्रोध आ रहा था, पर वह कुछ बोली नही
युधिष्ठिर की बातों से वह नम्र हो गई। इतने में ही द्रौपदी रोती
हुई गांधारी के पास गई। उसे रोता देख गांधारी बोली—"बेटी!
मेरी ही भांति तू भी दुखी है। पर विलाप करने से क्या होता है
तू मुझे इसके लिए दोषी समझ कर क्षमा कर दे।"

पाण्डव वहां से चले गए। गाधारी द्रौपदी को धैर्य बंधाती
रहीं। कितना करुण दृश्य था वह, एक शोक विह्वल नारी दूसरी
नारी को धैर्य बंधा रही थी, उस नारी को जो उसकी पत्नी थी
जिस के प्रति गाधारी कुपित थी।

× × × ×

धृतराष्ट्र पाण्डवों को अपने साथ ले गए। एक बार पुनः हस्तिनापुर में उत्सव मनाया गया। बड़े ठाठ से युधिष्ठिर की सवारी निकली। और फिर युधिष्टिर आनन्द पूर्वक राज करने लगे।

धृतराष्ट्र को वे सभी प्रकार का सुख देते थे। तो भी उसके मन की वेदना मिटती न थी। वे भूमि पर ही सोते थे और लम्बे लम्बे उपवास करते थे। कुन्ती गांधारी के मन को बहलाने की चेष्टा करती रहती।

इसके आगे श्री नेमनाथ जी का विवाह देवकी का लाल गज सुकमाल का वर्णन महा सति द्रौपता का हरण श्री कृष्ण जी महाराज का धात्री खण्ड में जाना विजय प्राप्त करना और द्रौपता की वापिस लाना द्वारका नगरी दहन श्री नेमनाथ भगवान् का त्याग पाण्डवो की प्रव्रजित मोक्ष गमन सती राजमती का त्याग सती द्रौपता का त्याग और मोक्ष गमन इत्यादि जैन महाभारत के तृतीय भाग में पढ़ें।

हमारे मौलिक प्रकाशन :—

संख्या	पुस्तक नाम	मूल्य
1	शुक्ल जैन रामायण (पूर्वार्द्ध)	3—0—0
2	,, ,, उत्तरार्द्ध	4—0—0
3	प्रधानाचार्य पूज्य सोहन लाल जी म० का आदर्श जीवन	4—0—0
4	पजाब केशरी जैनाचार्य पूज्य काशीराम जी म० का आदर्श जीवन	3—0—0
5	शुक्ल जैन महाभारत प्रथम भाग ...	5—0—0
6	,, ,, द्वितीय ,, ...	5—0—0
7	धर्म दर्शन (दस धर्म विवेचन)	2—0—0
8	मुख्य तत्त्व चिंतामणि...	0–62 न.पै.
9	तत्त्व चितामणि भाग एक (विस्तार सहित) ...	0—75 ,,
10	,, ,, ,, दो ,, ,, ...	0—75 ,,
11	,, ,, ,, तीन ,, ,, ...	0—75 ,,
12	तैतीस बोल ,, ,, ...	0—15 ,,

प्राप्ति स्थान

1 पूज्य सोहन लाल जैन रजोहरण पात्र भण्डार अम्बाला शहर (पजाब)

2 पूज्य कांशी राम स्मृति ग्रन्थ माला 12 लेडी हार्डिग रो: नई देहली ।

प्राप्ति-स्थान

१ ला॰ टेकचन्द सुखदेव राज जैन
कोतवाली बाज़ार अम्बाला शहर (पंजाब)

२ ला॰ कान्ता प्रसाद जैन (जल्लाबादी)
कान्धला (मुज़फ्फ़र नगर)

३ पूज्य सोहन लाल जैन पात्र भंडार
अम्बाला शहर (पंजाब)

४ श्री प्रीतम चन्द जैन
36 F कमला नगर, देहली

५ जिनेंद्र प्रिंटिंग प्रेस, राजपुरा
(पंजाब)